गुरू ॐ

‘श्रीरामचरितमानस’

‘बालकाण्ड’

श्रीगणेश और सरस्वतीजी के चरणों की,
शीश नवा मैं करता हूँ वन्दना,
अक्षर, अर्थसमूह, रस और छन्द,
सभी मंगलों की जो करते संरचना ।

जिनके बिना सिद्धजन ईश्वर को,
देख नही सकते अपने मन में,
उन श्रद्धा और विश्वासरूपी शिव-गौरी की,
शीश नवा वन्दना करता हूँ मैं ।

ज्ञानमय, नित्य और शंकर रूपी,
गुरूदेव की मैं करता हूँ वन्दना,
जिनके आश्रित होने से होता,
वक्री होकर भी वन्दित चन्द्रमां ।

जो करते हैं विहार श्रीसीतारामजी के,
गुण समूह रूपी पवित्र वन में,
विशुद्ध विज्ञान सम्पन्न कवीश्वर वाल्मीकि,
और हनुमानजी की वन्दना करता हूँ मैं ।

नमस्कार करता हूँ मैं श्रीसीताजी को,
श्रीरामचन्द्रजी की हैं जो प्रियतमा,
जन्मदात्री, पालक और संहार करने वाली,
क्लेश हरने वाली और कल्याण-स्वरूपा ।

सम्पूर्ण विश्व, असुर और ब्रह्मादि,
सब देवता हैं जिनके वश में,
जिनकी सत्ता से सत्य लगता है,
यह जगत, ज्यों सर्प रस्सी में ।

भवसागर से तरने की इच्छा जिनमें,
उनके लिये जिनके चरणकमल नौका से,
सब कारणों के कारण भगवान श्रीराम,
उनके चरणों की वन्दना करता हूँ मैं ।

पुराण, वेद, शास्त्र और रामायण में,
वर्णित है श्रीरघुनाथजी की कथा,
तुलसीदास अपने सुख के लिये,
विस्तृत वर्णन उस कथा का करता ।

जिन्हें स्मरण करने मात्र से,
सिद्ध हो जाते सबके सब काम,
कृपा करें मुझ दास पर वे,
गजमु:ख गणेश समस्त गुणों के धाम ।

सुभाषित बन जाता जिनकी कृपा से गूंगा,
लंगड़ा-लूला चढ़ जाता दुर्गम पहाड़ पर,
कलियुग में सब पापों को हरने वाले,
सदा कृपालु रहें वे दयालु प्रभु मुझ पर ।

नीलकमल सा श्याम वर्ण है जिनका,
नेत्र पूर्ण खिले लाल कमल से,
क्षीरसागर में शयन करने वाले,
वे नारायण मेरे हृदय में बसें ।

कुन्द के पुष्प और चन्द्रमां से गौरे,
दया के धाम, पार्वतीजी के प्रियतम,
कामदेव के विजेता, दीनों के स्नेही,
मुझ पर कृपा करें वे शिवजी हरदम ।

महामोह रूपी घने अन्धकार के नाश हेतु,
जिनके वचन हैं सूर्य-किरणों के समूह से,
कृपा के सागर, नररूप में साक्षात श्रीहरि,
उन गुरू चरणों की वन्दना करता हूँ मैं ।

श्री गुरू चरण कमलों की रज जो,
रची-बसी, सुस्वाद, सुगन्ध और प्रेम से,
भव रोगों की विनाशक, संजीवनी जड़ी,
उस रज की वन्दना करता हूँ मैं ।

सुन्दर, कल्याण और आनन्द की जननी,
सुकृति रूपी शिवजी को सुशोभित करती,
सब गुण-समूहों को वश में करनेवाली,
भक्तों के मन को वह निर्मल करती ।

श्री गुरू चरण-नखों की ज्योति,
जैसे उज्जवल मणियां चमक रही हों,
केवल स्मरण मात्र करने से ही,
हृदय को आलोकित कर देती वो ।

अज्ञानरूपी अन्धकार को हृदय से,
पल में दूर कर देते वो,
बडे भाग्य हैं उन लोगों के,
जिन पर कृपा गुरू की हो ।

हृदय नेत्रों के खुल जाने से,
सभी संसारी दोष-दुख मिट जाते,
श्रीरामचरित रूपी मणि और माणिक,
उन पर प्रकट होने लग जाते ।

जैसे साधक, सिद्ध और सुजान,
सिद्धाञ्जन को नेत्रों में लगाकर,
कौतुक से ही देखने लगते,
जो छिपा हो खानों के भीतर ।

श्री गुरू चरण कमलों की रज,
जो है सुन्दर नयनामृत-अंजन,
उससे विवेकरूपी नेत्रों को निर्मल कर,
श्रीराम चरित्र का मैं करता हूँ वर्णन ।

पहले भू-देवता ब्राहमणों को प्रणाम,
जो हर लेते सब सन्देहों को,
फिर प्रेम सहित प्रणाम करता हूँ,
सब गुणों की खान संतजनों को ।

कपास की तरह संतों का चरित्र,
जिसका फल नीरस, विशद, गुणमय होता,
उनका जन्म इस जग में,
औरों का दोष ढ़कने को होता ।

संतों का समाज तीर्थराज प्रयाग सा,
लोगों को आनन्द देता, कल्याण करता,
रामभक्ति रूपी गंगा जी की धारा है जहां,
और सरस्वतीजी हैं प्रचार ब्रह्मविचार का ।

सूर्यपुत्री यमुना नदी है इसमें,
जो कलियुग के पापों को हरती,
हरि और हर कथा त्रिवेणी सी,
जो सुनते ही सब कल्याण करती ।

अपने धर्म में विश्वास अक्षयवट सा,
शुभकर्म ही उस तीर्थराज का समाज,
सहज ही सबको प्राप्त है वह,
करता जो सब क्लेशों का नाश ।

अकथनीय और अलौकिक वह तीर्थराज,
जो प्रदान करता तत्काल फल,
इस तीर्थराज का प्रभाव प्रत्यक्ष है,
जो सहज ही दे देता चारों फल ।

प्रसन्न मन से इस तीर्थराज का,
अत्यंत प्रेम सहित करते जो सेवन,
धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी,
चारों फल पा जाते वे जन ।

कौए बन जाते हैं कोयल से,
और हंस समान बन जाते बगुले,
सतसंग की महिमा होती ही है ऐसी,
फिर क्यों कोई सुन इसे आश्चर्य करे ।

वाल्मीकि, नारद और अगस्तय मुनि,
सबने कहा है यह अपने मुख से,
जलचर, थलचर और गगनचर,
जितने भी जीव हैं इस जग में ।

बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, ऐश्वर्य और भलाई,
जिस किसी ने भी पाई इस जग में,
समझना चाहिए सतसंग का ही प्रभाव,
वर्णित है यह वेद और लोक में ।

बिना सतसंग विवेक नही होता,
रामकृपा बिन जो सुलभ न होता,
आनन्द और कल्याण का मूल सतसंग,
सब साधनों का परिपक्व फल होता ।

जैसे पारस सोना कर देता लोहे को,
वैसे ही सतसंग सुधार देता दुष्टों को,
किंतु कुसंगति में पड़ जाने पर भी सज्जन,
मणि की तरह छोड़ते नही गुणों को ।

ज्यों त्रिदेव, कवि और पण्डित भी,
असमर्थ करने में संतों का यशगान,
अल्पज्ञों सा यह दास फिर कैसे,
कर सकता उनके गुणों का बखान ?

संतो को प्रणाम, समता जिनके चित्त में,
न कोई मित्र, न कोई शत्रु जिनका,
अंजलि में रखे हुए फूलों के समान,
खुशबु से भर देना होता स्वभाव उनका ।

सरल हृदय और हितकारी जानकर,
करता हूँ मैं विनय संतों से,
मेरी बाल विनय को सुनकर,
श्रीराम चरणों में मुझे प्रीति दें ।

अब सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम,
जो भलाई का भी बदला बुराई से देते,
देख नही सकते किसी का भला होते,
औरों को उजड़ते देख खुश होते ।

भगवत यशगान लेशमात्र न भाता,
औरों को दुख देने में वीरों जैसे,
हजार आंखों से देखते दोष औरों का,
पर खुद होते घी में मक्खी जैसे ।

क्रोध करने में जो यम के जैसे,
पाप और अवगुणों में कुबेर से धनी,
जिनकी बढ़ोतरी पुच्छल तारे के समान,
भलाई उनके सोते रहने में ही ।

जैसे खेती का नाश करने के लिये,
ओले खुद गलने को रहते तैयार सदा,
वैसे ही दूसरों के काम बिगाड़ने हेतु,
वे मरने को भी रहते तैयार सदा ।

शेषजी की तरह जान प्रणाम करता हूँ उन्हें
हजार मुखों से दूसरों की बुराई करते,
पृथु की तरह होते दस हजार कान वाले,
पर उनसे औरों के दोष ही सुनते ।

फिर इन्द्र के समान विनय करता हूँ,
जो सुरा को नीकी और हितकारी मानते,
कठोर वज्ररूपी वचन लगते उन्हें प्यारे,
हजारों आखों से औरों के दोष देखते ।

दुष्टों की है यह रीत सदा से,
किसी का भी हित सुनकर वे जलते,
मैने तो की है अपनी ओर से विनती,
पर चूकेंगे नहीं वो अपनी ओर से ।

कितने ही प्रेम से पालिये कौओं को,
क्या कभी मांस भक्षण वो त्याग सकते,
ऐसे ही कितनी ही विनती करने पर भी,
दुर्जन भी अपना स्वभाव छोड़ नहीं सकते ।

अब संत और असंत दोनों के,
चरणों की मैं करता हूँ वन्दना,
दोनों ही दुख देने वाले हैं,
पर दोनों में है फर्क बड़ा ।

प्राण हर लेते हैं संत भी,
होता है जब उनसे बिछुड़ना,
और दारूण दुख देते है असंत,
जब होता है उनसे मिलना ।

एक साथ पैदा होने पर भी,
अलग-अलग हैं गुण दोनों के,
संत कमल से, असंत जोंक से,
संत अमृत और असंत मदिरा से ।

भले और बुरे अपनी अपनी करनी अनुसार,
यश और अपयश रूपी सम्पत्ति पाते,
गुण और अवगुण जानते सबके सब कोई,
पर जिसे जो अच्छा लगता, उसे वो भाते ।

भला भलाई ही ग्रहण करता है,
नीच नीचता ग्रहण किये रहता,
अमृत की सराहना अमर करने में,
पर विष मारने में ही लगा रहता ।

संतों के गुण और दुष्टों के अवगुण,
दोनों की कथाएँ हैं अथाह, अपार,
इसलिये वर्णन किया कुछ उनका,
क्योंकि बिना पहचाने हो कैसे विचार ।

भले, बुरे सब जन्में ब्रह्मा से,
पर फर्क किया उनमें वेदों ने,
गुणों-अवगुणों से सनी यह सृष्टि,
है वर्णित यह वेद-पूराणों में ।

दिन-रात और सुख-दु:ख रूपी,
सभी द्वन्द रचे हैं ब्रह्मा ने,
पर उनके गुण-दोषों का विभाग,
किया गया है शास्त्रों में ।

जड़-चेतन रूपी समस्त विश्व को,
गुण-दोषमय रचा विधाता ने,
किंतु दोष रूपी जल को छोड़,
गुणरूपी दूध ग्रहण किया संतों ने ।

हंस का सा विवेक जब देता विधाता,
तब मन होता सदगुणों में अनुरक्त,
पर काल, स्वभाव और कर्मवश,
कभी-कभी साधु भी हो जाते विरत ।

भगवद्-भक्त उस चूक को सुधार,
दोषों को त्याग, निर्मल यश देते,
उत्तम संग पा, भलाई करने पर भी,
दुष्ट मलिन स्वभाव त्याग नही देते ।

साधु के वेष में दुष्टों को भी,
वेष के प्रताप से यह जग पूजता,
पर कालनेमि, रावण और राहू की तरह,
उनका कपट अन्त तक नही निभता ।

कैसा भी वेष हो साधु का,
उसका हर जगह सम्मान ही होता,
सर्वविदित है बुरे संग से हानि,
और अच्छे संग से लाभ ही होता ।

नीचे को बहने वाले पानी के संग,
धूल जाकर कीचड़ में मिल जाती,
वही धूल वायु के संग मिलकर,
ऊंचे आकाश में ऊपर चढ़ जाती ।

साधु के घर पलते तौता-मैना,
राम नाम का सिमरन करते,
वहीं दुष्टों के घर के तौता-मैना,
गिन-गिनकर लोगों को गालियां देते ।

जो धुआं वैसे कालिख कहलाता,
वही स्याही बन उपयोग में आता,
जल, अग्नि और वायु के संग से,
वही मेघ बन कर वर्षा बरसाता ।

ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र,
जैसा संग मिलता वैसे बन जाते,
चतुर और विचारशील पुरूष ही,
इसका सही अर्थ पहचान पाते ।

एक समान उजाला और अंधेरा,
शुक्ल और कृष्ण पक्षों में रहता,
पर चन्द्रमा के बढ़ने-घटने से,
एक को यश, दूजे को अपयश मिलता ।

जितने भी जड़ और चेतन जीव हैं,
उन सबको राममय जान कर,
उनके चरण-कमलों की वन्दना,
करता हूँ दोनों हाथ जोड़कर ।

देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग और पक्षी,
प्रेत, पितर, निशाचर, गन्धर्व और किन्नर,
सबके चरणों में प्रणाम करता हूँ,
अब आप सब कृपा कीजिये मुझ पर ।

चौरासी लाख योनियों से भरे,
इस जगत को सीताराममय जान,
अपने दोनों हाथों को जोड़ कर,
करता हूँ मैं उन सबको प्रणाम ।

आप सब मुझे अपना दास जानकर,
छल छोड़कर कीजिये मुझ पर कृपा,
अपने बुद्धि बल का भरोसा नही मुझको,
इसलिये आप सबसे विनती मैं करता ।

बहुत ही अल्प है मेरी बुद्धि,
और अथाह है श्रीराम की कथा,
सो उनके गुणों का वर्णन करने का,
मुझे कोई उपाय नही सूझता ।

ऊंची चाह और नीची है बुद्धि,
कुछ भी नही है पास में मेरे,
क्षमा करें सज्जन मेरी ढिठाई,
प्रेम सहित सुनें वचन वे मेरे ।

जैसे बालक के तोतले वचन,
प्रिय लगते हैं उसके मात-पिता को,
किन्तु क्रूर, कुटिल और दुर्जन,
पाएंगें हंसी का पात्र मुझे वो ।

अच्छी बन पड़ी हो, या हो बुरी,
किसे अपनी कविता अच्छी नही लगती,
पर दूसरों की रचना से खुश हों,
ऐसों की संख्या बहुत नही मिलती ।

तालाबों और नदियों से बहुत हैं,
जो अपना जल पाकर ही बढ़ते,
पर सागर से होते बहुत ही विरले,
जो पूर्ण चन्द्रमा को देख उमड़ते ।

इच्छा बड़ी और छोटा भाग्य है मेरा,
परन्तु मेरा है यह दृढ़ विश्वास,
सज्जन इसे सुनकर सुख पायेंगे,
और दुष्ट उड़ायेंगे मेरा उपहास ।

पर उनकी हंसी मेरा हित ही करेगी,
कौए कहते ही आए कठोर कोयल को,
जैसे बगुले हंस को, मेढ़क पपीहे को,
वैसे ही दुष्ट हंसते निर्मल वाणी को ।

जिनको चाहे कुछ भी रूचि न हो,
उनको भी प्रसन्न करेगी यह कविता,
भोली बुद्धि, ऊपर से भाषा की रचना,
हंसने ही योग्य है, दोष क्या उनका ।

ना अच्छी समझ, ना प्रभु से प्रीति,
उनको यह कथा लगेगी फीकी,
ऊँच-नीच, ना हरि-हर में भेद,
उनको यह कथा लगेगी नीकी ।

श्रीराम भक्तिमय जान इस कविता को,
सज्जन सुन्दर वाणी से सराहेंगे इसे,
ना कवि, ना वाक्य रचना में कुशल,
कोई भी कला, ना विधा मुझमें ।

अक्षर, अर्थ और अलंकार,
और नाना प्रकार के छन्द होते,
भावों और रसों के अपार भेद,
कविता में अनेक गुण-दोष होते ।

इनमें से कविता के बारे में,
एक भी बात का नहीं मुझमें ज्ञान,
कोरे कागज पर लिखकर यह,
शपथपूर्वक सत्य-सत्य करता हूँ बयान ।

सब गुणों से रहित मेरी रचना,
बस एक ही जगप्रसिद्ध गुण है इसमें,
अच्छी बुद्धि, निर्मल ज्ञान युक्त पुरूष,
उसे विचार रूचि लेंगे इसमें ।

अति पवित्र, वेद-पुराणों का सार,
अति उदार राम का नाम है इसमें,
अति कल्याणकारी और अमंगल हारी,
पार्वती सहित शिव मगन रहते जिसमें ।

कुशल कवि की अनूठी कविता भी,
बिना राम नाम शोभा ना पाती,
जैसे चन्द्रमुखी सुसज्जित स्त्री भी,
बिना वस्त्रों के शोभा ना पाती ।

लेकिन रामनामयुक्त गुणरहित कविता भी,
सज्जन लोगों से आदर ही पाती,
क्योंकि गुण ही ग्रहण करते हैं,
गुणग्राही संतजन भंवरों की भांती ।

यद्यपि रसविहिन है मेरी यह कविता,
पर प्रभु का प्रताप प्रकट है इसमें,
भले संग से किसने पाया न बड़प्पन,
यही भरोसा है पक्का मेरे मन में ।

अगर के साथ सुवासित होकर,
धुंआ भी अपना कड़वापन छोड़ देता,
मेरी यह कविता भी भद्दी सही,
पर इसमें है राम नाम की कथा ।

कलियुग के पापों की हरनि,
कल्याणकारी यह श्रीरघुनाथजी की कथा,
पवित्र गंगा सी, टेढ़ी चाल वाली,
तुलसीदास की यह भद्दी कविता ।

सज्जनों के मन को भायेगी यह,
श्रीरघुनाथजी के सुन्दर यश की कथा,
ज्यों श्रीमहादेव के अंग लगकर,
अपवित्र राख भी पा जाती पवित्रता ।

श्रीराम जी की यश गाथा के संग में,
सबको प्रिय लगेगी मेरी यह कविता,
ज्यों मलय पर्वत के संग चन्दन बनकर,
काष्ठ तज देता है अपनी तुच्छता ।

श्यामा गाय के काली होने पर भी,
उसका उज्जवल, गुणकारी दूध पीते हैं सभी,
ऐसे ही सीता-राम का यशगान होने से,
मेरी गंवारू कविता भी पढ़ेंगे सभी ।

सर्प, पर्वत या हाथी के मस्तक पर,
मणि, माणिक और मोती वैसे नही सजते,
जैसे राजमुकुट या नवयुवती के तन पर,
सजकर वे और अधिक शोभा देते ।

ऐसे ही कहते हैं विद्वान लोग,
सुकवि की कविता भी अन्यत्र ही शोभा पाती,
भक्ति के कारण सरस्वतीजी ब्रह्मलोक छोड़,
स्मरण करते ही दौड़ी आती ।

उनकी दौड़ने की यह थकावट,
और कैसे भी दूर नही होती,
रामचरित सरोवर के जल में,
स्नान कर ही वे शीतल होती ।

श्रीहरि का ही यश गाते सुजान,
अपने हृदय में ऐसा विचार कर,
संसारी लोगों का गुणगान करने से,
सरस्वतीजी पछताती है सिर धुनकर ।

बुद्धिमानों द्वारा हृदय समुद्र, बुद्धि सीप,
सरस्वतीजी स्वाति नक्षत्र सम कही जाती,
इसमें जब श्रेष्ठ विचाररूपी जल बरसता,
तो मुक्तामणि सी सुन्दर कविता होती ।

उन कवितामयी मुक्तामणियों को,
सज्जन रामचरित्ररूपी तागे में पिरोकर,
अनंत अनुराग रूपी शोभा पाते हैं,
अपने निर्मल हृदय में उन्हें धारण कर ।

कौए सी करनी पर हंस से दिखते,
इस कराल कलियुग में जन्में,
वेदमार्ग छोड़, कुमार्ग पर चलते,
कपट की मूरत, पापों के भांडें ।

भक्त कहाते पर लोगों को ठगते,
काम, क्रोध और लोभ के गुलाम,
कपटी और दम्भी ऐसे लोगों में,
सबसे ऊपर है मेरा नाम ।

यदि सब अवगुण मैं अपने बखानू,
तो पार न पा सकूंगा मैं उनसे,
सो बहुत कम अवगुण कहे मैने अपने,
बुद्धिमान समझ जाएँगे बस थोड़े से ।

मेरी अनेकों प्रकार की विनती को समझ,
कोई दोष न देगा सुनकर इस कथा को,
इतने पर भी जो शंका करेंगे,
मुझसे भी अधिक कंगाल और मूर्ख हैं वो ।

ना कोई कवि, ना ही चतुर हूँ मैं,
पर बुद्धिअनुसार बजाता श्रीराम गुणों की भेरी,
कहाँ तो श्रीरघुनाथ जी के अपार चरित्र,
कहाँ संसार में आसक्त बुद्धि मेरी ।

जिस हवा से उड़ जाता सुमेरू तक,
क्या गिनती रूई की उसके सामने,
श्रीरामजी की असीम प्रभुता को समझ,
मेरा मन हिचकता कथा रचने में ।

शेष, महेश, सरस्वती और ब्रह्मा,
समस्त शास्त्र और वेद पुराण,
नेति-नेति कहकर करते रहते,
जिन अनन्त प्रभु का सदा गुणगान ।

अकथनीय है उन श्रीराम की प्रभुता,
पर उसे कहे बिन रस न कोई,
थोड़ा भी भजन बहुत फल देता,
भव सागर से भी तारता वो ही ।

नाम, रूप और इच्छा से रहित,
अजन्मा, सच्चिदानन्द, परमधाम, परमेश्वर,
सबमें व्यापक और विश्वरूप वह,
देह धारण कर लीला करता सर्वेश्वर ।

परम कृपालु और शरणागत वत्सल,
भक्तों के लिये लीला करते भगवान,
एक बार जिस पर कृपा कर देते,
फिर उस पर क्रोध न करते भगवान ।

खोयी वस्तु फिर प्राप्त करा देते,
दीनबन्धु, सरल, स्वामी, सर्वशक्तिमान,
बुद्धिमान उनका यश वर्णन कर,
मोक्ष और प्रेम का पाते वरदान ।

यही विचार, उनकी चरण वन्दना कर,
कहूँगा मैं उनके गुणों की कथा,
वही मार्ग सुगम होगा मेरे लिये भी,
जो मार्ग पहले भी मुनियों ने चुना ।

पुल बांधने से दुर्गम नदियां भी,
चीटीं तक को सहल हो जाती,
ऐसे ही उन मुनियों के सहारे,
श्रीरामचरित को कह सकूंगा मैं भी ।

इस प्रकार मन को बल दिखलाकर,
करूंगा मैं श्रीरामकथा की रचना,
व्यासादि अनेक श्रेष्ठ कवियों ने,
सादर श्रीहरि का गुणगान किया ।

करता हूँ मैं उनके चरणों में प्रणाम,
करें मेरे मनोरथ को वो पूरा,
कलियुग के उन कवियों को भी प्रणाम,
जिन्होंने रघुपति का गुणगान किया ।

सभी प्राकृत कवि और वो जिन्होंने,
भाषा में किया हरिचरित्रों का गुणगान,
भूत, भविष्य और वर्तमान के उन कवियों को,
कपट त्याग कर मैं करता हूँ प्रणाम ।

अब प्रसन्न हो वरदान दीजिये मुझे,
कि साधु-समाज में मेरी कविता सम्मानित हो,
क्योंकि जो बुद्धिमानों से आदर नही पाती,
व्यर्थ ही कविता रची जाती है वो ।

उत्तम वही कीर्ति, कविता और सम्पत्ति,
हित करनेवाली हो जो सबका,
अति सुन्दर है श्रीराम की कीर्ति,
पर मेरी भद्दी कविता है मेरी चिन्ता ।

पर आपकी कृपा से मेरे लिये,
हो सकती है सुलभ यह बात भी,
जैसे की रेशम से की गई सिलाई,
सुहावनी लगती है टाट पर भी ।

वही कविता विद्वानों से आदर पाती,
सरल और निर्मल चरित्र वर्णित हो जिसमें,
शत्रु भी स्वाभाविक बैर को भूल,
सराहना योग्य बातें पायें जिसमें ।

निर्मल बुद्धि चाहिये ऐसी कविता के लिये,
पर बहुत अल्प है मेरा बुद्धि बल,
इसलिये बारम्बार आग्रह करता हूँ, हे कवियों,
फैलाओ मुझ पर अपनी कृपा का आंचल ।

कवि और पण्डितगण सब आप,
सुन्दर हंस हैं रामचरित्ररूपी मानसरोवर के,
मुझ बालक की सुन्दर रूचि देख,
और विनती सुन मुझ पर कृपा करें ।

करता हूँ चरणकमलों की वन्दना,
मैं रामायण-रचेता मुनि वाल्मीकि की,
खर (कठोर) और दूषण (दोष) रहित है जो,
खर और दूषण उसमें होने पर भी ।

चारों वेदों की वन्दना करता हूँ मैं,
जहाज से हैं जो भव तारने में,
तनिक भी थकावट जिन्हें न होती,
श्रीराम का यश वर्णन करने में ।

वन्दना भवसागर रचेता ब्रह्माजी की,
जिन ब्रह्माजी ने दोनों चीजें बनायी,
एक तरफ अमृत, कामधेनु और चन्द्रमा,
दूसरी तरफ दुष्टजन और मदिरा आयी ।

देवता, ब्राह्मण, पण्डित और ग्रह,
करता हूँ उनके चरणों की वन्दना,
आप सब होकर मुझ पर प्रसन्न,
मेरे सारे सुन्दर मनोरथों को करें पूरा ।

यदि श्रीशिवजी और पार्वतीजी मुझ पर,
स्वप्न में भी जो सचमुच प्रसन्न हों,
तो इस भाषा-कविता का प्रभाव,
जो मैंने कहा वह सब सच हो ।

फिर पावन और मनोहर चरित्र वाली,
सरस्वतीजी और गंगाजी की करता हूँ वन्दना,
एक अपने गुण और यश कहने से,
दूजी अपने जल से बनी पाप हरना ।

श्रीअयोध्यापुरी और पाप विनाशक सरयू की,
दोनों की मैं सादर वन्दना करता,
फिर अवधपुरी के नर-नारियों को प्रणाम,
जिन पर बहुत है श्रीराम की ममता ।

प्रणाम श्रीमहेश और पार्वतीजी को जो हैं,
दीनबन्धु, दाता, गुरू और मेरे माता-पिता,
प्रणाम करता हूँ उन हितकारी को,
सीतापति श्रीराम के सेवक, स्वामी और सखा ।

सीताजी की निन्दा करने वाला धोबी,
और उसके समर्थक पुर के नर-नारी,
उनके पापों का भी विनाश कर,
बना दिया अपने धाम का वासी ।

बेमेल अक्षर और अस्पष्ट अर्थों वाले,
शाबर मन्त्र समूहों के रचनाकार,
जिनके प्रताप से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है,
उन शिव-पार्वती को मेरा नमस्कार ।

फैल रही है जिसकी कीर्ति सर्वत्र,
वन्दना उस कौसल्यारूपी पूर्व दिशा की,
श्रीरामरूपी चन्द्रमा प्रकटे जिससे,
दुष्टों के लिय पाला, सज्जनों के हितकारी ।

आनन्द और मंगलदायी बनायेंगे यह कथा,
उमापति शिवजी मुझ पर प्रसन्न हो कर,
वर्णन करता हूँ श्रीराम चरित्र का मैं,
उन्हें स्मरण कर, उनका प्रसाद पाकर ।

सब रानियों सहित राजा दशरथजी को मैं,
मन, वचन और कर्म से करता हूँ प्रणाम,
जिन्हें रच ब्रह्माजी ने भी यश पाया,
मुझ पर कृपा करें पुत्र का सेवक जान ।

तारों और चन्द्रमा से शोभित होती ज्यों रात,
श्रीशिव कृपा से सुशोभित होगी मेरी कविता,
पापमुक्त, कल्याण के भागी और प्रेमी होंगे,
जो मन से सुनेंगे मेरी यह कविता ।

वन्दना करता हूँ मैं श्रीराम के प्रेमी,
अवध के राजा श्रीदशरथ जी की,
त्याग दिया जिन्होंने अपनी देह को,
दीनदयालु प्रभु के बिछुड़ते ही ।

योग और भोग में छिपा रखा था जिन्होंने,
श्रीराम के चरणों में अपना गूढ़ प्रेम,
उन्हें देखते ही प्रकट हो गया,
जनकजी का श्रीराम के प्रति वह प्रेम ।

वर्णनातीत है जिनका नियम और व्रत,
और श्रीराम के चरणों में दृढ़ अनुराग,
भाइयों में सर्वप्रथम उन भरतजी के,
चरणों में मैं करता हूँ प्रणाम ।

शीतल, सुन्दर और भक्त सुखदायी,
श्रीलक्ष्मणजी के चरणकमलों को प्रणाम,
श्रीरघुनाथजी की कीर्तिरूपी विमल पताका में,
जिनका यश हुआ दंड के समान ।

जगत का भय दूर करने को,
जिन सहस्त्र सिर वालों ने जन्म लिया,
वे गुणों की खान, कृपासिन्धु, सुमित्रानन्दन,
श्रीलक्ष्मणजी प्रसन्न रहें मुझ पर सदा ।

महावीर, सुशील, भरतजी के अनुरागी,
श्रीशत्रुघ्नजी के चरणों में मेरा प्रणाम,
फिर श्रीहनुमान जी को करता हूँ विनती,
जिनका स्वयं श्रीराम ने किया यशगान ।

दुष्टरूपी वन को भस्म करते हेतु,
जो स्वयं है अग्नि के समान,
प्रणाम उन श्रीहनुमानजी को मेरा,
जिनके हृदय में रहते सदा श्रीराम ।

वानरों के राजा सुग्रीव, जाम्बवान,
विभीषण और अंगदजी आदि,
प्रणाम उन्हें, अधम देह में भी,
श्रीरामजी की जिन्होंने करली प्राप्ति ।

पशु-पक्षी, देवता या मनुष्य,
जो भी हैं उपासक श्रीराम के,
शुकदेव, सनकादि, नारद मुनि आदि,
चरणों में प्रणाम है उन सबके ।

जनकनन्दिनी, सारे जगत की माता,
और प्रिया करूणानिधि श्रीराम की,
उनके चरण-कमलों की वन्दना,
सदा रहे मुझ पर कृपा उनकी ।

अब प्रभु श्रीरामजी के चरणकमलों की,
करता हूँ वन्दना मन, वचन और कर्म से,
भक्तों के सब दु:खों के हर्ता,
सब सुख और आनन्द होता जिनसे ।

जो कहने में है अलग लेकिन,
वास्तव में जल और लहर से एक,
उन श्रीसीतारामजी के चरणों में,
स्वीकार हों मेरे प्रणाम अनेक ।

वन्दना श्रीरघुनाथजी के पवित्र नाम राम की,
अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा के बीज रूप नाम की,
ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप, वेदों का प्राण,
निर्गुण, अनुपम गुणों के भण्डार राम नाम की ।

महामन्त्र है यह राम नाम,
महेश्वर शिवजी निरन्तर जपते रहते जिसको,
इसके प्रभाव से ही सारा जग,
पूजता सर्वप्रथम श्रीगणपति गणेश को ।

उलटा नाम मरा-मरा जप कर,
पवित्र हो गये आदिकवि श्री वाल्मीकिजी,
सहस्त्र जप के समान जान कर,
शिव नाम सहित जपती रहतीं पार्वतीजी ।

इसी कारण हर्षित हो शिवजी ने,
तुरन्त अपना लिया श्रीगौरीजी को,
इसी नाम ने बना दिया,
अमृत सा कालकूट जहर को ।

श्रीराम नाम के दो सुन्दर अक्षर,
सावन-भादों के दो महीनों से,
उनकी भक्ति वर्षा ऋतु सी,
और उत्तम सेवकजन धान से ।

मधुर, मनोहर, भक्तों के जीवन,
दोनों अक्षर सुलभ सुखकारी,
इस लोक में भी लाभ देने वाले,
परलोक में भी अति कल्याणकारी ।

बहुत भले कहने सुनने में,
तुलसीदास को प्यारे राम-लखन से,
ये दोनों अक्षर भिन्न लगते है,
पर सदा संग रहते जीव-ब्रह्म से ।

नर-नारायण से सुन्दर भ्राता,
भक्तों के रक्षक, पालक जग के,
भक्तिरूपी स्त्री के सुन्दर आभूषण,
निर्मल चन्द्र, सूर्य से हितकारी जग के ।

मोक्षरूपी अमृत के स्वाद समान,
जिनके बल पर टिकी है यह धरती,
भक्तों के हृदय-कमल हेतु भौंरों से,
ज्यों यशोदाजी को प्यारे श्रीकृष्ण-दाऊजी ।

राम नाम के दोनो अक्षर,
अति शोभादायी, प्राण तुलसी के,
पहला ‘र’ अक्षर क्षत्ररूप से,
दूसरा ‘म’ मुकुटमणि सा ऊपर सबके ।

नाम और नामी समझने में एक,
पर हैं दोनो स्वामी और सेवक से,
ज्यों स्वामी के पीछे चलता सेवक,
नामी चलता नाम के पीछे ।

अनिवर्चनीय, अनादि और सुन्दर,
नाम और रूप हैं ईश्वर की उपाधि,
पर इनका स्वरूप जानने को चाहिये,
केवल शुद्‌ध भक्ति से भरी बुद्‌धि ।

नाम और रूप में छोट-बढ़ाई,
होगा अपराध तो यह कहना,
पर जानते हैं यह साधु-पुरूष,
नाम बिना रूप का ज्ञान नही मिलता ।

नाम बिना जाने रूप का ज्ञान,
सामने होने पर भी हो नही सकता,
पर नाम के स्मरण करते ही,
रूप प्रेमसहित हृदय में आ बसता ।

अकथनीय है नाम और रूप की विशेषता,
सुखदायक और है वर्णन से परे,
नाम सगुण और निर्गुण के बीच साक्षी,
जो दोनों का यथार्थ ज्ञान प्रकट करे ।

भीतर और बाहर को भी जिसे,
दोनों ही ओर चाहिये प्रकाश,
राम नाम रूपी मणि दीपक को वह,
अपनी जिह्वा पर रखे चास ।

वैराग्यवान, मुक्त, योगी पुरूष,
निरन्तर नाम जप ही करते रहते,
अनुपम, अनिवर्चनीय, अनामय ब्रह्मसुख का,
अनुभव निरन्तर वे करते रहते ।

परमात्मा का अति गूढ़ रहस्य वे,
नाम जप के द्वारा जान लेते,
नाम जप द्वारा ही सिद्ध-साधक,
अणिमादि सिद्धियों को पा लेते ।

नाम जप द्वारा ही आर्त जन,
पा जाते अपने दु:खों से पार,
आर्त, अर्थाथी, जिज्ञासु और ज्ञानी,
चारों ही होते पुण्यात्मा और उदार ।

नाम ही आधार सभी भक्तों का,
पर ज्ञानी प्रभु को परमप्रिय होता,
सभी कालों में नाम प्रभावी,
पर कलियुग में इसका ही भरोसा ।

सभी इच्छाएं और आशाएं त्याग,
निरन्तर लीन जो भक्ति में रहते,
अपने मन को मछली बना,
नामरूपी सरोवर में डूबे रहते ।

अकथनीय, अथाह, अनुपम, अनादि,
निर्गुण-सगुण दो रूप ब्रह्म के,
मेरे मत में नाम बड़ा है,
जिसने रखा उन्हें वश में कर के ।

कहता हूँ मैं अपने मन के,
विश्वास, प्रेम और रूचि की बात,
निर्गुण और सगुण दोनों ही,
भेद ब्रह्म के, अग्नि के समान ।

निर्गुण अप्रकट काठ की अग्नि,
लेकिन सगुण प्रत्यक्ष अग्नि सा,
तत्त्वत: दोनों एक ही हैं,
पर आसान नही उन्हें जानना ।

लेकिन निर्गुण-सगुण दोनों ही,
वश में एक नाम के हो जाते,
इसी नाम के द्वारा भक्त जन,
अविनाशी, सच्चिदानन्द ब्रह्म को पाते ।

ऐसे अविकारी प्रभु के मन में रहते भी,
जीव जगत के हैं दीन और दुखी,
पर नाम स्मरण के प्रभाव के कारण,
सहज ही प्रकट हो जाता ब्रह्म वही ।

इस प्रकार नाम का प्रभाव,
निर्गुण से है अत्यन्त बड़ा,
और मेरे विचार से वही नाम,
सगुण राम से भी है बड़ा ।

मनुष्य रूप धर, स्वयं कष्ट सह,
श्रीराम ने सुखी किया संतो को,
और उन्हीं का नाम जप-जप कर,
आनन्द के धाम बन जाते संत वो ।

श्रीराम ने अहल्या को ही तारा,
पर उनके नाम ने लाखों को तारा,
पुत्र सहित ताड़का को मारा उन्होनें,
नाम ने भक्तों का दुख दोष निवारा ।

सुहाना बनाया दण्डक वन को राम ने,
पर नाम ने पवित्र किया लाखों को,
राक्षसों के समूहों को मारा उन्होंने,
पर नाम ने मिटाया पाप की जड़ को ।

शबरी और जटायु आदि से,
उत्तम सेवक तारे रघुनाथ ने,
पर नाम द्वारा अनगिनत दुष्टों की,
उद्धार कथा प्रसिद्ध है वेदों में ।

सुग्रीव और विभीषण दो को ही,
अपनी शरण में रखा राम ने,
वेद और लोक में है प्रसिद्ध,
कई गरीबों पर कृपा की राम ने ।

भालू और बंदरों की सेना बटोर,
समुद्र पर पुल बांधा श्रीराम ने,
पर उनके नाम के बल के आधार,
भव-सिंधु तर जाता पल भर में ।

कुटुम्ब सहित रावण को मारा,
तब सीता सहित आए राम अवध में,
पर प्रेम सहित नाम स्मरण कर,
भक्त आनन्द मनाते अपने मन में ।

निर्गुण और सगुण दोनों से बड़ा,
नाम वर देने वाला वरदाताओं को,
यही जान अनेक नामों में से,
शिवजी ने चुना राम नाम को ।

मास पारायण, पहला विश्राम

वेष अमंगल होने पर भी,
नाम के बल मिला यश शिवजी को,
नाम ही के बल सिद्ध-सनकादि मुनिगण,
सब भोगते हैं वो ब्रह्मानन्द को ।

नाम प्रताप जाना नारद ने,
हरि और हर दानों को प्यारे,
नाम स्मरण के प्रताप से ही बने,
भक्त प्रहलाद प्रभु के प्यारे ।

ध्रुव ने भी जपा हरिनाम,
और प्राप्त किया ध्रुवलोक को,
हनुमानजी ने भी राम-नाम रट,
वश में किया प्रभु राम को ।

अजामिल, गण और गणिका भी,
हरि नाम प्रभाव से मुक्त हो गये,
कहाँ तक करूँ नाम की बढ़ाई,
जिसे राम भी नही गा सकते ।

कल्पतरू और मुक्ति का द्वार है,
कलियुग में श्रीराम का नाम,
जिसको स्मरण करने से हो गया,
भांग सा तुलसी, तुलसी समान ।

सभी युग, काल और लोकों में,
सुखी हुए जीव राम नाम जप कर,
सर्वोत्तम है राम नाम से प्रेम,
यही है संतों और वेदों का मत ।

ध्यान, यज्ञ और पूजन से होता,
क्रमशः सत्य, त्रेता और द्वापर में उद्धार,
लेकिन कलियुग में लोगों का मन,
बना हुआ पाप का घर-बार ।

सब जंजालों का नाश कर देता,
कलियुग में कल्पवृक्ष सा नाम,
परलोक का भी परम हितैषी,
इस लोक में माता-पिता समान ।

न कर्म, न भक्ति, न ही ज्ञान,
कलियुग में आधार बस राम-नाम,
कलियुग रूपी कालनेमि को जीतने,
राम नाम ही समर्थ बुद्धिमान-हनुमान ।

हिरण्यकशिपु से कलियुग के लिये,
राम नाम है श्रीनरसिंह भगवान,
जो जपे नाम वो प्रहलाद से,
उनकी रक्षा करेगा यह राम-नाम ।

भाव-कुभाव, क्रोध या आलस से,
सब तरह करता नाम जप कल्याण,
उसी राम नाम का कर स्मरण,
शीश नवां करता मैं उसका गुणगान ।

जिनकी कृपा, कृपा करने से न अघाती,
मेरी बिगड़ी बनाएंगे सब भांती,
अपनी ओर देख मुझसे कुसेवक को भी,
निभा ही लेंगे वे उत्तम स्वामी ।

विनय सुनते ही प्रेम पहचान लेना,
यही रीत प्रसिद्‌ध है अच्छे स्वामी की,
अमीर-गरीब, पण्डित और मूर्ख सभी,
बुद्‌धि अनुसार सराहना करते राजा की ।

सबकी सुनकर और उन्हें जान कर,
सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं राजा,
कोसलनाथ चतुर शिरोमणि की बात क्या,
जब ऐसा व्यवहार करते हैं संसारी राजा ।

वे परम हितैषी प्रभु श्रीरामचन्द्र जी,
रीझ जाते हैं बस विशुद्‌ध प्रेम से,
पर मलीन बुद्‌धिऔर मूर्ख जग में,
भला कौन होगा बढ़कर मुझ से ।

तथापि अवश्य रखेंगे कृपालु राम जी,
मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रूचि को,
पत्थरों को जहाज बना लिया जिन्होंने,
और बुद्‌धिमान मंत्री बंदर और भालूओं को ।

श्रीराम का सेवक सब कहते मुझको,
और मैं भी उनको नही रोकता,
वो भी सहते इस निन्दा को,
कि उनसे स्वामी का सेवक मुझसा ।

बड़ी ढिठाई और दोष यह मेरा,
कि नरक मैं भी नही मेरे लिये ठौर,
मैं डरता रहा अपने कल्पित डर से,
पर ध्यान न दिया उन्होंने इस ओर ।

वरं सुचितरूपी चक्षु से निहार,
सराहना करि मेरे प्रभु ने मेरी,
मेरे हृदय में सेवक भाव देख,
रीझ गये वे इसी बात पर मेरी ।

अपने भक्तों की हुई भूल-चूक,
प्रभु के चित्त में याद नहीं रहती,
लेकिन सौ-सौ बार याद करते वे,
अपने भक्तों की अच्छाई और नीकी ।

जिस पाप के कारण बालि का मारा,
वैसी ही चाल सुग्रीव, विभीषण की थी,
तनिक भी मन में किया ना विचार,
बल्कि उनके गुणों की प्रशंसा ही की ।

डाल पर बंदर, प्रभु वृक्ष के नीचे,
पर बना लिया उन्हें अपने समान,
तुलसी के मत में कहीं भी नहीं हैं,
श्रीराम सरीखे स्वामी शीलनिधान ।

हे प्रभु ! आपका कल्याणमय स्वभाव,
करने वाला है सभी का कल्याण,
क्योंकि यह बात सत्य है, सो होगा,
तुलसीदास का भी सब विधि कल्याण ।

अपने सभी गुण-दोष कह कर,
और सबको फिर सिर नवाकर,
करता हूँ श्रीरघुनाथ जी का यश वर्णन,
पाप नष्ट हो जाते जिसे सुनकर ।

सुनायी थी जो याज्ञवल्क्यजी ने,
सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भारद्वाज जी को,
सब सज्जन सुखपूर्वक सुने उसे,
बखान कर कहूँगा मैं उसी कथा को ।

पहले इस सुहावने चरित्र को रचा शिवजी ने,
फिर सुनाया इसे पार्वतीजी को उन्होंने,
रामभक्त और अधिकारी जानकर,
वही चरित्र सुनाया काकभुशुण्डिजी को उन्होंने ।

हथेली पर रक्खे आंवले के समान,
तीनों कालों की बातें वे जानते,
नाना प्रकार से इस चरित्र को,
और भी सुजान हरिभक्त कहते, सुनते ।

फिर वही कथा लड़कपन में मैंने,
वराह क्षेत्र में अपने गुरूजी से सुनी,
उस समय अपनी बेसमझी के कारण,
भली प्रकार से उसे मैं समझा नही ।

उस गूढ़ कथा के वक्ता और श्रोता,
होते हैं दोनों ही पूरे ज्ञानी,
कैसे समझ सकता था उसे मैं,
कलियुग का जीव पापी, अज्ञानी ।

बारम्बार जब वह कथा गुरूजी ने सुनायी,
तब कुछ आयी वह मेरी समझ में,
उसे ही अब मैं भाषा में रचूंगा,
जिससे कुछ संतोष हो मेरे मन में ।

हृदय में हरि की प्रेरणा अनुसार,
उपयोग कर अपनी बुद्धि-विवेक का,
अपना भ्रम, सन्देह और अज्ञान हरने वाली,
वर्णन करता हूँ अब उस कथा का ।

सुख और आनन्ददायी राम कथा,
सभी पापों का नाश कर देती,
कलि-नाग के लिये मोरनी सी,
अरणि सी विवेकाग्नि को जगा देती ।

कामधेनु सी पूर्ण करती सब मनोरथ,
रामकथा सज्जनों के लिये संजीवनी सी,
जन्म-मृत्यु रूपी भय की नाशक,
भ्रम रूपी मेढ़कों के लिये सर्पिणी सी ।

असुर सेना समान नरकों की नाशिनी,
देव-कुल हितकारी पार्वती के समान,
संत समाज रूपी क्षीरसागर हेतु लक्ष्मी सी,
भार उठाने में अचल पृथ्वी के समान ।

यह कथा जगत में यमुनाजी सी,
यमदूतों के मुख पर कालिख मलने को,
और साक्षात काशी सी है यह,
सब जीवों को मुक्ति देने को ।

पवित्र तुलसी के समान प्रिय है,
यह कथा स्वयं श्रीराम को,
और तुलसीदास के लिये हुलसी * सी,
तुलसी का हित करने को ।

* हुलसी – तुलसीदास की माता

सब सिद्धि सुख-सम्पत्ति की राशि,
शिवजी को प्यारी नदी-नर्मदा सी,
सदगुणरूपी देवताओं की माँ अदिति,
भक्ति और प्रेम की परम सीमा सी ।

यह राम कथा मन्दाकिनी नदी है,
और निर्मल चित्त है चित्रकुट सा,
सुन्दर स्नेह ही वह वन है,
श्रीसीताराम के विहार करने का ।

सुन्दर चिंतामणि सा श्रीराम का चरित्र,
जगत का करता सब तरह कल्याण,
संसार का सब दुख दूर करने को,
यह वैद्यराज अश्विनी कुमार के समान ।

पाप, सन्ताप और शोक विनाशक,
लोक और परलोक संवारने वाले,
काम और क्रोधरूपी गजराजों को,
सिंह-शावकों की तरह मारने वाले ।

विषय, अज्ञान और मन्द प्रारब्ध,
सब रोग-दोष को हरने वाले,
भक्तों के जीवनधन प्रभु श्रीराम,
सब मनोवांछित फल देने वाले ।

जगत का यथार्थ हित करने में,
सबके हितैषी साधु-संतों के समान,
अपने सेवकों का मन निर्मल करने में,
पवित्र गंगाजी की तरंग-मालाओं के समान ।

कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल और कलियुग के,
सभी अवगुणों को जलाने के लिये,
श्रीरामजी के गुण-समूह ऐसे हैं,
जैसे प्रचण्ड अग्नि ईंधन के लिये ।

पूर्ण चन्द्र की किरणों से,
रामचरित्र सबको सुख देने वाले,
सज्जनों और भक्तों के लिये,
और अधिक फल देने वाले ।

जिस प्रकार पार्वती ने पूछा शिवजी से,
और जैसे उन्होंने दिया उसका उत्तर,
रचना कर विचित्र कथा की,
वह सब कारण मैं कहूँगा गाकर ।

सुनी न हो जिसने रामकथा पहले,
या जो ज्ञानी जन सुनते इसको,
श्रीरामचन्द्रजी के हुए हैं अनेक अवतार,
सो अचरज न करें वो सुनकर इसको ।

अनेक प्रकार से गाया मुनीश्वरों ने,
कल्प भेदानुसार श्रीहरिचरित्रों को,
संदेह न कीजिये ऐसा विचारकर,
प्रेम और आदर सहित सुनिये कथा को ।

श्रीराम अनन्त, उनके गुण अनन्त,
असीम उनकी कला का विस्तार,
सो मानेंगे नही आश्चर्य इसे सुनकर,
निर्मल और पवित्र हैं जिनके विचार ।

इस प्रकार सब संहेह दूर कर,
और गुरू चरणों की रज रख सिर पर,
पुन: हाथ जोड़ कर विनती करता हूँ,
गुजरे न कोई दोष इसे छू-कर ।

नवा कर शीश शिवजी के चरणों में,
संवत् 1631 के चैत्र मास में,
नवमी तिथी दिन मंगलवार को,
प्रारम्भ करी यह कथा अयोध्या में ।

कहते हैं वेद कि जिस दिन को,
अयोध्या में जन्म श्रीराम का होता,
समस्त तीर्थों का इस दिन को,
अयोध्या में शुभ आगमन होता ।

असुर, नर, नाग, खग, मुनि और देवता,
सब के सब आकर अयोध्या में,
करते वे श्रीराम जी का गुणगान,
और लग जाते उनकी सेवा में ।

श्री सरयूजी के पवित्र जल में,
सज्जन जन उस दिन स्नान करते,
ध्यान कर सुंदर सलोने श्रीराम का,
मन ही मन में उनको वे जपते ।

दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान,
श्रीसरयूजी का जल पापों को हरता,
शारदा भी जिसे कह न सके,
अनन्त इस पवित्र नदी की महिमा ।

अत्यन्त पवित्र, श्रीराम का धाम देने वाली,
सब जीवों को मरणोपरान्त मुक्ति देने वाली,
मनोहर जान सब प्रकार इस अयोध्या नगरी को,
शुरू की कथा यहां, सब दोष हरने वाली ।

रामचरितमानस है इस पवित्र कथा का नाम,
जिसको सुनते ही सबको शान्ति मिलती,
सब दुख, दरिद्रता, पापों को हरने वाली,
इस पवित्र कथा के रचेता हैं शिवजी ।

इसे रचकर अपने मन में रक्खा महादेव ने,
और सुअवसर पाकर पार्वतीजी से इसे कहा,
कहता हूँ मैं उसी सुखदायी रामकथा को,
हे सज्जनों ! मन लगाकर सुनों यह कथा ।

जैसा है, जैसे बना यह रामचरितमानस,
और जैसे प्रचार इसका हुआ जग में,
अब सब वही कथा मैं कहता हूँ,
श्रीउमा-महेश्वर का स्मरण कर मन में ।

श्रीशिव कृपा से सुन्दर बुद्धि मन में उपजी,
जिससे तुलसीदास हुआ मानस का कवि,
अपनी बुद्धि से तो बनाता है इसे मनोहर,
फिर भी सुधार लीजिए, सज्जनों से है विनती ।

सुन्दर बुद्धि भूमि, हृदय ही उसमें गहरा स्थान,
साधु-संत हैं मेघ, समुद्र हैं वेद-पुराण,
श्रीराम का सुयशरूपी मंगलकारी जल वर्षाते,
वे साधु-संत श्रीरामचरित का कर लीला गान ।

विस्तृत वर्णन करते हैं जो सगुण लीला का,
वही राम-सुयशरूपी जल की है निर्मलता,
वर्णन से परे है जो प्रेमा-भक्ति,
है वही इस जल की मधुरता और शीतलता ।

सत्कर्मरूपी धान के लिये वह जल हितकर,
भक्तों का जीवन, बुद्धिरूपी पृथ्वी पर गिरकर,
कानों से चल, हृदय में जा हुआ स्थिर,
वही पुराना हो हुआ शीतल, सुखदायी, रूचिकर ।

चार अत्यंत सुन्दर और उत्तम संवाद,
रचे जो इस कथा में बुद्धि से विचारकर,
भुशुण्डि-गरूड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, तुलसी और संत,
इस सुन्दर, पवित्र सरोवर के हैं घाट मनोहर ।

सात काण्ड इस सरोवर की सीढियां,
मन प्रसन्न उन्हें देखकर हो जाता,
निर्गुण और निर्बाध महिमा श्रीराम की,
जिसकी थाह कोई नही पा पाता ।

अमृत सृदश जल सीताराम यश रूपी,
इसमें प्रयुक्त उपमाएं तरंगो के समान,
सुन्दर चौपाईयां फैली हुई कमलिनी,
युक्तियां मणि देने वाली सीपियों समान ।

छन्द, सोरठे और दोहे जो इसमें,
सुशोभित बहुरंगे कमलों के समूह से,
अनुपम अर्थ, ऊंचे भाव और भाषा,
वो पराग, मकरन्द और सुगन्ध से ।

ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं,
सत्कर्मों के पुंज भौरों की पंक्तियां,
कविता की ध्वनि, गुण और जाति,
अनेकों प्रकार की मनोहर मछलियां ।

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष,
ज्ञान-विज्ञान का कहना विचार के,
नौ रस, जप-तप, योग-वैराग्य,
सुन्दर जलचर जीव वो इस के ।

साधु-संत और श्रीराम का गुण-गान,
वो विचित्र जल-पक्षियों के समान,
संतसभा चारों ओर अमराई जैसी,
और श्रद्धा वसन्त ऋतु के समान ।

भक्ति, क्षमा, दया, दम, लताओं के मण्डप,
फूल, यम-नियम और निग्रह मन का,
वेदो ने कहा इसका फल है ज्ञान,
श्रीहरि चरणों में प्रेमरस फल इस का ।

ओर जो अनेकों प्रसंगों की कथाएँ,
वे तोते-कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी,
रोमांच वन, सुख पक्षियों का विहार,
निर्मल मन प्रेम से सींचने वाला माली ।

इस चरित के गायक रखवाले तालाब के,
उत्तम देवता इसे आदर से सुनने वाले,
समीप नही जाते दुष्ट और विषयी जन,
क्योंकि विषय-रस वे इसमें नही पाते ।

कौए और बगुलेरूपी लोग वो,
हृदय में अपने हार मान जाते,
श्रीरामजी की दया-कृपा बिना,
कोई यहां आ नही पाते ।

कुसंग दुर्गम पथ और कुसंगियों के वचन,
बाघ, सिंह और सांप से,
गृहस्थी के भांति-भांति के जंजाल,
दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ से ।

मोह, मद और मान बीहड़ वन,
कुतर्क भयानक, प्रचण्ड नदियां सी,
श्रद्धा, सतसंग और भगवत्प्रेम बिना,
होती कभी इस तक पहुँच नही ।

जैसे-तैसे गर पहुँच जाए कोई,
उसे नींद रूपी जूड़ी आ जाती,
मूर्खता रूपी जाड़ा लगता उसे,
कर पाता वो इसमें स्नान नही ।

स्नान और जलपान किये बिना वो,
बस अभिमान सहित बैरंग लौट जाता,
कोई पूछता उससे जो हाल वहां का,
तो सरोवर की निंदा कर बतलाता ।

पर जिस पर कृपा श्रीराम की होती,
ये विघ्न उसे बाधा नही देते,
सादर इस सरोवर में स्नान करता वो,
और भयानक त्रिताप नही जलाते उसे ।

प्रभु चरणों में प्रेम जिनके मन बसता,
छोड़ते नही इस सरोवर को कभी,
जो इस सरोवर में स्नान करना चाहें,
सतसंग में अपना मन लगायें वो सभी ।

ऐसे सरोवर में गोता लगाकर,
निर्मल हो गयी है बुद्धि कवि की,
आनन्द और उत्साह भर गया हृदय में,
और यह कवितारूपी नदी बह निकली ।

श्रीराम का निर्मल यशरूपी जल इसमें,
'सरयू' इस कवितारूपी नदी का नाम,
सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की स्रोत यह,
लोक और वेदमत किनारों के नाम ।

सुन्दर और पवित्र है यह सरयू नदी,
पापों को जड़ से उखाड़ देने वाली,
श्रोता समान किनारे बसे गांव और नगर,
संतों की सभा अयोध्या नगरी सुखदायी ।

जा मिली रामभक्ति रूपी गंगा में,
सुन्दर कीर्तिरूपी सरयू की धारा,
उनके संग श्रीराम-लक्ष्मण के युद्ध का,
पवित्र यशरूपी महानद सोन की धारा ।

ज्ञान और वैराग्य सहित शोभित हो रही,
दोनों के मध्य भक्तिरूपी गंगा की धारा,
त्रितापों को डरानेवाली इस तिमुहानी नदी में,
रामस्वरूपरूपी समुद्र की ओर किया पसारा।

मानस है मूल इस कीर्तिरूपी सरयू का,
जो जा मिली रामभक्तिरूपी गंगा से,
सज्जन श्रोताओं का मन पवित्र कर देती,
हर्षाती बाग और वनरूपी अनेक कथाओं से ।

श्रीशिव-पार्वती के विवाह के बाराती,
इस नदी के असंख्य जलचर जीव जैसे,
श्रीराम के जन्म पर आनन्द और बधाइयां,
भंवर और तरंगों सी मनोहरता उनसे ।

राम-लखन, भरत-शत्रुघ्न का बालपन,
ज्यों कमल खिले हों अनेक रंगों के,
महाराज, रानियों और कुटुम्बियों के सत्कर्म,
जैसे भ्रमर और जलपक्षी हों इस के ।

छा रही नदी में सुहावनी छवि सी,
श्रीसीताजी के स्वयंवर की सुन्दर कथा,
सुन्दर प्रश्न ही इस नदी की नावें,
उनके उत्तर, रूप लिये हैं केवट का ।

कथा को सुन चर्चा जो होती,
जैसे संग चल रहा यात्रियों का समाज,
परशुरामजी का क्रोध भयानक धारा नदी की,
श्रीरामजी के वचन, सुन्दर बंधे घाट ।

चारों भ्राताओं के विवाह का उत्सव,
इस कथा नदी की कल्याणकारी बाढ़,
इसके कहने से जो हर्षित-पुलकित होता,
प्रसन्नमन इसमें नहाता सज्जनों का समाज ।

श्रीराम के राजतिलक हेतु सजाया साज,
मानों पर्व पर एकत्र हुए यात्री,
कैकेयी की कुटिल बुद्धि काई सी,
जिस कारण आ खड़ी हुई विपत्ती ।

उत्पात शान्त करने वाला भरत का चरित्र,
नदी तटपर किये जाने वाले जपयज्ञ सा,
पापों और दुष्टों के अवगुणों का वर्णन,
बगुले, कौए और कीचड़ नदी का ।

परम सुहावनी और पवित्र यह नदी,
सुन्दर रहती छहों ऋतुओं में,
शिव-पार्वती विवाह हेमन्त ऋतु,
श्रीराम जन्म शिशिर ऋतु सी इसमें ।

श्रीरामचन्द्रजी के विवाह समाज का वर्णन,
आनन्द-मंगलमय ऋतुराज वसंत सा,
इनका वनगमन दु:सह ग्रीष्म ऋतु सी,
कड़ी धूप और लू, मार्ग की कथा ।

राक्षसों संग घोर युद्ध वर्षा ऋतु,
देवकुलरूपी धान हेतु सुन्दर हितकारी,
रामराज्य का सुख, विनम्रता और बड़ाई,
शरद ऋतु सुहानी, निर्मल, सुखकारी ।

सती-शिरोमणि सीताजी के गुणों की कथा,
इस जल का निर्मल और अनुमप गुण,
भरतजी का स्वभाव इसकी सुन्दर शीतलता,
जो है वर्णनातीत और सदा अक्षुण्ण ।

चारों भाइयों का परस्पर प्रेम व्यवहार,
इस जल की मधुर-सुगंध का सार,
मेरी विनय और दीनता, जल का हल्कापन,
यह जल मन का मल देता मार ।

श्रीराम प्रेम को पुष्ट करता यह,
कलियुग के पाप और ग्लानि को हरता,
सोख लेता जन्म-मृत्यु रूपी श्रम को,
पाप, ताप, दारिद्रय और दोषों को हरता ।

काम, क्रोध, मद, मोह विनाशक,
निर्मल ज्ञान-वैराग्य बढ़ाने वाला,
इसे पीने और स्नान करने वाले के,
सब पाप-ताप मिटाने वाला ।

ठगे गये वे कायर कलियुग द्वारा,
अपना हृदय न धोया जिन्होनें इसमें,
मृगतृष्णा जैसे मृग को छलती,
पड़े रहेंगे वे जीव दुखों में ।

इस सुन्दर जल के गुणों को विचार,
और स्नान करा इसमें अपने मन को,
श्री भवानी-शंकर को स्मरण कर,
यह कवि कहता इस पावन कथा को ।

श्रीरघुनाथ चरण-कमल हृदय में धर,
और पाकर अब मैं उनका प्रसाद,
अपनी बुद्धि अनुसार वर्णन करता हूँ,
दोनों श्रेष्ठ मुनियों के मिलने का संवाद ।

तीर्थराज प्रयाग में बसे भरद्वाज मुनि,
रामचरण अनुरागी, तपस्वी, दया निधान,
माघ माह में देव, दैत्य, नर, किन्नर,
सब वहां आ, त्रिवेणी में करते स्नान ।

श्रीवेणीमाधव के चरण-कमलों को पूज,
अक्षयवट को स्पर्श कर पुलकित होते,
उनके आश्रम में आता साधु-समाज,
परस्पर श्रीहरि की कथाएँ सुनते-सुनाते ।

साधु-मुनि माघ माह में वहां रूक,
ब्रह्म-निरूपण, धर्म-चर्चा आदि करते,
इस प्रकार माह-पर्यन्त वहा रूक,
अपने-अपने आश्रमों को वे लौटते ।

एक बार जब सभी मुनि गण,
लौट गये अपने-अपने आश्रम को,
उनके जाने के पश्चात भरद्वाजजी ने,
रोक लिया मुनि याज्ञवल्क्यजी को ।

विनती करी, हे तत्वज्ञ मुनि आप ही,
कर सकते हैं मेरे संदेहों का निवारण,
इसे कहते भय और लाज आती है,
ना कहने से होता हानि का कारण ।

वेद, पुराण और मुनि सब कहते,
गुरू से छिपाव, ज्ञान होने नही देता,
यही सोच अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ,
हे नाथ ! दूर करें यह संशय मेरा ।

वेद-उपनिषद गाते राम-नाम का प्रभाव,
अविनाशी, ज्ञान-गुण राशि, शिव जपते रहते,
चार जाति के जीव, काशी में मरने पर,
नाम-महिमा से परम पद पा लेते ।

हे कृपानिधान, कृपाकर समझाकर कहिये,
वे 'राम' कौन हैं, पूछता हूँ आपसे,
एक राम तो दशरथजी के कुमार हैं,
अपार दु:ख उठाया जिन्होंने पत्नी-वियोग में ।

फिर क्रोधित हो मार डाला रावण को,
क्या ये वही राम हैं, हे प्रभु कहो,
आप सत्य के धाम, जानते हैं सब कुछ,
क्या जपते रहते हैं, शिवजी इन्हीं को ।

तब याज्ञवल्क्यजी उनसे मुसकराकर बोले,
जान गया तुम्हारी चतुराई, मुझसे सुनना चाहते,
मन, वचन, कर्म से तुम रामभक्त हो,
पर मुझसे सब रहस्य तुम सुनना चाहते ।

प्रभु श्रीराम की कथा कहता हूँ,
हे तात ! आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो,
उनकी कथा चन्द्रमा की किरणों समान,
संतरूपी चकोर सदा सुनना चाहते जिसको ।

ऐसा ही संदेह पार्वतीजी ने किया था,
महादेवजी ने उत्तर दिया था विस्तार से,
वही संवाद अब तुमसे कहता हूँ,
तुम्हारा विषाद मिट जायेगा सुनकर जिसे ।

त्रेतायुग में जगज्जननी सतीजी के साथ,
अगस्त्य मुनि के पास गये शिवजी,
ईश्वर जान उनकी पूजा की मुनि ने,
फिर प्रेम सहित मुनि ने रामकथा कही ।

हरिभक्ति का राज पूछा मुनि ने,
शिवजी ने किया भक्ति का निरूपण,
फिर कुछ दिन वहां रूककर शिवजी ने,
सतीजी के साथ किया कैलास-गमन ।

पृथ्वी का भार हरने को हरि ने,
तब राम-रूप में लिया था अवतार,
साधु-वेश में वन में विचरते थे,
अपने पिता की आज्ञा के अनुसार ।

शिवजी हृदय में सोच रहे थे,
किस प्रकार हों उन्हें दर्शन उनके,
गुप्त रूप से प्रभु ने अवतार लिया,
सब जान जायेंगे, मेरे जाने से ।

नहीं जानती थीं, यह भेद सतीजी,
शिवजी को डर था भेद खुलने का,
कि श्रीराम सत्य करना चाहते हैं वचन,
ब्रह्माजी ने जो रावण को दिया था ।

इस प्रकार शिवजी जब विचारमग्न थे,
रावण ने साथ लिया मरीच को,
तुरंत कपट मृग बन गया मरीच,
और रावण ने हर लिया सीताजी को ।

कपट मृग के पीछे गये रामजी,
उसे मार जब वे लौटे आश्रम,
विकल हुए, नेत्रों में आसूं भर आए,
जब सीता से रिक्त मिला आश्रम ।

मनुष्य की भांति विरह से व्याकुल हो,
भाई संग खोज रहे सीता को राम,
जिनको कभी कोई संयोग-वियोग नही,
विरह से संतप्त हो रहे, वे राम ।

बड़ा ही विचित्र है श्रीरघुनाथ का चरित्र,
जिसका रहस्य बस ज्ञानीजन ही जानते,
जो मन्दबुद्धि हैं, मोह के वश होकर,
अपने हृदय में कुछ और ही मानते ।

इसी अवसर पर श्रीराम को देख,
आनन्द हुआ शिवजी को अति भारी,
देखा उन शोभा-सागर को जी भरकर,
पर परिचय देने में थी लाचारी ।

जय हो पवित्र पावन सच्चिदानन्द की,
पुलकित शिवजी चल दिये यह कहकर,
सतीजी यह देख पड़ गयीं संदेह में,
शिवजी को पूजते हैं सुर, मुनि, नर ।

एक राजपुत्र को प्रणाम किया उन्होनें,
प्रेममग्न, प्रीति समाती न हृदय में,
अज, अगोचर, सर्वव्यापक, भेदरहित ब्रह्म,
क्या जन्म ले, यूँ घूमेगा वन में ।

देव हित हेतु अवतार लेने वाले,
हरि सर्वज्ञ हैं, शिवजी की ही भांति,
वे ज्ञान-धाम, श्रीपति, असुरों के शत्रु,
क्या स्त्री को खोजेंगे, अज्ञानी की भांति ।

पर शिवजी के वचन होते न असत्य,
वे सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं इसे,
सो उनके मन में उठा अपार संदेह,
ज्ञान न उपजा, किसी तरह से ।

यद्यपि प्रकट कुछ कहा नही उन्होनें,
पर शिवजी ने सब जान लिया मन में,
बोले, हे सती ! तुम्हारा स्त्री स्वभाव है,
रखना न चाहिये, ऐसा संदेह मन में ।

अगस्त्य मुनि ने जिनकी कथा गायी,
और मुनि को भक्ति सुनायी मैने जिनकी,
ये वही मेरे इष्टदेव श्रीरघुवीर जी हैं,
ज्ञानी-मुनि सेवा में रहते जिनकी ।

योगी, मुनि ज्ञानी और सिद्ध निरन्तर,
निर्मल चित्त से जिनका करते हैं ध्यान,
वेद-पुराण और शास्त्र करते हैं,
नेति-नेति कहकर जिनका गुण-गान ।

उन्हीं सर्वव्यापक, ब्रह्माण्डों के स्वामी, मायापति,
नित्य परम स्वतन्त्र, ब्रह्मरूप भगवान राम ने,
अपनी इच्छा से, भक्तों के हित के लिये,
अवतार लिया है, रघुकल के मणिरूप में ।

समझाया बहुत पर समझी न सतीजी,
माया प्रबल जान कहा शिवजी ने उनसे,
परीक्षा ले, क्यों भ्रम दूर नही करतीं,
तो चल पड़ी सतीजी, आज्ञा पा उनसे ।

उधर शिवजी ने ऐसा अनुमान किया,
दक्षकन्या सती का इसमे कल्याण नही,
समझाने से भी संदेह दूर नही होता,
विधाता उलटे हैं, उनकी कुशल नही ।

होगा वही जो राम ने रच राखा,
तर्क कर बढ़ाए कौन बात को,
ऐसा कह, जपने लगे हरि नाम वे,
उधर चलीं सती, परीक्षा लेने को ।

बारम्बार अपने मन में विचारकर सतीजी,
सीताजी का वेष धर चल दीं उधर,
आ रहे थे जिधर से नररूप श्रीराम,
भ्रमित हो गये लक्ष्मणजी उन्हें देखकर ।

गंभीर हो, कुछ कह न सके लक्ष्मण,
जानते थे प्रभु के प्रभाव को वो,
नष्ट हो जाता अज्ञान जिनके स्मरणमात्र से,
जान गये वे सतीजी के कपट को ।

उन्हीं सर्वज्ञ भगवान श्रीराम के सम्मुख,
स्त्रीस्वभाव वश सतीजी करना चाहती हैं छिपाव,
श्रीरामचन्द्रजी हँसकर बोले कोमल वाणी से,
मन मे बखानकर अपनी माया का प्रभाव ।

हाथ जोड़कर पहले किया प्रणाम प्रभु ने,
फिर पितासहित बताया अपना नाम उन्होनें,
फिर पूछा कहाँ है वृषकेतु शिवजी,
और क्यों फिर रहीं आप अकेले वन में ।

कोमल और रहस्य भरे ये वचन सुनकर,
लौट चलीं, बहुत चिंतित हो सतीजी,
आरोप किया अपना अज्ञान प्रभु पर,
अब जाकर शिवजी को क्या उत्तर दूंगी ।

जान सतीजी को दु:ख पहुँचा है,
श्रीराम ने कुछ अपना प्रभाव दिखलाया,
सतीजी को मार्ग में जाते हुए उन्होनें,
लक्ष्मण और सीताजी सहित स्वयं को दिखलाया।

जब सतीजी ने देखा पीछे मुड़कर तो,
वहां भी वो तीनों दिये दिखलायी,
जहां भी देखा श्रीराम को देखा,
सिद्ध और मुनि सेवा करते दिये दिखलायी ।

देखे उन्होनें अनेक शिव, ब्रहमा और विष्णु,
सभी देवता, सेवा में रत थे जो श्रीराम की,
अनगिनत अनुपम सती, ब्रहमाणी और लक्ष्मी,
जो अनुकूल रूप धारण किये हुए थी ।

जहां-तहां जितने रघुनाथजी देखे उन्होनें,
वहां-वहां उतनी ही सृष्टियों को देखा,
देवता आदि अनेक वेष धारण किये हुए थे,
पर सीता-राम का अन्य रूप न देखा ।

सर्वत्र वही सीता-राम और लक्ष्मण जी थे,
सतीजी ऐसा देखकर बहुत डर गयीं,
हृदय कॉपने लगा, जाती रही सुध-बुध,
आंख मूंद कर वे वहीं बैठ गयीं ।

फिर आंख खोलकर जब देखा उन्होनें,
तो कुछ नही दीख पड़ा उन्हें वहां पर,
तब सिर नवाकर श्रीरामजी के चरणों में,
चल पड़ी वे शिवजी थे जहां पर ।

जब पहुँची वे शिवजी के पास,
हँस कर पूछा शिवजी ने सती से,
किस प्रकार ली तुमने परीक्षा श्रीराम की,
सारी बात कहो सच सच तुम हमसे ।

मासपारायण, दूसरा विश्राम

समझकर श्रीरघुनाथ जी के प्रभाव को,
डरकर किया शिवजी से छिपाव, सती ने,
कहा मैने कुछ भी ली ना उनकी परीक्षा,
बस आप ही की तरह किया प्रणाम उन्हें ।

जो कहा आपने झूठ हो नही सकता,
पूरा विश्वास है यह मेरे मन में,
तब ध्यान लगा शिवजी ने जान लिया,
जो चरित्र किया था वहां सती ने ।

कहला दिया जिसने सतीजी से भी झूठ,
उस श्रीरामजी की माया को शीश नवाया,
हरि की इच्छा रूपी भावी प्रबल है,
ऐसा विचार शिवजी के हृदय में आया ।

सतीजी ने किया था सीताजी का वेष धारण,
बड़ा विषाद हुआ शिवजी को यह जानकर,
सोचा, यदि अब सती से प्रीति करूँ तो,
रह जाएगा भक्ति मार्ग लुप्त हो कर ।

छोड़ते नही बनता उन्हें, पवित्र हैं सती
पर अब प्रेम करने में है बड़ा पाप,
प्रकट करके महादेवजी कुछ भी नही कहते,
पर उनके हृदय में है बड़ा संताप ।

स्मरण कर श्रीरामजी को शिवजी ने,
मन ही मन उनके चरणों में शीश नवाया,
अब सती से मिलन हो नही सकता,
शिवजी के मन में यह भाव आया ।

ऐसा दृढ़ निश्चय कर स्थिर बुद्धि शंकरजी,
श्रीरघुनाथ को सुमरते कैलास की ओर चले,
चलते समय आकाशवाणी हुई, जय हो,
भक्ति की दृढ़ता की हे महेश ! आपने ।

कौन दूसरा कर सकता है ऐसी प्रतिज्ञा,
आप राम-भक्त, समर्थ और हैं भगवान,
यह सुनकर सतीजी ने सकुचाते हुए पूछा,
क्या प्रतिज्ञा की आपने, हे सत्य के धाम ।

यद्यपि बहुत प्रकार से पूछा सती ने,
परंतु शिवजी ने कुछ न कहा उनसे,
अनुमान लगाया, उनका कपट जान गये शिवजी,
पर कृपा सागर शिवजी कुछ नही कहते उनसे ।

दूध से मिल, जल भी दूध समान बिकता,
प्रीत की कैसी सुन्दर यह रीत अनोखी,
पर कपट रूपी खटाई कर देती उन्हें अलग,
फट जाता है दूध, जाता रहता स्वाद भी ।

शिवजी का रूख देख जान लिया सती ने,
कि त्याग कर दिया मेरा स्वामी ने,
कुछ कहते नही बनता अपना पाप समझकर,
पर कुम्हार के आंवे सा ह्रदय लगा जलने ।

चिन्तायुक्त जानकर सतीजी को शिवजी ने,
कैलास जाते हुए कई कथाएँ सुनाई,
फिर अपनी प्रतिज्ञा याद कर, पद्मासन में,
स्वाभाविक रूप में,अखण्ड,अपार समाधि लगाई।

रहने लगीं तब कैलास पर्वत पर सतीजी,
पर उनके मन में दु:ख था बड़ा,
जानता नही था कोई भी यह रहस्य,
हर दिन युग समान लग रहा बड़ा ।

नित्य नया और भारी सोच हो रहा था,
किया रघुनाथ का अपमान, झूठा जाना पति को,
जो उचित था वही फल दिया विधाता ने,
पर शंकर से विमुख, क्यो जिला रहा मुझको ।

स्मरण कर श्रीरामचन्द्र जी का ह्रदय में सती ने,
करी विनती उनकी यह देह जल्दी छूट जाये,
यदि उनका शिव चरणों में प्रेम सत्य है,
तो उनका मरण हो, विपत्ति दूर हो जाये ।

वर्णनातीत दारूण दु:ख सह रही थीं सतीजी,
सत्तासी हजार वर्ष समाधि में शिवजी रहे,
वे समाधि से जागे, दक्ष प्रजापति हुए,
योग्य जान ब्रह्माजी ने नायक बना दिया उन्हें ।

पाया जब इतना बड़ा अधिकार दक्ष ने,
तब अत्यंत अभिमान हो गया उनको,
ऐसा कोई पैदा हुआ नही जगत में,
प्रभुता पाकर मद न हुआ हो जिसको ।

मुनियों को बुला, आयोजित किया बड़ा यज्ञ,
सभी देवताओं को आदर सहित बुलाया,
किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और देवों ने,
अपना-अपना विमान सुन्दरता से सजाया ।

अपनी-अपनी स्त्रियों सहित चले भाग लेने,
सुन्दर विमानों से उन्होनें आकाश-मार्ग अपनाया,
उन्हें देख सतीजी ने जब पूछा शिवजी से,
शिवजी ने उन्हें यज्ञ के विषय में बतलाया ।

प्रसन्न हुई सतीजी, यज्ञ के बारे में जानकर,
सोचा कुछ दिन पिता के घर रह आऊँ,
कहा शिवजी से यदि आपकी आज्ञा हो तो,
पिता के यहां, उत्सव में चली जाऊँ ।

शिवजी बोले बात तो अच्छी कही तुमने,
पर उन्होनें हमको निमन्त्रित न किया,
औरों को बुलाया, पर वैर के कारण,
तुमको भी पिता ने भुला दिया ।

हो गए थे वे अप्रसन्न ब्रह्माजी की सभा में,
सो उसीसे अब भी करते हमारा अपमान,
जो तुम वहां जाओगी बिना उनके बुलाये,
तो न शील-स्नेह रहेगा, न रहेगा मान ।

मित्र, स्वामी, पिता और गुरू के घर,
यद्यपि निस्संदेह जाना चाहिए बिना बुलाये भी,
तो भी जहां कोई विरोध मानता हो,
उसके घर जाने से होता कल्याण नहीं ।

समझाया अनेक प्रकार से शिवजी ने उन्हें,
पर होनहारवश बोध हुआ नही उनके हृदय में,
तब मुख्य गणों को शिवजी ने साथ भेजा,
पर दक्ष के घर किसी ने न पूछा उन्हें ।

बस बहिने मुसकराती, माता आदर से मिली,
दक्ष ने तो कुशल तक पूछी नही उनकी,
जब सतीजी ने जाकर यज्ञशाला में देखा,
तब समझ में उन्हें आयी बात पति की ।

शिवजी का वहां कोई भाग न था,
उनका अपमान समझ सती का हृदय जल उठा,
पतिपरित्याग का दु:ख इतना व्यापा न था,
जितना महान दु:ख उन्हें इस वक्त हुआ ।

यद्यपि अनेक प्रकार के दारूण दु:ख हैं जग में,
तथापि जाति-अपमान कठिन है बढ़कर सबसे,
माता ने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया,
पर शिवजी का अपमान न सहा गया उनसे ।

हठपूर्वक डांटकर क्रोध से बोलीं सभा में,
शिवजी की निन्दा करने या सुनने वाले,
तुरंत फल पायेंगे वे अपने कर्मों का,
मेरे पिता भी नही बख्शे जाने वाले ।

संत, शंभू और श्रीपति के निंदको की,
अपना वश चले तो उनकी जीभ काट ले,
या फिर भाग जाये वहां से कान मूंदकर,
उनकी निंदा कहने-सुनने में कभी न भाग ले ।

त्रिपुरारि महेश्वर आत्मा है जगत के,
वे जगत्पिता और हित करनेवाले हैं सबका,
मेरा मन्दबुद्धि पिता निन्दा करता है उनकी,
और मेरा यह शरीर दिया हुआ है पिता का ।

इसलिये चंद्रमौलि शिवजी को हृदय में धर,
त्याग दूंगी तुरंत ही मैं इस शरीर को,
ऐसा कह, योगाग्नि में भस्म कर दिया शरीर,
कोई रोक न पाया ऐसा करने से उनको ।

सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया,
शिवजी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे,
उन्हें ऐसा करते देखा तो वहां उपस्थित,
मुनीश्वर भृगुजी यज्ञ को बचाने में लगे ।

ये समाचार जब शिवजी को मिला,
तो क्रोधित हो भेजा वीरभद्र को,
विध्वंस कर डाला यज्ञ उसने जाकर,
और यथोचित दण्ड दिया सब देवों को ।

हुई वही जगत प्रसिद्ध गति दक्ष की,
जो हुआ करती है शिवद्रोही की,
सारा जगत जानता है यह इतिहास,
सो यहां संक्षेप में मैने यह बात कही ।

मरते समय सती ने श्रीहरि से मांगा,
शिव-चरणों में अनुराग प्रत्येक जन्म में,
इस कारण हिमाचल के घर में जाकर,
पार्वतीजी का शरीर लिया अगले जन्म में ।

जब से हिमाचल के घर जन्म लिया उमा ने,
तब से वहां सारी सिद्धियां, सम्पत्तियां छा गयीं,
मुनियों ने अपने सुन्दर आश्रम बना लिये,
मणियों की अनेक खानें वहां प्रकट हो गयीं ।

नये-नये वृक्ष सदा पुष्प-फलयुक्त हो गये,
सारी नदियों में पवित्र जल बहने लगा,
पशु-पक्षी, भ्रमर सब सुख से रहने लगे,
जीवों को अपना स्वाभाविक वैर भूलनें लगा ।

ऐसा शोभायमान हो उठा तब पर्वत,
जैसे रामभक्ति को पाकर होता भक्त,
पर्वतराज के घर नित्य मंगलोत्सव होते,
ब्रह्मादि सब गाते हैं जिसका यश ।

जब ये सब समाचार सुने नारद ने,
कौतुक ही से आ गए हिमाचल के घर,
चरण धोकर उनको उत्तम आसन दिया,
पर्वतराज ने किया उनका बड़ा आदर ।

फिर पत्नी सहित चरणों में शीश नवाया,
और चरणोदक को सारे घर में छिड़काया,
बहुत बखान किया अपने सौभाग्य का उन्होंने,
पुत्री को बुलाकर मुनि चरणों में बैठलाया ।

जब पूछा उनसे कन्या के बारे में उन्होनें,
मुनि ने बतलाया उन्हें सब गुणों की खान,
कहा स्वभाव से ही सुशील और समझदार है,
उमा, अम्बिका और भवानी हैं इसके नाम ।

सब सुलक्षणों से सम्पन्न बतलाया कन्या को,
और कहा वह सदा पति को प्यारी रहेगी,
जगत में पूज्य और इसकी सेवा करने वालों को,
दुनिया में कोई भी चीज दुर्लभ न रहेगी ।

फिर मुनि ने बताये एकाध दोष कन्या में,
कहा इस कन्या को ऐसा पति मिलेगा,
गुणहीन, मानहीन, उदासीन, माता-पिता विहीन,
योगी, जटाधारी और अमंगल वेषधारी मिलेगा ।

सुनकर मुनि की बातें और सत्य जानकर,
हिमवान और मैना दुःखी, पर पार्वतीजी हुईं प्रसन्न,
जाना नही यह रहस्य किसी ने भी क्योंकि,
बाहरी दशा एकसी, पर समझ थी भिन्न।

हृदय में बसा लिये वे वचन उमा ने,
शिवजी के चरणों में उन्हें स्नेह हो आया,
हुआ संदेह कि उनका मिलना कठिन है,
फिर अवसर न जान अपना प्रेम छिपाया ।

देवर्षि के वचन सत्य जानकर पर्वतराज ने,
पूछा, हे नाथ ! क्या उपाय किया जाये,
मुनि ने कहा, जो लिख दिया विधाता ने,
किसी के भी मिटाये, मिटाया ना जाये ।

तो भी एक उपाय बताता हूँ मैं,
सिद्ध हो सकता यदि दैव सहायता करें,
उमा को वर तो वैसा ही मिलेगा,
जैसा तुम्हारे सामने वर्णन किया है मैने ।

वर के जो जो दोष मैने गिनवाये हैं,
मेरे अनुमान से वे सब हैं शिवजी में,
यदि उनके साथ विवाह हा जाये उमा का,
तो वे दोष भी गिने जाएँगे गुणों में ।

सोते हैं श्रीहरि शेष शय्या पर,
तो भी लगाते नही पण्डित दोष उन्हें,
सूर्य और अग्नि सब कुछ निगल जाते,
फिर भी बुरा नही कहता कोई उन्हें ।

शुभ-अशुभ सभी जल बहता गंगा में,
पर कोई उन्हें अपवित्र नही कहता,
सूर्य, अग्नि और गंगाजी की भांति,
समर्थ को कहीं कुछ दोष नही लगता ।

ज्ञान-अभिमान से जो होड़ करते हैं,
वे मूर्ख कल्पभर के लिये पड़ते नरक में,
ईश्वर के समान भला कहीं जीव भी,
आ सकता सर्वथा स्वतन्त्र की गिनती में ।

गंगाजल से भी यदि बनी हो मदिरा,
संतजन कभी उसका पान नही करते,
वही गंगाजल में मिलकर पवित्र हो जाती,
ऐसा ही भेद जीव और ईश्वर में जानते ।

शिवजी भगवान और सहज समर्थ हैं,
इसलिये इस विवाह में हर तरह कल्याण,
परंतु उनकी अराधना बहुत कठिन है,
फिर भी वे बड़ी जल्दी जाते हैं मान ।

यदि यह तुम्हारी कन्या तपस्या करे तो,
मिटा सकते हैं त्रिपुरारी होनहार को,
यद्यपि संसार में अनेक योग्य वर हैं,
पर शिवजी को छोड़ कोई नही इसको ।

वर दायक, शरणागत वत्सल, कृपा सिंधु,
और सेवकों को प्रसन्नता देते शिवजी,
उनकी आराधना किये बिना नही मिलता,
मनचाहा फल जप-तप करने पर भी ।

ऐसा कह और भगवान का स्मरण कर,
आशीर्वाद दिया नारद जी ने उमा को,
कहा, संदेह त्यागो, सब कल्याण होगा,
और चले गये वे ब्रह्मलोक को ।

उनके जाने के बाद मैनाजी ने कहा,
समझा नही मैने मुनि के वचनों का मतलब,
प्राणों के समान प्यारी है पार्वती मुझको,
विवाह कीजिए उसका उचित वर देखकर ।

योग्य वर जो न मिला पार्वती को,
सब कहेंगे पर्वत जड़ होते है स्वभाव से,
हिमवान ने कहा भगवान का स्मरण करो,
जिसने पार्वती को रचा, वे ही संभालेगे उसे ।

कहो कन्या को तप करे वो ऐसा,
कि जिससे उसको शिवजी मिल जायें,
सभी तरह से निष्कलंक है शिवजी,
मुनि यहां कल्याण करने ही थे आये ।

प्रसन्न हो उठीं मैना यह सुनकर,
पार्वती को देख आंसू भर आये आंखों में,
तब पार्वतजी ने अपनी माता से कहा,
एक सुन्दर स्वप्न देखा है माँ मैनें ।

एक सुन्दर, श्रेष्ठ ब्राहमण ने सपने में कहा,
नारदजी ने जो कहा, सत्य जान तू उसे,
फिर यह अच्छा लगा तेरे माता-पिता को भी,
तप सुख और मुक्ति देता सभी दोषो से ।

तपबल से ही संसार रचते ब्रहमाजी,
तप से ही विष्णु करते पालन,
तप से ही शम्भू संहार करते,
तप से ही शेष जी पृथ्वी करते धारण ।

तप के आधार पर टिकी है सारी सृष्टि,
हे भवानी, ऐसा जी में जान, तप कर,
बड़ा आश्चर्य हुआ माता को यह जान,
वह स्वप्न सुनाया उन्होंने हिमवान् को जाकर ।

बहुत तरह से समझाकर तब माता-पिता को,
बड़े हर्ष के साथ पार्वतीजी तप करनें चलीं,
माता-पिता, सब कुटुम्बी हो गये व्याकुल,
किसी के मुंह से कोई बात नही निकली ।

तब वेदशिरा मुनि ने सबको आकर समझाया,
पार्वतीजी की महिमा के बारे में बतलाया,
समाधान हो गया सबका मुनि के वचन सुन,
पार्वतीजी ने वन में जाकर ध्यान लगाया ।

त्याग दिये सब भोग उन्होनें,
तप करने लगी धर शिवजी हृदय में,
नित्य नया अनुराग, सुध बिसरी तन-मन की,
सब कुछ भूल मन लगा तप में ।

बहुत समय कन्द-मूल फल खाकर बीता,
फिर बस जल और वायु का भोजन,
बहुत समय तक बहुत कठोर उपवास किया,
तीन हजार वर्ष खाये सूखे बेल के पर्ण ।

फिर छोड़ दिये वे सूखे पत्ते भी,
तभी से अपर्णा नाम हुआ पार्वती का,
हुई ब्रहमवाणी, सफल हुआ तेरा मनोरथ,
त्याग कर दे अब सारे असहय क्लेशों का ।

बहुत हुए, धीर, मुनि और ज्ञानी,
पर ऐसा कठोर तप किया ना किसी ने,
सदा सत्य और निरन्तर पवित्र जान कर,
धारण कर इस वाणी को हृदय में ।

फिर कहा, जब तेरे पिता बुलानें आवें,
तब हठ छोड़कर उनके साथ चली जाना,
और फिर जब तुम्हें मिलें सप्तर्षि,
हे भवानी, इस वाणी को ठीक समझना ।

आकाश से हुई ब्रह्मा की वाणी सुन,
प्रसन्न हुईं वे, सारा शरीर पुलकित हो गया,
अब सुनो शिवजी का सुहावना चरित्र,
याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी से जो कहा ।

जब से किया सती ने शरीर का त्याग,
वैराग्य हो गया शिवजी के मन में,
भगवान श्रीहरि को मन में धारण कर,
उनकी गुण-गाथा लगे सुनने सुनाने ।

यद्यपि निष्काम, पर दुखी हैं शिवजी,
अपनी भक्त सती के वियोग के दुख से,
शिवजी के कठोर नियम और प्रेम को देख,
श्रीराम ने प्रकट हो, यह कहा उनसे ।

कौन निबाह सकता आपके सिवाय ऐसा व्रत,
फिर पार्वतीजी के जन्म के बारे में बताया,
जो कठिन तप किया पार्वतीजी ने बतलाकर,
उन्हें पार्वतीजी से विवाह करने को समझाया ।

कहा यदि आपका मुझ पर स्नेह है तो,
हे शिवजी ! विवाह कर लीजिये उमा से,
शिवजी ने कहा, यद्यपि ऐसा उचित नही है,
फिर भी मेरा धर्म बंधा आपकी आज्ञा से ।

माता-पिता, गुरू और स्वामी की बात को,
मान लेना चाहिए बिना विचारे शुभ समझकर,
फिर आप तो सब प्रकार से हितकारी हैं मेरे,
हे नाथ ! आपकी आज्ञा है मेरे सिर पर ।

भक्ति, ज्ञान और धर्म से युक्त वचन सुन,
श्रीरामचन्द्रजी संतुष्ट हो, हो गये अन्तर्धान,
उसी समय सप्तर्षि शिवजी के पास आए,
शिवजी ने सुहावने वचन कह दिया मान ।

कहा लीजिये पार्वतीजी के प्रेम की परीक्षा,
संदेह दूर कर घर भिजवाइये उनको,
ऋषियों ने मूर्तिमान तपस्या रूप में देख,
पूछा उनसे कठोर तप क्यों कर रही हो ।

पार्वतीजी बोली, आप मेरी मूर्खता पर हसेंगे,
हठ पकड़ा मन ने, कोई उपदेश न भाता,
चाहता है वो दीवाल उठाना पानी पर,
नारदजी की सुन, मेरे वश में न आता ।

हे मुनियों ! आप मेरा अज्ञान तो देखें,
चाहती हूँ शिवजी को अपना पति बनाना,
ऋषि हँस पड़े, कहा पर्वत से जन्मी हो,
नारद ने किया क्या कभी भला किसी का ।

दक्ष के पुत्रों को दिया था उपदेश,
लौटकर घर का मुख देखा ना उन्होनें,
चित्रकेतु और हिरण्यकशिपु का घर हुआ चौपट,
नारद का ही उपदेश सुना था उन्होनें ।

जो स्त्री-पुरूष सुनते हैं नारद की सीख,
भीखारी हो जाते हैं वे घर-बार छोड़कर,
सज्जन दीखते, पर उनका मन कपटी हैं,
प्रसन्न होने चाहते सबको अपना सा देखकर ।

उनके वचनों पर विश्वास मानकर तुम,
उदासीन, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला पति चाहती हो,
नर-कपालों की माला पहनने वाला, कुलहीन,
जो शरीर पर सांपों को लपेटे रखता हो ।

ऐसा वर मिलने से क्या सुख होगा तुम्हें,
खूब भूलीं उस ठग के बहकावे में आकर,
सती से विवाह किया था शिव ने लेकिन,
फिर उसे मरवा डाला उन्होनें त्याग कर ।

अब कोई चिन्ता रही नही शिव को,
भीख मांगकर खा लेते और सोते सुख से,
ऐसे स्वभावत: एकेले रहने वालों के घर,
क्या कभी कोई स्त्री रह सकती सुख से ।

अब भी यदि तुम हमारा कहा मानो तो,
तुम्हारे लिये विचारा है हमने बहुत अच्छा वर,
बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुखदायक और सुशील,
जिसकी लीला और यश वेद सुनाते गाकर ।

सारे सद्गुणों की राशि और दोषों से रहित,
लक्ष्मी का स्वामी, बैकुण्ठपुरी का रहने वाला,
हम ऐसे वर को मिला देंगे लाकर तुमसे,
यह सुनकर पार्वतीजी ने उनसे कह डाला ।

सत्य कहा आपने, मेरा शरीर पर्वत से उपजा,
सो हठ न छूटेगा, चाहे तन छूट जाये,
सोना भी तो उत्पन्न होता है पत्थर से,
पर सुवर्णत्व नही छोड़ता, जला दो चाहे ।

सो मैं भी नही छोडूंगी नारदजी के वचनों को,
घर बसे या उजड़े इससे मैं नही डरती,
गुरू के वचनों में विश्वास नही जिनको,
सुख और सिद्धि स्वप्न में भी नही मिलती ।

माना कि महादेव जी हैं अवगुणों की खान,
और विष्णुजी हैं समस्त गुणों के धाम,
पर जिसका मन रम गया हो जिसमें,
उसको तो होता बस उसी से काम ।

यदि आप पहले मिले होते, हे मुनीश्वरों,
तो सिर-माथे पर रखती मैं उपदेश आपका,
परन्तु अब तो मैं शिवजी को हार चुकी जन्म,
फिर कौन विचार करे उनके गुण-दोषों का ।

और यदि आप हैं बहुत ही उत्सुक,
कहीं और जाकर कीजिए विवाह की बात,
मैं तो शिवजी से ही विवाह करूंगी,
ना मानूंगी किसी और से विवाह की बात ।

फिर कहा जगज्जननी पार्वतीजी ने उनसे,
अपरे घर जाइये, मैं आपके पड़ती हूँ पैरों,
ऐसा प्रेम देखकर वे ज्ञानी मुनि जन बोले,
हे जगज्जननी, भवानी! आपकी जय हो,जय हो।

माया हैं आप और भगवान हैं शिवजी,
समस्त जगत के आप हैं माता-पिता,
सिर नवाकर पार्वतीजी के चरणों में चल दिये,
उन्हें घर लिवा लाने हिमवान् को भेजा ।

फिर सप्तर्षियों ने शिवजी के पास जाकर,
उनको पार्वती जी के प्रेम के बारे में बताया,
सब कुछ सुनकर शिवजी आनन्दमग्न हो गये,
स्थिर मन से, श्रीराम चरणों में ध्यान लगाया ।

उसी समय हुआ तारक नाम का असुर,
जिसने देवताओं का जीना कर दिया दूभर,
हरा न सके जब देवता उसे तो,
विनती की ब्रह्माजी से उन्होनें जाकर ।

ब्रह्माजी ने बतलाया उसकी मृत्यु का उपाय,
कहा शिवजी का पुत्र ही जीत सकेगा उसे,
सतीजी ने जो अपना देह त्याग किया था,
हिमाचल के घर जन्मीं हैं वे फिर से ।

शिवजी के लिये तप किया है उन्होनें,
पर शिवजी बैठे हैं समाधि लगाये,
यद्यपि है तो बड़े असमजंस की बात,
फिर भी बताता हूँ क्या किया जाये ।

तुम कामदेव को भेजो शिवजी के पास,
कि जाकर उनके मन में क्षोभ उत्पन्न करें,
तब हम जाकर उनके चरणों में सिर रखेंगे,
विनती करेंगे कि वे पार्वती से विवाह करें ।

और कोई उपाय नही है सिवाय इसके,
देवताओं का काम बस बन सकता इससे,
जब जाकर उन्होनें कामदेव से कही विपत्ति,
मेरी कुशल नही उसने कहा उन सबसे ।

फिर भी मैं तुम्हारा काम तो करूंगा,
क्योंकि वेद परोपकार को परम धर्म कहते,
दूसरों के हित में जो त्याग देते सर्वस्व,
संत जन सदा उनकी बड़ाई करते रहते ।

फिर सिर नवाकर उपने सहायकों के साथ,
पुष्प बाण को हाथ में लेकर कामदेव चला,
मन में सोचा मेरा मरण निश्चित है,
शिवजी के विरोध से हुआ किसका भला ।

तब उसने जाकर अपना प्रभाव फैलाया,
और सारे जग को कर लिया वश में,
संयम-नियम, धीरज-धर्म की सेना भागी,
वेदों की मर्यादा मिट गयी क्षण में।

खलबली मच गयी जब सारे जग में,
सब चराचर हो गये काम के वश में,
पामर मनुष्यों और पशु-पक्षी की क्या,
योगीश्वर और तपस्वी भी पड़े भ्रम में ।

दो घड़ी तक सारे ब्रह्माण्ड के अंदर,
कामदेव का रचा हुआ यह कौतुक रहा,
केवल वे ही उस समय बचे रहे,
श्रीरघुनाथजी ने कृपा कर की जिनकी रक्षा ।

जब पहुँचा कामदेव शिवजी के सम्मुख,
शिवजी की महिमा को देख डर गया,
सब जीव सुखी हो गये पहले के जैसे,
सारा संसार पहले सा स्थिर हो गया ।

जिनको पराजित करना अत्यंत कठिन है,
और जो युक्त हैं सभी ईश्वरीय गुणों से,
भंग करनी है उसे उनकी तपस्या,
भयभीत हो उठा कामदेव यह सोच के ।

लज्जा मालूम हुई उसे लौट जाने में,
पर उससे करते कुछ बनता नहीं,
आखिर उसने हारकर एक उपाय किया,
मन में सोच कि उसको बचना नहीं ।

तुरंत ऋतुराज बसन्त को प्रकट किया उसने,
फूले-फले वृक्षों की कतारें सुशोभित हो गयीं,
वन-उपवन, बावली-तालाब, और दिशाएं,
हर वस्तु प्रेम के रंग में रंग गयी ।

कही नही जा सकती वन की सुन्दरता,
खिल गये सरोवरों में अनेकों कमल,
कामरूपी अग्नि को बढ़ाने वाला उसका मित्र,
चलने लगा मन्द, सुगन्धित पवन शीतल ।

भौरों के समूह गुंजार करने लगे कमलों पर,
पक्षी चहकने, अप्सराएं गा-गाकर नाचने लगीं,
हार गया सब उपाय कर कामदेव,
पर शिवजी की अचल समाधि न डिगी ।

क्रोधित हो उठा तब कामदेव यह देख,
आम्रवृक्ष की एक सुन्दर डाली पर चढ़ गया,
अपने पांचों बाण चढ़ाकर पुष्प धनुष पर,
क्रोध में भर कान तक तान लिया ।

निशाना साध छोड़े कामदेव ने अपने बाण,
शिवजी के हृदय में लगे, समाधि टूटी उनकी,
बहुत क्षोभ हुआ शिवजी को जागने पर,
उन्होनें आंखें खोल सब ओर फिरायी दृष्टि ।

आम के पत्रों में छिपे कामदेव को देखकर,
क्रोध से भर उठे नेत्र शिवजी के,
त्रिलोक कांप उठे, तीसरा नेत्र खुलने से,
भस्म हो गया कामदेव, देखते ही उनके ।

हाहाकार मच गया सारे जग में,
देवता डर गए, दैत्य सुखी हो गये,
चिन्ता करने लगे वे जो भोगी थे,
पर साधक योगी निष्कंटक हो गये ।

यह सुनते ही रतिदेवी मूर्च्छित हो गयी,
रोती, विलाप करती गयी शिवजी के पास,
अनेकों विनती कर, हाथ जोड़ खड़ी हो गयी,
शिवजी प्रसन्न होंगे, थी उसको आस ।

शीघ्र प्रसन्न होने वाले कृपालु शिवजी,
उस अबला को देखकर बोले ये वचन,
अब से बिना शरीर ही व्यापेगा अनंग,
तू सुन कैसे होगा पति से मिलन ।

जब पृथ्वी का भारी भार हरने के लिये,
यदुवंश में श्रीकृष्ण का अवतार होगा,
तब उनका पुत्र बन जन्मेगा तेरा पति,
मेरा यह वचन अन्यथा नही होगा ।

चली गयी रति शिवजी के वचन सुनकर,
ब्रह्मादि देवता भी बैकुण्ठ को चले,
फिर गये वे सब शिवजी के पास,
उन्होनें स्तुति की, शिवजी प्रसन्न हो उठे ।

उनके आने का प्रयोजन जब पूछा शिवजी ने,
ब्रह्माजी बोले आप जानते हैं, पर हम कहते,
सब देवताओं के मन में है परम उत्साह,
वे अपनी आंखों से आपका विवाह देखना चाहते।

कृपा कर आप ऐसा कुछ कीजिए,
कि सब यह उत्सव देखें नेत्र भरकर,
श्रेष्ठ स्वामियों के सहज स्वभाव अनुसार,
अच्छा किया आपने रति को वर देकर ।

फिर कहा पार्वतीजी के तप के बारे में,
विनती की शिवजी उन्हें अंगीकार कर लें,
प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के वचनों को याद कर,
ऐसा ही हो, प्रसन्नतापूर्वक कहा शिवजी ने ।

नगाड़े बजा और फूलों की वर्षा कर,
शिवजी की जय हो, कहने लगे देवता,
उचित अवसर जानकर तब सप्तर्षि वहां आये,
ब्रह्माजी ने उन्हें हिमाचल के घर भेजा ।

वे पहले वहां गये जहां पार्वतीजी थीं,
और छल भरे मीठे वचन बोले उनसे,
अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया,
काम को ही भस्म कर दिया शिवजी ने ।

मासपारायण, तीसरा विश्राम

मुनियों के वचन सुन बोली पार्वतीजी,
हे विज्ञानी मुनिवरों! सच ही कहा आप लोगों ने,
अब तक तो शिवजी विकारयुक्त ही रहे,
आपकी समझ में अब जलाया कामदेव को उन्होनें ।

योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, कामरहित और भोगहीन,
सदा से ही ऐसे हैं शिवजी हमारी समझ से,
यदि ऐसा ही समझ की है मैने उनकी सेवा तो,
वे कृपानिधान मेरी प्रतिज्ञा सत्य करेंगे जरूर से ।

आपने जो कहा कामदेव को भस्म किया उन्होनें,
यही बड़ा भारी अविवेक है आप लोगों का,
जैसे पाला अग्नि के समीप नही जा सकता,
ऐसा ही संबंध है कामदेव और शिवजी का ।

पार्वतीजी का प्रेम और विश्वास देखकर,
हिमाचल के पास चले वे बड़े प्रसन्न हो,
जब सब वृतान्त उन्हें मुनियों ने सुनाया,
तब सादर बुलाया उन्होनें श्रेष्ठ मुनियों को ।

शुभ दिन, घड़ी और नक्षत्र शोधकर,
वेद विधि अनुसार शुभ लग्न लिखवाया,
फिर सप्तर्षियों को वह लग्न पत्रिका देकर,
विनती कर उसे ब्रह्माजी के पास पहुँचाया ।

लग्न पढ़कर सबको सुनाया ब्रह्माजी ने,
सब ओर अपार हर्ष छा गया,
सजाने लगे सब अपने वाहन ओर विमान,
शिव-पार्वती का विवाह निकट आ गया ।

श्रृंगार करने लगे उनके गण शिवजी का,
जटाओं के मुकुट पर सांपों का मौर सजाया,
सांपों के ही कुण्डल और कंकण पहनाये,
विभूति सजा तन पर बाघम्बर लिपटाया ।

चन्द्रमा हो रहा था उनके मस्तक पर शोभित,
सिर पर गंगाजी, तीन नेत्र, जनेऊ सांपों का,
गले में विष, नरमुण्डों की माला छाती पर,
ऐसा अशुभ वेष, पर शिवजी धाम कृपा का ।

हाथों में लेकर त्रिशूल और डमरू,
बैल पर चढ़कर चले शिवजी,
मुस्कुराने लगीं उन्हें देखकर देवाङ्गनाएं,
इनके योग्य दुल्हिन क्या मिलेगी कहीं ।

बाराती बन चले ब्रह्मा, विष्णु और महेश,
सब प्रकार से अनुपम था देवताओं का समाज,
लेकिन यह बारात दूल्हे के योग्य नही थी,
सो विष्णु भगवान ने कही यही बात ।

अपने-अपने दलों सहित चलो अलग से,
क्या पराये नगर में जाकर कराओगे हंसी,
महादेव जी यह देखकर मन ही मन कुस्कराये,
कि विष्णु भगवान के व्यंग्य वचन छूटते नहीं ।

बुलवा भेजे उन्होनें भी सब अपने गण,
शिवजी की आज्ञा सुनते ही सब चले आये,
तरह-तरह के वेष, तरह-तरह की सवारियां,
जिन्हें देख किसी को कुछ समझ न आये ।

किसी के बहुत मुख, कोई बिना मुख का,
किसी के बहुत आंखें, किसी के एक भी नही,
कोई बहुत मोटा-ताजा, किसी के बहुत हाथ-पैर,
कोई दुबला, किसी को एक भी हाथ-पैर नही ।

कोई पवित्र तो कोई अपवित्र वेष वाला,
कोई भयंकर गहने पहने, हाथ में कपाल लिये,
गधे, कुत्ते, सुअर और सियार से उनके मुख,
उन गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने ।

भूत, पिशाच और योगिनियों की जमातें,
उनका वर्णन कुछ कहते नहीं बनता,
नाचते गाते और मौज मनाते चले वो,
अब बन गयी बारात, जैसा था दूल्हा ।

उधर हिमालय ने सुन्दर मण्डप बनाया,
पर्वतों, नदी, तालाबों को भेजा निमन्त्रण,
सब सुन्दर रूप धर हिमाचल के घर आये,
हिमाचल ने सबको यथायोग्य दिये प्रांगण ।

ऐसा सुन्दर सजाया हिमाचल ने नगर,
कि शोभा उसकी कही जा नही सकती,
घर-घर मंगलसूचक, तोरण और ध्वजा-पताकाएं,
मुनियों का मन भी जो डिगा सकती ।

अवतार लिया जहां स्वयं जगदम्बा ने,
वर्णन उसका क्या कोई कर सकता,
ऋद्धि, सिद्धि और समस्त सम्पत्ति,
नित-नित नया वैभव बढ़ता ही रहता ।

बारात नगर के निकट आयी जान कर,
अगुवानी करने वाले सज-संवर कर चले,
प्रसन्न हुए सब देवताओं का समाज देख,
पर शिवजी का दल देख भाग चले ।

बस कुछ बड़ी उम्र के समझदार लोग,
धीरज धर कर डटे रहे वहां पर,
लड़कों से जब पूछा माता-पिता ने,
तो कहने लगे कांपते हुए थर-थर ।

क्या कहें, कुछ कहा नही जाता,
यह बारात है या सेना यमराज की,
दूल्हा पागल है, बैल पर सवार,
उसके गहने है सांप, कपाल और राख ही ।

सारे शरीर पर राख मल रखी उसने,
बिना वस्त्रों के, जटाधारी और भयंकर,
भयानक भूत, प्रेत, पिशाच योगनिया और राक्षस,
आये हैं उसके साथ बाराती बन कर ।

जो बारात देख बच सकेगा जीता,
बड़भागी, वही देख सकेगा विवाह उमा का,
शिवजी का समाज जान माता-पिता मुसकाते,
कहते हैं लड़कों को निडर हो रहने का ।

अगुवानी करने वाले बारात लिवा लाये,
ठहराया बारातियों को सुन्दर जनवासों में,
माता मैना ने शुभ आरती सजायी,
गाने लगीं मंगल गीत स्त्रियां साथ में ।

सोने का थाल सजाकर सुन्दर हाथों में,
मैनाजी चलीं शिवजी का परछन करने,
पर जब देखा महादेवजी का भयानक वेष,
भारी भय हो आया स्त्रियों के मन में ।

डर के मारे घर में घुस गयीं वे,
और पार्वतीजी को अपने पास बुलवाया,
कहने लगीं जिसने इतना सुन्दर बनाया तुम्हें,
कैसे उसने तुम्हारा दूल्हा बावला बनाया ।

जो फल लगना चाहिए कल्पवृक्ष में,
लग रहा वह बबूल में जबरदस्ती से,
मैं तुम्हें साथ लेकर जान दे दूंगी,
पर तुम्हारा ब्याह न करूंगी उससे ।

उन्हें दुखी देख व्याकुल हो गयी स्त्रियां,
मैना विलाप करती कह रही थीं सबको,
उजाड़ दिया नारद ने हमारा बसता हुआ घर,
क्यों ऐसा उपदेश दिया उसने पार्वती को ।

मोह-माया न घर-बार नारद को,
बस जानते वे दूसरों का घर उजाड़ना,
उन्हें न किसी की लाज, न डर है,
बांझ का क्या प्रसव पीड़ा का समझना ।

उन्हें विकल देख पार्वती बोलीं माता से,
टलता नही वह जो रच देते विधाता,
यदि मेरे भागय में ऐसा ही पति है,
तो मत लो अपने माथे कलंक का टीका ।

अवसर नही है यह विषाद करने का,
जो भाग्य में लिखा मैं भोगुंगी उसे,
पार्वती के ऐसे विनय भरे वचन सुनकर,
स्त्रियां आंसू बहाने लगी आंखो से ।

नारदजी और सप्तर्षियों को साथ लेकर,
यह समाचार सुन हिमाचल गये घर को,
तब नारदजी ने पूर्व-जन्म की कथा सुनायी,
कहा मैना को तुम मेरी सच्ची बात सुनो ।

साक्षात जगज्जननी भवानी, अनादि, अजन्मा,
जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली,
सदा शिवजी के अर्द्धांग में रहती हैं ये,
अपनी इच्छा से शरीर धारण करने वाली ।

जन्मीं थीं पहले ये दक्ष के घर,
सती नाम से, शिवजी को ब्याही गयीं,
एक बार इन्हें मोह हो जाने पर,
सीताजी का वेष धर, श्रीराम को परखने गयीं ।

धारण किया सती ने जो वेष सीता का,
इस कारण शिवजी ने इनका त्याग किया,
फिर पिता के घर यज्ञ में जाकर वहां,
शिवजी के अपमान के कारण तन त्याग दिया ।

अब इन्होनें तुम्हारे घर जन्म लेकर,
कठिन तप किया है अपने पति के लिये,
यह विवरण जान सबका विवाद मिट गया,
सब सहर्ष तैयार हो गये विवाह के लिये ।

मंगल गीत गाये जाने लगे नगर में,
भांति-भांति के व्यंजन पकाये जाने लगे,
जिस घर में स्वयं माता भवानी रहती हों,
वहां का वैभव वर्णन हो सकता कैसे ।

आदरपूर्वक सब बारातियों को बुलवाया हिमाचल ने,
ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओं को भी बुलवाया,
बहुत सी पंगतों को परोसने लगे चतुर रसोइये,
स्त्रियां देने लगीं मीठी-मीठी वाणी में गालियां ।

इस विनोद से प्रसन्न हो रहे देवता,
सो बहुत देर लगा रहे भोजन करने में,
भोजन के समय जिस तरह आनन्द बढ़ा,
कहा नही जा सकता वह करोड़ो मुख से ।

फिर मुनियों ने लगन सुनायी हिमवान् को,
विवाह का समय देख देवताओं को बुलवाया,
यथायोग्य आसन दिये गये सब देवताओं को,
और वेद रीति से वेदी को सजवाया ।

एक दिव्य सिंहासन वेदिका पर सजा था,
अति सुन्दर, बनाया हुआ स्वयं ब्रह्माजी का,
अपने हृदय में स्वामी रघुनाथ को याद कर,
शिवजी ने विराजमान हो मान बढ़ाया उसका ।

फिर मुनीश्वरों ने पार्वतीजी को बुलवाया,
सखियां उन्हें ले आयीं उनका श्रृंगार कर,
कौन उस सुन्दरता का कर सकता वर्णन,
देवता भी मोहित हो गये उन्हें देखकर ।

जगदम्बा और शिवजी की पत्नी समझकर,
मन ही मन देवताओं ने प्रणाम किया उन्हें,
वेद, शेष, सरस्वती शोभा वर्णन करते सकुचाते,
फिर मन्दबुद्धि तुलसी है किसी गिनती में ।

फिर मण्डप के बीच गयीं माता भवानी,
पर संकोचवश नीची हैं उनकी नजरें,
देख नही सकतीं पति के चरणकमलों को,
पर उनका मनरूपी भौरां लिपटा था उनमें ।

फिर मुनियों की आज्ञा से शिव-पार्वती ने,
देवताओं में प्रथम गणेश जी का किया वन्दन,
कोई इस बात को सुनकर शंका न करे,
देवताओं को अनादि जान समझा ले अपना मन।

कही गयी है जैसी रीति वेदों में,
महामुनियों ने उसी अनुसार विवाह करवाया,
पर्वतराज हिमाचल से हाथ में कुश देकर,
भवानी का शिवजी को कन्यादान करवाया ।

जब पार्वतीजी का पाणिग्रहण किया शिवजी ने,
जय-जयकार हो उठी, फूल आसमान से बरसे,
सारा ब्रह्माण्ड आनन्द से परिपूर्ण हो गया,
देवताओं के हृदय भी भर गये हर्ष से ।

नाना प्रकार का दहेज दे, चरण पकड़कर,
हिमाचल ने कहा आप पूर्णकाम हैं, हे शंकर,
मैं भला क्या दे सकता हूँ आपको,
आप सर्वस्व के स्वामी हैं, हे शंकर ।

फिर प्रेम से परिपूर्ण हृदय से मैना ने,
कहा, यह उमा है मुझे प्यारी प्राणों सी,
क्षमा करते रहियेगा इसके सब अपराधों को,
अब प्रसन्न हाकर मुझे वर दीजिये यही ।

फिर कृपा के सागर शिवजी ने,
सब तरह समाधान किया उन दोनों का,
मैना ने फिर बुलाकर कहा पार्वती को,
नारियों को पति सिवाय नही देवता दूसरा ।

फिर प्रेम से विकल हो कहा उन्होनें,
क्यों स्त्रियों को पैदा किया विधाता ने,
सपने में भी सुख नही पराधीन को,
पर कुसमय जान धीरज धरा उन्होनें ।

सब स्त्रियों से मिल भेंट कर फिर भवानी,
अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं,
सब किसी ने यथायोग्य आशीर्वाद दिये,
फिर सखियां उन्हें शिवजी के पास ले चलीं ।

सब याचकों को संतुष्ट कर महादेव जी,
पार्वती को साथ ले कैलास को चले,
फूलों की वर्षा करने लगे सब देवता,
उधर हिमवान् शिवजी को पहुचाने चले ।

बहुत तरह से उन्हें संतोष कराकर,
शिवजी ने विदा किया हिमाचल को,
घर लौटकर बहुत सम्मानपूर्वक उन्होनें,
विदा किया अपने सभी मेहमानों को ।

जब शिवजी कैलास पर्वत पर पहुंचे,
अपने-अपने लोकों को लौट गये देवता,
पार्वती और शिवजी जगत माता-पिता हैं,
सो मैं उनका श्रृंगार वर्णन नही करता ।

रहने लगे वे अपने गणों सहित वहां,
बहुत समय बीत गया उन्हें ऐसे रहते,
तब षटबदन पुत्र कार्तिक का जन्म हुआ,
उनके द्वारा तारकासुर का वध सभी जानते ।

कल्याण कार्यों और मंगलों में सुख पायेंगे,
वे जो कहेंगे शिव-पार्वती की यह कथा,
वेद भी पार नही पा सकते उनका चरित्र,
फिर गंवार तुलसीदास वर्णन कैसे कर सकता ।

शिवजी के रसीले और सुहावने चरित्र को सुन,
मुनि भरद्वाजजी ने बहुत ही सुख पाया,
कथा सुनने की उनकी लालसा बढ़ गयी,
रोमावली हर्षित, नेत्रों में जल भर आया ।

प्रेम में मुग्ध हो गये मुनि भरद्वाज,
उनके मुख से वाणी नही निकलती,
याज्ञवल्क्यजी प्रसन्न हो बोले, तुम धन्य हो,
प्राणों समान प्रिय हैं तुम्हें गौरीपति शिवजी ।

प्रीति नही जिनकी शिव-चरणों में,
कदापि भाते नहीं वो श्रीराम को,
विशुद्ध प्रेम विश्वनाथ शिवजी के चरणों में,
अत्यंत प्रिय लगते वो राम को ।

राम भक्ति का व्रत धारण करने वाला,
कौन हो सकता है शिवजी से बढ़कर,
बिना पाप के त्याग दिया सती को,
दिखा दिया अपनी भक्ति को सच कर ।

शिव चरित्र कह तुम्हें परख लिया मैने,
दोष-रहित तुम, श्रीरामजी के पवित्र सेवक हो,
तुमसे मिलने का आनन्द कहा नही जा सकता,
श्रीराम की लीला कथा अब, हे मुनि ! सुनो ।

अत्यंत अपार है रामचरित्र, हे मुनीश्वर,
सौ करोड़ शेषजी भी कह नहीं सकते,
फिर भी जैसा सुना है मैने कहता हूँ,
धनुषधारी श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर के ।

कठपुतली समान हैं सरस्वतीजी जिनको,
सूत पकड़ नचाने वाले हैं रामजी,
जिस कविवर पर कृपा करते हैं वो,
उनके हृदय आंगन में वो नाचती ।

उन्हीं कृपालु श्रीरामजी को प्रणाम कर,
कहता हूँ उन्हीं के गुणों की कथा,
पर्वतों में श्रेष्ठ और रमणीय कैलास पर,
जहां करते हैं शिव-पार्वती निवास सदा ।

सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देवता, किन्नर,
और मुनिसमूह उस पर्वत पर रहते,
वे सब बड़े पुण्यात्मा हैं जो,
आनन्दकंद श्रीमहादेवजी की सेवा करते ।

स्वप्न में भी वे वहां जा नही सकते,
विमुख हैं जो भगवान विष्णु और महादेव से,
उस पर्वत पर है एक विशाल वट वृक्ष,
छहों ऋतुओं में भरा रहता सुन्दरता से ।

शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बहती,
और बड़ी ठंडी रहती है उसकी छाया,
शिवजी विश्राम करते उस वृक्ष के नीचे,
जिसकी महिमा को वेदों ने गाया ।

एक बार स्वयं बाघम्बर बिछाकर शिवजी,
स्वभावत: ही बैठ गये उस वृक्ष के नीचे,
गौर वर्ण और बड़ी लंबी भुजाएं,
और मुनियों का सा धारण वेष किये ।

खिले हुए लाल कमल से चरण उनके,
नखों की ज्योति भक्तों को आलोकित करती,
सांप और भस्म ही थे उनके आभूषण,
मुख की आभा चन्द्रमा को फीकी करती ।

सर पर गंगाजी और जटाओं का मुकुट,
बड़े-बड़े नेत्र और कण्ठ नीला था,
सुन्दरता के भण्डार, शोभायमान थे शिवजी,
माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभित था ।

अच्छा मौका जान पास गयीं पार्वतीजी,
शिवजी ने बैठने को दिया उन्हें आसन,
जब बैठी पार्वतीजी शिवजी के पास,
कथा पिछले जन्म की हो आयी स्मरण ।

पहले की अपेक्षा अधिक प्रेम समझकर,
हँस कर प्रिय वचन बोली पार्वतीजी,
याज्ञवल्क्यजी कहते हैं, लोगों के हितार्थ है जो,
वही कथा पूछना चाहती हैं उमाजी ।

वे बोलीं, हे नाथ ! चराचर के स्वामी,
आपकी महिमा है तीनों लोकों में विख्यात,
आपके चरणों की सेवा करते हैं सब,
चर, अचर, मुनष्य, देवता और नाग ।

समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याण स्वरूप हैं आप,
सब कलाओं और गुणों के आप निधान,
कल्पवृक्ष है आपका नाम शरणागतों के लिये,
आपके बल पर टिका, योग, वैराग्य और ज्ञान ।

यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और,
सचमुच मुझे अपनी सच्ची दासी जानते,
तो श्रीरघुनाथजी की नाना कथा कहकर,
हे प्रभो ! मेरा अज्ञान दूर कीजिए ।

कल्पवृक्ष के नीचे हो जिसका घर,
वह भला क्यों सहेगा दरिद्रता के दु:ख को,
हे शशिभूषण ! हे नाथ ! ऐसा विचार कर,
दूर कीजिए मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को ।

ब्रह्मवेत्ता अनादि ब्रह्म कहते श्रीराम को,
वेद पुराण भी उनके गुण गाते,
क्या ये अयोध्या नरेश के पुत्र हैं,
आप दिन रात जिनके गुण गाते ।

यदि राजपुत्र हैं तो कैसे ब्रह्म,
ब्रह्म हैं तो क्यों विरह में भटके,
मेरी बुद्धि अत्यन्त चकरा रही है,
ऐसा चरित्र और उनकी महिमा सुनके ।

इच्छा रहित व्यापक और समर्थ ब्रह्म,
यदि कोई और है तो, हे नाथ ! कहिये,
क्रोध न लाइये मुझे नादान समझकर,
मेरा मोह दूर हो, वैसा ही कीजिये ।

पिछले जन्म में देखी थी मैने,
उस वन में श्रीरामचन्द्रजी की प्रभुता,
फिर भी हुआ न बोध मुझे,
उसका फल भी तब मैने भुगता ।

अब भी कुछ संदेह है मेरे मन में,
पर मोह नही है अब पहले जैसा,
अब तो रूचि है राम कथा सुनने की,
कहिये हे नाथ ! श्रीरामजी की पवित्र कथा ।

हाथ जोड़ और सिर टेक चरणों में,
हे नाथ ! करती हूँ विनती मैं आप से,
वेदों के सिद्धान्त को निचोड़ कर,
श्रीरामजी का निर्मल यश कहें मुझसे ।

यद्यपि अधिकारिणी नही हूँ सुनने की,
पर सब तरह से हूँ आपकी दासी,
पाते हैं जहां आर्त अधिकारी संत-जन,
छिपाते नही उससे वे गूढ़ तत्त्व भी ।

बहुत ही आर्तभाव से पूछती हूँ, हे स्वामी,
क्षमा कर कहिये श्रीरघुनाथजी की कथा,
पहले तो विचारकर बतलाइये वह कारण,
जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धरता ।

फिर कहिये श्रीरामजी के अवतार की कथा,
और करिये वर्णन उनके बालचरित्र का,
फिर जैसे विवाह किया जानकीजी से उन्होनें,
और क्यों अनुगमन किया उन्होनें वन का ।

फिर वन में किये जो अपार चरित्र,
और किस तरह रावण को मारा उन्होनें,
फिर राजसिंहासन पर बैठ जो कीं लीलाएं,
और कैसे अपने धाम को कूच किया उन्होनें ।

फिर उस तत्त्व को समझाकर कहिये,
जिसकी अनुभूति में ज्ञानी-मुनि रहते मगन,
और फिर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का,
हे प्रभो ! कीजिये विभाग सहित वर्णन ।

और इनके सिवा भी हैं जो चरित्र,
हे नाथ ! कृपा कर सब मुझसे कहिये,
और जो बात मैने पूछी भी न हो,
उसे भी आप छिपा कर मत रखिये ।

आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है, हे प्रभो,
वेदों ने कहा आपको गुरू त्रिभुवन का,
दूसरे पामर जीव क्या जानें यह रहस्य,
आप ही हे नाथ ! करें मुझ पर कृपा ।

पार्वतीजी के सहज, सुन्दर और सरल प्रश्न,
सुनकर बहुत अच्छे लगे शिवजी को,
श्रीरामजी का रूप आ बसा उनके हृदय में,
जिससे अपार सुख मिला सुख स्वरूप शिवजी को।

दो घड़ी डूबे रहे आनन्द में शिवजी,
फिर बाहर खीचां अपने मन को उन्होनें,
और तब श्रीरघुनाथ जी के सुन्दर चरित्र का,
शुरू किया वर्णन करना शिवजी ने ।

जिसे बिना जाने झूठ सत्य लगता,
जैसे रस्सी में हो जाता सांप का भ्रम,
लोप हो जाता जगत जिसे जानने से,
जैसे जागने पर टूटता सपने का भ्रम ।

वन्दना करता हूँ उन्हीं के बालरूप की,
जिनके नाम जप से सब सहज मिल जाता,
मंगल के धाम, सब अमंगल के निवारक,
दशरथ नन्दन करें वे मुझ पर कृपा ।

तब श्रीरामजी को प्रणाम कर त्रिपुरारी,
आनन्दमग्न हो बोले, हे गिरिजाकुमारी,
धन्य हो तुम, धन्य, धन्य हो,
तुम्हारे समान नही कोई और उपकारी ।

सुनना चाहती हो तुम श्रीरघुनाथ कथा,
गंगाजी सी जो सबको पवित्र करने वाली,
पूछे हैं प्रश्न तुमने जगत कल्याण हेतु,
तुम हो श्रीराम चरणों में प्रेम रखने वाली ।

श्रीराम कृपा से तुम्हारे मन में, हे पार्वती,
स्वप्न में भी नही कोई भ्रम या संदेह,
फिर भी सबके कल्याण के लिये तुमने,
रामकथा सुनने को प्रकट किया संदेह ।

सुनी नहीं जिन्होनें हरिकथा कानों से,
उनके कानों के छिद्र हैं बिल समान,
झुकते नही जो सिर गुरू चरणों में,
वे सिर तो हैं कड़वी तूंबी समान ।

भगवद् भक्ति नही जिनके हृदय में,
वे तो जीते जी हैं मुर्दे समान,
जो रसना गाती नही हरि के गुणों को,
वो है मैंढक की जीभ समान ।

हे पार्वती ! सुनो श्रीरामचन्द्रजी की लीला,
देवताओं का कल्याण, दैत्यों को मोहित करने वाली,
संदेहरूपी सब पक्षियों को जो उड़ा देती,
श्रीरामजी की कथा है हाथ की सुन्दर ताली ।

श्रीराम नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म,
उनकी कथा, कीर्ति कही अनन्त वेदों ने,
फिर भी तुम्हारी अत्यन्त प्रीति को देखकर,
जैसा कुछ मैने सुना, वैसा कहूँगा मैं ।

फिर भी एक बात अच्छी लगी न मुझे,
यद्‌यपि मोहवश वह कही है तुमने,
तुमने पूछा क्या वे कोई और राम हैं,
मुनिजन ध्याते और वेद गाते हैं जिन्हें ।

मोहग्रस्त, पाखण्डी, हरि चरणों से विमुख,
अधम मनुष्य ही ऐसा कहते-सुनते,
अज्ञानी, व्याभिचारी, छली और कुटिल हैं जो,
वे ही ऐसी वेद विरूद्‌ध बातें कहते ।

जिन्हें विवेक नही निर्गुण-सगुण का,
जो मायावश जग में भ्रमते-फिरते,
उन्मादी, नशे में, महामोह से ग्रस्त,
उनका कहना-सुनना कुछ अर्थ न रखते ।

छोड़ दो सब संदेह ऐसा विचारकर,
और भजो श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को,
भ्रमरूपी अन्धकार को नाश करने हेतु,
सुनो सूर्य-किरणों समान मेरे वचनों को ।

भेद नही कुछ भी निर्गुण और सगुण में,
मुनि, पण्डित, वेद, पुराण सभी कहते ऐसा,
जो निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और अजन्मा है,
वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता ।

भेद नही जैसे जल और ओले में,
निर्गुण और सगुण भी एक हैं वैसे,
जिनका नाम मिटा देता सब भ्रम को,
उनके लिये मोह का प्रसंग भी कैसे ।

सच्चिदानन्द स्वरूप हैं प्रभु श्रीराम,
स्वभाव से ही प्रकाश रूप और भगवान,
मोहरूपी रात्रि की तो बात ही क्या,
विज्ञान रूपी प्रात भी नही विद्‌यमान ।

हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता, अभिमान,
ये सब तो होते हैं धर्म जीव के,
व्यापक ब्रह्म, पुभु और पुराणपुरूष श्रीराम को,
जानते हैं सब जीव जगत के ।

प्रकाश निधि, सब रूपों में प्रकट,
जीव, जगत, माया और स्वामी सबके,
वे ही रघुकुलमणि श्रीराम स्वामी हैं मेरे,
शीश नवाया शिवजी ने यह कहके ।

अपने भ्रम को तो समझते नही अज्ञानी,
वे मूर्ख श्रीरामजी पर करते हैं आरोप,
जैसे आकाश में बादलों का पर्दा देखकर,
कहते हैं बादलों ने कर दिया सूर्य लोप ।

आंख में उंगली लगाकर जो देखता,
उसको तो प्रत्यक्ष ही दिखेंगे दो चन्द्रमा,
श्रीराम में मोह की कल्पना, ऐसे है,
जैसे आकाश में धुआं और धूल सोहना ।

विषय, इन्द्रियां, इन्द्रियों के देवता व जीवात्मा,
ये सब होते एक से एक सचेत,
इन सबका है जो परम प्रकाशक,
वही अनादि ब्रह्म हैं श्रीराम अयोध्या नरेश ।

यह जगत प्रकाश्य, श्रीराम प्रकाशक,
माया के स्वामी, ज्ञान, गुणों के धाम,
मोह की सहायता पाकर जिनकी सत्ता से,
जड़ माया भी लगती सत्य तमाम ।

सीप में चांदी, सूर्य किरणों में पानी की,
बिना हुए भी जैसे होती प्रतीति,
हटा नही सकता कोई इस भ्रम को,
यद्यपि तीनों कालों में झूठी यह प्रतीति ।

वैसे ही भगवान पर आश्रित यह संसार,
असत्य होने पर भी सबको दुख देता,
जैसे स्वप्न में सिर कट जाने का दुख,
जाग जाने तक दूर नही होता ।

जिनकी कृपा से यह भ्रम मिट जाता,
हे पार्वती ! वही हैं कृपालु श्री राम-रघुनाथ,
जाना ना किसी ने जिनका आदि-अन्त,
वेदों ने भी कहा जिन्हें अनादि, हे नाथ ।

बिना ही पैर के चलता जो ब्रह्म,
बिना हाथ के जो करता सब काम,
बिना ही कान के सुनता सब कुछ,
बिना ही वाणी के करता सब गान ।

बिना मुंह सब रसों को चखता,
बिना त्वचा के स्पर्श सब करता,
बिना आंखों के वह देखता सबको,
बिना नाक सब गन्धों को सूंघता ।

सभी प्रकार अलौकिक करनी ब्रह्म की,
कही नही जा सकती जिसकी महिमा,
वही अयोध्यानाथ भगवान रामचन्द्र है,
मुनि जन ध्यान धरते हैं जिनका ।

शोकरहित कर देता जिनके नाम से मैं,
हे पार्वती ! काशी में मरते प्राणी को,
वही मेरे प्रभु, जड़-चेतन के स्वामी,
अंतरयामी, रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी हैं वो ।

विवशता वश भी जिनका नाम लेने से,
अनेक जन्मों के सब पाप जल जाते,
फिर जो सादर करते उनका नाम स्मरण,
अनायास ही भवसागर से वे तर जाते ।

हे पार्वती ! वही परमात्मा हैं श्रीरामचन्द्रजी,
उनमें भ्रम है, अनुचित है तुम्हारा कहना,
इस प्रकार का संदेह मन में लाने से,
निश्चित है सद्गुणों का नष्ट हो रहना ।

पार्वतीजी के कुतर्कों की रचना मिट गयी,
शिवजी के भ्रमनाशक वचनों को सुन कर,
असम्भावना की मिथ्या कल्पना जाती रही,
प्रेम और विश्वास उभरा और भी बढ़ कर ।

बारम्बार शिवजी के चरणकमल पकड़ कर,
पार्वतीजी ने कहा मेरा अज्ञान मिट गया,
हर लिया आपने मेरा सब संदेह,
श्रीराम का यथार्थ स्वरूप समझ आ गया ।

आपकी कृपा से मेरा विषाद मिट गया,
सुखी हो गयी मैं आपके अनुग्रह से,
यद्यपि स्वभाव से ही नही मुझमें ज्ञान,
फिर भी कहिये अपनी दासी जान मुझे ।

किस कारण चिन्मय अविनाशी ब्रह्म ने,
हे नाथ ! धारण किया तन मनुष्य का,
पार्वतीजी के अत्यन्त नम्र वचन सुन कर,
प्रसन्न हो कहने लगे शिवजी श्रीरामकथा ।

नवाह्नपारायण, पहला
विश्राम मासपारायण, चौथा

काकभुशुण्डि ने गरूड़जी से कही जो कथा,
हे पार्वती ! वह निर्मल रामचरितमानस सुनो,
आगे कहूँगा वह संवाद हुआ जिस प्रकार,
अभी श्रीराम-अवतार की पवित्र कथा सुनो ।

नाम, कथा, रूप और गुण श्रीहरि के,
हैं सभी अगणित, असीम और अपार,
फिर भी हे पार्वती सुनो आदर से,
कहता हूँ मैं अपनी बुद्धि के अनुसार ।

किया है वेद और शास्त्रों ने,
श्रीहरि के विविध चरित्रों का गुण-गान,
जिस कारण से होता अवतार हरि का,
कौन उन सब कारणों को सकता जान ।

मेरे मतानुसार बुद्धि, मन और वाणी से,
की नही जा सकती श्रीराम की विवेचना,
फिर भी संत, मुनि, वेद, पुराण जो कहते,
और जो कुछ हो सका मुझसे समझना ।

कहता हूँ वह कारण मैं तुमसे,
कि जब-जब होता ह्रास धर्म का,
ब्राह्मण, गौ और सज्जन कष्ट पाते,
तब-तब श्रीहरि हरते कष्ट उन सबका ।

भांति-भांति के शरीर धारण करते वे,
असुरों को मार देवताओं को स्थापित करते,
रक्षा करते वेदों की मर्यादा की वे,
जगत में अपना निर्मल यश फैलाते ।

उसी यश को गा-गाकर भक्तजन,
सहज ही भवसागर से तर जाते,
अनेक विचित्र अवतार के कारण,
भक्तों के हित हेतु वे सब करते ।

सावधान होकर सुनों, हे सुमति भवानी !
उनके दो नर जन्मों का मैं वर्णन करता,
जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल उनके,
शापवश असुर योनि में जन्म हुआ उनका ।

एक था हिरण्यकशिपु और दूसरा हिरण्याक्ष,
बहुत ही वीर और रणबांकुरे थे वो,
पहले को हरि ने नरसिंह रूप धर मारा,
और वराह शरीर धर मारा दूजे को ।

इस तरह दोनों का वध कर हरि ने,
अपने भक्त प्रह्लाद का यश फैलाया,
उन्हीं दोनों ने अपने अगले जन्म में,
क्रमशः रावण और कुम्भकर्ण नाम पाया ।

श्रीहरि द्वारा मारे जाने पर भी,
शाप के कारण वे मुक्त नही हुए थे,
तीन जन्म के लिये था ब्राह्मण का शाप,
इसलिये श्रीहरि फिर अवतरित हुए थे ।

कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए,
उस अवतार में दशरथ और कौसल्या नाम से,
एक कल्प में इस प्रकार लेकर अवतार,
पवित्र लीलाएं की उन्होनें श्रीराम नाम से ।

एक कल्प में जलन्धर दैत्य से हार,
दुखित देवता गये शिवजी की शरण में,
घोर युद्ध किया शिवजी ने उसके साथ,
पर सफल न हुए वे उसे हराने में ।

इसका कारण था उस दैत्यराज की पत्नी,
जो परम सती और पतिव्रता थी,
उसी कारण त्रिपुरासुर को भी हराने वाले,
हरा न सके उस दैत्य को शिवजी ।

छल से उस स्त्री का व्रत भंग कर,
प्रभु ने देवताओं का काम किया,
जब उस स्त्री ने जाना यह भेद,
क्रोध कर उसने प्रभु को शाप दिया ।

लीलाओं के भण्डार कृपालु हरि ने,
उस स्त्री के शाप को स्वीकार किया,
वही जलन्धर उस कल्प में हुआ रावण,
जिसे मार श्रीराम ने परम पद दिया ।

यह था कारण हरि के एक जन्म का,
जिससे श्रीराम ने मनुष्य देह किया धारण,
सुनो, प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा का,
कवियों ने किया है नाना प्रकार से वर्णन ।

एक कल्प में दिया नारद ने शाप,
उसके लिये अवतार हुआ उस कल्प में,
बड़ी चकित हुई पार्वतीजी यह सुनकर,
कहा, नारद तो रंगे प्रभु भक्ति में ।

फिर किस कारण उन्होनें दिया शाप,
कया अपराध किया था प्रभु ने उनका,
बड़ा विचित्र है नारद को मोह होना,
हे पुरारि, कृपा कर कहिये वो कथा ।

न कोई ज्ञानी है न मूर्ख,
तब हँसकर कहा महादेव ने,
श्रीरघुनाथ जब जिसको जैसा करते,
हो जाता वैसा वो पल में ।

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं, हे मुनि भरद्वाज,
श्रीरामकथा कहता हूँ, आदर से सुनो,
तुलसीदास कहते हैं, मान और मद को छोड़,
आवागमन छुड़ाने वाले श्रीरघुनाथा को भजो ।

एक पवित्र गुफा थी हिमालय पर्वत में,
जिसके समीप ही बहती थी पवित्र गंगा,
जब देखा नादरजी ने वह पवित्र आश्रम,
उनके मन को वह बड़ा सुहावना लगा ।

पर्वत, नदी और वन के विभागों को देखकर,
नारद के हृदय में भगवद्-प्रेम उमड़ आया,
तुरंत ही उनके शाप की गति रूक गयी,
निर्मल मन समाधि में मगन हो आया ।

दक्ष प्रजापति ने शाप दिया था उन्हें,
रूक न पाएंगे वे किसी एक जगह पर,
इसलिये घूमते रहते थे हरदम नारद,
पर रह गए वे वहां स्थिर हो कर ।

नारद मुनि की यह तपोमय स्थिति देखकर,
देवराज इन्द्र का मन भर गया डर से,
नारद की समाधि भंग करने के लिये,
कामदेव को बुला नारद के पास भेजा उसे ।

इन्द्र को डर था कि देवर्षि नारद,
पाना चाहते हैं राज्य अमरावती का,
जगत में कामी और लोभी लोगों को,
कुटिल कौए सा डर लगता है सबका ।

जैसे सिंह को देख मूर्ख कुत्ता,
मुंह में सूखी हड्डी लेकर भागे,
वैसे ही इन्द्र को लाज न आयी,
नारदजी मेरा राज्य ले लेंगे, सोचते ।

उस आश्रम में, जब गया अनंग,
फूल खिलने, भौंरे गुंजार लगे करने,
छा गयी वहां पर बसन्त ऋतु,
रम्भा आदि अपसराएं लगी नृत्य करने ।

नाना प्रकार के मायाजाल फैलाये उसने,
पर असर कर न सकी कोई कला,
लक्ष्मीपति भगवान हो जिसके बड़े सहायक,
उसकी मर्यादा कौन भंग कर सकता भला ।

बहुत डरकर कामदेव ने सहायकों सहित,
तब मुनि के चरणों को जा पकड़ा,
पर क्रोध न आया कुछ नारद को,
सिर नवा कामदेव ने अपना रस्ता पकड़ा ।

देवराज इन्द्र की सभा में जाकर,
उसने जो कुछ घटा था बताया सबको,
सुनकर सबके मन में हुआ बहुत आश्चर्य,
मुनि की बड़ाई कर, सिर नवाया हरि को ।

तब नारदजी गये शिवजी के पास,
कामदेव को जीतने का ले अहंकार मन में,
सब चरित्र कामदेव के उन्होनें उन्हें सुनाये,
तब शिवजी ने कहा विचार करके उन्हें ।

हे मुनि ! विनती करता हूँ आपसे,
कभी सुनाना ना श्रीहरि को यह कथा,
चर्चा भी चले तो भी छिपा जाना,
भूले से भी कहना ना उनको यह कथा ।

यद्यपि शिवजी ने दी यह शिक्षा हित की,
पर नारदजी को वह लगी न अच्छी,
हे भरद्वाज ! अब आप आगे की सुनो,
होती है बड़ी बलवान इच्छा हरि की ।

श्रीरामचन्द्रजी जो चाहते हैं करना,
कोई उसके विरूद्ध कर नही सकता,
चल दिये वहां से ब्रह्मलोक को नारद,
शिवजी का कहा उन्हें अच्छा न लगा ।

एक बार हरिगुण गाते हुए नारदजी,
भगवान नारायण से मिलने गये क्षीरसागर,
प्रभु बोले बहुत दिन बाद आये नारदजी,
और उनके साथ बैठ गये आसन पर ।

यद्यपि शिवजी ने बरज रक्खा था उन्हें,
पर नारदजी ने सारा किस्सा कह सुनाया,
कौन ऐसा है जिसे मोहित न कर दे,
बड़ी ही प्रबल है श्रीरघुनाथ की माया ।

रूखा मुंह कर कोमल वचन बोले भगवान,
आपका स्मरण औरों का मोह मिटा देता,
जिसके मन में ज्ञान-वैराग्य ना हो,
हे मुनि ! मोह तो उनके मन में होता ।

ब्रह्मचर्यव्रत में तत्पर और धीरबुद्धि हैं आप,
भला कामदेव आपको क्या सता सकता,
नारदजी ने कहा कुछ अभिमान के साथ,
हे भगवन् ! यह सब है बस आपकी कृपा ।

प्रभु ने देखा नारदजी के मन में,
गर्व के वृक्ष का अंकुर हो गया पैदा,
सोचा, उखाड़ फेकूंगा तुरंत ही इसे,
क्योंकि सेवकों का हित वे सोचते सदा ।

भगवद्-चरणों में सिर नवा चले नारदजी,
बढ़ गया हृदय में और भी अभिमान,
तब प्रेरित किया अपनी माया को प्रभु ने,
अब उसकी करनी, हे भरद्वाज ! लो जान ।

हरि की माया ने तुरंत मार्ग में,
रच दिया एक सौ योजन का नगर,
भांति-भांति की रचनाएं करी उसमें,
बैकुण्ठ से भी सुन्दर बनाया वो नगर ।

कामदेव और रति से सुन्दर नर-नारी,
और शीलनिधि नामक राजा था उसका,
लक्ष्मीजी भी जिसे देखकर मोहित हो जायें,
ऐसा रूप उसकी पुत्री विश्वमोहिनी का रचा ।

सर्वगुण सम्पन्न वह प्रभु की माया,
चुनना चाहती थी स्वयं अपना वर,
अगणित राजा वहां आए हुए थे,
और नारदजी भी जा पहुंचे उधर ।

राजकुमारी को लाकर दिखलाया राजा ने,
सब गुण-दोष उसके नारद से पूछे,
भूल गए वैराग्य उसके लक्षण देख नारदजी,
हृदय में हर्षित हो स्वयं को भी भूले ।

कहने लगे मन में उसके लक्षण देख,
जो उसे ब्याहेगा, हो जाएगा अमर,
रणभूमि में उसे कोई जीत न सकेगा,
और उसकी सेवा करेंगे सब चर-अचर ।

हृदय में रख लिये उसके लक्षण उन्होनें,
और राजा से कह दिया अपनी ओर से,
पर उनके हृदय में बस यही चिन्ता थी,
क्या करूँ, वह कन्या मुझे ही वरे जिससे ।

सोचा उन्होनें, जप-तप नही,
इस समय चाहिये वैभव और रूप,
रीझ जाये जिसे देखकर राजकन्या,
सब काम हों मेरी इच्दा अनुरूप ।

मेरे गले में डाल दे जयमाला,
राजाओं को छोड़ मुझे वर ले,
सोचा प्रभु से मांग लूं सुन्दरता,
वे ही सहायक हैं सबसे पहले ।

बहुत विनती करी प्रभु से उन्होनें,
तो कृपालु प्रभु वहीं प्रकट हो गये,
दीन हो, सब कथा सुनायी नारद ने,
और कहा, हे प्रभु ! मेरे सहायक बनिये ।

दे दीजिये आप मुझे रूप अपना,
और कोई उपाय नही उसे पाने का,
हे नाथ ! जिस तरह मेरा हित हो,
शीघ्र करिये उपाय उसे करने का ।

अपनी माया का प्रबल बल देख,
मन ही मन में हंसे प्रभु,
जिस प्रकार आपका परम हित होगा,
हम वही करेंगे, बोले प्रभु ।

यदि कोई रोगी कुपथ्य मांगे तो,
हे मुनि ! वह नही देता, वैद्य उसे,
हमने तुम्हारे हित की ठान ली है,
यह कह अर्न्तध्यान हुए प्रभु वहां से ।

ऐसे मूढ़ हो गये मायावश मुनि कि,
समझ न सके प्रभु की वाणी को,
जहां स्वयंवर की करी गयी थी तैयारी,
तुरंत ही उस ओर चल दिये वो ।

मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे नारद,
कि प्रभु ने बना दिया काम मेरा,
भूल कर भी किसी और को न वरेगी,
वह राजकुमारी देखकर सुन्दर रूप मेरा ।

लेकिन मुनि के कल्याण के लिये,
बड़ा कुरूप बना दिया प्रभु ने उन्हें,
जान न सका कोई भी यह चरित,
नारद ही जान प्रणाम किया सबने ।

शिवजी के दो गण भी थे उन्हीं में,
जो जानते थे सब भेद नारद का,
गर्व सहित नारद जिस पंक्ति में बैठे थे,
वे भी बैठ गए वेष बना ब्राह्मण का ।

सुना-सुनाकर व्यंग्य वचन नारद को,
कहते थे प्रभु ने दी अच्छी सुन्दरता,
रीझ जायेगी राजकुमारी इन्हें हरि (वानर) जान,
औरों को छोड़ वरन करेगी केवल इनका ।

यद्यपि मुनि सुन रहे थे उनकी बातें,
पर समझ न पाये, भ्रमित बुद्धि के कारण,
राजकुमारी के सिवा जान सका न कोई,
उसे क्रोध आ गया उनकी कुरूपता के कारण ।

राजहंसिनी सी चली वह राजकुमारी,
नारदजी की ओर ना देखा उसने भूले से,
बार-बार उचकते और छटपटाते हैं नारदजी,
उनकी दशा देख मुस्कराते गण शिवजी के ।

श्रीहरि भी जा पहुंचे, राजा के रूप में,
उनके गले में डाली राजकुमारी ने जयमाला,
बहुत विकल हो गये नारदजी यह देखकर,
मानों किसी ने उनका सब ले डाला ।

कहा मुस्कुराकर तब शिवजी के गणों ने,
अपना मुंह तो देखिये जाकर दर्पण में,
फिर वे दोनों भागे होकर भयभीत,
अपने रूप का सच जाना जब नारद ने ।

दिया शाप उन दानों को उन्होनें,
कहा जाकर तुम दोनों राक्षस बन जाओ,
अब किसी मुनि की हंसी न उड़ाना,
जाओ, अपनी करनी का फल पाओ ।

फिर जाकर जब देखा जल में,
उन्हें असली रूप फिर मिल गया था,
तुरंत ही वे भगवान के पास चल दिये,
मन में अब भी क्रोध भरा था ।

जाकर शाप दूंगा, या प्राण दे दूंगा,
सोच रहे थे वे अपने मन में,
लक्ष्मीजी और उसी राजकुमारी के संग,
मिल गये श्रीहरि उन्हें रस्ते ही में ।

मीठी वाणी में पूछा भगवन् ने,
हे मुनि ! इतने व्याकुल हो कहाँ चले,
ये शब्द सुनते ही क्रोध उमड़ आया,
मायावश चेत न रहा मन में ।

कहा, दूसरों की सम्पदा देख नही सकते,
कपट और ईर्ष्या भरी तुम्हारे मन में,
समुद्रमंथन के समय शिवजी को बावला बनाया,
देवताओं द्वारा उन्हें विषपान कराया तुमने ।

असुरों को मदिरा, शिवजी को विष देकर,
स्वयं लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि ले ली,
परम स्वतंत्र हो, सो मनमानी करते हो,
किसी ने तुम्हारी खबर अब तक ना ली ।

पर अबकी अच्छे घर बैना दिया,
सो अवश्य पाओगे अपने किये का फल,
जो शरीर धारण कर तुमने ठगा मुझे,
मेरा शाप है, करो वही तन धारण ।

बंदर का रूप दिया था तुमने हमें,
सो वो ही तुम्हारे तब सहायक होंगे,
मेरा वियोग करा तुमने बड़ा अहित किया,
तुम भी स्त्री के वियोग में दुखी होंगे ।

स्वीकार कर नारद मुनि के शाप को,
हर्षित हो प्रभु ने बहुत विनती की,
और फिर कृपानिधान भगवान ने,
अपनी माया की प्रबलता खींच ली ।

तब न लक्ष्मी, न राजकुमारी रही वहां,
प्रभु की माया का प्रभाव हट गया,
मुनि ने भयभीत हो, पकड़े चरण,
आंखों से माया का पर्दा हट गया ।

कहा, हे नाथ ! हे शरणागत वत्सल,
त्राहिमाम ! त्राहिमाम ! मेरी रक्षा कीजिये,
पड़ गया था मेरी आंखों पर पर्दा,
हे नाथ ! मुझ पर कृपा कीजिये ।

मिथ्या हो जाये मेरा दिया शाप,
हे कृपालु ! आप कुछ ऐसा कीजिये,
कहा दीनानाथ ने यही मेरी इच्छा थी,
अपने मन को आप दुखी न कीजिये ।

मुनि ने कहा, अनेक दुर्वचन कहे मैने,
कैसे अन्त होगा मेरे पाप का,
श्रीहरि ने कहा, तुरंत शांति मिलेगी आपको,
जाकर जप करो शंकरजी के शतनाम का ।

शंकर समान कोई प्रिय न मुझे,
छोड़ना न भूलकर भी इस विश्वास को,
जिस पर कृपा करते नही शिवजी,
पा नही सकता कभी मेरी भक्ति वो ।

ऐसा विचारकर जाकर विचरो पृथ्वी पर,
तुम्हें सतायेगी न कभी अब मेरी माया,
समझा-बुझा उन्हें हरि अन्र्तधान हो गये,
मुनि के हृदय ने बहुत संतोष पाया ।

जब मार्ग में वे प्रसन्न हो जा रहे थे,
शिवजी के गण डरते-डरते आये पास,
चरण पकड़ नारदजी के वे बोले,
हे कृपालु ! क्षमा कीजिये हमारे अपराध ।

हम ब्राह्मण नही शिवजी के गण हैं,
अपने अपराध का फल पा लिया हमने,
कृपा कर दूर कीजिये शाप आप अपना,
तब दया कर उनसे कहा मुनि ने ।

यह सच है तुम दोनों राक्षस होंगे,
पर ऐश्वर्य, तेज और बल मिलेगा तुम्हें,
सारा विश्व जीत लोगे भुजाओं से अपनी,
हर ओर विजयश्री वरण करेगी तुम्हें ।

मनुष्य रूप में तब श्रीविष्णु जन्म लेंगे,
उनके हाथों युद्ध में मृत्यु होगी तुम्हारी,
मुक्त हो जाओगे इस तरह से तुम,
फिर से जन्मने की न आयेगी बारी ।

चले मुनि के चरणों में तब सिर नवाकर,
समय आने पर वे दोनों राक्षस हुए,
पृथ्वी का भार हरने वाले भगवन्,
एक कल्प में इसी कारण अवतरित हुए ।

इस प्रकार अनेकों सुन्दर और सुखदायक,
अलौकिक जन्म और कर्म हैं भगवान के,
प्रत्येक कल्प में जब-जब लेते हरि अवतार,
नाना प्रकार की सुन्दर लीलाएं वे करते ।

गान किया उनकी कथाओं का मुनियों ने,
तब-तब परम पवित्र काव्यरचना करके,
वर्णन किया भांति-भांति कं अनुपम प्रसंगों को,
विवेकी जन जिन्हें सुन आश्चर्य नही करते ।

श्रीहरि अन्नत, उनकी कथा भी अनन्त,
संतजन जिन्हें भांति-भांति से कहते,
पवित्र और सुन्दर श्रीरामजी के चरित्र,
कल्पों में भी गाये जा नही सकते ।

यह प्रसंग कहा मैने, हे उमा !
जानो, कैसी दुस्तर है प्रभु की माया,
ज्ञानी-मुनि भी हो जाते मोहित,
उसके प्रभाव से कौन बच पाया ।

लीलामय हैं शरणागत वत्सल श्रीहरि,
सेवा करने में सुलभ, दु:खों के हर्ता,
मन में ऐसा विचार भजन करना चाहिये,
उन महामाया के स्वामी श्री श्रीभगवान का ।

अब सुनो वह दूसका कारण,
विस्तार से कहता हूँ जिसकी कथा,
क्यों अजन्मा, निर्गुण, अरूप ब्रह्म ने,
जन्म लिया अवध में राजा का ।

जिन राम को भाई लक्ष्मण के साथ तुमने,
मुनि वेष में वन में फिरते पाया,
जिनके चरित्र देख, सती के रूप में,
तुम पर विचित्र बावलापन और भ्रम छाया ।

भ्रमरूपी रोग का हरण करने वाले,
उन प्रभु श्रीराम के चरित्र सुनो,
उस अवतार में उन्होनें जो की लीलाए,
अपनी बुद्धि-अनुसार कहता हूँ, सुनो ।

याज्ञवल्क्यजी ने कहा, हे भरद्वाज, यह सुनकर,
पार्वतीजी सकुचाकर प्रेम सहित मुसकरायी,
फिर जिस कारण प्रभु का अवतार हुआ,
वृषकेतु शिवजी ने वह कथा सुनायी ।

स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा,
मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई जिनसे,
राजा उत्तानपाद उनके ज्येष्ठ पुत्र थे,
प्रसिद्ध हरिभक्त ध्रुवजी पुत्र हुए जिनके ।

उन्हीं मनुजी के छोटे पुत्र प्रियव्रत थे,
और देवहूति नाम की कन्या थी उनकी,
कर्दम मुनि उन देवहूति के पति थे,
इन दोनों के पुत्र थे कपिल मुनि ।

बहुत समय तक राज्य किया मनुजी ने,
सब प्रकार भगवद् आज्ञा का किया पालन,
पर दुखी थे अभी तक वैराग्य न हुआ,
घर में रहते बुढ़ापे का हुआ आगमन ।

बहुत बड़ा दुख था उनके मन में,
श्रीहरि भक्ति बिन जन्म यों ही गया,
तब जबरन पुत्र को राज्य सौंपकर,
पत्नी सहित वन को गमन किया ।

साधकों को सिद्धि देनेवाला, अत्यन्त पवित्र,
और तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिषारण्य है प्रसिद्ध,
मुनियों और सिद्धों के समुह वहां बसते,
राजा मनु चले वहां होकर हर्षित ।

चलते-चलते जा पहुंचे गोमती के किनारे,
राजर्षि जान सिद्ध-मुनि मिलने आये उनसे,
सभी तीर्थ कराये उन्हें मुनियों ने सादर,
संतसमाज में नित्य पुराण सुनते थे उनसे ।

द्वादशाक्षर मन्त्र–'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का,
जप करते रहते थे वे दोनों प्रेमसहित,
और भगवान वासुदेव के चरण-कमलों में,
बहुत ही लग गया था उनका चित ।

धीरे-धीरे सब कुछ को त्यागकर वे,
करने गले स्मरण सच्चिदानन्द ब्रह्म का,
उन अनन्त, अनादि ब्रह्म को कैसे देखें,
हृदय में एकमात्र थी बस यही अभिलाषा ।

नेति-नेति कह निरूपण करते वेद,
आनन्द स्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम,
अनेकों ब्रह्मा, विष्णु, शिव अंश से प्रगटे,
सेवक के वश हो जाते वे परब्रह्म ।

यदि वेदों का यह वचन सत्य है,
कि भक्तों के लिये अवतरित होते भगवान,
तो हमारी अभिलाषा भी पूरी होगी,
दोनों तप करने लगे, मन में यह मान ।

बहुत कठिन तप किये हजारो वर्षों तक,
त्रिदेव उनके पास कई बार आये,
वर देकर उन्हें ललचाना चाहा उन्होनें,
पर कैसे भी उन्हें डिगा न पाये ।

तब सर्वज्ञ प्रभु ने उन्हें निज-दास जाना,
'वर मांगों', अमृत सी हुई आकाशवाणी,
तुरंत हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर हो गये वो,
जब हृदय में उतरी यह दिव्य वाणी ।

अतिशय प्रेम उमड़ आया हृदय में,
दण्डवत कर तब मनुजी बोले,
हे प्रभु ! सेवकों के सर्वस्व है आप,
रक्षक उनके जो शरणागत हो ले ।

सब जड़-चेतन के स्वामी हैं आप,
और कल्याण करने वाले अनाथों को,
प्रसन्न हो हमें यह वर दीजिये,
कि मन में बसे वह रूप आपका ।

जिसे पाने का मुति यत्न करते,
जो स्वरूप शिवजी के मन बसता,
काकभुशुण्डि के मन रूपी सरोवर का हंस,
वेद सगुण और निर्गुण कह करते प्रशंसा ।

प्रिय लगे उनके विनीत प्रेम भरे वचन,
तुरंत सर्व समर्थ भगवन् प्रकट हो गये,
उनके चिन्मय शरीर की शोभा देखकर,
उन दानों के मन पुलकित हो गये ।

नील कमल, नीलमणि और नीले मेघ सा,
रूप देख, करोड़ो कामदेव भी लजाते,
शरद-पुर्णिमा के चन्द्रमा सा उनका मुख,
अंग, प्रत्यंग सुन्दरता की सीमा लजाते ।

गला शंख सा, रक्तिम होंठ,
दांत और नाक भी अति सुन्दर,
नये कमल सी नेत्रों की छवि,
जी को मोहती चितवन मनहर ।

कामदेव के धनुष की शोभा,
हर रहीं थी टेढ़ी भौहें उनकी,
प्रकाशमय तिलक ललाट पलट पर,
मकराकृत कुण्डल लुभा रहे जी ।

सिर पर मुकुट सुशोभित था उनके,
काले सघन बाल, भौरों के झुंड से,
हृदय पर श्रीवत्स, वनमाला रत्नजटित हार,
और मणियों के आभूषण शोभित थे ।

गर्दन सिंह की सी, सुन्दर जनेऊ,
भुजाओं में सुन्दर गहने थे पहने,
हाथी की सूंड के समान सुनदर भुजदण्ड,
हाथ मे धनुष, बाण तरकस में पैने ।

बिजली को भी लजाने वाला पीताम्बर,
पेट पर सुन्दर तीन रेखाओं की त्रिवली,
और उनकी नाभि थी ऐसी सुन्दर मानो,
छीन लेती हों, यमुनाजी के भंवरों की छवि ।

बसते जिनमें मुनियों के मन रूपी भौरें,
उन चरणों का नहीं किया जा सकता वर्णन,
बाये भाग में उनके शोभा की राशि,
आदिशक्ति, श्रीजानकीजी, जगत का मूल कारण
।

अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी,
जिनके अंश मात्र से उत्पन्न हो जाती,
वे सीताजी, श्रीराम के बांयी ओर थी,
जिनके इशारे से सृष्टि रचना हो जाती ।

स्तब्ध रह गये मनु-शतरूपा के नयन पट,
शोभा के समुद्र श्रीहरि का रूप देखकर,
भूल गये सुध-बुध वो अपनी देह की,
गिर गये भूमि पर उनके चरण पकड़ कर ।

धन्य किया उन्हें चरण-कमल छुआ कर,
और फिर तुरंत ही उठा लिया उन्हें,
फिर बोले मुझे प्रसन्न और बड़ा दानी जान,
वही वर मांग लो जा मन भाये तुम्हें ।

प्रभु के वचन सुन, हाथ जोड़ कर,
कोमल वाणी से राजा ने कहा,
सभी मनोकामनाएं हमारी पूर्ण हो गयीं,
पर मन में है एक बड़ी लालसा ।

सहज भी है उसका पूरा होना,
और कठिन भी, सो कहते नही बनता,
आपके लिये सहज, पर मुझे कठिन,
जब देखता हूँ मैं अपनी कृपणता ।

कल्पवृक्ष पाकर भी जैसे कोई दरिद्र,
करता है संकोच और अधिक मांगने में,
क्योंकि जानता नही वह उसका प्रभाव,
वैसे ही संशय हो रहा मेरे हृदय में ।

आप अन्तर्यामी जानते है मेरा मनोरथ,
हे स्वामी ! कृपा कर कीजिये पूरा उसे,
भगवन् बोले, संकोच छोड़ मांगों जो चाहो,
जो मांगोगे पूरा करूंगा मैं उसे ।

राजा ने कहा, हे कृपानिधान ! हे नाथ !
कहता हूँ मैं अपने मन का सच्चा भाव,
मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ,
प्रभु से भला कैसा और क्या छिपाव ।

उनकी प्रीति देख और अमूल्य वचन सुनकर,
भगवन् बोले, ऐसा ही हो, हे राजन !
पर मैं अपने समान कहाँ खोजूं जाकर,
स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनूंगा, इस कारण ।

फिर रानी को हाथ जोड़े देख वे बोले,
तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर मांग लो,
शतरूपा ने कहा, चतुर राजा ने जो मांगा,
बहुत ही प्रिय लगा वह वर मुझको ।

परतुं बहुत ढ़िठाई हो रही है, हे प्रभु !
यद्यपि भक्तों के लिये आपको अच्छी लगती,
ब्रह्मा आदि के भी पिता हैं आप,
परमब्रह्म, जानने वाले सबके हृदय की ।

संदेह होता है, ऐसा समझने पर मन में,
फिर भी आपने जो कहा, है वही प्रमाण,
जो दिव्य सुख पाते आपके निज जन,
उनके हृदय में बसता जो प्रेम और ज्ञान ।

हे प्रभो ! वही भक्ति और रहन-सहन दीजिये,
कृपा कीजिये हम पर अपना निज-दास जान,
भगवन् बोले, जो मांगा सब दिया तुम्हें,
हे माता ! कभी भूलेगा न, आपका यह ज्ञान ।

तब मनुजी ने कहा, एक और विनती हैं,
आपके लिये पिता की सी प्रीति हो मेरी,
महामूर्ख चाहे कहें लोग, पर आप बिन,
मणिहीन सांप, जलविहीन मछली सी गति हो मेरी ।

उन जैसे ही आपके अधीन रहूं मैं,
एक पल भी आपके बिना पाऊं ना जीने,
यह वर मांग, चरण पकड़ रह गये मनुजी,
तब ऐसा ही हो, कहा दयानिधान प्रभु ने ।

फिर कहा कुछ समय अमरावती के सुख भोग,
उसके बाद जब तुम होगे राजा अवध के,
तब तुम्हारे पुत्र रूप में प्रकट होऊंगा मैं,
अंशो सहित इच्छानिर्मित मनुष्य रूप धर के ।

भक्तों को सुख देने वाली लीलाएं करूंगा,
भवसागर से तर जायेंगे सुन लोग जिसे,
अवतार लेगी आदिशक्ति यह मेरी माया भी,
उत्पन्न हुआ है यह सम्पूर्ण जगत जिनसे ।

इस प्रकार पूरी करूंगा तुम्हारी अभिलाषा,
सत्य, सत्य, सत्य है, मेरा प्रण,
बार-बार ऐसा कहकर उनसे तब,
अन्तर्धान हो गये कृपा के धाम भगवन् ।

फिर कुछ समय आश्रम में रहकर,
सहज शरीर त्याग, अमरावती गये दोनों,
यह पवित्र इतिहास शिवजी ने कहा था,
अब श्रीराम अवतार का दूसरा कारण सुनो ।

मासपारायण, पांचवां विश्राम

सुनो वह पवित्र और प्राचीन कथा,
कैकय देश में राजा सत्यकेतु रहता था,
अति श्रेष्ठ, प्रतापी, तेजस्वी था वह,
उसके बड़े पुत्र का नाम प्रतापभानु था ।

अरिमर्दन था उनके दूसरे पुत्र का नाम,
अपार बलशाली और युद्ध में अटल,
सच्ची प्रीति और मेल था दोनों में,
ना कोई दोष, ना कोई छल ।

अपने ज्येष्ठ पुत्र को देकर राज्य,
वनगमन किया भजन हेतु राजा ने,
वेद में बतायी उत्तम रीति से,
प्रजा का पालन किया राजा प्रतापभानु ने ।

शुक्राचार्य सा धर्मरूचि नामक मन्त्री था उसका,
चतुरङ्गिणी सेना जिसमें असंख्य योद्धा थे,
सातों द्वीपों को जीत, राजाओं से दण्ड ले,
अपने राज्य में पुन: प्रवेश किया राजा ने ।

सब तरह से सुखी प्रजा थी उसकी,
राजा सदा सत्कार्यों में लगा रहता था,
मन, वचन, कर्म से धर्म करता था जो,
सब भगवद् अपर्ण करके करता था ।

एक बार अच्छे घोड़े पर सवार हो,
विन्ध्याचल गया वह शिकार करने को,
वहां वन में एक ऐसा सूअर देखा,
मानों चन्द्रमा को ग्रस राहू आ छिपा हो ।

समाता नही मुख में बड़ा होने के कारण,
और क्रोधवश वह भी उसे नही उगलता,
यह तो उसके दांतों की शोभा थी,
उसका तन भी था बड़ा विशाल और तगड़ा ।

नील पर्वत के शिखर के समान,
उस विशाल शरीरवाले सूअर को देख,
राजा चला तेजी से घोड़े पर,
सोचता हुआ कि मुझसे बचकर देख ।

भाग चला पवन वेग से सूअर,
बाण चढ़ा देख, धरती में जा दुबका,
चलाये राजा ने तक-तक कर तीर,
पर सूअर किसी तरह बच निकला ।

चला गया गहन जंगल में सूअर,
पर राजा ने उसका पीछा न छोड़ा,
जा छिपा एक गहरी गुफा में सूअर,
तब पछताकर राजा ने उसको छोड़ा ।

घोड़े समेत भूख-प्यास से व्याकुल राजा,
पानी की खोज में बेहाल हो गया,
कुछ देर बाद दिखा उसे एक आश्रम,
पानी पीने राजा आश्रम में गया ।

उस आश्रम में एक राजा रहता था,
कपट से मुनि का वेष बनाये,
भागा था हार राजा प्रतापभानु से,
सेना को छोड़ अपनी जान बचाये ।

प्रतापभानु के अच्छे दिन, अपना कुसमय जान,
उसके मन में हुई बड़ी भारी ग्लानि,
सो ना ता वह घर गया अपने,
ना सन्धि की उसने, था अभिमानी ।

दरिद्र की भांति मन ही में क्रोध दबा,
वह राजा रहता था तपस्वी के वेष में,
भाग्यवश प्रतापभानु उसी आश्रम में गया,
वह प्रतापभानु है पहचान लिया तुरंत उसने ।

राजा प्रतापभानु उसे पहचान न सका,
महामुनि समझ प्रणाम किया राजा ने उसे,
परंतु बड़ा चतुर होने के कारण,
अपना नाम नही बतलाया राजा ने उसे ।

दिखलाया सरोवर उसने राजा को,
राजा ने घोड़े सहित स्नान-जलपान किया,
फिर जब मिट गयी उनकी थकावट,
तपस्वी उन्हें अपने आश्रम ले गया ।

कहा, चक्रवर्ती से तुम्हारे लक्षण देखकर,
तुम पर बड़ी दया आती है मुझे,
राजा ने कहा मैं प्रतापभानु का मंत्री हूँ,
आपके चरणों के दर्शन, भाग्य से मिले मुझे ।

तपस्वी ने मीठी-मीठी बातें बनाकर,
प्रतापभानु को रोक लिया रात आश्रम में,
तुलसीदास कहते है, जैसी होनहार होनी होती,
वैसे ही संयोग मिल जाते उसमें ।

उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर प्रतापभानु,
घोड़े को बांध रूक गया आश्रम में,
फिर मुनि की सराहना और वन्दना कर,
उनका नाम और धाम पूछा राजा ने ।

राजा शुद्ध हृदय, मुनि कपटी था,
ऊपर से बैरी, क्षत्रिय जाति का,
भीतर ही भीतर सुलग रहा था वह,
अपना बैर याद कर मन में हर्षित था ।

कपट में डुबोकर, बड़ी युक्ति के साथ,
बड़ी कोमल वाणी में कहा राजा से,
अब हमारा नाम है बस भिखारी,
क्योंकि खाली हैं घर और धन से ।

राजा ने कहा आप से ज्ञानवान,
छिपाये रहते हैं सदा अपनी पहचान,
क्योंकि अमानी रहने में ही कल्याण है,
ऐसे ही लोगों को पसन्द करते भगवान ।

आप सरीखे निर्धन और गृहहीनों को देख,
संदेह हो जाता ब्रह्मा और शिव को,
लेकिन आप जो हों सो हों, हे स्वामी !
नमस्कार करता हूँ मैं आपके चरणों को ।

राजा की प्रीत और विश्वास देख,
उसने कहा, यहा हूँ बहुत समय से,
अब तक न तो कोई मुझसे मिला,
ना किसी को कहा मैने अपने से ।

कहा, लोक में प्रतिष्ठा है अग्नि सी,
जो भस्म कर देती तप रूपी वन को,
तुलसीदास कहते हैं, मूढ़ को ही नही,
सुन्दर वेष भरमा देता है सब को ।

कहा उस मुनि ने, श्रीहरि को छोड़,
प्रयोजन नही मेरा, किसी से कुछ भी,
तुम्हारी प्रीति और विश्वास देखकर,
छिपाता नही मैं तुमसे कुछ भी ।

उदासीनता भरी उसकी बातों को सुनकर,
बढ़ रहा था विश्वास राजा का उसमें,
जब उसे राजा को वश में देखा,
हमारा नाम एकतनु है, कहा उसने ।

तब सिर नवाकर राजा ने कहा,
सेवक जान, समझाइये अर्थ नाम का,
मुनि ने कहा, सृष्टि के साथ ही,
जन्म हुआ था मेरा पहला-पहला ।

तब से दूसरी देह करी न धारण,
इसलिये एकतनु है हमारा नाम,
तप से कुछ भी नही दुर्लभ,
सो इसमें अचरज का क्या काम ।

तप से ही ब्रह्मा रचते जग को,
उसका पालन करते विष्णु तप से,
तप से ही रूद्र संहारते जग को,
ऐसा क्या जो मिले ना तप से ।

सुन-सुनकर कपट-मुनि की बातें,
बड़ा अनुराग हुआ राजा के मन में,
करने लगा वैराग्य और ज्ञान का निरूपण,
राजा हो गया तपस्वी के वश में ।

तब राजा ने अपना असली नाम बतलाया,
मुनि ने कहा, तुमने ठीक ही किया,
चतुर राजा यूँ ही अपना परिचय नही देते,
मुझे अच्छा लगा, तुमने जो कपट किया ।

हे राजन ! तुम्हारा नाम प्रतापभानु है,
और महाराज सत्यकेतु थे तुम्हारे पिता,
सब जानता हूँ मैं गुरू की कृपा से,
पर अपनी हानि समझ कुछ नही कहता ।

तुम्हारी सरलता, प्रेम और विश्वास देख,
उत्पन्न हो गयी ममता मेरे मन में,
जो तुम्हारे मन भावे वही मांग लो,
कुछ भी संदेह न लाना मन में ।

सुन्दर वचन सुन राजा हर्षित हो गया,
और उसके पैर पकड़ की विनती उसने,
कहा, आपके दर्शन से सब सिद्ध हो गया,
फिर भी उसे प्रसन्न देख वर मांगा उसने ।

कहा, एक दुर्लभ वर मांगकर आपसे,
सर्वथा शोकरहित होना चाहता हूँ मैं,
मुझे बुढ़ापा, दुख और मृत्यु न आये,
और युद्ध में सदा जीतना चाहता हूँ मैं ।

तपस्वी ने कहा, ऐसा ही हो, हे राजन !,
एक कठिन बात है, उसे भी सुन लो,
तप के बल से ब्राह्मण बलवान रहते हैं,
कभी रूष्ट न करना तुम बस उनको ।

बड़ा प्रसन्न हुआ राजा यह सुनकर,
कहा, हे स्वामी, अब मेरा नाश न होगा,
हे कृपानिधान प्रभु ! अब आपकी कृपा से,
सब तरह से मेरा कल्याण ही होगा ।

‘एवमस्तु’ कहकर वह कपटी मुनि बोला,
तुम हमारा यह संवाद कहीं न कहना,
कहने से नाश तुम्हारा हो जायेगा,
हे राजन ! मेरा यह वचन सत्य जानना ।

इस बात के प्रकट होने से,
या फिर ब्राह्मणों के रूष्ट होने से,
बस इन दोनों से बच के रहना,
होगा ना कुछ, किसी और तरह से ।

ब्राह्मण और गुरू के क्रोध से,
राजा ने कहा, कहिये कौन बचा सकता,
गुरू बचा लेता, ब्रह्मा के क्रोध से,
गुरू के क्रोध से कौन बचा सकता ।

यदि मैं आपके कथनानुसार ना चलूंगा,
तो भले ही मेरा नाश हो जाय,
पर ब्राह्मणों का शाप होता है भयानक,
हे नाथ ! उससे बचने का बतलायें उपाय ।

तपस्वी ने कहा, उपाय तो हैं बहुत से,
कष्टसाध्य, फिर भी सिद्ध हो न हो,
हां एक युक्ति तो मेरे हाथ है,
पर मेरा तुम्हारे नगर जाना कैसे हो ।

जब से पैदा हुआ, मैं तब से,
किसी के घर या गांव न गया,
न जाने से तुम्हारा काम बिगड़ता है,
बड़ा असमजंस मेरे सामने आ गया ।

यह सुनकर राजा कोमल वाणी से बोला,
हे नाथ ! ऐसी नीति कही है वेदों में,
बड़े सदा छोटों से स्नेह करते आये,
ऐसा कह उसके चरण पकड़ लिये राजा ने ।

राजा को अपने अधीन जानकर तब,
कपट मुनि ने कहा, तुम मेरे भक्त हो,
पर योग, युक्ति, तप और मन्त्र फलीभूत होते,
जब सब से छिपाकर किये गये हो ।

हे नरपति ! यिद मैं रसोई बनाऊं,
और तुम उसे अपने हाथों से परोसो,
तो जो-जो उस अन्न को खायेगा,
तुम्हारा आज्ञाकारी बन जायेगा सो-सो ।

यही नही, उन भोजन करने वालों के घर,
जो कोई भी भोजन ग्रहण करेगा,
हे राजन ! सुनो इस युक्ति से,
वह व्यक्ति भी तुम्हारे अधीन रहेगा ।

हे राजन ! जाकर यही उपाय करो,
और वर्ष भर का संकल्प कर लेना,
मैं प्रतिदिन भोजन बना दिया करूंगा,
तुम रोज एक लाख ब्राह्मण बुला लेना ।

इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रम से,
सब ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जायेंगे,
और उनके हवन, सेवा, पूजा करने से,
देवता भी सहज ही वश में हो जायेंगे ।

एक और पहचान बता देता दूँ तुम्हें,
मैं इस रूप में कभी न आऊंगा,
हे राजन ! अपनी माया के बल से,
मैं तुम्हारे पुरोहित को हर ले जाऊंगा ।

तप के बल से अपना सा बनाकर,
उसे यहां एक वर्ष तक रखूंगा,
और मैं अपना रूप बनाकर उस सा,
सब काम तुम्हारे सब तरह सिद्ध करूंगा ।

हे राजन ! बहुत बीत गयी है रात,
सो, सो जाओ अब तुम जाकर,
तप के बल से घोड़े सहित तुमको,
मैं सोते ही में पहुँचा दूंगा घर ।

आज से तीसरे दिन अब भेंट होगी,
वेष धरकर आऊंगा मैं पुरोहित का,
पहचान लेना तब तुम मुझे जब,
एकान्त में बुलाकर सुनाऊं यह कथा ।

उसकी आज्ञा मान शयन किया राजा ने,
और खूब गहरी नींद में वो सो गया,
पर कपटी मुनि को हो रही थी चिन्ता,
कि तभी कालकेतु राक्षस वहां आ गया ।

यह वही राक्षस था जिसने,
सूअर बनकर भटकाया था राजा को,
वह बड़ा मित्र था उस तपस्वी का,
और छल-प्रपंच में चतुर था वो ।

सौ पुत्र और दस भाई थे उसके,
जो बड़े दुष्ट, बलवान और दुखदायी थे,
ब्राह्मणों, संतों और देवताओं को दुखी देख,
राजा ने पहले ही मार डाला था उन्हें ।

पिछला वैर याद करके उस दुष्ट ने,
कपटी मुनि से मिलकर किया विचार,
और जिस प्रकार शत्रु का नाश हो,
करने लगा उस योजना पर विचार ।

कुछ समझ सका ना राजा प्रतापभानु,
भावीवश फंसा वह कपटी के जाल में,
तेजस्वी शत्रु चाहे अकेला भी हो,
कभी लेना नही चाहिये उसे हल्के में ।

जिस राहू का सिर मात्र बचा था,
आज तक सूर्य-चन्द्रमा को वो दुख देता,
उसी प्रकार मौका पाकर दुष्ट भी,
उस मौके को यूँ ही गवां नही देता ।

कपटी मुनि ने सब कथा सुनायी,
तब प्रसन्न हो वह राक्षस बोला उससे,
जब तुमने इतना काम कर ही लिया,
बहुत बड़ी बात हुई, मेरी समझ से ।

समझ लो शत्रु को मैने काबू कर लिया,
बिना दवा, रोग दूर कर दिया विधाता ने,
कुल सहित शत्रु को उखाड़-बहा कर,
चौथे दिन लौट आऊंगा, कहा उसने ।

फिर घोड़े सहित राजा प्रतापभानु को,
क्षणभर में घर पहुँचा दिया उसने,
राजा को सुला, घोड़े को बांधकर,
राजा के पुरोहित का उठा लिया उसने ।

माया से उसकी बुद्धि भ्रमित कर,
पहाड़ी की खो में उसे ला रखा,
और स्वयं बना पुरोहित का रूप,
उसकी सुन्दर सेज पर जा लेटा ।

भोर से पहले ही जागकर राजा ने,
अपना घर देख बड़ा आश्चर्य माना,
फिर घोड़े पर बैठ चल दिया वन को,
किसी ने भी यह राज न जाना ।

दो पहर बीत जाने पर लौटा राजा,
उत्सव और बधावा बजने लगा घर-घर,
जब राजा ने पुरोहित को देखा तब,
आश्चर्यचकित हुआ, उसी कार्य का स्मरण कर ।

तीन दिन लगे तीन युगों से उसको,
तब निश्चित समय पुरोहित बना राक्षस आया,
राजा के साथ की गुप्त सलाह अनुसार,
उसे अपना विचार सब समझाकर बतलाया ।

उस रूप में तपस्वी-मुनि को देख,
बड़ी प्रसन्नता हुई राजा प्रतापभानु को,
भ्रमवश राक्षस को वह पहचान न पाया,
बुलवाया कुटुम्ब सहित एक लाख विप्रों को ।

छः रस और चार प्रकार के भोजन,
वेदों में वर्णनानुसार बनाये पुरोहित ने,
मायामयी रसोई में इनते व्यंजन बनाये,
कि आ न सकें किसी की गिनती में ।

अनेक प्रकार के पशुओं का मांस पकाया,
और ब्राह्मणों का मांस मिला दिया उनमें,
फिर सब ब्राह्मणों को भोजन हेतु बलाकर,
भोजन को परोसना शुरू किया राजा ने ।

ज्यों ही भोजन परोसने लगा राजा,
कालकेतुकृत आकाशवाणी हुई, हे ब्राह्मणों !
इस भोजन में ब्राह्मणों का मांस मिला है,
उठ-उठकर अपने घर जाओ, हे ब्राह्मणों ।

आकाशवाणी की बात को सच मानकर,
सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए भोजन से,
व्याकुल राजा मोहवश कुछ कह न सका,
कुछ भी न निकला उसके मुख से ।

इस तरह राजा को चुप देख,
सब ब्राह्मण हो उठे बहुत क्रोधित,
कुछ भी विचार किये बिना बोले,
हे मूर्ख, तू जाकर राक्षस हो परिवारसहित ।

तूने तो परिवारसहित हमें बुलाकर,
चाहा था ब्राह्मणों को नष्ट करना,
ईश्वर ने तो रक्षा करी हमारी,
पर तय है तेरा समूल नष्ट होना ।

एक वर्ष के भीतर तेरा नाश हो जाय,
कुल में न रहेगा कोई पानी देने वाला,
ब्राह्मणों का शाप सुन व्याकुल हो उठा राजा,
वहां कोई न था उसे सांत्वना देने वाला ।

तभी सुन्दर आकाशवाणी हुई, हे ब्राह्मणों,
यह शाप दिया नही विचारकर तुमने,
राजा ने किया ना कुछ अपराध,
चकित कर दिया सबको इस वाणी ने ।

तब राजा जहां भोजन बना था गया,
ना भोजन, ना ही रसोइया था, वहां पर,
आकर सुनाया सब वृतान्त ब्राह्मणों को,
और भयभीत हो गिर पड़ा पृथ्वी पर ।

वे बोले यद्यपि तुम निर्दोष हो,
तो भी जो होनहार है, नही मिटता,
ब्राह्मणों का शाप होता है भयानक,
किसी भी तरह टाले नही टलता ।

ऐसा कह चले गये सब ब्राह्मण,
नगरवासी दोष देने लगे विधाता को,
हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया,
राक्षस बना दिया ऐसे पुण्यात्मा राजा को ।

उधर पुरोहित को उसके घर पहुंचाकर,
कपटी मुनि को खबर दी कालकेतु ने,
उसके कहने पर बैरी राजा चढ़ दौड़े,
डंका बजाकर घेर लिया नगर उन्होंने ।

नित्यप्रति होने लगी अनेक प्रकार से लड़ाई,
सब योद्धा जूझ कर मरे रण में,
प्रतापभानु भी भाई सहित खेत रहा,
कोई न बचा सत्यकेतु के कुल में ।

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं, हे भरद्वाज ! सुनो,
विधाता होते हैं जब जिसके विपरीत,
धूल सुमेरूपर्वत सी, पिता यम सा,
और रस्सी सर्प सी होती है प्रतीत ।

हे भरद्वाज मुनि ! सुनो, वही राजा,
समय पाकर राक्षस हुआ रावण नाम से,
दस सिर और बीस भुजाएं थीं उसकी,
अपने बल पर बड़ा भरोसा था उसे ।

अरिमर्दन नाम का जो छोटा भाई था,
वह बल का धाम कुम्भकर्ण हुआ,
धर्मरूचि नाम का जो मन्त्री था उसका,
वह रावण का छोटा सौतेला भाई हुआ ।

विभीषण नाम था उसका उस जन्म में,
ज्ञान का भण्डार और विष्णुभक्त था वो,
और जो राजा के पुत्र और सेवक थे,
हुए राक्षस अति भयानक सब वो ।

दुष्ट, निर्दयी, हिंसक, पापी और कुटिल,
अनेकों जाति के, मनमाना रूप धरणे वाले,
यद्यपि पुलस्त्य ऋषि के पवित्र कुल में जन्में,
पर शापवश हुए दुनिया को दुख देने वाले ।

बड़ी कठिन तपस्या की तीनों भाइयों ने,
तो ब्रह्माजी ने उन्हें वर मांगने को कहा,
वानर और मनुष्य इन दो को छोड़कर,
किसी के मारे न मरूं, रावण ने कहा ।

शिवजी कहते हैं मैने और ब्रह्मा ने,
मिलकर उसे वर दिया, ऐसा ही हो,
फिर ब्रह्माजी गये कुम्भकर्ण के पास,
उसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ उनको ।

जो नित्य आहार करेगा यह दुष्ट,
तो उजाड़ हो जायेगा यह सारा संसार,
सो उसकी बुद्धि फेरने को प्रेरित किया,
सरस्वती को, ब्रह्माजी ने कर ऐसा विचार ।

इसलिये जब ब्रह्माजी ने पूछा उससे,
तो छः महीने की नींद मांगी उसने,
और जब विभीषण के पास गये वो,
प्रभु चरणों में अनन्य प्रेम मांगा उसने ।

जब उन्हें कृतार्थ कर लौट गये ब्रह्माजी,
वे तीनों भी चले गये घर अपने,
स्त्री-रत्न, परम सुन्दरी अपनी कन्या,
मन्दोदरी को रावण को दिया मय ने ।

जान लिया था यह मय ने,
कि रावण राक्षसों को राजा होगा,
अच्छी स्त्री पा प्रसन्न हुआ रावण,
फिर उसने विवाह किया भाइयों का ।

समुद्र के बीच त्रिकुट नामक पर्वत पर,
ब्रह्मा का बनाया एक भारी किला था,
मणिजड़ित अनगिनत स्वर्ण-महल थे उसमें,
जिन्हे मय ने फिर से सजा दिया था ।

नागों की पाताल लोक में भोगावती पुरी,
और स्वर्गलोक में इन्द्र की अमरावती पुरी,
उनसे भी अधिक सुन्दर और बांका दुर्ग,
प्रसिद्ध हुई ‘लंका’, वह रावण की पुरी ।

चारो ओर से गहरे समुद्र से घिरी,
मणियों से जड़ा सोने का परकोटा उसका,
होता जिस कल्प में जो राक्षस-राज रावण,
सेना सहित उस पुरी में बसना होता उसका ।

पहले रहते थे राक्षस वीर वहां,
देवताओं ने मार डाला युद्ध में जिनको,
जब रावण को यह खबर मिली,
सेना सजाकर जा घेरा किले को ।

एक करोड़ कुबेर के यक्ष लोग,
इन्द्र की प्रेरणा से जो रहते थे,
उस विकट योद्धा और उसकी सेना देख,
भाग गये अपने प्राण बचा कर वे ।

सारा नगर देखा घूम-फिरकर रावण ने,
बहुत प्रसन्न हुआ, उसे भायी वह नगरी,
स्वाभाविक ही सुन्दर और दुर्गम जान,
अपनी राजधानी बनायी उसने वह नगरी ।

योग्यता के अनुसार घरों को बांटकर,
सब राक्षसों को बसाया लंका में उसने,
फिर एक बार कुबेर पर चढ़ दौड़ा,
और पुष्पक विमान जीत लाया रण में ।

फिर एक बार खिलवाड़ ही में उसने,
उठा लिया पवित्र कैलास पर्वत को,
मानो अपनी भुजाओं का बल तौलकर,
चला आया, बहुत सुख पाकर वो ।

सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक,
जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई,
उसके नित्य नये बढ़ते जाते थे,
जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ की ऊंचाई ।

कुम्भकर्ण सा अत्यन्त बलवान भाई था उसका,
पैदा नही हुआ जिसके जोड़ का योद्धा,
सोता था छ: महीने वो मदिरा पीकर,
जगते ही मच जाता तीनों लोकों में तहलका।

रावण का बड़ा पुत्र था मेघनाद,
जिसका नम्बर योद्धाओं में पहला था,
मची रहती थी नित्य स्वर्ग में भगदड़,
कोई उसके आगे नही टिक सकता था ।

दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु, अतिकाय,
अकेले ही सारा जग जीत सकते थे,
जानते थे वे सब आसुरी माया,
और मनमाना रूप बना सकते थे ।

एक बार सभा में बैठे रावण ने,
अपने अगणित परिवार को देखा,
अनेक पुत्र-पौत्र, कुटुम्बी और सेवक,
समस्त राक्षस कौन गिन सकता था ।

अपनी असंख्य और बलशाली सेना देख,
क्रोध और गर्व से बोला अभिमानी रावण,
हे राक्षसो ! सुनो, देवता हमारे शत्रु हैं,
बलवान शत्रु देख, कर जाते हैं पलायन ।

ब्राह्मणभोज, यज्ञ, हवन और श्राद्ध,
जाकर इन सब में तुम डालो बाधा,
ये ही सब बढ़ाते हैं उनका बल,
बलहीन हो सहज ही हार जायेंगे देवता ।

तब या तो मार डालूंगा मैं उनको,
या छोड़ दूंगा उन्हें अपने अधीन कर,
फिर मेघनाद को बुलवाकर उकसाया उसे,
बंदी बना ले उन्हें रण में हरा कर ।

पिता की आज्ञा मान चल दिया मेघनाद,
रावण भी चल दिया साथ गदा लेकर,
डगमगाने लगी पृथ्वी रावण के चलने से,
देवरमणियों के गर्भ गिरने लगे डर कर ।

देवता छिप गये सुमेरू पर्वत में जाकर,
दिक्पाल भी अपने लोक छोड़ कर भागे,
ललकारता फिर रहा था रावण सर्वत्र,
कोई टिक न पा रहा था उसके आगे ।

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरूण, कुबेर,
अग्नि, काल और यम आदि अधिकारी,
किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग,
सब पर रावण पड़ रहा था भारी ।

करते थे सब उसकी आज्ञा का पालन,
आकर सिर नवाते थे उसके चरणों में,
सारा विश्व अपने वश में कर लिया,
और अनेक कन्याओं से विवाह किया उसने ।

उधर पिता की आज्ञा पालन में,
मेघनाद ने भी कुछ देर न लगायी,
और अन्य राक्षस योद्धाओं ने भी,
गौ और ब्राह्मणों को बहुत चोट पहुंचायी ।

बन्द हो गये यज्ञ और हवन आदि,
देवता, ब्राह्मण और गुरू अमान्य हो गये,
न हरिभक्ति, न यज्ञ, तप और ज्ञान,
वेद और पुराण सुनने बन्द हो गये ।

जप, तप योग, वैराग्य और यज्ञ,
रावण स्वयं जा विध्वंस कर डालता,
मिट गया धर्म-कर्म का नाम,
अत्याचार राक्षसों का बढ़ता ही जाता ।

मासपारायण, छठा विश्राम

बढ़ गये बहुत लपंट, चोर और जुआरी,
माता, पिता और साधुओं से सेवा करवाने वाले,
शिवजी कहते हैं, उन सबको राक्षस ही समझना,
हे पार्वती ! जो हैं ऐसे आचरण करने वाले ।

धर्म के प्रति अतिशय ग्लानि देखकर,
पृथ्वी भयभीत और व्याकुल हो गयी,
पर्वत, नदियां और समुद्र भारी नही लगते,
जितना परद्रोही के भार से वह दब गयी ।

बोल नही सकती कुछ रावण के भय से,
पर सारे धर्मो को देखा विपरीत पृथ्वी ने,
तब गौ बनकर गयी देवताओं के पास,
पर मददगार पाया न किसी को उसने ।

तब देवता, मुनि और गन्धर्व सब,
मिलकर गये ब्रह्माजी के लोक को,
पृथ्वी भी साथ थी गौ के रूप में,
उन्हें देख सब ज्ञात हो गया उनको ।

तब मन में अनुमान किया यह उन्होनें,
इसमें मेरा कुछ वश नही चलने का,
कहा उन्होनें, हे पृथ्वी ! धीरज धारण कर,
और स्मरण करो श्रीहरि के चरणों का ।

जानते हैं प्रभु अपने दासों की पीड़ा,
वे ही सब विपत्तियों का नाश करेंगे,
करने लगे विचार वे सब मिलकर,
कहाँ पर प्रभु को वे पा सकेंगे ।

कोई कह रहा बैकुण्ठपुरी जाने को,
कोई उन्हें क्षीरसागर का निवासी बतलाता,
जिसके हृदय में जैसी प्रीति और भक्ति,
प्रभु को वह वैसा ही पाता ।

हे पार्वती ! मैं भी था उस समाज में,
अवसर पाकर मैने भी एक बात कही,
प्रभु सर्वव्यापक हैं, प्रेम से प्रकटते,
ऐसी कौन सी जगह हैं, जहां वे नही ।

समस्त चराचर में व्याप्त हैं फिर भी,
सबसे रहित हैं और हैं सबसे विरक्त,
अग्नि की तरह सर्वत्र व्याप्त हो कर भी,
प्रभु तो बस होते प्रेम से प्रकट ।

प्रिय लगी मेरी बात सभी को,
ब्रह्माजी ने साधु-साधु कह करी बड़ाई,
प्रेमाश्रु बहने लगे नेत्रों से उनके,
मन में उनके भक्ति उमड़ आई ।

जय हो ! जय हो ! हे शरणागत वत्सल ।
सबके स्वामी, भक्तों को सुख देने वाले,
हे गौ, ब्राह्मणों और देवताओं के रक्षक,
आप ही हैं असुरों का नाश करने वाले ।

अद्भुत हैं आपकी लीलाएं और करनी,
भेद कोई नही जानता उनका,
स्वभाव से ही कृपालु और दीनदयालु हैं जो,
वे ही भगवन् हम पर करें कृपा ।

हे अविनाशी ! सब घट वासी,
हे सर्वव्यापक ! अजेय, इन्द्रियों से परे,
हे परम आनन्दस्वरूप, पवित्र चरित्र,
विरक्त और ज्ञानी जिनका ध्यान धरें ।

जय हो, जय हो, जय हो आपकी,
हे सच्चिदानन्द ! हे प्रभु, जय हो,
सृष्टि के रचेता, कारणों के कारण,
हे पतित पावन ! हमारी सुधि लो ।

न भक्ति जानते हम, ना ही पूजा,
सब तरह से हैं हम शरण आपकी,
भय से अत्यन्त व्याकुल हो सब देवता,
विनती करते हैं आपकी दया की ।

भयभीत जान, और उनकी प्रार्थना सुनकर,
गम्भीर आकाशवाणी हुई, डरो मत,
तुम्हारे लिये मैं मनुष्य रूप धरूंगा,
और सूर्यवंश में हूंगा अंशोसहित प्रकट ।

अदिति और कश्यप ने किया तप भारी,
दे चुका हूँ मैं उनको पहले ही वर,
वे ही दशरथ और कौशल्या के रूप में,
प्रकटे हैं अयोध्या में राजा बन कर ।

उन्हीं के घर जाकर मैं रघुकुल में,
श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूंगा,
सत्य करूंगा मैं नारद के वचन,
अपनी पराशक्ति के सहित अवतार लूंगा ।

तुम निर्भय हो जाओ, हे देववृन्द !
हर लूंगा मैं सब भार पृथ्वी का,
लौट गये देवता वह वाणी सुनकर,
पृथ्वी के जी में भी आ गया भरोसा ।

तब देवताओं को भी समझाया उन्होनें,
कि धर लो तुम शरीर वानरों का,
चले गये ब्रह्माजी अपने लोक को,
कहकर कि सेवन करो भगवद् चरणों का ।

चले गये देवता अपने-अपने लोक को,
पृथ्वी सहित सबके मन को शान्ति मिली,
ब्रह्माजी की आज्ञा सुन प्रसन्न हुए देवता,
और तदानुसार करने में देरी ना की ।

वानर देह धारण की पृथ्वी पर उन्होनें,
अपार बल और प्रताप था उनमें,
वे धीर बुद्धिवाले और शूरवीर थे,
प्रभु आने की राह लगे वो तकने ।

पर्वत, वृक्ष और नख ही थे,
अस्त्र-शस्त्र उन वानर वीरों के,
अपनी-अपनी सुन्दर सेना वे बनाकर,
रहने लगे बीच पर्वतों और जंगलों के ।

अब वह चरित्र सुनो जिसे,
बीच में ही छोड़ दिया था मैने,
अवध में दशरथ राजा हुए,
विख्यात है जिनका नाम वेदों में ।

धर्मधुरन्धर, गुणनिधि और ज्ञानी थे वे,
शार्गंधनुषधारी भगवान की भक्ति हृदय में,
कौशल्या आदि पुनीत आचरण वाली रानियां,
दृढ़ प्रेम था जिनका श्रीहरि चरणों में ।

एक बार राजा के मन आया,
कि मैने कोई पुत्र नही पाया,
तुरंत ही गुरू के घर जाकर,
उनको सब सुख-दुख कह सुनाया ।

गुरू वशिष्ठजी ने समझाया उन्हें,
कहा, धीरज धरो, तुम्हें चार पुत्र होंगे,
तीनों लोकों में होंगे वे प्रसिद्ध,
और भक्तों का भय हरने वाले होंगे ।

फिर श्रृगीं ऋषि को बुला उन्होनें,
उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया,
मुनि के भक्तिसहित आहुतियां देने पर,
अग्निदेव का चरू लिये हुए दर्शन पाया ।

फिर अग्निदेव राजा दशरथ से बोले,
सिद्ध हो गया सब काम तुम्हारा,
अब तुम जाकर इस हविष्यान्न को,
जिसको जैसा उचित हो, करो बंटवारा ।

सभा को समझा अन्तर्धान हो गये अग्निदेव,
तब राजा ने बुलवाया अपनी प्यारी पत्नियों को,
पायस का आधा भाग कौसल्या को दिया,
और दो भागों में बाटां शेष आधे को ।

उस आधे का एक भाग कैकेयी को दिया,
फिर दो भाग हुए, शेष बच रहा उसके,
कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रख,
किया उन भागों को सुमित्रा के हवाले ।

इस प्रकार गर्भवती हुईं सब रानियां,
बड़ी सुखी व हर्षित हुईं वे हृदय में,
जबसे श्रीहरि लीला से ही गर्भ में आये,
सुख-सम्पत्ति छा गयी सब लोकों में ।

शोभा, शील और तेज की खान बनी,
सब रानियां सुशोभित हुईं महल में,
कुछ समय बाद वह अवसर आ गया,
प्रभु को प्रकट होना था जिसमें ।

योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथी,
हो गये सब के सब अनुकूल,
सभी चराचर भर गये हर्ष से,
क्योंकि श्रीराम जन्म है सुख का मूल ।

नवमी तिथी, पवित्र चैत्र का महीना,
शुक्ल पक्ष और अभिजित मुहुर्त था,
न बहुत सरदी थी, न गरमी थी,
सबको शान्ति देनेवाला पवित्र समय था ।

शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा बह रही थी,
वन-पर्वत सब जगमगा रहे थे,
बहा रही थीं, नदियां अमृत की धारा,
संतों के मन और देवता हर्षित थे ।

प्रभु के प्रकटने का समय जब जाना,
अपने-अपने विमान सजाकर देवता चले,
भर गया आकाश देवताओं के समूहों से,
गन्धर्वदल प्रभु के गुणगान करने लगे ।

बरसाने लगे पुष्प अंजलियों में सजाकर,
आकाश में धमाधम नगाड़े बजने लगे,
स्तुति करने लगे नाग, मुनि और देवता,
अपनी-अपनी सेवा वे भेंट करने लगे ।

देवताओं के समूह विनती करके,
जा पहुंचे अपने-अपने लोक में,
समस्त लोकों को देनेवाले शान्ति,
जगदाधार प्रभु प्रकट हुए अवध में ।

प्रकटे दीन-दयालु, कृपालु प्रभु,
मन को हरनेवाला, अद्भुत रूप धरे,
भर गयी माता कौशल्या हर्ष से,
नेत्रों से उनके प्रेमाश्रु झरे ।

मेघ के समान श्याम शरीर था उनका,
चारों भुजाओं में दिव्य आयुध धारण किये,
विशाल नेत्र, दिव्य आभूषण और वनमाला,
यूँ शोभासिंघु खरारी प्रभु प्रकट हुए ।

दोनों हाथ जोड़ कहने लगी माता,
हे अनन्त ! किस प्रकार स्तुति करूँ तुम्हारी,
माया, गुण और ज्ञान से परे,
वेद और पुराण गाते महिमा तुम्हारी ।

दया और सुख का समुद्र कह जिनके,
श्रुतियां और संत करते गुणों का बखान,
मेरे कल्याण के लिये प्रकट हुए हैं,
वही भक्त अनुरागी, लक्ष्मीपति भगवान ।

वेद कहते हैं तुम्हारे प्रत्येक रोम में,
मायारचित अनेकों ब्रहमाण्डों के समूह समाये,
वे तुम मेरे गर्भ में रहे यह सुनकर,
भला किसकी बुद्धि स्थिर रह पाये ।

प्रभु मुसकराये, जब ज्ञान उपजा माता को,
बहुत प्रकार के चरित्र करना चाहते हैं वो,
सो पूर्वजन्म की कथा कह माता को समझाया,
जिससे उन्हें पुत्र का वात्सल्य प्रेम प्राप्त हो ।

बदल गयी माता की वह बुद्धि,
कहा प्रभु को बालक रूप धरने को,
तब बालक बन रोने लगे प्रभु,
माता को माँ का सुख देने को ।

जो इस चरित्र का करते गान,
वे श्रीहरि का परम पद पाते,
तुलसीदास कहते हैं फिर वे जन,
इस संसार रूपी कूप में गिरने नही पाते ।

ब्राह्मण, गौ, देवता और संतों के लिये,
मनुष्य रूप में अवतार लिया श्रीहरि ने,
उनका शरीर अपनी इच्छा ही से बना,
माया, गुणों और इन्द्रियों से परे हैं वे ।

बच्चे के रोने की प्यारी आवाज सुन,
सब रानियां दौड़ी आईं उतावली होकर,
आनन-फानन में फैल गयी यह बात,
सारे पुरवासी मग्न हुए आनन्द में डूबकर ।

पुत्र जन्मनें की बात कानों से सुनकर,
राजा दशरथ समा गये ब्रह्मानन्द में,
जिनका नाम सुनने से ही कल्याण होता,
वे ही प्रभु जन्में हैं मेरे घर में ।

बाजा बजवाया, बाजे वालों को बुलाकर,
गुरू वशिष्ठ जी के पास बुलावा भेजा,
वे ब्राह्मणों के साथ राजद्वार पर आये,
और जाकर अनुमप बालक को देखा ।

फिर राजा ने नान्दीमुख श्राद्ध करके,
सब जातकर्म-संस्कार आदि किया,
फिर सब ब्राह्मणों को आदर सहित,
सोना, गौ, वस्त्र आदि का दान दिया ।

सजाया गया जिस प्रकार से सारा नगर,
उसका तो वर्णन हो नही सकता,
फूलों की वर्षा हो रही आकाश से,
सब ओर छा रही ध्वजा और पताका ।

झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं स्त्रियां,
सोने का कलश लिये, मंगल थाल सजा,
आरती करके निछावर करती हैं वे,
बारम्बार बालक के चरणों में शीश नवा ।

मागध, सूत, वन्दीजन और गवैये,
करते हैं रघुकुल का पवित्र गुण-गान,
भरपूर दान दिया राजा ने लोगों को,
जिसने पाया, उसने भी कर दिया दान ।

कस्तूरी, चन्दन और केसर की कीच,
मच गयी गली-कूचों और घरों में,
शोभा के मूल श्रीभगवान प्रकटे हैं,
मंगलमय बधावा बज रहा घर-घर में ।

कैकेयी और सुमित्रा इन दोनों ने भी,
जन्म दिया सुन्दर-सुन्दर पुत्रों को,
अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो गयी,
मानों रात्रि प्रभु से मिलने आयी हो ।

और प्रभु रूपी सूर्य को देखकर,
मानो मन में सकुचा गयी हो,
परंतु फिर भी मन में विचार कर,
वह मानो संध्या बन रह गयी हो ।

श्रृंगार का धुआं मानो अन्धकार संध्या का,
जो अबीर उड़ रहा, वह ललाई उसकी,
महलों में मणियों के समूह तारागण से,
राजमहल का कलश मानों पूर्णिमा का शशी ।

अति कोमल वाणी में होती वेद ध्वनि,
मानों समयानुकूल चहचहाहट पक्षियों की,
यह कौतुक देख सूर्य भी भूले चाल,
एक महीना बीत गया उन्हें ठहरे वहीं ।

महीने भर का एक दिन हो गया,
जानता नही कोई इस रहस्य को,
रूक गये सूर्य अपने रथ सहित,
होती कैसे फिर रात आने को ।

यह रहस्य किसी ने न जाना,
तब श्रीराम गुणगान करते सूर्य चले,
यह महोत्सव देख देवता, मुनि और नाग,
अपने भाग्य की सराहना करते घर चले ।

तुम्हारी दृढ़ बुद्धि देख, हे पार्वती !
कहता हूँ अपनी एक बात छिपाव की,
काकभुशुण्डि और मैं भी मनुष्य रूप में थे,
सो किसी ने हमारी पहचान न की ।

परम आनन्द और प्रेम में फूले हुए,
अपनी सुधि बिसरा घूम रहे थे वहां,
परंतु वही जान सकता यह शुभ चरित्र,
जिस पर हो प्रभु श्रीराम की कृपा ।

तब वहां जो जिस प्रकार आया,
और जिसके मन को लगा जो अच्छा,
हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गौएं और वस्त्र,
राजा ने दिया, जिसने जो चाहा ।

जहां-तहां आशीर्वाद दे रहे थे लोग,
कि तुलसी के स्वामी सब पुत्र चिरजीवी हों,
फिर मुनि वसिष्ठ को बुलाकर विनती की,
कि उनके नाम रक्खें, जो उन्होनें विचारे हों ।

मुनि के कहा, अनेक अनुपम नाम हैं इनके,
फिर भी कहूँगा मैं अपनी बुद्धि अनुसार,
आपके सबसे बड़े पुत्र का नाम 'राम' है,
जो करते त्रिलोक में सुख का संचार ।

जो संसार का भरण-पोषण करते हैं,
उन दूसरे पुत्र का नाम 'भरत' होगा,
जिनके स्मरण मात्र से नाश होता शत्रु का,
उनका वेदों में प्रसिद्ध नाम शत्रुघ्न होगा ।

शुभ लक्षणों के धाम, श्रीराम के प्यारे,
जगत के आधार, 'लक्ष्मण' नाम रक्खा उनका,
फिर कहा, तुम्हारे पुत्र वेद का तत्त्व हैं,
जिन्होनें तुम्हारे प्रेमवश बाललीला करने का सोचा ।

सम्पूर्ण जगत के माता-पिता श्रीरामजी,
इस प्रकार अवधवासियों को सुख देते,
जोड़ी जिन्होनें उनके चरणों में प्रीति, हे भवानी,
उनके प्रेमवश उन्हें वो आनन्दित करते ।

प्रभु से विमुख हो, कोई भी उपाय,
छुड़ा नही सकता भव-बन्धन को,
वह माया भी प्रभु से भय खाती,
जिसने वश में किया सभी जीवों को ।

अपने भृकुटि विलास पर नचाते प्रभु उसे,
फिर उन्हें छोड़ किसका भजन किया जाय,
मन, वचन और कर्म से चतुराई छोड़कर,
प्रभु का भजन ही है बस एक उपाय ।

इस प्रकार बालक्रीड़ा कर प्रभु श्रीराम ने,
समस्त नगर वासियों को सुख दिया,
प्रेम मग्न उन्हें दुलारते-पुचकारते, माता ने,
दिन-रात का बीतना अनुभव न किया ।

एक बार स्नान करा माता ने उन्हें,
श्रृंगार कर पौढ़ा दिया पालने पर,
फिर स्वयं नहा, नैवेद्य चढ़ा,
आईं लौट कर पूजा के स्थान पर ।

वहां भगवान को चढ़ाये हुए नैवेद्य का,
माता ने पुत्र को भोजन करते देखा,
भयभीत हो यहां कैसे आ गया पुत्र,
माता ने जाकर पालने में सोते देखा ।

वहां भी पुत्र को सोते देखकर,
पुन: देखा उन्हें पूजा स्थान पर आकर,
देखकर दोनों जगह अपने पुत्र को,
लगने लगा माता को मन में ड़र ।

कहीं यह मेरा भ्रम तो नही,
यहां और वहां मैने दो बालक देखे,
माता को घबड़ायी हुई देख कर,
तब प्रभु श्रीराम मन्द-मन्द हँस दिये ।

फिर अपना अखण्ड, अद्भूत रूप दिखलाया,
रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड बसे जिसमें,
अगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव और ब्रह्मा,
अगणित पृथ्वी, समुद्र, वन, पर्वत थे जिसमें ।

काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव देखे,
और वो भी जो कभी देखा न सुना,
अत्यंत भयभीत हाथ जोड़े खड़ी माया देखी,
जीवों को नचाती जो कभी थकती ना ।

माता ने वहां भक्ति को भी देखा,
जो छुड़ा देती जीव को माया से,
सब देख ऐसे पुलकित हो गयीं वो,
निकलता नही एक शब्द भी मुख से ।

जगत-पिता परमात्मा को पुत्र कर जाना,
डर गयीं, स्तुति भी की नही जाती उनसे,
जब प्रभु ने बहुत तरह समझाया माता को,
आपकी माया अब मुझे न भाये, कहा उनसे ।

बहुत प्रकार से की बाल लीलाएं प्रभु ने,
फिर चारों भाई जब हुए कुछ बड़े,
तब गुरूजी ने जाकर किया चूड़ाकर्म संस्कार,
चारों राजकुमारों के चरित्र मनोहर हैं बड़े ।

मन, वचन और कर्म से अगोचर हैं जो,
विचर रहे वो प्रभु दशरथ के आंगन में,
बुलाते हैं भोजन करने के समय जब राजा,
खेलते लगते हैं अपने बालसखाओं के संग में ।

ठुमक-ठुमक भाग चलतें हैं प्रभु,
माता कौसल्या जब उन्हें बुलाने जाती,
शिवजी ने भी जिनका अन्त नही पाया,
माता उन्हें हठपूर्वक पकड़ना चाहती ।

धुलि-धुसरित आ बैठे राजा की गोद में,
फिर किलकारी मार इधर-उधर भाग चले,
उनकी सरल, सुन्दर, मनभावनी बाललीलाओं को,
शेष, सरस्वती, शिवजी और वेद गाते चले ।

कुमारावस्था के जब हुए सब भाई,
तो उनका यज्ञोपवीत कर दिया गया,
फिर गुरू के घर पढ़ने गये वे,
थोड़े वक्त में सब पाठ पढ़ लिया ।

चारों वेद जिनके स्वाभाविक श्वास हैं,
वे भगवान पढ़ें, है यह अचरज बड़ा,
विधा, विनय, गुण और शील में निपुण,
हाथों में ध्नुष-बाण देता है शोभा ।

उनका रूप देख चराचर मोहित हो जाते,
और अयोध्यावासी ठिठक कर रह जाते,
स्त्री, पुरूष, बूढ़े और बालक सभी,
श्रीरामजी को प्राणों से भी प्रिय भाते ।

भाईयों और इष्ट मित्रों को लेकर साथ,
वन में जाकर श्रीरामजी शिकार खेलते,
मन में पवित्र मानकर मारते हैं मृगों को,
और प्रतिदिन लाकर दशरथजी को दिखलाते ।

जो मृग श्रीराम के बाणों से मरते,
शरीर छोड़कर चले जाते देवलोक को,
भाइयों और सखाओं के संग भोजन करते,
शिरोधार्य करते माता-पिता की आज्ञा को ।

जिस प्रकार नगर के लोग सुखी हों,
कृपानिधान श्रीराम वही लीला करते हैं,
वे मन लगाकर वेद-पुराण सुनते हैं,
फिर छोटे भाइयों को समझाकर कहते हैं ।

सुबह-सवेरे ही उठकर श्रीरघुनाथ,
माता-पिता और गुरू को शीश नवाते,
नगर का काम करते उनकी आज्ञा लेकर,
महाराज दशरथ मन में हर्ष मनाते ।

व्यापक, अकल, अनीह, अज और निर्गुण,
न कोई नाम, न रूप है जिनका,
वही भगवान अपने भक्तों के लिये,
अनुपम और अलौकिक चरित्र करते हैं अनेका ।

यह सब चरित्र मैने बखानकर कहा,
अब आगे की कथा सुनो मन लगाकर,
ज्ञानी-महामुनि विश्वामित्रजी वन में,
बसते थे पवित्र स्थान जानकर ।

जप, यज्ञ और योग करते थे मुनि,
परंतु डरते थे मारीच और सुबाहु से,
उपद्रव मचाते थे वे यज्ञ देखकर,
बहुत दुख पाते थे मुनि जिससे ।

चिन्तित थे गाधिपुत्र विश्वामित्रजी मन में,
ये राक्षस न मरेंगे प्रभु के बिना,
फिर सोचा प्रभु ने अवतार लिया है,
क्यो ना उन्हें ले आऊँ यहां ।

बहुत आशाएं अपने मन में लिये,
देर न लगायी जाने में उन्होनें,
सरयूजी के जल में स्नान कर,
शीघ्र जा पहुचें राजा के महल में ।

राजा ने सुना जब आना मुनि का,
ब्राह्मणों को साथ ले जा पहुंचे मिलने,
दण्डवत कर सम्मान करते हुये मुनि का,
लाकर बैठाया उन्हें आसन पर अपने ।

चरणों को धोकर बहुत पूजा की,
और बहुत सराहा भाग्य को अपने,
फिर अनेक सुस्वादिष्ट भोजन करवाये,
बहुत हर्षित हुए मुनि मन में ।

फिर राजा ने चारों पुत्र बुलाकर,
मुनि के चरणों में उनसे प्रणाम करवाया,
देख कर श्रीरामजी के मुख की शोभा,
मन चकोर की तरह गया लुभाया ।

राजा ने कहा आपने बड़ी कृपा की,
हे मुनि ! किस कारण हुआ आपका आगमन,
मुनि ने कहा, कुछ मांगने आया हूँ,
बहुत सताते है मुझे वन में राक्षसगण ।

छोटे भाई सहित श्रीरामचन्द्र को,
हे राजन ! वन में मेरे साथ भेज दो,
राक्षसों के मरने से हो जाऊंगा सुरक्षित,
हे राजन ! उन्हें मेरे साथ जाने दो ।

धर्म और सुयश आपको दोनो मिलेंगे,
हे राजन ! मोह और अज्ञान त्याग दो,
इन दोनों का परम कल्याण होगा,
प्रसन्न मन से दोनों को विदा दो ।

यह सुनकर हृदय कांप उठा राजा का,
और मुख की कान्ति पड़ गयी फीकी,
बोले, चौथेपन में मैने पुत्र पाये हैं,
हे ब्राह्मण ! आपने बिना विचारे बात की ।

पृथ्वी, गौ, धन और खजाना,
जो चाहो आप, मैं स्र्वस्व दे दूंगा,
कुछ ना अधिक प्रिय प्राणों से होता,
उसे भी पल भर में दे दूंगा ।

सभी पुत्र हैं मुझे प्राणों से प्यारे,
और राम तो हैं प्राणों के प्राण,
कहाँ भयानक और क्रूर राक्षसगण,
कहाँ मेरे पुत्र सुकुमारों समान ।

प्रेम रस सनी राजा की बातें सुन,
ज्ञानी मुनि ने मन में हर्ष माना,
वसिष्ठजी ने बहुत समझाया राजा को,
संदेह नष्ट हुआ तब राजा ने जाना ।

आदर सहित दोनों पुत्रों को बुलाकर,
हृदय से लगा बहुत शिक्षा दी, उन्हें,
ये दोनों प्राण हैं मेरे, हे नाथ !
अब आप ही पिता हैं इनके, कहा उन्हें ।

बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर राजा ने,
कर दिया पुत्रों को मुनि के हवाले,
फिर माता के महल में जाकर,
उनके चरणों में सिर नवा, वे चले ।

मुनि का भय हरने को चले,
पुरूषों में सिंह प्रभु राम और लक्ष्मण,
वे कृपा के समुद्र और धीरबुद्धि,
सम्पूर्ण विश्व के कारण के कारण ।

विशाल भुजाएं, चौड़ी छाती और लाल नेत्र,
नील कमल और तमाल वृक्ष सा शरीर श्याम,
पीताम्बर पहने और तरकस कसे हुए,
दोनों हाथों में लिये धनुष और बाण ।

परम सुन्दर दोनों भाइयों का साथ मानो,
महान निधि मिल गयी हो मुनि को,
सोचने लगे प्रभु ब्राह्मणों के भक्त हैं,
मेरे कारण छोड़ आए वे पिता को ।

मार्ग में मुनि ने ताड़का को दिखलाया,
शब्द सुनते ही दौड़ी वह क्रोध कर,
एक ही बाण से प्राण हरे राम ने,
और निजपद दिया उसे दीन जान कर ।

विद्या का भण्डार जानते भी मुनि ने,
प्रभु को लीला हेतु ऐसी विद्या दी,
जिससे उनको भूख और प्यास न लगे,
और मिले बल और तेज का प्रकाश भी ।

सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके मुनि,
प्रभु श्रीराम को अपने आश्रम ले आये,
और परम हितैषी जान भक्तिपूर्वक उन्हें,
कंद-मूल और फल भोजन में खिलाये ।

प्रात: होने पर श्रीरघुनाथ ने कहा,
आप जाकर यज्ञ कीजिये निडर होकर,
सब मुनि यह सुन करने लगे हवन,
और प्रभु स्वयं बैठ गये रखवाली पर ।

यह समाचार सुन मुनियों का शत्रु,
क्रोधी मारीच सहायकों को लेकर दौड़ा,
बिना फल वाला बाण मारा राम ने,
वह सौ योजन समुद्र पार जा पड़ा ।

फिर अग्निबाण मारा सुबाहु को,
लक्ष्मणजी ने राक्षस सेना को मार डाला,
निर्भय किया इस तरह ब्राह्मणों को उन्होनें,
मुनि का मनचाहा प्रभु ने कर डाला ।

रूके कुछ दिन और वहां श्रीरघुनाथ,
ब्राह्मणों ने पुराणों की कथाएँ कहीं,
यद्‌यपि प्रभु जानते थे सभी बातें,
फिर भी भक्तिवश सब उन्होनें सुनी ।

तब मुनि ने सादर कहा समझाकर,
हे प्रभो ! एक और चरित्र देखिये चलकर,
सुनकर धनुषयज्ञ की बात श्रीरघुनाथ,
मुनि के साथ चले प्रसन्न होकर ।

एक आश्रम दिखलायी दिया मार्ग में,
जो पशु-पक्षी, विहीन सर्वथा निर्जन था,
पत्थर की एक शिला देख जब पूछा,
मुनि ने विस्तार पूर्वक कही कथा ।

गौतम मुनि की पत्नी अहल्या शापवश,
पत्थर की बन, धीरज के साथ,
चाहती है आपके चरणकमलों की धूलि,
इस पर कृपा कीजिये, हे रघुनाथ !

प्रभु के पवित्र और शोकनाशक चरणों का,
स्पर्श पाते ही जीवंत हो उठी अहल्या,
अपने सम्मुख भक्तवत्सल प्रभु श्रीराम को देख,
अत्यंत प्रेम से अधीर हो उठी अहल्या ।

पुलकित हो उठा उसका शरीर,
मुख से वचन कहने में नही आते,
लिपट गयी अहल्या प्रभु के चरणों से,
नेत्रों में प्रेमाश्रु भर-भर आते ।

मन में धीरज धर कर फिर उसने,
प्रभु को पहचाना और कृपा-भक्ति प्राप्त की,
तब अत्यंत निर्मल वाणी से उसने,
इस प्रकार प्रभु की स्तुति शुरू की ।

हे ज्ञानरूप ! हे ज्ञाता ! हे ज्ञेय,
जय हो, जय हो, आपकी जय हो,
मैं सहज ही अपावन स्त्री हूँ,
और आप पतित पावन हो, प्रभो !

हे भक्तों के सुखदाता, हे कमलनाथ !
हे जन्म-मृत्यु के भय से छुड़ाने वाले !
आपके चरणों की शरण आयी हूँ मैं,
रक्षा कीजिये, हे रक्षा करने वाले ।

शाप दिया मुझको जो मुनि ने,
सो बहुत ही मुझ पर अनुग्रह किया,
इस कारण भव-बन्धन छुड़ानेवाले आपको,
मैने अपने नेत्रों से देख लिया ।

और कोई चाह नही अब मेरी,
बस आप से है एक ही विनती,
आपके चरणरज के प्रेमरूपी रस से,
मेरा मनरूपी भौंरा हो ना दूर कभी ।

जिन चरणों से निकली गंगा,
शिवजी ने जिनको सिर पर रक्खा,
जिन चरणकमलों को पूजते हैं ब्रह्माजी,
उन्हें आपने मेरे सिर पर रक्खा ।

बारम्बार यूँ चरणों मे गिरकर,
जो बहुत अच्छा लगा मन को,
मन चाहा वर पाकर आनन्द सहित,
चली गयी अहल्या तब पतिलोक को ।

ऐसे दयालु और दीनबन्धु हैं प्रभु,
बिना ही कारण जो करते हैं दया,
तुलसीदास कहते हैं, हे मेरे मन,
कपट-जंजाल छोड़, कर भजन उन्हीं का ।

मासपारायण, सातवां विश्राम

मुनि के साथ राम और लक्ष्मण,
चले वहा जहां थी जग पावनि गंगा,
वह सब कथा कह सुनायी मुनि ने,
जिस प्रकार पृथ्वी पर उतरी थी गंगा ।

तब प्रभु ने स्नान किया गंगा में,
ब्राह्मणों ने भांति-भांति के पाये दान,
फिर प्रसन्न हो चले साथ मुनियों के,
जनकपुरी की ओर किया प्रस्थान ।

जनकपुरी पहुँच वहां की शोभा देख,
छोटे भाई सहित बहुत प्रसन्न हुए श्रीराम,
बावलियां, कुएं, नदी और तालाब जिनमें,
मणियों की सीढ़ियां, जल अमृत समान ।

मतवाले हो भौंरे गुंजार कर रहे,
रंग-बिरंगे पक्षी कर रहे मधुर गुंजन,
कमल और फूल खिले हैं रंग-रंग के,
बह रहा मन्द-मन्द शीतल पवन ।

अनेक पुष्पवाटिकाएं, बाग और वन,
बसे हुऐ थे जिनमें पक्षी बहुते से,
फलते-फूलते और सुगन्ध बिखेरते,
सारा जनकपुर था सुशोभित उनसे ।

वर्णन से परे नगर की सुन्दरता,
मन जहां जाता वहीं लुभा जाता,
सुन्दर बाजार और मणियों के छज्जे,
मानों रचा गया हो ब्रह्मा द्वारा ।

कुबेर के समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी,
बैठे हैं सब प्रकार की वस्तुएं लेकर,
चित्रों से अंकित, मंगलमय घर सबके,
साधु स्वभाव वाले स्त्री-पुरूष सुन्दर ।

जनकजी के महल का ऐश्वर्य देखकर,
देवता तक भी हो जाते हैं स्तम्भित,
समस्त लोकों की शोभा घेरे हो,
राजमहल का परकोटा, कर देता चित्त चकित ।

उज्जवल महलों में अनेक प्रकार के,
मणिजटिल सोने की जरी के पर्दे लगे,
सीताजी के रहने के सुन्दर महल की,
शोभा वर्णन कोई कर सकता कैसे ।

वज्र के समान सब दरवाजे महलों के,
राजाओं, नटों, भाटों की भीड़ से घिरे,
बड़ी-बड़ी विशाल गजशालाएं और अस्तबल,
हर समय हाथी, घोड़ों और रथों से भरे ।

बहुत से शूरवीर, मन्त्री और सेनानायक,
उन सबके घर भी हैं राजमहल-सरीखे,
नगर के बाहर तालाब और नदी के निकट,
जहां-तहां बहुत से राजा हैं उतरे ।

वहीं आमों का एक अनुपम बाग देखकर,
सब तरह से जो कुंज था सुहावना,
विश्वामित्रजी ने कहा, हे सुजान रघुबीर,
मेरा मन कहता है यही है ठीक ठिकाना ।

मुनि की बात स्वीकार कर श्रीराम,
वहीं ठहर गये सब मुनियों के साथ,
महामुनि विश्वामित्रजी का आगमन जानकर,
मिथिलापति चले मिलने सबको ले साथ ।

प्रणाम किया राजा ने मुनि को,
आशीर्वाद दे मुनि ने राजा को बैठाया,
तभी फुलवाड़ी देख दोनों भाई लौट आये,
विश्वामित्रजी ने उन्हें अपने पास बैठाया ।

सुकुमार, किशोर चित्त को चुरानेवाले,
दोनों का रूप और तेज ऐसा छाया,
सबके शरीर रोमांचित हो उठे,
नेत्रों में प्रेम और आनन्द उमड़ आया ।

श्रीराम की मधुर मनोहर मूरत को देख,
विदेही जनक विशेषकर विदेह हो गये,
विवेक का आश्रय ले तब उन्होनें,
प्रेम भरी वाणी में ये वचन कहे ।

हे नाथ ! कहिये ये दोनों सुन्दर बालक,
मुनि कुल के आभूषण हैं या राजकुमार,
अथवा नेति-नेति कहा जिन्हें वेदो ने,
उसी ब्रह्म के हैं ये युगल अवतार ।

वैरागी मेरा मन मुग्ध हो रहा,
ज्यों चन्द्रमा को देखकर होता चकोर,
प्रेम के वश हो ब्रह्मसुख को त्याग,
खिंचा जा रहा मेरा मन इनकी ओर ।

हँसकर कहा मुनि ने, हे राजन !
मिथ्या नही हो सकता आपका वचन,
जगत में जहां तक जितने प्राणी हैं,
सभी के लिये हैं ये मन लुभावन ।

मुनि की रहस्यमयी वाणी को सुनकर,
मन ही मन श्रीराम ऐसे मुसकराये,
मानों मुनि को संकेत कर रहे हों,
कि उनका रहस्य किसी को ना बतायें ।

मुनि ने कहा, महाराज दशरथ के पुत्र ये,
भेजे गये हैं मेरे हित के लिये,
राम और लक्ष्मण, शील और बल के धाम,
असुरों को मारा, यज्ञ रक्षा के लिये ।

राजा ने कहा, आपके चरणों के दर्शन कर,
मैं अपना पुण्य-प्रभाव कह नही सकता,
श्याम और गौर वर्ण इन भाइयों से,
आनन्द को भी आनन्द मिलता है लगता ।

पवित्र और सुहावनी उनकी आपस की प्रीति,
वर्णनातीत और मन को अति भाती,
ब्रह्मा और जीव सा इनका स्वाभाविक प्रेम,
ऐसा है जैसे दिया और बाती ।

फिर राजा उन्हें साथ लिवा ले चले,
नगर में एक महल में ले जाकर ठहराया,
सब तरह से सुन्दर और सुखदायी,
ऋषियों सहित प्रभु को वह महल भाया ।

लालसा है लक्ष्मणजी के हृदय में,
कि जाकर जनकपुर को देख आवें,
पर मुंह से कुछ कहते नही बनता,
किस तरह से प्रभु को समझावें ।

तब अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामचन्द्र ने,
छोटे भाई की मनोदशा जान ली,
उमड़ आयी भक्तवत्सलता उनके हृदय में,
सो मुनि से प्रभु ने की विनती ।

हे नाथ ! नगर देखना चाहते हैं लक्ष्मण,
पर कहते नही डर और संकोच से,
यदि आपकी आज्ञा पाऊं तो,
नगर दिखा, तुरंत लौटा लाऊं मैं इन्हें ।

यह सुन मुनि विश्वामित्र प्रेम से बोले,
कैसे न करोगे तुम नीति की रक्षा,
धर्म की मर्यादा रखने वाले हो तुम,
प्रेम के वश हित करते भक्तों का ।

फिर बोले, सुख के निधान दोनों भाई,
जाकर घूम-फिर आओ सारा नगर,
सफल करो नगरवासियों के नेत्रों को,
उन्हें अपने सुन्दर मुख दिखलाकर ।

मुनि के चरणकमलों की वन्दना करके,
दोनों भाई चल पड़े नगर देखने,
बालकों के झुंड उनके साथ लग गये,
उनकी अत्यंत शोभा ने मोह लिया उन्हें ।

सुन्दर वस्त्र, दुपट्टों में बंधे तरकस,
हाथों में सुन्दर धनुष-बाण सुशोभित,
फबती हुई चन्दन की खौर लगी,
दोनों की जोड़ी सबको कर रही चकित ।

सिंह की सी गर्दन, विशाल भुजाएं,
चौड़ी छाती पर माला गजमुक्ता की,
सुन्दर लाल कमल से नेत्र हैं उनके,
मनोहर चित्तवन और भौहें हैं तिरछी ।

कानों में सोने के कर्णफूल हैं शोभित,
सुन्दर और काले हैं घुंघराले बाल,
ऐड़ी से चोटी तक ऐसी सुन्दरता,
जहां जैसा चाहिये वैसा कमाल ।

खबर लगी जब यह पुरवासियों को,
कि दोनों भाई आये हैं नगर देखने,
घर-बार और काम-काज छोड़कर दौड़े,
मानों दरिद्र दौड़े हो खजाना लूटने ।

स्वभाव से ही सुन्दर दोनों भाइयों को देखकर,
लोग नेत्रों का फल पा हो रहे सुखी,
घरों के झरोखे से झांकती युवती स्त्रियां,
प्रेमसहित श्रीरामजी का रूप देख रही ।

कह रहीं वे आपस में, हे सखी !
करोड़ों कामदेवों से भी सुन्दर हैं ये,
ऐसी शोभा तो सुनने में भी न आती,
देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियों में ।

चार भुजाएं हैं भगवान् विष्णु के,
और ब्रह्माजी के भी मुख हैं चार,
भयानक वेष और पंचमुखी हैं शिवजी,
और देवताओं का क्या करें विचार ।

हे सखी ! भला कौन ऐसा होगा जग में,
जो मोहित ना हो जाय इन्हें देखकर,
एक ने कहा, ये दशरथजी के पुत्र हैं,
यज्ञ की रक्षा की, राक्षसों को मारकर ।

श्याम शरीर और कमल से नेत्र हैं जिनके,
मद चूर किया मारीच और सुबाहु का,
हाथ में धनुष लिये, कौसल्याजी के पुत्र,
सुख की खान, राम नाम हैं इनका ।

किशोर अवस्था और गौरा रंग है जिनका,
और चल रहे श्रीराम के पीछे-पीछे,
माता सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण हैं,
और श्रीरामचन्द्रजी के भाई हैं छोटे ।

साधकर-ब्राह्मण विश्वामित्रजी का काम,
और मार्ग में अहल्या का उद्धार कर,
यहां धनुषयज्ञ देखने आयें हैं दोनों,
मुनि विश्वामित्रजी का कहा मानकर ।

श्रीरामचन्द्रजी की छवि देखकर कोई एक,
कहने लगी, जानकी के योग्य है यह वर,
यदि कहीं राजा इन्हें देख ले तो,
कर देगा विवाह इनसे अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर ।

किसी ने कहा, पहचान लिया राजा ने इन्हें,
और मुनि के साथ सम्मान किया है इनका,
पर राजा अपना हठ पकड़े हुए है,
होनहार वश वह अपना प्रण नही छोड़ता ।

कोई कहती है, यदि विधाता भले हैं,
और सुनते हैं, वह देता है उचित फल,
तो हे सखी ! इसमें संदेह नही है,
कि जानकीजी को मिलेगा यही वर ।

जो देवयोग से बन जाय संयोग,
तो हम सब लोग कृतार्थ हो जायं ।
हे सखी ! मुझे है इसलिये आतुरता,
कि इसी बहाने उनके दर्शन हो पायं ।

और यदि यह विवाह न हुआ,
तो इनके दर्शन अति दुर्लभ होगें,
पर यह संयोग तभी हो सकता है,
जब हमारे पूर्वजन्म के ऐसे पुण्य होगें ।

दूसरी ने कहा, तुमने बहुत अच्छा कहा,
परम हित है इस विवाह से सभी का,
किसी ने कहा, शंकरजी का धनुष कठोर है,
और कोमल बालक शरीर है राजकंवर का ।

किसी ने कहा, देखने में छोटे हैं ये,
पर बहुत बड़ा है प्रभाव इनका,
जिनके चरणकमलों की धूलि-स्पर्श से,
उद्धार हो गया पाषाणी अहल्या का ।

फिर यह क्या कोई बड़ी बात है,
कि शिवजी का धनुष ये तोड़ डालें,
भूलकर भी नही छोड़ना चाहिये विश्वास,
ये राजकुमार हैं अत्यंत सामर्थ्य वाले ।

बड़ी चतुराई से रचा सीता को जिसने,
उसी ब्रह्मा ने सावलां वर रचा विचारकर,
'ऐसा ही हो', कहने लगीं वे सब,
उसके ये वचन सुन, हर्षित होकर ।

सुन्दर मुख और नेत्रों वाली वे स्त्रियां,
हर्षित हो करने लगीं फूलों की वर्षा,
जहां-जहां वे दोनों भाई जाते हैं,
वहां-वहां होने लगती आनन्द की वर्षा ।

दोनों भाई नगर के पूरब को गये,
धनुषयज्ञ हेतु भूमि बनायी गयी थी जहां,
एक लंबे-चौड़े सुन्दर आंगन पर,
सुन्दर और निर्मल वेदी सजी थी वहां ।

बड़े-बड़े स्वर्णमंच राजाओं के लिये बने,
चारों ओर मचानों का मण्डलाकार घेरा था,
कुछ ऊंचा और सब प्रकार से सुन्दर,
यह स्थान नगरवासियों के लिय बना था ।

उन्हीं के पास सभी स्त्रियों के लिये,
विशाल और सुन्दर मकान बनाये गये थे,
नगर के बालक कोमल वचन कह-कहकर,
श्रीरामजी को यज्ञशाला दिखला रहे थे ।

प्रेमवश सभी बालक इस बहाने,
पुलकित हो रहे श्रीरामजी को छूकर,
उनके हृदय में अत्यंत हर्ष हो रहा,
दोनों भाईयों को देख-देखकर ।

प्रशंसा करने लगे श्रीराम यज्ञभूमि की,
जिससे बालक हो गये और भी आनन्दित,
बुलाते हैं उन्हें वे अपनी रूचि अनुसार,
और दोनों भाई जाते हैं प्रेमसहित ।

पल भर में ही जिनकी आज्ञा से,
रच डालती माया अनेक ब्रह्माण्ड समूहों को,
वही श्रीराम यज्ञभूमि की रचना दिखला रहे,
भक्ति के कारण लक्ष्मण को आश्चर्यचकित हो ।

सब कौतुक देख चले गुरू के पास,
देर हुई जान मन में डर रहे,
जिनके भय से भय का भय लगता,
वही भजन का प्रभाव दिखला रहे ।

फिर भय, प्रेम, विनय और संकोच के साथ,
आज्ञा पा, दोनों भाई गुरूचरणों में बैठे,
जब कुछ समय बाद शयन किया मुनि ने,
दोनों भाई चरण दबाने लगे मुनि के ।

भांति-भांति के यत्न करते हैं बैरागी,
जिनके चरणों के दर्शन के लिये,
वे ही गुरूचरणों का दबा रहे हैं,
भक्ति और प्रेम की मर्यादा के लिये ।

जब मुनि ने बार-बार आज्ञा दी,
तब जाकर किया श्रीरघुनाथ ने शयन,
फिर भय और प्रेमसहित दबाने लगे,
लक्ष्मणजी बड़े भाई श्रीरामजी के चरण ।

बारम्बार श्रीरामजी के कहने पर लक्ष्मणजी,
प्रभु के चरणों को हृदय में धर लेटे,
फिर सुबह होने पर, मुनि की आजा ले,
दोनों भाई बाग से फूल लेने को चले ।

राजा का सुन्दर बाग जाकर देखा उन्होंने,
जहां रह गयी है बसन्त ऋतु लुभाकर,
मनभावन वृक्ष, रंग-बिरंगी लताओं के मण्डप,
मणियों की सीढ़ियों वाला सुहावना सरोवर ।

निर्मल जल, अनेकों रंग के कमल खिले,
पक्षी कलरव और भ्रमर गुंजार कर रहे,
यह बाग वास्तव में परम रमणीय है,
जिससे जग सुखी करनेवाले सुखी हो रहे ।

जब वे चुन रहे थे पत्र-पुष्प,
तभी सखियों संग आयीं सीताजी वहां,
माता ने उन्हें पूजा करने भेजा था,
सरोवर किनारे गिरिजाजी का मंदिर जहां ।

सखियों सहित स्नान कर सीताजी,
प्रसन्न मन से गयीं मंदिर के भीतर,
बड़े प्रेम से की पूजा उन्होनें,
और मांगा अपने योग्य सुन्दर वर ।

एक सखी सीताजी का साथ छोड़कर,
चली गयी थी फुलवाड़ी देखने,
प्रेम विह्वल हो वह वापस आयी,
देखा था दोनों भाइयों को उसने ।

नेत्रों में जल, पुलकित शरीर देखकर,
सखियों ने पूछा प्रसन्नता का कारण,
उसने कहा दो राजकुमार बाग देखने आये,
कैसे करूँ मैं उनके रूप का वर्णन ।

सीताजी के हृदय में उत्कण्ठा जानकर,
एक ने कहा, ये हैं वो ही राजकुमार,
जो विश्वामित्र मुनि के साथ आये हैं,
और नगर में हो रहा जिनका प्रचार ।

सब कर रहे उन्हीं की छवि का वर्णन,
हमें चलकर अवश्य देखना चाहिये उन्हें,
उसके वचन अत्यंत प्रिय लगे सीताजी को,
उसी को आगे कर चलीं देखने उन्हें ।

नारदजी के वचनों का स्मरण करके,
पवित्र प्रीति उपजी सीताजी के मन में,
वे चकित हो देख रहीं सब ओर,
मानों भयभीत मृगछौनी लग रही हो देखने ।

कंकण, करछनी और पायजेब की ध्वनि सुन,
श्रीराम कहते है लक्ष्मण से विचार कर,
लगता है विश्व विजय का संकल्प किया है,
कामदेव ने डंके पर चोट मार कर ।

ऐसा कह, जो फिरकर देखा उन्होंने,
सीताजी का मुख देख लग गयी टकटकी,
उनके नेत्र चकोर से बन गये,
निहार रहे हों जो शोभा चन्द्र की ।

मानों जनकजी के पूर्वज निमी ने,
जिनका माना गया सबकी पलकों पर निवास,
इस प्रसंग को देखना उचित न जानकर,
सकुचाकर छोड़ दिया पलकों से वास ।

बहुत सुख पाया उन्हें देख राम ने,
पर मुख से वचन नही निकलते उनके,
ऐसी शोभा, मानों अपनी सारी निपुणता को,
ब्रह्मा ने दिखा दिया हो प्रकट करके ।

सुन्दरता को भी सुन्दर करती शोभा,
ऐसी अनुपम सुन्दरता है सीताजी की,
मानों सुन्दरतारूपी उस अंधेरे भवन में,
जगमगा उठी लौ दीपशिखा की ।

सब उपमायें झूठी कर रखी कवियों ने,
किससे दूं जनकनन्दिनी श्रीसीताजी की उपमा,
ऐसा विचारकर पवित्र मन से श्रीराम ने,
अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा ।

हे तात ! ये हैं वही जनकजी की कन्या,
हो रहा है धनुषयज्ञ जिसके लिये,
जिन्हें देख मेरा पवित्र मन क्षुब्ध हो रहा,
और मंगलदायक दाहिने अंग फड़क रहे ।

रघुवंशियों का है यह सहज स्वभाव,
उनका मन नही चलता कभी कुमार्ग पर,
मुझे अपने मन पर है अत्यंत विश्वास,
सपने में न डाली परायी स्त्री पर नज़र ।

पीठ न दिखाते जो कभी रण में,
परायी स्त्रियां जिन्हें आकृष्ट नहीं करती,
खाली नही जाते जिनके दर से भिखारी,
बहुत नही जग में ऐसों की गिनती ।

यों श्रीरामजी कर रहे छोटे भाई से बातें,
पर मन सीताजी के रूप में लुभाया हुआ,
उधर सीताजी चकित हो देख रही हैं,
कि दोनों राजकुमार चले गये हैं कहाँ ।

तब सखियों ने लता की ओट में,
दिखलाया सुन्दर श्याम और गौर कुमारों को,
नेत्र ललचा उठे उनके रूप को देख,
मानो उन्होंने अपना खजाना पहचान लिया हो ।

श्रीरघुनाथजी की मनोहर छवि को देख,
छोड़ दिया सीताजी की पलकों ने गिरना,
विह्वल हो गया स्नेहवश उनका शरीर,
मानो बेसुध हुई चकोरी देख चन्द्रमा ।

नेत्रों की राह अपने हृदय में बसा,
करने लगी ध्यान वे नेत्र मूंदकर,
जब सखियों ने जाना उन्हें प्रेमवश,
तो रह गयीं वे मन में सकुचाकर ।

तभी लतामण्डप से दोनों भाई ऐसे निकले,
जैसे बादलों में से निकला हो चन्द्रमा,
नीले और पीले कमलों सी आभा उनकी,
दोनों सुन्दर भाई हैं शोभा की सीमा ।

सुन्दर मोरपंख हैं सिर पर सुशोभित,
बीच-बीच में लगे कलियों के गुच्छे,
माथे पर तिलक, कानों में कुण्डल,
टेढ़ी भौंहें हैं और बाल घुंघराले ।

नये लाल कमल से रतनारे नेत्र,
ठोड़ी, नाक और गाल मन लुभाते,
मनमोहक हंसी, मुख की छवि निराली,
जिसे देख बहुत-से कामदेव भी लजाते ।

मणियों की माला वक्ष: स्थल पर,
शंख से समान सुन्दर है उनका गला,
हाथी के बच्चे की सूँड सी भुजाएं,
कौन परख सकता उनकी शक्ति भला ।

सांवले-सलोने, पीताम्बर धारी श्रीराम को देख,
अपने आपक को भूल गयी सखियां,
एक चतुर सखी ने तब धीरज धरकर,
हाथ पकड़कर सीताजी से कहा ।

कर लेना फिर ध्यान गिरिजाजी का,
क्यों नही देख लेती अब राजकुमारों को,
सकुचाकर तब नेत्र सीताजी ने खोले,
और सामने देखा दोनों कुमारों को ।

नख से शिखा तक श्रीराम की शोभा,
निहार कर सीताजी मंत्रमुग्ध हो गयीं,
और फिर पिता का प्रण याद कर,
मन ही मन वे क्षुब्ध हो गयीं ।

जब सखियों ने देखा परवश उनको,
अब चलना चाहिये वे कहने लगीं,
कल इसी समय हम फिर आयेगीं,
ऐसा कह एक मन में हंसने लगी ।

मन में बसा श्रीरामजी को सीताजी,
पिता के अधीन जानकर लौट चलीं,
पशु-पक्षियों और पेड़ों के बहाने,
बारम्बार मुड़-मुड़कर वे देखने लगीं ।

बहुत कठोर शिवजी का धनुष जानकर,
और श्रीरामजी को जानकर सुकुमार,
कैसे तोड़ पायेगें वे उस धनुष को,
सीताजी कर रही थीं मन में विचार ।

प्रेम वश प्रभु का ऐश्वर्य भूल,
क्षोभ हो रहा था उनके मन में,
फिर प्रभु का बल स्मरण होने पर,
हर्षित हो, सांवली छवि धरी मन में ।

उधर सुख, स्नेह, शोभा और गुणों की खान,
श्रीजानकीजी को जाती हुई जाना राम ने,
तब परम प्रेम की स्याही बना उनका स्वरूप,
चित्तरूपी भित्ति पर चित्रित कर लिया राम ने ।

पुन: भवानीजी के मन्दिर गयीं सीताजी,
और उनकी चरण वन्दना की हाथ जोड़कर,
हे पर्वतों के राजा हिमाचल-पुत्री पार्वती,
जय हो ! आपकी कृपा हो हम पर ।

हे महादेव के मुखरूपी चन्द्रमा की चकोरी !
हे गजानन और भाई षडानन की माता !
हे बिजली की सी कान्तियुक्त शरीर वाली !
जय हो ! जय हो ! आपकी हे जगतमाता !

न आदि, न मध्य, न अन्त आपका,
आपका असीम प्रभाव वेदों से भी परे,
सबको उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली,
सबमें लय फिर भी सबसे परे ।

आप ही विश्व को मोहित करने वाली,
और करनेवाली हैं स्वतंत्ररूप से विहार,
पति को इष्ट मानने वाली नारियों में प्रथम,
कौन कह सकता आपकी महिमा अपार ।

हे भक्तों को मुहमांगा वर देने वाली !
हे त्रिपुरारी शिवजी की प्रिय पत्नी !
चारों फल सुलभ होते आपकी सेवा से,
आपकी पूजा सुखी करती मनुष्य और मुनि ।

सबके हृदयरूपी नगरी में निवास करने वाली,
मेरे मनोरथ को आप भली-भाँति जानती,
इसी कारण प्रकट किया नही मैने,
ऐसा कह उनके चरणों में पड़ीं जानकी ।

प्रेम और विनय वश जो हुई भवानी,
मूर्ति मुसकायी, माला खिसकी गले से,
बड़े ही आदर और प्रेम के साथ,
सिर पर धारण किया सीताजी ने उसे ।

हर्षित हृदय से तब बोलीं गौरीजी,
हे सीता ! सुनो सत्य असीस हमारी,
जिसमें मन अनुरक्त, वही वर मिलेगा,
पूरी होगी यह मनो-कामना तुम्हारी ।

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है,
वही सावलां-सलोना वर मिलेगा तुमको,
दया का खज़ाना और सर्वज्ञ है वह,
जानता है तुम्हारे शील और स्नेह को ।

इस प्रकार सुन श्रीगौरीजी का आशीर्वाद,
जानकी जी सहित हुई सब सखियां प्रसन्न,
फिर गौरीजी को बारम्बार कर नमस्कार,
सीताजी लौट चलीं महल को, प्रसन्न मन ।

श्रीगौरीजी को अनुकूल जानकर सीताजी,
अपने मन में हुईं बहुत प्रसन्न,
और सभी सुन्दर मंगलों के मूल,
फड़कने लगे उनके बायें अंग ।

सराहते हुये सीताजी का सौन्दर्य हृदय में,
दोनों भाई गये गुरूजी के पास,
श्रीरामचन्द्रजी ने कह दिया सब उन्हें,
क्योंकि उनका छलरहित है सरल स्वभाव ।

फिर फूल ले पूजा की मुनि ने,
और आशीर्वाद दिया दोनो भाइयों को,
कहा कि सफल हों तुम्हारे मनोरथ,
यह सुन बड़ा सुख मिला दोनों को ।

पूर्व दिशा में जब उदित हुआ चन्द्रमा,
श्रीराम ने सीता के मुख सा जाना,
फिर विचार किया यह उचित नही,
क्योंकि खारे जल से पैदा हुआ चन्द्रमा ।

उसी समुद्र से उत्पन्न होने के कारण,
भीषण हलाहल विष भाई है चन्द्रमा का,
दिन में निस्तेज और कलंकी होने से,
कैसे सीताजी के मुख की बराबरी कर सकता ।

फिर यह घटता-बढ़ता रहता है,
और विरहणियों को है दुख देने वाला,
राहु सन्धि में पा ग्रस लेता इसे,
कमल का बैरी, चकवे को शोक देने वाला ।

हे चन्द्रमा ! बहुत अवगुण है तुझमें,
पर कोई अवगुण नही है सीताजी में,
सो अनुचित कर्म करने का दोष लगेगा,
जानकीजी के मुख की तुझे उपमा देने में ।

रात हुई तब मुनि की आज्ञा पा,
विश्राम किया दोनों भाइयों ने,
रात बीतने पर जागे श्रीरघुनाथ,
और भाईं को देख लगे कहने ।

हे तात ! देखो अरूणोदय हो गया,
समस्त संसार को सुख देने वाला,
तब लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर बोले,
आप से ही दुनिया में है उजाला ।

जिस प्रकार सूर्योदय होने से,
सब तारे फीके पड़ गये,
वैसे ही आपका आना सुनकर,
सब राजा बलहीन हो गये ।

तारारूपी सब राजाओं का प्रकाश,
अन्धकाररूपी धनुष तोड़ नही सकता,
यह महान अन्धकाररूपी धनुष लेकिन,
आपके प्रकाश को सह नही सकता ।

कमल, चकवे, भौंरें और पक्षी जैसे,
हर्षित होते रात्रि का अन्त होने पर,
वैसे ही हे प्रभो ! आपके सब भक्त,
सुखी होंगे आप द्‌वारा धनुष टूटने पर ।

प्रभात हुई, सूर्य उदय हुआ,
स्वभावत: ही अन्धकार नष्ट हो गया,
छिप गये सब तारे तुरंत ही,
संसार में तेज का प्रकाश हो गया ।

हे रघुनाथजी ! सूर्य ने उदय के बहाने,
सब राजाओं पर किया आपका प्रताप प्रकट,
आपके भुजाबल की महिमा दिखलाने को,
हुई है यह धनुष तोड़ने की पद्‌धति प्रकट ।

नित्यकर्मों से निवृत्त हो, स्नान कर,
गुरूजी के चरणों में जाकर सिर नवाया,
उधर जनकजी ने शतानन्दजी को भेजकर,
दोनों भाइयों को बुलवाने का सन्देश भिजवाया ।

मासपारायण, आठवॉ विश्राम
नवाह्नपारायण, दूसरा विश्राम

तब विश्वामित्रजी ने कहा , हे तात !
चलो जनकजी ने बुला भेजा हैं,
देखना चाहिये सीताजी का स्वयंवर,
देखें ईश्वर किसको बड़ाई देता है ।

लक्ष्मणजी ने कहा, हे नाथ !
आपकी कृपा होगी जिसपर,
वही होगा बड़ाई का पात्र,
श्रेय पायेगा धनुष तोड़ कर ।

प्रसन्न हुये सब मुनि यह सुन कर,
सभी ने हर्षित हो आशीर्वाद दिया,
फिर मुनिवृन्द सहित कृपालु राम ने,
धनुष यज्ञशाला की ओर प्रस्थान किया ।

दोनों भाई रंगभूमि में आये हैं,
यह खबर सुनी जब नगरवासियों ने,
बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री-पुरूष सभी,
चल दिये सब छोड़कर उन्हें देखने ।

बड़ी भीड़ इकट्‌ठी हुई देख जनकजी ने,
सबको यथायोग्य आसन दिलवाया,
तभी राम और लक्ष्मण वहां आ गये,
मडंप में मनोहरता का वातावरण छाया ।

राजाओं के समाज में दोनों भाई,
तारों के बीच सजे चन्द्रमा से,
जिनकी जैसी भावना थी मन में,
प्रभु की मूर्ति उन्हें दिखी वैसे ।

रणधीर श्रीराम को देख रहे ऐसा,
मानों साक्षात् वीररस हो उनके सामने,
लेकिन कुटिल राजा डर गये ऐसे,
मानो भयानक मूर्ति देखी हो उन्होंने ।

स्वभाव से ही दोनों कोसलाधीष कुमार,
राजसमाज में ऐसे सुशोभित हो रहे,
करोड़ों कामदेवों की उपमा भी तुच्छ,
योगियों के मन को भी हर रहे ।

छल से जो राक्षस बैठे थे वहां,
देखा प्रभु को प्रत्यक्ष काल सा उन्होंने,
और मनुष्यों के भूषणरूप में देखा,
दोनों भाइयों को सारे नगरवासियों ने ।

सुन्दर चितवन वर्णन से परे,
कानों में कुण्डल झूमते हुए,
सुन्दर ठोड़ी और अधर, कोमल वाणी,
चौड़े ललाट पर तिलक चमकते हुए ।

स्त्रियां हर्षित हो अपनी-अपनी रूचि अनुसार,
साक्षात् श्रृंगार-रस रूप में देख रहीं उन्हें,
बहुत से हाथ-पैर और सिर वाले,
विराट रूप में उन्हें देखा विद्वानों ने ।

शंख सी सुन्दर तीन रेखाएं गले में,
बता रही त्रिभुवन की सुन्दरता की सीमा,
वृषभ से कंधे, सिंह की सी ऐंड़,
विशाल भुजाएं हैं बल की सीमा ।

जनकजी के कुटुम्बी देख रहे ऐसे,
जैसे सगे-संबंधी प्रिय लगते,
जनक समेत सभी रानियों को वे,
अपने बच्चे के समान लग रहे ।

कमर में तरकस, हाथों में बाण,
कंधों पर धनुष और जनेऊ सुशोभित,
नख से शिखा तक सब अंग सुन्दर,
महान शोभा को कर रहे प्रदर्शित ।

शान्त, शुद्ध, सम और स्वत: प्रकाश,
परम तत्त्व दीख रहे योगियों को वो,
सब सुखों के देनेवाले इष्ट के समान,
देखा हरिभक्तों ने दोनों भाइयों को ।

नगरवासी एकटक देखते ही रह गये,
भूल गये सब अपनी सुध-बुध को,
तब जनकजी ने मुनि को यज्ञशाला दिखलायी,
सब आश्चर्यचकित हो देख रहे कुमारों को ।

सीताजी देख रहीं जिस भाव से उन्हें,
वह स्नेह और सुख कहा नही जाता,
स्वयं सीताजी भी कह नही सकतीं,
फिर कोई कवि कैसे कहे गाथा ।

अपनी-अपनी ओर ही मुख किये देखा,
सब लोगों ने प्रभु श्रीराम को,
लेकिन इसका कुछ भी विशेष रहस्य,
पता भी लग सका न किसी को ।

यज्ञशाला को देख मुनि बोले राजा से,
रंगभूमि की रचना है बड़ी सुन्दर,
बड़ी प्रसन्नता और सुख मिला राजा को,
महामुनि से रचना की प्रशंसा सुन कर ।

सब मंचों से अधिक एक मंच,
सुन्दर, उज्जवल और विशाल था,
मुनि सहित दोनों भाइयों को,
स्वयं राजा ने उस पर बैठाया ।

प्रभु को देख ऐसे हताश हुये सब राजा,
जैसे पूर्ण चन्द्र के सम्मुख होते तारे,
निस्संदेह श्रीराम ही तोड़ेंगे धनुष को,
मन में मान बैठे वे सारे के सारे ।

उनके रूप को देखकर ही सब राजा,
मान बैठे थे अपने हृदयों में,
चाहे श्रीराम धनुष तोड़े न तोड़ें,
सीताजी जयमाला डालेंगी उन्हीं के गले में ।

कुछ कहने लगे हे भाई ! ऐसा विचारकर,
चले चलो अपने-अपने घर को,
कुछ अविवेक से अंधे जो हो रहे थे,
उनकी बातें सुनकर बहुत हंसे वो ।

वे बोले, कठिन है यह विवाह होना,
सहज ही न जाने देगें हम जानकी को,
बिना धनुष तोड़े कौन ब्याह कर सकता,
सीता के लिये जीत लेगें हम काल को ।

यह घमण्ड की बात सुनकर कुछ राजा,
जो धर्मात्मा और सयाने थे मुस्कराये,
बोले दशरथ-पुत्रों को कौन जीत सकता,
ले जाएंगे सीताजी को ब्याह कर ये ।

गाल बजाकर व्यर्थ ही मत मरो,
सीताजी को साक्षात जगज्जननी जान लो,
और श्रीराम का परम-पिता विचारकर,
नेत्र भरकर उनकी मनोहर छवि देख लो ।

शिवजी भी जिन्हें हृदय में बसाये रखते,
वे दोनों भाई आज हैं सामने तुम्हारे,
हमने तो आज जन्म सुफल कर लिया,
अब तुम वही करो, जो मन भाये तुम्हारें ।

ऐसा कहकर हरिभक्त भले राजा,
मग्न हो देखने लगे राम को,
मनुष्यों की तो बात ही क्या है,
देवता भी देखने लगे राम को ।

तुब सुअवसर जानकर जनकजी ने,
बुला भेजा जनकनन्दिनी सीताजी को,
सब चतुर और सुन्दर सखियां,
तुरंत लिवा लाईं वहां उन को ।

रूप और गुणों की खान जानकीजी की,
शोभा का वर्णन नही हो सकता,
तुच्छ लगती हैं उनके लिये सब उपमायें,
क्योंकि मायिक जगत की हैं वो उपमा ।

जिससे तुलना की जा सके उनकी,
जगत में ऐसी स्त्री है कहाँ,
देवताओं की स्त्रियां भी सीताजी का,
क्या मुकाबला कर सकती हैं भला ।

सरस्वतीजी है बहुत अधिक बोलनेवाली,
और आधे ही अंगवाली हैं पार्वतीजी,
रति पति अनंग होने से दुखी रहती है,
और समुद्र से उपजी हैं लक्ष्मीजी ।

विष और मद्द दोनों भाई हैं उनके,
क्योंकि वे भी उपजे उसी समुद्र से,
जिसे मथने हेतु कश्यप बने भगवान,
मन्दराचल को पीठ पर रख सकें जिससे ।

महान विषधर वासुकि नाग को,
रस्सी बना समुद्र को मथा गया,
जो लक्ष्मीजी कहलाती हैं अनुपम सुन्दर,
क्या-क्या उनके लिये न किया गया ।

ऐसे कठिन साधनों से प्रकटी लक्ष्मीजी,
कैसे पा सकती श्रीजानकी की समता,
जग की किस वस्तु या प्राणी की,
भला दी जा सकती सीताजी को उपमा ।

छविरूपी अमृत का समुद्र हो यदि,
जिसमें परम रूपमय कच्छप हो,
शोभारूप रस्सी, श्रृंगार रसरूपी पर्वत,
जिसे स्वयं कामदेव हाथों से मथते हो ।

यदि इस प्रकार का संयोग हो कभी,
जिससे सुंदर, सुख-मूल लक्ष्मीजी प्रकटें,
तब कहीं बड़े संकोच के साथ,
कविजन सीताजी समान कहेंगे उन्हें ।

जिस सुन्दरता के समुद्र को कामदेव मथेगा,
वह सुन्दरता भी प्राकृत, लौकिक होगी,
क्योंकि कामदेव भी है प्रकृति का विकार,
उन द्वारा प्रकटी लक्ष्मी भी लौकिक होगी ।

जानकीजी का विग्रह है परमदिव्य,
लक्ष्मीजी का अप्राकृत रूप भी है यही,
उपमा दी जाती है भिन्न वस्तु के साथ,
पर वे दोनों तो वस्तुतः भिन्न नही ।

मनोहर वाणी से गाती हुईं गीत,
सीताजी को ले साथ चली सखियां,
सभी स्त्री-पुरूष मोहित हो गये,
जब सीताजी ने रंगभूमि में कदम रक्खा ।

हर्षित हो देवताओं ने नगाड़े बजाये,
और अप्सराएं गाने लगीं पुष्प बरसाकर,
सीताजी के करकमलों में जयमाला है,
सब राजा देखने लगे चकित होकर ।

देखने लगीं श्रीराम को चकित हो सीताजी,
तब सब राजा मोह के वश हो गये,
दोनों भाइयों को मुनि के पास बैठा देख,
उनके नेत्र वहीं पर स्थिर हो गये ।

पर गुरूजनों को देख सकुचा गयीं वे,
और सखियों की ओर वो लगीं देखने,
श्रीराम का रूप और सीताजी की छवि देख,
सब स्त्री-पुरूष लगे अपने मन में सोचने ।

हे विधाता ! हर ले जनकजी की मूढ़ता,
और हमारीं सी सुन्दर बुद्धि दे उन्हें,
जिससे राजा अपना प्रण छोड़कर,
सीताजी का विवाह श्रीराम से कर दें ।

अच्छी लगती है यह बात सभी को,
सो सारा संसार कहेगा उन्हें भला,
सब मग्न हो रहे इस लालसा में,
जानकीजी के योग्य है यह वर सांवला ।

तब राजा जनक ने भाटों को बुलाया,
वे विरूददावली गाते हुये चले आये,
राजा ने कहा, मेरा प्रण कहो सबसे,
तो भाट चले, मन में आनन्द मनाये ।

भाटों ने कहा, हे श्रेष्ठ राजाओं,
राजाओं की भुजाओं का बल है चन्द्रमा,
भारी, कठोर, शिवजी का धनुष राहु सा,
आसान नही है उस धनुष को उठाना ।

रावण और बाणासुर से योद्धा भी,
इसे देख चलते बने चुपके से,
जो तोड़ेगा आज इस कठोर धनुष को,
जानकीजी विवाह करेंगी उसी से ।

ललचा उठे सब राजा प्रण सुनकर,
वीरता के अभिमानी मन में तमतमाये,
इष्टदेवों को सिर नवा, चले अकड़कर,
पर वे धनुष को उठा भी न पाये ।

किटकिटाकर पकड़ते हैं धनुष को वे,
जब नही उठता, चले जाते लजाकर,
मानों और अधिक भारी होता जाता है,
वह शिव-धनुष वीरों का बल पाकर ।

तब दस सहस्त्र राजा एक साथ,
प्रयास करने लगे धनुष उठाने का,
पर सती स्त्री के मन की तरह,
वह धनुष किसी से नही डिगता ।

उपहास योग्य हो गये वो सब ऐसे,
जैस वैराग्य बिना सन्यासी हो जाता,
हृदय से हारकर श्रीहीन हो गये वे,
किसी से कुछ करा नही जाता ।

अकुला उठे राजा जनक यह देख,
बोल उठे क्रोध से सने वचन,
बड़े-बड़े राजा और रणबीर आये,
धनुष तोड़ने को, सुनकर मेरा प्रण ।

पर जो धनुष तोड़ दे ऐसा व्यक्ति,
लगता है ब्रह्मा ने बनाया ही नही,
मनोहर कन्या, विजय और सुन्दर कीर्ति,
पाने वाला ब्रह्मा ने रचा ही नही ।

किसको अच्छा लगता नही यह लाभ,
पर किसी ने भी धनुष नही चढ़ाया,
उसे चढ़ाना और तोड़ना तो रहा दूर,
तिल भर भी कोई हिला न पाया ।

कोई वीरता का अभिमानी नाराज न हो,
पृथ्वी वीरों से हो गयी है खाली,
अब आप जाइये अपने-अपने घर को,
ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नही ।

पुण्य-नाश होगा, प्रण छोड़ने से,
सो कुंवारी ही रहेगी मेरी कन्या,
जो जानता पृथ्वी वीरों से शून्य है,
प्रण कर उपहास का पात्र न बनता ।

सब दुखी हुये ये वचन सुनकर,
पर लक्ष्मणजी ये वचन सह न सके,
भौंहें टेढ़ी हो गयीं, ओठ फड़कने लगे,
नेत्र क्रोध से लाल हो गये ।

बाण से चुभे जनकजी के वचन,
श्रीराम-चरणों में सिर नवा बोले,
रघुवंशियों में कोई भी जहां होता है,
वहां ऐसे वचन सोचकर बोलें ।

श्रीरामजी को यहां बैठे जानते हुये भी,
जैसे अनुचित वचन कहे हैं जनकजी ने,
कोई भी रघुवंशी इन्हें सह नही सकता,
और वह भी श्रीरामजी की उपस्थिति में ।

हे सूर्यकुलरूपी कमल के सूर्य ! सुनिये,
स्वभावत: ही कहता हूँ, मैं बिना अभिमान,
यदि आपकी आज्ञा पाऊं तो मैं,
इस ब्रह्माण्ड को उठा लूं गेंद समान ।

फोड़ डालूं कच्चे घड़े सा उसे,
मूली सा तोड़ डालू सुमेरू पर्वत को,
यह पुराना धनुष तो क्या चीज है,
यदि आपकी आज्ञा पाऊं कुछ करने को ।

चढ़ाकर धनुष को कमल की डंडी सा,
दौड़ा जाऊँ सौ योजन उसे लेकर,
हे नाथ ! आपके प्रताप के बल से,
रख दूं कुकरमुत्ते सा धनुष तोड़कर ।

और यदि मैं ऐसा न करुं तो,
हे नाथ ! मुझे है श्रीचरणों की शपथ,
फिर कभी हाथ में भी न लूंगा,
ना ही धनुष मैं, ना ही तरकस ।

क्रोध भरे वचन लक्ष्मण के सुनकर,
धरती डोली, दिग्गज कांप गये,
डरे सब राजा, सीताजी हुई हर्षित,
और जनकजी सकुचाकर रह गये ।

प्रसन्न हुये विश्वामित्रजी और राम,
सब मुनि प्रसन्न हो, लगे पुलकने,
मना किया इशारे से लक्ष्मण को,
और बैठा लिया श्रीराम ने उन्हें ।

शुभ समय जान, प्रेममयी वाणी से,
तब विश्वामित्रजी बोले, हे राम ! उठो,
शिवजी का धनुष तोड़कर, हे तात !
महाराज जनक का सन्ताप हरो ।

शीश नवा तब श्रीगुरू चरणों में,
सहज स्वभाव उठ खड़े हुए राम,
मन में न हर्ष, न कोई विषाद,
युवा-सिंह को भी लजा रहे राम ।

रघुनाथरूपी बालसूर्य के उदय होते ही,
समाप्त हो गयी राजाओं की आशा,
मुनि और देवता सब हर्षित होकर,
करने लगे उन पर फूलों की वर्षा ।

प्रेम सहित गुरू चरणों की वन्दना कर,
मुनियों से आज्ञा ली श्रीराम ने,
फिर चले वे उस मंच की ओर,
मन ही मन प्रार्थना की लोगों ने ।

कहा, यदि कुछ भी पुण्य हों हमारे,
तो श्रीराम तोड़ डालें इस धनुष को,
उधर सीताजी की माता कहने लगीं,
क्यों कोई नही समझाता मुनि को ।

ये राम तो अभी बालक हैं,
अच्छा नही इनके लिये ऐसा हठ,
रावण और बाणासुर जिसे छू न सके,
ये शिव-धनुष है कितना विकट ।

सब राजा हार गये घमंड कर के,
क्या तोड़ पाएंगे उसे ये सुकुमार,
क्या हंस के बच्चे भी कभी,
उठा सकते हैं मन्दराचल पहाड़ ।

और कोई कुछ समझाकर कहे या नही,
पर राजा तो हैं समझदार और ज्ञानी,
लगता है उनका सयानापन भी गया,
विधाता की गति नही जाती है जानी ।

चुप हो गयी जब यह कहकर रानी,
एक चतुर सखी ने कहा समझाकर उन्हें,
गिनना नही चाहिये तेजवान को छोटा,
ज्यों समुद्र सोख दिया अगस्त्य मुनि ने ।

छोटा लगता है सूर्यमण्डल देखने में,
पर हर लेता अन्धकार त्रिलोकी का,
जिसके वश में सब देवता हो जाते,
वह मन्त्र भी होता है अति छोटा ।

महान बल वाले गजराज को भी,
छोटा सा अंकुश कर लेता वश में,
अवश्य ही तोड़ेंगे धनुष को श्रीराम,
कुछ संदेह न लाइये अपने मन में ।

विश्वास हो गया सखी के वचन सुन,
वात्सल्य प्रेम उमड़ आया मन में,
पर भयभीत हृदय से सब देवताओं की,
प्रार्थना कर रहीं सीताजी मन में ।

व्याकुल हो मना रहीं मन में,
हे भवानी-शंकर प्रसन्न होइये,
मुझ पर स्नेह कर अपने धनुष के,
भारीपन को हे नाथ ! हर लीजिये ।

नेत्र भर शोभा देख राम की,
फिर पिता का प्रण कर स्मरण,
मन ही मन वे कहने लगीं,
बहुत कठोर किया पिता ने प्रण ।

कहाँ यह वज्र से भी कठोर धनुष,
कहाँ ये कोमल शरीर किशोर श्यामसुन्दर,
बहुत क्षुब्ध हो उठा मन उनका,
रह न सकीं वे धीरज धर कर ।

सिरस के फूल के कण से भी,
भला कहीं छेदा जाता है हीरा,
लगता है सारी सभा बावली हो गयी,
हे शिव-धनुष ! बस तेरा ही है आसरा ।

तुम अपनी जड़ता लोगों पर डाल,
श्रीराम के अनुरूप हो जाओ हल्के,
इस तरह मन में सन्ताप हो रहा,
हर लव बीत रहा समान युगों के ।

श्रीराम और फिर पृथ्वी की ओर देख,
ऐसे शोभित हो रहे चंचल नेत्र उनके,
मानों चन्द्रमण्डलरूपी डोल में कामदेव की,
दो मछलियों मचल रही खेल-खेल के ।

सीताजी की वाणीरूपी भ्रमरी को,
रोक रक्खा है उनके मुखरूपी कमल ने,
प्रकटती नही लाजरूपी रात्रि को देख,
नेत्रों का जल रूक रहा कोये में ।

अपनी व्याकुलता देख सकुचा गयीं सीजाजी,
पर धीरज धर ले आयीं विश्वास,
यदि सब तरह मेरा प्रण सच्चा है,
और यदि सच्चा है मेरा अनुराग ।

तो सबके हृदय-वासी भगवान,
बनायेंगे दासी मुझे श्रीरघुनाथ की,
सत्य स्नेह जिसका होता जिस पर,
मिलता उसको, कोई सन्देह नही ।

तब देख श्रीराम की ओर सीता ने,
ठान लिया वे होकर रहेंगी उनकी,
जान गये कृपानिधान श्रीराम भी सब,
और धनुष की ओर उन्होनें की दृष्टि ।

उधर जब लक्ष्मणजी ने देखा कि,
धनुष की ओर ताका है राम ने,
तो ब्रह्माण्ड को अपने चरणों से दबा,
पुलकित हो वे लगे ये कहने ।

हे दिग्गजों, कच्छप, शेष और वाराह,
सावधान हो जाओ, मेरी आज्ञा सुनकर,
तोड़ना चाहते हैं धनुष को श्रीराम,
थामें रहो पृथ्वी को धीरज धरकर ।

जब श्रीराम आये धनुष के पास,
लोगों ने देवताओं और पुण्यों को मनाया,
देखा उन्होनें सब लोगों की ओर,
तो उन्हें चित्र-लिखित सा पाया ।

बहुत ही व्याकुल देखा सीताजी को उन्होनें,
क्षण-क्षण बीत रहा उनका कल्प सा,
क्या करेगा अमृत का तालाब भी,
बिना पानी जब मर जाए प्यासा ।

खेत सूखने पर किस काम की वर्षा,
क्या पछताना, बीत गया जब अवसर,
ऐसा सोचा, प्रणाम किया गुरू को,
और धनुष उठा लिया हाथ बढ़ाकर ।

बिजली सा चमककर वह धनुष,
हो गया आकाश में मण्डल जैसा,
लेते, चढ़ाते और खींचते धनुष को,
श्रीरामचन्द्रजी को किसी ने न देखा ।

इतनी फूर्ती से हुआ यह सब,
कि किसी को कुछ पता न लगा,
तभी श्रीरामजी ने तोड़ डाला धनुष,
त्रिलोकी में कठोर शोर भर गया ।

विचलित हो गये सूर्य के घोड़े,
धरती डोलने लगी, दिग्गज लगे चिंघाड़ने,
कलमला उठे शेष, वाराह और कच्छप,
सुर, असुर और मुनि लगे विचारने ।

तुलसीदास कहते हैं, सबको निश्चय हो गया,
कि तोड़ डाला धनुष को श्रीराम ने,
बोलने लगे वे सब श्रीराम की जय,
आनन्द भर गया सबके मन में ।

परशुरामजी के गर्व की गुरूता,
देवता और श्रेष्ठ मुनियों की कातरता,
सीताजी की सोच, जनकजी का पश्चाताप,
और दावानल रानियों के दारूण दुख का ।

शिवधनुषरूपी जहाज पर थे जो चढ़े,
डूब गये श्रीरामजी के बलरूपी समुद्र में,
धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी पर देख,
सुखी हो गये सब लोग पल में ।

सर्वत्र जय-जयकार हो रही राम की,
रंग-बिरंगे फूल बरस रहे नभ से,
भाट और मागध विरूदावली गा रहे,
बज रहे सब ओर मंगल-बाजे ।

सूखते धान पर ज्यों पानी पड़ा,
हर्षित हो गयीं सब रानियां ऐसे,
तैरते-तैरते थके ने ज्यों थाह पा ली,
जनकजी सोच त्यागकर, सुखी हुऐ ऐसे ।

उधर सब राजा ऐसे श्रीहीन हो गये,
जैसे दीपक शोभाहीन हो गये दिन में,
चातकी ने पा लिया हो स्वाती-जल,
ऐसे आनन्दित हो रही सीताजी मन में ।

तब शतानन्दजी ने जब दी आज्ञा,
चलीं सीताजी तब श्रीराम की ओर,
लक्ष्मणजी देख रहे थे श्रीराम को ऐसे,
जैसे चकोर का बच्चा, चन्द्रमा की ओर ।

शोभा अपार, चाल हंसिनी की सी,
चतुर सखियों के संग चलीं सीता,
उनके करकमलों में सुन्दर जयमाला है,
विश्वविजय की जिसमें छायी शोभा ।

तन में संकोच, मन में परम उत्साह,
उनका यह प्रेम जाना न किसी ने,
समीप जा, शोभा देख श्रीराम की,
सीताजी रह गयीं ज्यों लिखी चित्र में ।

उनकी यह दशा देख सखी ने,
कहा, जयमाला पहनाओं श्रीराम को,
यह सुन सीताजी ने उठायी माला,
पर प्रेम विवश पाती हैं खुद को ।

ऐसे सुशोभित हो रहे हैं उनके हाथ,
मानों डंडियों सहित दो कमल खिले हों,
और अत्यंत प्रेमसहित मानों डरते-डरते,
वे चन्द्रमा को जयमाला दे रहें हों ।

श्रीराम के गले में जयमाला देख,
हर्षित हो फूल बरसाने लगे देवता,
और सूर्य को देख कुमुद समूह से,
समस्त राजा गण गये सकुचा ।

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग, तीनों लोकों में,
धनुष टूटने की हो रही चर्चा,
लुटा दिया नगरवासियों ने सब कुछ,
अपने लिये किसी ने कुछ न रक्खा ।

सुन्दर और श्रृंगार रस मिल गये हों,
ऐसे सुशोभित हो रही सीता-राम की जोड़ी,
कोई कैसे कर सकता है वर्णन,
जितनी भी प्रशंसा की जाए, थोड़ी ।

उधर स्वामी के चरण छूने को,
सखियां कह रहीं, पर सीताजी डर रहीं,
स्मरण कर अहल्या की गति का,
अपने हाथों से चरण नहीं छूं रहीं ।

जान कर सीताजी की अलौकिक नीति को,
रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मन में हंसे,
उधर कुछ दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा,
सीताजी को देखकर ललचा उठे ।

कहने लगे वे हमारे जीते-जी,
कौन ब्याह ले जा सकता सीता को,
दोनों राजकुमारों की तो बात ही क्या है,
राजा जनक सहित युद्ध में उन्हें जीत लो ।

ये बाते सुन, कुछ साधु राजा बोले,
तुम्हारी नाक कट गयी धनुष के साथ,
अपनी ईर्ष्या, घमंड और क्रोध के कारण,
क्यों मरना चाहते हो लक्ष्मणजी के हाथ ।

व्यर्थ है तुम्हारा लालच, हे राजाओं,
निष्फल हो रहेगी तुम्हारी यह चेष्टा,
अपना भला चाहते हो तो दूर ही रहो,
लक्ष्मणजी की क्रोधग्नि का बनो न पतंगा ।

कोलाहल सुन शंकित हो गयीं सीताजी,
न जाने विधाता क्या है करने वाले,
उधर लक्ष्मणजी भर उठे क्रोध से,
पर तभी वहां परशुरामजी आ पधारे ।

सकुचा गये सब राजा उन्हें देखकर,
मानों बटेरों ने देख लिया हो बाज,
गौरे शरीर पर फब रही है विभूति,
और त्रिपुण्ड ललाट पर रहा साज ।

सुन्दर मुख लाल हो आया क्रोध से,
भौहें टेढ़ी और आंखें रोष से भरी,
हाथों में धनुष बाण, कांधे पर फरसा,
शान्त वेष पर बहुत कठिन है करनी ।

भय से व्याकुल हो सब राजा,
दण्डवत प्रणाम करने लगे मुनि को,
फिर आकर सिर नवाया जनकजी ने,
और प्रणाम कराया बुलाकर सीताजी को ।

आशीर्वाद दिया सीताजी को परशुरामजी ने,
तुरंत वापस लिवा ले चलीं उन्हें सखियां,
तब विश्वामित्रजी ने दोनों भाइयों को मिलाया,
जिनका रूप देख चकित रह गयीं अखियां ।

फिर सब देखकर, जानते हुऐ भी,
अनजान बन पूछा जनकजी से उन्होनें,
कहो, यह भारी भीड़ कैसी है,
और क्रोध भरने लगा उनके तन में ।

कह सुनाया सब समाचार जनक ने,
सुनकर उन्होनें देखा धनुष की ओर,
धनुष के टुकड़े पड़े थे पृथ्वी पर,
उन्हें देखते ही बोले वे वचन कठोर ।

हे मूर्ख जनक ! बता किसने तोड़ा धनुष,
उसे शीघ्र दिखा, वरना विनाश कर दूंगा,
आज मैं जहां तक तेरा राज्य है,
वहां तक की सारी पृथ्वी उलट दूंगा ।

भय वश कुछ उत्तर नही देते जनक,
बड़ा भय समाया सबके हृदय में,
सीताजी की माता पछता रही हैं, हाय,
बनी-बनायी बात बिगाड़ दी विधाता ने ।

परशुरामजी का स्वभाव सुनकर सीताजी को,
आधा क्षण भी लगा कल्प के समान,
तब बिना हर्ष या विशाद रामचन्द्रजी बोले,
सीताजी और अन्यों को भयभीत जान ।

मासपारायण, नवां विश्राम

हे नाथ ! शिवजी का धनुष तोड़ने वाला,
होगा कोई एक आपका ही दास,
क्या आज्ञा है, क्यों नही कहते मुझसे,
आपके सम्मुख खड़ा है आपका यह दास ।

यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले,
सेवक वह, जो सेवा का करे काम,
सुनो, जिसने यह शिव-धनुष तोड़ा है,
मेरा शत्रु है वह, सहस्त्रबाहु के समान ।

अलग हो जाय वह यह समाज छोड़,
वरना सभी राजा जायेगें मारे,
उनके वचन सुन मुसकराये लक्ष्मणजी,
और उनकी हंसी उड़ाते से वचन उचारे ।

हे गोसाईं ! लड़कपन में हमने,
तोड़ डालीं थी धनुहियां बहुत-सी,
पर आपने कभी क्रोध न किया,
इस धनुष में क्या बात है ऐसी ।

यह सुनकर भृगुवंश की धवजास्वरूप,
परशुरामजी कहने लगे कुपित होकर,
क्या यह धनुष धनुही के समान है,
तुझे होश नही, काल के वश होकर ।

लक्ष्मणजी ने कहा, हे देव ! सुनिये,
हमारे जान में हैं सब धनुष एक से,
पुराने धनुष को तोड़ने में क्या हानि-लाभ,
श्रीराम ने तो देखा नया समझ इसे ।

यह तो बस छूते ही टूट गया,
इसमें कोई दोष नही श्रीराम का,
तब परशुराम फरसे को देखकर बोले,
अरे दुष्ट, तूने मेरा स्वभाव नही सुना ।

मारता नही तुझे मैं बालक जान,
पर क्या तू मुझे निरा मुनि जानता,
बालब्रह्मचारी और अत्यंत क्रोधी मुझे,
क्षत्रियकुल का शत्रु सारा विश्व जानता ।

राजाओं से रहित कर पृथ्वी को,
कितनी बार मैनें ब्राह्मणों को दे डाला,
हे राजकुमार ! देख मेरे इस फरसे को,
मैं ही हूँ सहस्त्रबाहु की भुजाऐं काटने वाला ।

लक्ष्मणजी हँसकर कोमल वाणी से बोले,
मुनि स्वयं को बड़ा योद्धा समझते,
बार-बार कुल्हाड़ी दिखाते हैं मुझे,
फूंक से पहाड़ उड़ाना हैं चाहते ।

यहां कोई कुम्हड़े की बतिया नही है,
जो तर्जनी उंगली देखते ही मर जाती,
कुठार और धनुष-बाण देखकर ही मैने,
ये बातें कुछ अभिमान सहित कहीं थी ।

भृगुवंशी समझ और यज्ञोपवीत देखकर,
सह लेता हूँ मैं बात आपकी,
वरना देवता, ब्राह्मण, भक्त और गौ पर,
हमारे कुल में वीरता दिखायी नही जाती ।

पाप लगता है इन्हें मारने पर,
और अपकीर्ति होती इनसे हारने पर,
सो आपके तो पैरों ही पड़ना चाहिये,
आपके वचन तो भारी हैं वज्र पर ।

धनुष-बाण और कुठार तो आप,
करते हैं यूँ ही व्यर्थ में धारण,
क्षमा कीजिये, हे धीर महामुनि,
कुछ अनुचित कहा जो इनके कारण ।

परशुरामजी क्रोध सहित गम्भीर वाणी से बोले,
बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है ये बालक,
उद्दण्ड, मूर्ख, निडर और कुल कलंक है,
बन रहा है अपने कुल का घातक ।

फिर दोष न देना कहता हूँ पुकारकर,
काल की भेंट चढ़ेगा यह पल में,
यदि इसे तुम चाहते हो बचाना तो,
हमारा बल और क्रोध बतला दो इसे ।

लक्ष्मणजी बोले, हे मुनि ! आपका सुयश,
आपके रहते भला कौन सकता बतला,
अपने ही मुंह से आपने अपनी करनी,
अनेकों प्रकार से हमें दी है बतला ।

इतने पर भी यदि संतोष न हो,
तो फिर और कुछ कह डालिये,
गाली देते आप शोभा नही पाते,
क्रोध रोककर असह्य दुख मत सहिये ।

शूरवीर तो युद्ध में करनी करते,
खुद कहकर अपने को नही जनाते,
शत्रु को युद्ध में सम्मुख पाकर,
कायर ही अपनी गाथायें सुनाते ।

लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनते ही,
परशुरामजी ने फरसा ले लिया हाथ में,
फिर बोले यह बालक मारने ही योग्य है,
अब लोग मुझे कोई दोष न दें ।

तब विश्वामित्रजी बोले, क्षमा कीजिये,
बालकों के गुण-दोष साधु नही गिनते,
परशुरामजी बोले, तुम्हारे शील के ही कारण,
अब तक प्राण बचें हैं इसके ।

उधर विश्वामित्रजी ने हृदय में सोचा,
मुनि को सूझ रहा है हरा-ही-हरा,
श्रीराम-लक्ष्मण को क्या समझ रहें हैं,
इनका प्रभाव नही जानते वे जरा ।

लक्ष्मणजी बोले आपका शील, हे मुनि !
कौन नही जानता इस संसार भर में,
माता-पिता से तो उऋण हो गये आप,
गुरू का ऋण बचा आपके जी में ।

वह मानों हमारे ही मत्थे काढ़ा था,
बहुत दिन हुए, सो पूरा कर लीजिये,
फरसा उठा लिया परशुरामजी ने यह सुन,
सारी सभा कहने लगी, ऐसा मत किजिये ।

लक्ष्मणजी बोले, हे राजाओं के शत्रु,
मैं ब्राह्मण समझ तरह दे रहा आपको,
हे ब्राह्मण देवता ! आप घर में ही बड़े हैं,
रणधीर बलवान वीर नही मिले आपको ।

आहूति के समान, लक्ष्मणजी के उत्तर से,
परशुराम की क्रोधाग्नि बढ़ती देखकर,
श्रीराम जल के समान शीतल वचन बोले,
हे नाथ ! कृपा कीजिये बालक पर ।

यदि यह आपका कुछ भी प्रभाव जानता,
तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता,
बालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं,
तो आनन्द ही मनाते हैं गुरू, माता-पिता ।

कुछ ठंडे पड़े परशुरामजी यह सुनकर,
पर लक्ष्मणजी कुछ कह, फिर हँस दिये,
हे राम ! यह तेरा भाई बड़ा पापी है,
यह कह परशुरामजी क्रोध से भर गये ।

तब लक्ष्मणजी फिर हँसकर बोले,
हे मुनि ! क्रोध है मूल पाप का,
क्रोधवश मनुष्य क्या नही कर देता,
और अहित करता है वह सबका ।

हे मुनिराज ! यह टूटा हुआ धनुष,
जुड़ नही जाएगा क्रोध करने से,
यदि यह आपको अत्यंत प्रिय हो,
तो जुड़वाया जाये किसी कुशल कारीगर से ।

थर-थर कांप रहे सब स्त्री-पुरुष,
सोच रहे छोटा कुमार है खोटा,
निर्भय वाणी सुन-सुनकर मुनि का,
क्रोध से बल क्षीणतर होता ।

तब श्रीरामचन्द्रजी पर एहसान जनाकर,
मुनि बोले, तेरा भाई समझ बचा रहा,
मन का मैला, शरीर से सुन्दर,
ज्यों सोने का घड़ा हो विष भरा ।

यह सुनकर फिर हंसे लक्ष्मणजी,
तो श्रीरामजी ने देखा तिरछी नज़र से,
जिससे सकुचा विपरीत बोलना छोड़कर,
लक्ष्मणजी चले गये पास गुरू के ।

फिर हाथ जोड़ श्रीराम ने कहा,
हे नाथ ! आप तो हैं स्वभाव से सुजान,
बालकों को संतजन दोष नही देते,
उसकी बातों पर मत दीजिये कान ।

फिर उसने तो कुछ काम न बिगाड़ा,
हे नाथ ! अपराधी तो मैं हूँ आपका,
सो कृपा, क्रोध, वध और बन्धन,
जो करना हो, कीजिये इस दास का ।

मुनि बोले, कैसे जाये यह क्रोध,
ताक रहा तेरा भाई अब भी टेढ़ा,
इसकी गर्दन पर जो कुठार न चलाया,
तो क्रोध करके किया ही क्या ।

जिस कुठार की घोर करनी सुनकर,
राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते,
इस शत्रु राजपुत्र को जीवित देख रहा,
इसी फरसे के हाथों में रहते ।

क्रोध से जल रही है छाती,
पर कुठार कुण्ठित, हाथ नही चलता,
विधाता मेरे विपरीत हो गया,
वरना मेरे स्वभाव में नही दया ।

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा सिर नवा,
आपके वचन मानों फूल झड़ रहे,
यदि कृपा करने से तन जलता है,
तो फिर क्रोध करने पर कौन कहे ।

परशुरामजी ने कहा, हे जनक ! देख,
यह बालक मेरे हाथों मरना ही चाहता,
देखने में छोटा, पर खोटा है बहुत,
मेरे सामने से इसे क्यों नही हटाता ।

फिर हृदय में अत्यंत क्रोध भर,
श्रीराम से बोले मुनि परशुराम,
अरे शठ ! शिवजी का धनुष तोड़कर,
तू हमें ही सिखाता है ज्ञान ।

बोल रहा है निर्भय हो कटु वचन,
तेरा यह भाई तेरी ही सम्मति से,
तू छल से पर करता है विनय,
युद्ध कर या राम कहाना छोड़ दे ।

अरे शिवद्रोही ! मुझसे युद्ध कर,
नही तो भाई सहित मार डालूंगा तुझे,
यूँ कुठार उठाये बक रहे परशुराम,
और श्रीराम सिर झुकाये सुन रहे ।

मन ही मन सोच रहे श्रीराम,
दोष लक्ष्मण का और क्रोध मुझ पर,
कहीं-कहीं सीधेपन में भी होता दोष,
वन्दना करते हैं लोग टेढ़ा जानकर ।

तब श्रीराम ने कहा, हे मुनीश्वर,
आपका कुठार, और यह सिर है मेरा,
जिस प्रकार आपका क्रोध जाये, हे स्वामी,
वही कीजिये, जानकर मुझे अपना चेरा ।

कैसा युद्ध स्वामी और सेवक में,
हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! त्याग कीजिये क्रोध का,
आपका वीरों का सा वेष देखकर ही,
बालक ने कुछ कह डाला था ।

नाम तो जानता था वह आपका,
पर पहचाना नही उसने आपको,
अपने वंश रघुवंश के स्वाभावानुसार ही,
उसने कुछ कहा-सुना आपको ।

यदि आते आप मुनि की तरह,
तो आपकी चरण-धूलि सिर पर रखता,
अनजाने की भूल क्षमा कर दीजिये,
ब्राहमणों के हृदय में होनी चाहिये दया ।

हे नाथ ! कैसी बराबरी हमारी-आपकी,
कहिये कहाँ चरण और कहाँ मस्तक,
कहाँ मेरा छोटा सा राम मात्र नाम,
कहाँ आपका बड़ा नाम परशु सहित ।

हे देव ! हमारा बस एक गुण-धनुष,
और परम-पवित्र नौ गुण* हैं आपके,
हम तो सब तरह आपसे हारे हैं,
क्षमा कीजिये सब अपराध हमारे ।

बार-बार मुनि और विप्रवर कहने पर,
क्रोधित हो वे बोले तू भी है टेढा,
तू मुझे समझता है बस निरा ब्राह्मण,
अभी भ्रम दूर किये देता हूँ तेरा ।

धनुष को स्रुवा, बाण को आहूति,
और भयंकर अग्नि जान मेरे क्रोध को,
चतुरंगिणी सेनाएं सुन्दर समिधाएं,
और बलि के पशु जान राजाओं को ।

इसी फरसे से काटकर दी बलि,
ऐसे करोड़ो जपयुक्त रणयज्ञ किये मैने,
मेरा प्रभाव तुझे मालूम नही है,
इसी से अब तक निरादर किया तूने ।

शिव धनुष को तोड़ डाला तूने,
इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया,
ऐसा अहंकार समाया तेरे मन में,
मानो सारा संसार जीतकर हो खड़ा ।

श्रीराम बोले, विचारकर बोलिये हे मुनि !
मेरी भूल छोटी, बडा क्रोध आपका,
छूते ही टूट गया पुराना धनुष,
अभिमान करूँ मैं किस बात का ।

यदि सचमुच ब्राह्मण कह करते हैं निरादर,
तो हे भृगुनाथ ! सुनिये यह सच,
फिर संसार में ऐसा कौन योद्धा है,
जिसे डर के मारे हम नवायें मस्तक ।

देवता, दैत्य या कोई भी हो योद्धा,
हमारे बराबर, चाहे हमसे बलवान हो,
लड़ेंगे सुखपूर्वक जो कोई भी ललकारे,
चाहे सामने हमारे स्वयं काल हो ।

क्षत्रिय तन धर, डर गया युद्ध में,
कलंकित किया अपने कुल को उसने,
स्वभावत: कहता हूँ, कुल प्रशंसा को नही,
काल से भी नही डरते रघुवंशी रण में ।

ऐसी ही प्रभुता है ब्राह्मणवंश की,
जो आपसे डरता, सवर्था निर्भय हो जाता,
सुनकर उनके रहस्य से भरे वचन,
खुल गया परशुरामजी की बुद्धि का पर्दा ।

वे बोले विष्णु-धनुष हाथ में लेकर,
हे लक्ष्मीपति ! दूर कीजिये मेरा भ्रम,
जब वे देने लगे हाथ में धनुष,
स्वत: चला गया धनुष, बिना परिश्रम ।

नौ गुण:- शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता

बड़ा आश्चर्य हुआ उनके मन में,
और जाना उन्होनें श्रीराम का प्रभाव,
पुलकित और प्रफुल्लित हो गया तन,
हृदय में उमड़ आया प्रेम-भाव ।

बहुत स्तुति-विनती कर प्रभु की,
कहने लगे, आपकी जय हो, जय हो,
हे क्षमा की मूर्ति, बल के धाम,
दोनों भाइयों की, जय हो, जय हो ।

फिर चल दिये तप हेतु वन को,
दुष्ट राजा भी भाग गये डर कर,
देवता, स्त्री-पुरूष सब हर्षित हो गये,
मोहमय अज्ञान से गये उबर ।

अपार प्रसन्नता हुई जनकजी को,
मानो जन्म का दरिद्री पा गया खजाना,
सीताजी निडर हो, सुखी हुई ऐसे,
ज्यों चकोर की कन्या, देख चन्द्रमा ।

फिर विश्वामित्रजी को प्रणाम कर बोले जनक,
प्रभु कृपा से तोड़ा धनुष श्रीराम ने,
दोनों भाइयों ने मुझे कृतार्थ कर दिया,
अब जो उचित हो, सो कहिये हमें ।

मुनि ने कहा, हे चतुर नरेश ! सुनो,
यों तो विवाह धनुष के अधीन था,
मनुष्य और नाग सबको मालूम है,
धनुष के टूटते ही विवाह हो गया ।

तथापि तुम जाकर, गुरूजनों से पूछकर,
जैसा कुल का व्यवहार हो, सो करो,
और जाकर अयोध्या को दूत भेजो,
महाराज दशरथ को निमंत्रित करो ।

राजा जनक ने किया वैसा ही,
तुरंत दूत बुलाकर कहा अयोध्या जायें,
फिर नगर के सब महाजनों को बुलाकर,
कहा, सारे नगर को सुन्दरता से सजायें ।

फिर कुशल कारीगरों को बुलाकर,
अति सुन्दर विवाह मण्डप बनवाया,
सोना, मणि, माणिक से बना मण्डप,
अति विचित्र, सबके मन को भाया ।

ऐसे सुंदर और उत्तम बंदनवार बनाये,
मानों कामदेव ने सजाये हों फंदे,
अनेको मंगल-कलश, सुंदर ध्वाजा-पताका,
सुन्दर चंवर और परदे रंग-बिरंगे ।

जिस मंडप में दुल्हिन हो श्रीजानकी जी,
कौन कवि उसका वर्णन कर सकता,
रूप और गुण-सागर, श्रीराम दुल्हा हों,
होनी ही चाहिये उसकी त्रिलोक में चर्चा ।

जनकजी के महल की शोभा है जैसी,
वैसी ही दिखती है प्रत्येक घर में,
क्या वर्णन की जा सकती वहां की शोभा,
साक्षात् लक्ष्मीजी जहां प्रकटी स्त्री वेश में ।

उधर दूत पवित्र पुरी अयोध्या पहुंचे,
प्रणाम कर महाराज को दिया पत्र,
महाराज दशरथ के हृदय में राम-लक्ष्मण,
और हाथ में उनके वह निमंत्रण-पत्र ।

धीरज धरकर पत्रिका पढ़ी उन्होनें,
सारी सभा हर्षित हो उठी सुनकर,
भरत और शत्रुघ्न दोनो भाई भी,
तुरंत वहां आ पहुंचे समाचार सुनकर ।

पुलकित हो उठे दोनों भाई,
सभा सुखी हुई भरतजी का प्रेम देखकर,
राजा कुशलक्षेम पूछने लगे पुत्रों का,
दूतों को अपने पास बैठाकर ।

दूतों ने कहा, हे राजाओं के मुकुटमणि !
और कोई नही है धन्य आपके समान,
राम और लक्ष्मण जैसे जिनके पुत्र हैं,
त्रिलोकी के प्रकाशस्वरूप, पुरूषसिंह समान ।

हे नाथ ! उनके लिये आप पूछते हैं,
महाराज जनक ने उन्हें कैसे पहचाना,
क्या सूर्य को देखने के लिये,
चाहिये दीपक का हाथ में लिया जाना ।

सीताजी के स्वयंवर में हुऐ थे एकत्र,
राजा और योद्धा एक से एक बढ़कर,
पर शिव-धनुष कोई हटा न सका,
बैठ गये थे सब थक-हार कर ।

सुमेरू तक उठा सकने वाला बाणासुर,
हृदय में हार, परिक्रमा कर चला गया,
उठा लिया था जिसने खेल में ही कैलास,
वह रावण भी सभा में हार गया ।

जहां ऐसे-ऐसे योद्धा भी हार गये,
वहां श्रीरामचन्द्रजी ने बिना प्रयास के,
शिवजी के धनुष को ऐसे तोड़ डाला,
जैसे हाथी कमल की डंडी तोड़ दे ।

क्रोध में भरकर परशुरामजी आये,
बहुत प्रकार से सबको डराया-धमकाया,
पर श्रीरामजी का बल और प्रभाव देख,
अपना धनुष दे, वन को कदम बढ़ाया ।

हे राजन ! श्रीरामजी जैसे अतुलनीय बली हैं,
वैसे ही तेजनिधान है लक्ष्मणजी भी,
जिनके देखने मात्र से कांप उठते थे राजा,
ज्यों सिंहशावक के ताकने से कांपते हाथी ।

आपके दोनों बालकों को देखने के बाद,
हमारी दृष्टि पर कोई चढ़ता ही नही,
प्रेम, प्रताप और वीर-रस में पगी हुई,
उनकी वचन रचना सबको बहुत प्रिय लगी ।

प्रेममग्न हो गये राजा सभा सहित,
और देने लगे दूतों को निछावर,
अपने हाथों से दूत मूंदने लगे कान,
इसे नीतिविरूद्ध जान और धर्म विचारकर ।

तब राजा ने वसिष्ठजी को दी पत्रिका,
दूतों को बुला सारी कथा सुनवायी उन्हें,
प्रसन्न हो तब गुरू वसिष्ठजी ने कहा,
पुण्यात्मा के लिये सुख सब दिशा में ।

उस पत्रिका को हृदय से लगाकर,
सब शीतल कर रहीं अपनी छाती को,
बारंबार वर्णन किया महाराज दशरथ ने,
श्रीराम-लक्ष्मण की कीर्ति और करनी को ।

जैसे नदियां समुद्र की ओर जाती हैं,
यद्यपि समुद्र को इसकी कामना नही होती,
वैसे ही सुख-सम्पत्ति बिना बुलाये ही,
धर्मात्मा पुरूष के पास स्वत: आ जाती ।

यह सब कृपा है मुनि की,
यह कह महाराज चले आये बाहर,
ब्राह्मणों और भिक्षुओं को दान दिये,
रानियों ने श्रृद्धा और आदर से बुलाकर ।

गुरू, ब्राह्मण, गाय और देवता की,
जैसे तुम हो सेवा करने वाले,
वैसी ही कोसल्या देवी भी हैं,
तुम्हारे समान नही कोई पुण्य वाले ।

सब लोगों ने जब यह समाचार पाया,
तब घर-घर होने लगे बधावे,
चौदहों लोकों में उत्साह भर गया,
लोग लगे घर और गलियां सजाने ।

राम-सरीखे पुत्र हैं जिसके,
चारों बालक गुणों के सागर,
सभी कालों में है कल्याण तुम्हारा,
अत: बारात सजाओ डंका बजवाकर ।

श्रीरामजी की मंगलमयी पवित्र पुरी होने से,
यद्यपि अयोध्या नगरी है सदा सुहानी,
तथापि प्रीति-पर-प्रीति होने से,
सुंदर मंगलरचना से नगरी हुई और सुहानी ।

गुरूजी की आज्ञा शिरोधार्य कर,
राजा चले सिर नवा, महल में,
सारे रनिवास को पत्रिका बांचकर सुनायी,
सुनकर सभी प्रफुल्लित हुई प्रेम में ।

ध्वजा, पताका, परदे और चवंरों से,
सारा बाजार अनूठे ढंग से सजाया,
दूब, दही, अक्षत, हल्दी, मणियों, मालाओं से,
घरों को सजाकर मंगलमय बनाया ।

ऐसे सुशोभित हो रही हैं रानियां,
जैसे मोरनी बादलों की गरज सुनकर,
माताएं अत्यंत मग्न हैं आनन्द में,
बड़ी-बूढियां आशीर्वाद दे रही प्रसन्न होकर ।

सुहागिन स्त्रियां सोलह श्रृंगार सजाकर,
मंगलगीत गा रहीं मनोहर वाणी से,
कहीं ब्राह्मण कर रहे हैं वेद ध्वनि,
उत्साह उमड़ रहा सारे महल से ।

फिर भरतजी को बुला कहा राजा ने,
घोड़े-हाथी सजा, चलो बारात में,
यह सुनते ही भरतजी और लक्ष्मणजी,
दोनों भाई भर गये पुलक में ।

कसीं गई जीनें उत्तम घोड़ों पर,
वे घोड़े जिनकी चाल है सुन्दर,
धरती पर ऐसे पैर रखते हैं वो,
जैसे रखते हों जलते लोहे पर ।

छैल-छबीले और युवा राजकुमार,
चले सवार हो उन घोड़ों पर,
शूरों का वेष धारण किये वीर,
आ खड़े हुए नगर के बाहर निकलकर ।

सूर्य के रथ की शोभा छीन लें,
सारथियों ने ऐसे विलक्षण रथ सजाये,
अगणित श्यामवर्ण घोड़े जोते गये उनमें,
जिन्हें देख मुनि भी मोहित हो जायें ।

चलते जल पर भी जमीन की तरह,
वेग से टाप पानी पर टिकती नही,
रथों पर चढ़-चढ़कर चली बारात,
सुन्दर शकुन हो रहे हर कहीं ।

श्रेष्ठ हाथियों पर पड़ी सुंदर अंबरिया,
वे मतवाले हाथी चले घंटी बजाते,
ऐसे सुशोभित हो रहे थे वे सब,
जैसे सावन में बादलों के समूह गरजते ।

सुन्दर पालकियां, तामजान और रथ आदि,
अनेक प्रकार की सवारियां सजायी गयी,
श्रेष्ठ ब्राह्मणों के समूह चढ़े उन पर,
मानों चल रहे साक्षात वेदों के छन्द ही ।

मागध, सूत, भाट और गुण गानेवाले,
चले यथायोग्य सवारी पर चढ़कर,
अगणित खच्चर, ऊंट और बैल,
चले तरह-तरह की वस्तुएं लादकर ।

करोड़ों कांवरें लेकर चले कहार,
अनेक प्रकार की वस्तुएं थी जिनमें,
सबके हृदय में अपार हर्ष है,
प्रभु-दर्शन की लालसा हृदय में ।

इतनी भारी भीड़ हो रही है,
महाराज दशरथ के दरवाजे पर,
यदि वहां पत्थर भी फेंका जाय,
तो धूल हो जाय पिस कर ।

मनोहर गीत गा रही हैं स्त्रियां,
कौन बखान कर सकता उनके आनन्द का,
तभी सुमन्त्रजी दो रथ सजा लाये,
उनकी सुन्दरता कौन वर्णन कर सकता ।

राजसी समान सजाया गया एक रथ पर,
और दूसरा तेजपूंज और अति शोभायमान था,
उस सुन्दर रथ पर महाराज दशरथ ने,
हर्षपूर्वक गुरू वसिष्ठजी को बिठलाया ।

दशरथजी सुशोभित हो रहे वसिष्ठजी के साथ,
ज्यों बृहस्पतिजी के साथ इन्द्र हों,
तब सबको सब प्रकार सजा-धजा देख,
गुरू की आज्ञा पा चल दिये वो ।

गरजने लगे घोड़े और हाथी,
सब तरफ बाजे बजने लगे,
पैदल सेवक और विदूषक गण,
अपने-अपने करतब दिखाने लगे ।

मृदंग और नगाड़ों के शब्दों पर,
सुन्दर राजकुमार घोड़ों को नचा रहे,
डिगते नही वे ताल के बंधान से,
चतुर नट भी चकित हो देख रहे ।

वर्णन से परे बनी है बारात,
सुन्दर शुभदायक शकुन हो रहे,
बायीं ओर नीलकंठ पक्षी चारा ले रहा,
सब शुभ-मंगलों की सूचना दे रहे ।

दाहिनी ओर कौआ दिख रहा खेत में,
नेवले का दर्शन भी सब पा रहे,
शीतल, मन्द, सुगंधित हवा चल रही,
बालकों को लिये स्त्रियां ला रही भरे घड़े ।

और भी बहुत से शुभ शकुन हो रहे,
सभी सच्चे होने को एक साथ हो गये,
स्वयं सगुण ब्रह्म जिसके हो गये पुत्र,
उसको सब मंगल शकुन सुलभ हो गये ।

जहां श्रीराम-सीता से दुल्हा-दुल्हिन,
और दशरथ, जनकजी से संबंधी हों,
वहां सारे शकुन सच्चे होने को,
भला क्यों न स्वत: ही प्रकट हों ।

इस तरह बारात ने किया प्रस्थान,
और जनकजी ने जाना दशरथजी का आना,
नदियों पर पुल, सुन्दर पड़ाव बनवा दिये,
स्वर्ग का सा सुख बारातियों ने जाना ।

मासपारायण, दसवां विश्राम

सुनकर जोर से बजते नगाड़े,
अगवानी करने वाले, बारात लेने चले,
सोने के कलश भर शीतल पेय,
और भांति –भांति के पकवान ले चले ।

उत्तम फल तथा अन्य अनेक वस्तुएं,
राजा ने हर्षित हो भेंट के लिये भेजीं,
गहने कपड़े, नाना प्रकार की मणियां,
घोड़े, हाथी, सवारियां और पशु-पक्षी ।

मंगल द्रव्य और अगणित प्रकार की चीजें,
कांवरों में भर-भरकर चले कहार,
बाराती और अगवानी करने वाले मिले जब,
आनन्दित हो एक दूसरे को रहे निहार ।

रखी गयी सब चीजें दशरथजी के आगे,
और अत्यन्त प्रेम से की विनती उनसे,
प्रेमसहित सब वस्तुएं ली दशरथजी ने,
फिर याचकों को उन्होनें दी बख्शीशें ।

तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई कर,
अगवान जन जनवासे ले चले उन्हें,
विलक्षण वस्त्रों के पांवड़े पड़ रहे हैं,
अभिमान छोड़ दे कुबेर देखकर जिन्हें ।

बड़ा सुन्दर था वह जनवासा,
सब प्रकार की सुविधायें थीं वहां,
तब सीताजी ने सब सिद्धियां बुलाकर,
प्रकट कर दिखलायी अपनी कुछ महिमा ।

भेजा उन्हें महाराज दशरथजी की मेहमानी हेतु,
सब सिद्धियां चल दीं आज्ञा सुनकर,
बाराती करने लगे जनकजी की बड़ाई,
जनवासों में सब सुख सुलभ देखकर ।

सीताजी की महिमा और प्रेम पहचान,
बहुत हर्षित हुए श्रीरघुनाथ हृदय में,
फिर पिता के आने का समाचार जान,
उनके दर्शनों की लालसा उठी मन में ।

पर संकोचवश कुछ कह नही सकते थे,
यह देख बहुत संतोष हुआ मुनि को,
उनकी नम्रता देख, अत्यंत प्रसन्न हो,
हृदय से लगा लिया दोनों भाइयों को ।

ले चले वे उन्हें दशरथजी के पास,
मानों सरोवर प्यासे की ओर चला हो,
जब पुत्रों सहित मुनि को आते देखा,
उठ चले दशरथजी अत्यंत प्रसन्न हो ।

मुनि की चरणधूलि सिर पर चढ़ा,
बारंबार प्रणाम किया मुनि को उन्होनें,
राजा को उठा कर हृदय से लगा,
आशीर्वाद दे, कुशल पूछी मुनि ने ।

फिर राम-लक्ष्मण को दण्डवत करते देख,
राजा के हृदय में सुख अति अधिकाया,
मृतक को ज्यों प्राण मिल गये हों,
राजा ने वियोग का दुसह दुःख मिटाया ।

फिर चरणों में सिर नवा वसिष्ठजी के,
दोनों भाइयों ने पाया आशीर्वाद उनसे,
फिर सब ब्राह्मणों की वन्दना कर,
मन भाये आशीर्वाद पाये उन्होनें उनसे ।

भरत-शत्रुघ्न ने प्रणाम किया श्रीराम को,
श्रीराम ने लगा लिया उन्हें हृदय से,
लक्ष्मणजी दोनों भाइयों को देख हुए हर्षित,
प्रेम से भर वे मिले उनसे ।

फिर सबसे यथायोग्य मिले श्रीराम,
सब शीतल हुए श्रीराम से मिलकर,
चारों पुत्र अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष से,
शोभा पा रहे राजा के पास बैठकर ।

अगवानी में आये हुए शतानन्दजी आदि,
राजा की आज्ञा ले वापस लौटे,
बारात के पहले आ जाने से जनकपुरवासी,
चाह रहे दिन-रात हो जायें बड़े ।

सभी स्त्री-पुरूष इकट्ठा हो कह रहे,
श्रीराम-सीता हैं सुन्दरता की सीमा,
और दोनों राजा जनकजी और दशरथजी,
वे दोनों हैं पुण्य की सीमा ।

जानकीजी हैं जनकजी की पूण्य की मूर्ति,
और दशरथजी के सुकृत सदेह रामजी,
इनके समान किसी ने फल न पाये,
न अराधना इनके समान की शिवजी की ।

हुआ न इनके समान कोई जगत में,
न कोई कहीं, न होने का ही,
हम सब भी पुण्यों की राशि हैं,
जो जनकपुर के हम हुए निवासी ।

होगा कौन हम जैसा पुण्यात्मा,
देखा जिन्होनें जानकी और श्रीराम को,
अब हम देखेंगे इनका विवाह,
और सफल करेंगे अपने नेत्रों को ।

स्त्रियां आपस में कह रहीं हैं,
जनकजी बार-बार बुलायेंगे सीता को,
हम तब-तब इनके दर्शन पायेंगे,
जब दोनों भाई आयेंगे उन्हें लेने को ।

हे सखी ! इन दोनों के जोड़े जैसे,
दो और कुमार हैं राजा के साथ,
वे दोनों भी इनते ही सुन्दर हैं,
मानों ब्रह्मा ने संवारा उन्हें अपने हाथ ।

तुलसीदास, कवि और विद्वान कहते हैं,
इनकी उपमा कहीं कोई नहीं,
बल, विनय, विद्या, शील और शोभा के,
सागर इनके समान है ये स्वयं ही ।

मना रहीं सब स्त्रियां आंचल फैलाकर,
चारो भाई ब्याहे जाएं इसी नगर में,
त्रिपुरारी शिवजी सब मनोरथ पूरा करेंगे,
सब विनती कर रहीं अपने मन में ।

कुछ दिन बाद लग्न का दिन आ गया,
हेमन्त ऋतु और सुहावना महीना अगहन का,
ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और श्रेष्ठ वार,
मुहूर्त शोधकर ब्रह्माजी ने विचार किया ।

लग्नपत्रिका लिख भेजी जनकजी के यहां,
वही मुहूर्त वहां भी शोधा गया था,
गोधुलि की पवित्र बेला जब आ गयी,
जनकजी ने शतानन्दजी आदि को भेजा ।

सब लोग लेने चले बारात को,
गये वहां जहां पर जनवासा था,
अवधपति दशरथजी का समाज देखकर,
देवराज इन्द्र का भी तुच्छ सा लगा ।

विनती की उन्होनें राजा से चलने की,
गुरू आज्ञा ले चल दिये राजा,
देवगण सुन्दर मंगल का अवसर जान,
फूल बरसाते हैं नगाड़े बजा-बजा ।

चले अपने-अपने विमानों पर चढ़कर वो,
उत्साह में भर श्रीराम का विवाह देखने,
जनकपुर देख इतने अनुरक्त हो गये देवता,
अपने-अपने लोक लगे बहुत तुच्छ लगने ।

विचित्र मण्डप और अलौकिक रचनाएं,
देख रहे हैं वो चकित होकर,
नगर के स्त्री-पुरूष रूप के भण्डार,
सुशील, सुजान, श्रेष्ठ धर्मात्मा और सुघड़ ।

उन्हें देख प्रभाहीन हो गये देवी-देवता,
जैसे तारे हो जाते चन्द्रमा के सामने,
अपनी तो उसमें कोई करनी न देख,
बहुत ही आश्चर्य माना स्वयं ब्रह्मा ने ।

तब शिवजी ने सब देवताओं को समझाया,
मत भूलो तुम लोग आश्चर्य में,
यह श्रीसीताजी और श्रीरामजी का विवाह है,
धीरज रख विचार तो करो हृदय में ।

जिनका नाम मात्र लेने से ही,
सारे अमंगलों की जड़ कट जाती,
चारों पदार्थ मुट्ठी में आ जाते,
ये वही जगत माता-पिता है श्रीसीतारामजी ।

इस प्रकार देवताओं को समझाकर शिवजी,
चले आगे बढ़ाकर अपने नन्दीश्वर को,
उधर देवताओं ने दशरथजी को देखा,
पुत्रों सहित प्रसन्न मन जा रहे थे वो ।

साधुओं और ब्राह्मणों की मण्डली,
ऐसी शोभा दे रही थी साथ उनके,
मानों सेवा कर रहें हो उनकी,
समस्त सुख शरीर धारण कर के ।

चारों पुत्र साथ में सुशोभित हैं ऐसे,
मानो सम्पूर्ण मोक्ष हों शरीर धरे,
श्रीराम की सुन्दर छवि को देख,
पार्वतीजी सहित चले शिवजी पुलक से भरे ।

श्याम शरीर और रूप मनोहर,
पीत वस्त्र जो बिजली को लजाते,
शरत्पूर्णिमा के निर्मल चन्द्रमा सा मुखड़ा,
श्रीराम चले विवाह के आभूषण सजाके ।

दिव्य, सच्चिदानन्दमयी अलौकिक सुन्दरता,
देखते ही जो लुभा ले मन को,
भाइयों सहित चले जा रहे श्रीराम,
नचाते हुए अपने चंचल घोड़ों को ।

सरस्वती भी वर्णन कर नही सकती,
जिस घोड़े पर हैं श्रीराम सवार,
मानों कामदेव स्वयं अश्व बन गये हों,
सबका मन मोह रहा इस प्रकार ।

श्रीरामचन्द्रजी के दिव्य रूप पर,
ऐसे अनुरक्त हुए महादेव शिवजी,
अपने पन्द्रह नेत्र लगने लगे प्यारे,
जी भर कर देख रहे उन्हें शिवजी ।

श्रीरामचन्द्रजी की अनुपम शोभा देख,
लक्ष्मीजी सहित विष्णुजी मोहित हो गये,
पर ब्रह्माजी अपने केवल आठ नेत्र जान,
उन्हें जी भर देखने को प्यासे रह गये ।

देवताओं के सेनापति स्वामी कार्तिकेय,
देख रहे उन्हें अपने बारह नेत्रों से,
गौतमजी के शाप को परम हितकारी मान,
देवराज इन्द्र देख रहे हजार नेत्रों से ।

देवगण प्रसन्न, राजाओं का समाज हर्षित हो,
कह रहा श्रीराम की जय हो, जय हो,
ऐसी अलौकिक बारात और दिव्य दुल्हा देख,
वे सब कह रहे, जय हो, जय हो ।

रानी सुहागिन स्त्रियों को बुलाकर,
परछन के लिये मंगलद्रव्य लगीं सजाने,
गज-गामिनी, चन्द्रमुखी सुन्दर स्त्रियां,
अपने गान से लगी कोयल को लजाने ।

सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और सयानी देवांगनाएं,
स्त्री वेष धर जा मिली रनिवास में,
सब कोई हर्ष के विशेष वश है,
सो किसी ने भी न पहचाना उन्हें ।

श्रीरामजी को दुल्हें के रूप में देख,
जैसा आनन्द हुआ सुनयनाजी के मन में,
हजारों सरस्वती और शेषजी भी,
उस आनन्द का वर्णन नही कर सकते ।

पंचशब्द, पंचध्वनि और मंगलगान हो रहे,
और बरस रहे हैं फूल गगन से,
इस प्रकार श्रीरामजी मण्डप में आये,
सब आनन्दित हो रहे उनके दर्शन से ।

आसन पर बैठा और आरती कर,
धन-धान्य निछावर कर रहीं स्त्रियां,
ब्रह्मा आदि देवता कौतुक देख रहे,
श्रेष्ठ ब्राह्मणों का सा वेष बना ।

नाई, बाटी, भाट और नट,
निछावर पा, झुककर आशीष दे रहे,
लौकिक और वैदिक सब नितियां निभा,
दोनों राजा प्रेम से गले मिल रहे ।

फूल बरसाते यश गा रहे देवता,
ऐसा विवाह आज तक नही देखा,
सब प्रकार से समान, साज-समाज,
और बराबरी के समधियों को यहीं देखा ।

देवताओं की सुन्दर सत्य वाणी सुनकर,
दोनों ओर छा गयी अलौकिक प्रीति,
सुन्दर पांवड़े और अर्ध्य देते हुए,
दशरथजी को मण्डप में ले आये जनकजी ।

विचित्र रचना और मण्डप की सुन्दरता देख,
मुनियों के मन भी हरे गये,
तब सुजान जनकजी ने अपने हाथों से,
स्वयं ला, सबके लिये सिंहासन रक्खे ।

अपने कुल के इष्ट देवता के समान,
पूजा की वसिष्ठजी की उन्होनें,
फिर और ऋषि-मुनियों की पूजाकर,
विनय कर आशीर्वाद पाया उन्होनें ।

फिर महादेवजी के समान जानकर,
राजा दशरथजी की पूजा की उन्होनें,
तदन्तर उनके सम्बन्ध से अपना भाग्य,
और वैभव-विस्तार को सराहा उन्होनें ।

उसके बाद सब बरातियों का जनकजी ने,
दशरथजी के समान ही आदर सत्कार किया,
देवतागण जो ब्राह्मणों का वेश बनाये थे,
बिना पहचाने उनका भी सत्कार किया ।

आनन्दनन्द दिव्य दूल्हे को देखकर,
सब हैं अपनी सुध-बुध भूले हुए,
सुजान श्रीराम ने देवताओं को पहचान,
मानसिक पूजा कर उन्हें आसन दिये ।

तब उचित समय जान वसिष्ठजी ने,
आदरपूर्वक शतानन्दजी को बुला भेजा,
कहा, शीघ्र ही राजकुमारी को ले आइये,
विवाह का मंगलसमय आ पहुँचा ।

बुद्धिमती रानी पुरोहित की वाणी सुन,
बड़ी प्रसन्न हों चली सखियों के साथ,
श्रेष्ठ देवांगनाएं जो स्त्रियों के वेश में हैं,
सबकी प्राणप्रिय, चलीं रानी के साथ ।

सब मिल, सीताजी का श्रृंगार कर,
लिवा ले चलीं मण्डप में उन्हें,
सभी सुन्दरियां सोलहों श्रृंगार किये हैं,
मुनि भी ध्यान छोड़ दे, देख जिन्हें ।

वर्णनातीत है सीताजी की सुन्दरता,
बुद्धि छोटी और महान मनोहरता उनकी,
जब बरातियों ने उन्हें आते देखा,
मन ही मन प्रणाम करने लगे सभी ।

जब सीताजी मण्डप में आयीं,
मुनिराज पढ़ने लगे शांतिपाठ,
दोनों गुरूओं ने मिलकर किये,
अवसरानुकुल रीति और कुलाचार ।

फिर देवताओं की पूजा करवायी,
प्रकट हो पूजा ग्रहण कर रहे वो,
मधुपर्क आदि जो पदार्थ चाहते हैं मुनि,
तुरंत स्वर्ण पात्रों में सेवक देते वो ।

स्वयं सूर्यदेव प्रेमसहित अपने कुल की,
बता देते हैं सभी रीतियां,
आदरपूर्वक वे सम्पन्न की जा रहीं,
दोनों कुल निभा रहे सभी रीतियां ।

इस प्रकार देवताओं की पूजा कराके,
सुन्दर सिंहासन दिया मुनियों ने सीताजी को,
श्रीसीता-रामजी का आपस का परस्पर प्रेम,
मन, बुद्धि और वाणी से परे है वो ।

हवन के समय अग्निदेव शरीर धारण कर,
बड़े ही सुख से ग्रहण करते हैं आहुति,
और सारे वेद ब्राह्मण का वेष धारण कर,
बताये दे रहे हैं सब विवाह की विधि ।

जनकजी की पटरानी और सीताजी की माता,
किस प्रकार उनका बखान हो सकता,
विधाता ने उन्हें संवारकर तैयार किया है,
बटोरकर सब सुयश, सुकृत, सुख और सुन्दरता।

श्रेष्ठ मुनियों ने बुलवाया उन्हें,
सुहागिन स्त्रियां लिवा लायी आदर के साथ,
जनकजी के बायीं ओर वे सोह रहीं ऐसे,
जैसे मैनाजी शोभित हों हिमाचल के साथ ।

पवित्र, सुगन्धित और मंगल जल से भरे,
सोने के कलश और मणियों की परातें,
लाकर श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख रक्खीं,
राजा और रानी ने अपने हाथों से ।

जो चरण शिवजी के हृदय में बसते,
जिनका स्मरण हृदय को निर्मल कर देता,
जिनको छूने से अहल्या ने परमगति पायी,
और परम पवित्र जिन्हें बतलाते हैं देवता ।

उन्हीं चरणों को पखार रहे राजा-रानी,
यह देख, कर रहे हैं सब जय-जयकार,
राजा और रानी पुलकित हो रहे प्रेम से,
हृदय में छा रहा है हर्ष अपार ।

वर और कन्या की हथेलियों को मिलाकर,
दोनों कुलों के गुरू शाखोच्चार करने लगे,
पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता,
मनुष्य और मुनि आनन्द से भर गये ।

लोक और वेद की रीति को कर,
महाराज जनकजी ने किया कन्यादान,
श्रीराम की सांवली मनोहर मूरत को देख,
विदेहजी को न रहा देह का भान ।

वर और कन्या दे रहे हैं भांवरे,
सब लोग सुख पा रहे उन्हें देखकर,
मणियों के खंभों में जगमगाती उनकी छवि,
मानों रति-अनंग देख रहे प्रकट होकर ।

मुनियों ने आनन्दपूर्वक भांवरे फिराकर,
नेग सहित सब रीतियों को किया पूरा,
श्रीराम सीताजी के सिर में सिंदूर दे रहे,
वर्णन से परे है यह शोभा ।

मानों कमल को लाल पराग से,
अच्छी तरह से पूरा भर कर,
अमृत के लोभ से सांप,
चन्द्रमा को रहा भूषित कर ।

फिर जब वसिष्ठजी ने आज्ञा दी,
दुल्हा और दुल्हिन बैठे एक आसन पर,
चौदहों भुवनों में उत्साह भर गया,
इस महान मंगल को प्रत्यक्ष देख कर ।

तब वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर,
माण्डवीजी, श्रुतकीर्तिजी और उर्मिलाजी को,
महाराज जनकजी ने बुलवा लिया,
भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मणजी संग ब्याहने को ।

अपने-अपने अनुरूप जोड़ी को देखकर,
वे सब हर्षित हो रहे मन में,
सुन्दरी दुल्हिनें, सुन्दर दुल्हों के साथ,
शोभा पा रही एक ही मण्डप में ।

सब पुत्रों को बहुओं सहित देखकर,
अवध नरेश ऐसे आनन्दित हैं मानो,
यज्ञ, श्रृद्धा, योग और ज्ञानक्रिया सहित,
चारों फल वे पा गये हों ।

सब विधियों और रीतियों सहित,
विवाह किये गये सब कुमारों के,
जनकजी ने इतना दहेज दिया,
मण्डप भर गया धन-धान्य से ।

हाथी-घोड़े और दास-दासियां,
अनुक वस्तुएं, गिनती से परे,
आदर सहित ग्रहण कर दशरथजी ने,
याचकों को दिया, जो चाहा जिसने ।

तब हाथ जोड़कर कोमल वाणी से,
बारात का सम्मान करते जनकजी बोले,
मुनियों की पूजा एवं वन्दना कर,
राजा हाथ जोड़ सबसे बोले ।

भाव ही चाहते हैं देवता और साधू,
क्या कुछ उनको कोई दे सकता,
प्रेम से ही बस वो प्रसन्न हो जाते,
धन-दौलत से रिश्ता होता न उनका ।

फिर भावसहित जनकजी हाथ जोड़कर,
राजा दशरथजी से बोले प्रेम से,
हम सब प्रकार से बड़े हो गये,
हे राजन ! आपके साथ सम्बन्ध जोड़ के ।

इस राज-पाट सहित हम दोनों को,
बिना दाम के लिये सेवक जानिये,
हमारी पुत्रियों को टहलनी मानकर,
नयी-नयी दया कर पालन कीजिये ।

फिर सूर्यकुल के भूषण दशरथजी ने,
जनकजी को सम्मान का निधि कर दिया,
दोनों के हृदय प्रेम से परिपूर्ण हैं,
उनकी विनय ने उनको धन्य कर दिया ।

देवतागण फूल बरसा रहे हैं गगन से,
और आनन्द छा रहा है सब ओर,
तब सखियां मंगलगान करती ले चलीं,
वर-वधु को भीतर की ओर ।

बार-बार देखती हैं श्रीराम को,
और सकुचा जाती हैं सीताजी,
प्रेम के प्यासे उनके नेत्र,
हर रहे सुन्दर मछलियों की छवि ।

मासपारायण, ग्यारहवां विश्राम

स्वभावत: सुन्दर श्रीराम का सांवला शरीर,
उसकी शोभा लजाती करोड़ों कामदेवों को,
महावर से युक्त कोमल चरण-कमल,
लुभाते जो मुनियों के मनरूपी भौरों को ।

पवित्र और मनोहर पीली धोती उनकी,
हर लेती है बाल-सूर्य की ज्योति,
सुन्दर किंकिणी और कटिसुत्र कमर में,
विशाल भुजाओं में शोभा बाजूबन्द की ।

पीला जनेऊ और हाथ की अंगूठी,
चुरा लेते हैं वे सबके चित्त,
दुपट्टे पर लगे मणि और मोती,
चौड़ी छाती पर आभूषण शोभित ।

कमल से नेत्र, कानों में कुण्डल,
मुख तो खज़ाना सारी सुन्दरता का,
सब नगर की स्त्रियां और देवसुंदरियां,
दुल्हे को देखकर तोड़ रही तिनका ।

सुहागिन स्त्रियां वरों और वधुओं को,
कोहबर में ला करने लगीं लौकिक रीति,
पार्वतीजी और सरस्वतीजी लहकौर सिखा रही,
रनिवास हास-परिहास का बना निधि ।

हाथ के कंगन की मणियों में,
देखी जो राम की छवि मुस्काती,
इस डर से छवि हो जाये न ओझल,
सीताजी हाथ न दृष्टि को हिलाती ।

ले जाये गये वे फिर जनवासे को,
सभी प्रसन्न मन दे रहे आशीर्वाद,
देवता चले अपने-अपने लोकों को,
चारों जोड़ियां चलीं दशरथजी के पास ।

फिर तरह-तरह की रसोइयां बनवाकर,
जनकजी ने बरातियों को बुलवा भेजा,
आदर के साथ सबके चरण धोये,
और यथायोग्य पीढ़ो पर विठलाया ।

तब दशरथजी, श्रीराम और भाइयों के,
चरणों को धोया मिथिलापति जनक ने,
उचित आसनों पर बिठलाकर सभी को,
चतुर रसोइये लगे भोजन परोसने ।

भोजन करते समय गालीयां गा रहीं स्त्रियां,
जिसने बना दिया भोजन अमृत समान,
चारों प्रकार के इतने व्यजंन बने,
जिनका कौन कर सकता भला बखान ।

हंसे रहे हैं राजा दशरथजी,
समयानुकुल स्त्रियों का व्यवहार देखकर,
जनकपुर में नित्य नये मंगल हो रहे,
दिन-रात बीत रहे जैसे पल भर ।

तब एक दिन महाराज दशरथ ने,
कहा गुरू वसिष्ठजी को प्रणाम और पूजन कर,
हे मुनिराज ! आपकी कृपा से पूर्णकाम हो गया,
सजी-धजी गायें दीजिये ब्राह्मणों को बुलाकर ।

श्रेष्ठ मुनियों के समूह-के-समूह आये,
राजा ने किया सबको दण्डवत प्रणाम,
फिर चार लाख कामधेनु सी गायों को,
सजा कर किया उन्होनें उनका दान ।

ब्राह्मणों से आशीर्वाद पा आनन्दित हुए,
फिर बुला भेजा याचकों को उन्होंने,
पूछ-पूछकर सोना, मणि माणिक दिये,
जो और जितना भी चाहा जिसने ।

गुणानुवाद गाते और जय हो कहते,
वे सब प्रसन्न हो घर को चले,
इस प्रकार विवाह का उत्सव हुआ,
कौन उस आनन्द का वर्णन कर सके ।

बार-बार विश्वामित्रजी के चरणों में,
सिर नवाकर कहते हैं राजा दशरथ,
हे मुनिराज ! यह आपका कृपा-प्रसाद है,
आपकी कृपा से सफल हुए मेरे मनोरथ ।

सब प्रकार से सराहना करते हैं दशरथजी,
जनकजी के स्नेह, शील और ऐश्वर्य की,
प्रतिदिन सवेरे वे विदा मांगते हैं,
पर प्रेम से रोक लेते हैं उन्हें जनकजी ।

नित्य नया आदर बढ़ता जाता है,
हजारों प्रकार से होती है रोज मेहमानी,
नित्य नया आनन्द और उत्साह रहता है,
दशरथजी के जाने की किसी ने न मानी ।

जब बहुत दिन यूँ ही बीत गये,
मुनियों ने समझाया जनकजी को जाकर,
तब जनकजी ने मंत्रियों को बुलवाया,
कहा खबर कर दो रनिवास में जाकर ।

बारात का वापस जाना जान कर,
जनकजी प्रेम के वश हो गये,
जनकपुरवासी भी ऐसे हो गये उदास,
मानों सन्धया में कमल सकुचा गये ।

आते समय बराती जहां-जहां ठहरे थे,
वहां-वहां सब सामान भेजा जनकजी ने,
हजारों हाथी, घोड़े, रथ और बैल,
फिर से अपरिमित दहेज दिया जनकजी ने ।

इस प्रकार सब सामान सजाकर,
भेज दिया अयोध्या नगरी को उसे,
बारात चलेगी सुन विकल हो गयीं रानियां,
मानों मछलियां छटपटा रही थोड़े जल में ।

बार-बार सीताजी को देती हैं सिखावन,
पति को प्यारी और सोहाग अचल हो,
सास-ससुर और गुरू की सेवा करना,
पति का रूख देख आज्ञा पालन हो ।

सयानी सखियां अत्यन्त स्नेह के वश,
स्त्री धर्म सिखला रही कोमल वाणी से,
माताएं सब पुत्रियों को हृदय से लगा,
क्यों रचीं स्त्रियां कह रहीं ब्रह्माजी से ।

तभी भइयोंसहित श्रीराम प्रसन्नता पूर्वक,
जनकजी के महल चले विदा कराने,
नगर के स्त्री-पुरुष सब दौड़ पड़े,
इन प्रिय मेहमानों को जी भर देखने ।

रूप के सागर भाइयों को देख,
सारा रनिवास हर्षित हो उठा,
सासुएं निछावर और आरती करती हैं,
प्रेम से उनका हृदय भर उठा ।

प्रेम के वश हो बारम्बार वे,
लगने लगीं श्रीराम के चरण,
प्रीतिवश लज्जा रह नही गयी,
उनका स्नेह कौन कर सकता वर्णन ।

भाइयों सहित श्रीरामजी को उन्होनें,
उबटन लगाकर स्नान करवाया,
नये वस्त्र दिये पहनने को उन्हें,
प्रेम से षटरस भोजन करवाया ।

तब सुअवसर जानकर श्रीरामचन्द्रजी ने,
शील, स्नेह और संकोच सहित कहा,
महाराज अयोध्यापुरी चलना चाहते हैं,
हे माता ! हमें प्रसन्न मन कीजिये विदा ।

और हमें अपना बालक जानकर,
सदा अपना प्रेम बनाये रखिये,
सुनते ही रनिवास उदास हो गया,
प्रेमवश मुंह से बोल नही निकलते ।

सब कुमारियों को हृदय से लगा,
पतियों को सौंपकर बहुत विनती की,
सीताजी को श्रीरामचन्द्रजी को समर्पित कर,
कहा, जानते हैं आप सबके हृदय की ।

परिवार, नगर, राजा और मुझको,
प्राणों से प्रिय है सीता हम सबको,
इसके शील और स्नेह को देखकर,
अपनी दासी मानकर रखियेगा इसको ।

तुम पूर्णकाम हो, सुजान-शिरोमणि हो,
प्रेम प्यारा है तुम्हें, हे राम !
तुम भक्तों के गुणों के ग्राही हों,
दोषों के नाशक, दया के धाम ।

ऐसा कह, चरण पकड़, चुप रह गयी,
मानों वाणी समा गयी, प्रेमरूपी दलदल में,
स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर,
बहुत सम्मान किया सास का श्रीराम ने ।

तब श्रीरामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर,
बारम्बार प्रणाम किया हाथ जोड़ते हुए,
आशीर्वाद पाकर और सिर नवाकर,
फिर भाइयोंसहित श्रीरघुनाथजी चले ।

स्नेह से शिथिल हो गयीं रानियां,
श्रीराम की मधुर मूर्ति हृदय में लाकर,
फिर धीरज धारण कर कुमारियों को बुला,
भेंटने लगीं उन्हें बार-बार गले लगाकर ।

पहुंचाती हैं, फिर मिलती हैं उनसे,
परस्पर प्रीति नही देती उन्हें बिछड़ने,
करूणा और विरह वश हो गयीं माताएं,
तब सखियों ने अलग किया उन्हें ।

जिन तौता-मैना को पाला जानकीजी ने,
कह रहे हैं वे व्याकुल होकर,
कौन अपना धीरज त्याग नही देगा,
'वैदेही कहाँ है', उनके वचन सुनकर ।

जब पशु-पक्षी ऐसे विकल हो रहे,
तब कैसे मनुष्यों की दशा कही जाये,
तब भाइयों सहित वहां आये जनकजी,
प्रेम से आसूं आखों में भर आये ।

परम वैराग्यवान कहलाते थे जनकजी,
पर उनका भी धीरज भाग गया,
लगा लिया जानकीजी को हृदय से,
ज्ञान का उनका बांध टूट गया ।

बुद्धिमान मन्त्रियों ने समझाया उन्हें,
तब सजी हुई पालकियां मंगवायी उन्होनें,
सुन्दर मुहुर्त जान, गणेशजी को स्मरण कर,
कन्याओं को पालकियों पर चढ़ाया उन्होनें ।

बहुत प्रकार से समझाकर उन्हें,
स्त्रियों का धर्म, कुल की रीति सिखायी,
विश्वास पात्र सेवक, दास-दासी साथ कर,
शुभ मुहुर्त में की उनकी विदाई ।

ब्राह्मण और मन्त्रियों के समाज सहित,
राजा जनक उन्हें पहुँचाने साथ चले,
ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दे दशरथजी,
बरातियों के साथ अयोध्यापुरी को चले ।

विनती कर प्रतिष्ठित जनों को लौटाया,
और आदर सहित बुलवाया सब मंगनों को,
गहने, कपड़े, घोड़े, हाथी देकर उन्हें,
धन, दौलत से सम्पन्न कर दिया सबको ।

बार-बार दशरथजी कहते हैं लौटने को,
पर प्रेमवश जनकजी लौटना नही चाहते,
तब दशरथजी रथ से उतर खड़े हो गये,
और प्रेमाश्रु बहने लगे नेत्रों से उनके ।

तब जनकजी अमृतमयी वचन बोले,
हे महाराज ! आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी,
दशरथजी ने किया उनका बड़ा सम्मान,
उनकी प्रीति हृदय में समाती न थी ।

सिर नवाया जनकजी ने मुनिमण्डली को,
फिर आदर सहित मिले दामादों से अपने,
बोले, हे राम ! कैसे करूँ आपकी प्रशंसा,
बसते आप मुनियों और शिवजी के हृदय में ।

क्रोध, मोह, मद और ममता को त्याग,
योगीजन साधना करते हैं जिनके लिये,
सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानन्द,
निर्गुण, गुण सागर, वेद कहते जिनके लिये ।

मन, वाणी और अनुमान से परे,
नेति-नेति कह, वेद करते जिनकी महिमा,
सच्चिदानन्द, सर्वदा और सर्वथा निर्विकार,
उन्हीं आप ने मुझे बना लिया अपना ।

जरा से प्रेम से आप प्रसन्न हो जाते,
यह सब कह रहा इसी बल पर,
आपके चरण मेरा मन कभी न छोड़े,
यही मांगता हूँ, मैं आपसे हाथ जोड़कर ।

प्रेम से पुष्ट, जनकजी के वचन ने,
पूर्णकाम श्रीरामचन्द्रजी को बहुत संतुष्ट किया,
पिता और गुरू के समान जान,
श्रीराम ने ससुर जनकजी का सम्मान किया ।

फिर भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नजी से मिले वे,
मिलकर आशीर्वाद दिया जनकजी ने उन्हें,
परस्पर प्रेम के वश होकर वे,
लगे बार-बार आपस में सिर नवाने ।

फिर जनकजी ने विश्वामित्रजी के चरण पकड,
चरणों की रज को सिर से लगाया,
हे मुनीश्वर ! मेरे मन में विश्वास है,
आपकी कृपा से ही मैने यह सब पाया ।

बार-बार विनती कर और सिर नवाकर,
राजा जनक लौटे, आशीर्वाद पाकर उनसे,
तब डंका बजाकर चली बारात,
लोग देख रहे उन्हें सुख से ।

पवित्र दिन अयोध्यापुरी आ पहुँची बारात,
बाजे-नगाड़े, ढोल-शहनाइयां लगे बजने,
प्रसन्न हो उठे सब नगर वासी,
घर, बाजार, गली-चौराहे लगे सजने ।

तोरण, ध्वजा-पताका, मण्डपो से,
सज गये नगर के सारे बाजार,
मंगल-कलश घर-घर बनाये गये,
राजमहल की शोभा बनी अपार ।

झुंड-की-झुंड मिल चलीं सुहागिन स्त्रियां,
गा रहीं मंगलद्रव्य और आरती सजाये,
सुध-बुध भूलीं सब माताएं प्रेमवश,
ऐसी प्रसन्न मानों चारों पदार्थ पाये ।

अनुराग से भर सामान सजा परछन का,
आरती ले, मंगलगान कर रहीं माताएं,
सारे नगर में आनन्द छा रहा,
देवता आकाश से बरसा रहे मालाएं ।

शुभ समय जान आज्ञा दी वसिष्ठजी ने,
तब दशरथजी ने प्रवेश किया नगर में,
नगरवासी श्रीरामजी को देख प्रसन्न हो उठे,
स्त्रियां प्रसन्न हो रहीं देख चारों दुल्हिनें ।

सबको सुखी करते यूँ आये राजद्वार पर,
परछन और आरती करने लगीं माताएं,
अनेकों वस्तुएं निछावरी करी उन्होनें,
अपना जीवन धन्य मान रही माताएं ।

चारों मनोहर जोड़ियों को देखकर,
सरस्वती ने सारी उपमाएं खोज डालीं,
पर देते नही बनी कोई भी उपमा,
सभी उपमाएं उन्हें तुच्छ नजर आयी ।

तब महल में ले चलीं उन्हें माताएं,
ले जाकर सुन्दर सिंहासनों पर बैठाया,
धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा की उनकी,
सभी माताओं ने यों परमानन्द पाया ।

ज्यों योगी पा गया हो परम तत्त्व,
जन्म का दरिद्री मानो पारस पा गया,
गूंगे के मुख सरस्वती आ बिराजी हो,
या शूरवीर युद्ध में विजय पा गया ।

इनसे भी सौ करोड़ गुना ज्यादा,
आनन्द पा रही हैं सभी माताएं,
क्योंकि रघुकुल के चन्द्रमा श्रीरामजी,
विवाह कर भाइयों सहित घर आये ।

माताएं लोकरीति कर रही हैं,
और दुल्हा-दुल्हिनें सकुचा रहे,
इस आनन्द और विनोद को देख,
श्रीराम मन-ही-मन मुसकरा रहे ।

मन की सभी वासनाएं पूरी हुई जान,
भली-भांति पूजा देवता और पितरों को,
वन्दना कर वे यही वरदान मांगती,
भाइयोंसहित श्रीराम का कल्याण हो ।

आशीर्वाद दे रहे अन्तरिक्ष से देवता,
माताएं आनन्दित हो ले रहीं आंचल भर,
तदन्तर राजा ने बुलवा लिया बरातियों को,
सम्मानित किया उन्हें वस्त्र-आभूषण दे कर ।

नगरवासियों को भी दिये कपड़े-गहने,
घर-घर में बजने लगे बधावे,
जिसने जो मांगा राजा ने दिया,
फिर गुरूजनों सहित महल में वे आये ।

चरण धोकर स्नान करवाया ब्राह्मणों को,
पूजन कर भली-भांति उन्हें भोजन करवाया,
राजा ने पूजा-प्रशंसा की विश्वामित्रजी की,
और अपने भाग्य को धन्य जान सराहा ।

फिर राजा ने की वसिष्ठजी की पूजा,
बहुत प्रीति थी उनके हृदय में,
पुत्रों सहित सारी सम्पत्ति अर्पित कर,
स्वीकार करने की विनती की राजा ने ।

प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया मुनि ने,
फिर चले श्रीसीता-राम हृदय में रख कर,
राजा ने सब ब्राह्मण स्त्रियों को बुलवाया,
और वस्त्र-आभूषण दिये सुन्दर-सुन्दर ।

फिर नगर की सौभाग्यवती स्त्रियों को,
बुलवा कर राजा ने दी पहिरावनी,
सब नेगी इच्छानुसार नेग ले रहे,
उनकी इच्छा जान दे रहे महाराज शिरोमणि ।

प्रिय और पूजनीय मेहमानों को,
सम्मानित कर विदा किया राजा ने,
उत्सव को सराहते, फूल बरसाते,
देवगण भी चले लोकों को अपने ।

बहुओं सहित पुत्रों को देख कर,
बहुत हर्ष हुआ राजा के मन में,
सब वृतान्त रानियों को कह सुनाया,
बड़ी प्रशंसा की जनकजी की उन्होनें ।

तब दशरथजी ने रानियों से कहा,
पराये घर आईं, बहुएं बच्ची हैं अभी,
जैसे पलकें नेत्रों को रखती हैं,
वैसे ही इन्हें रखना आप सभी ।

लड़के थक रहे नींद के वश हो,
इन्हें ले जाकर कराओ शयन,
मणियों से जड़े सुवर्ण के पलंग बिछवाये,
रानियों ने सुन ये सुन्दर वचन ।

सुन्दर शयन कक्ष वर्णन से परे,
माताओं ने ले जा सुलाया श्रीराम को,
उन्होनें बार-बार दी भाइयों को आज्ञा,
तब वे भी जाकर गये सो ।

श्रीराम के कोमल, सुन्दर अंगों को देख,
माताएं कह रहीं हैं आपस में,
ताड़का, मारीच, सुबाहु जैसे राक्षसों को,
हे तात ! किस तरह मारा तुमने ।

मुनि की कृपा से ही ईश्वर ने,
टाल दी तुम्हारी बलायें बहुत सी,
चरणधुलि लगते ही तर गयी अहल्या,
धनुष तोड़ जनकजी की प्रतिज्ञा पूरी की ।

विश्र्वविजय का यश, जानकीजी को पाया,
सब भाइयों को ब्याहकर घर आये,
विश्वामित्रजी की कृपा से यह सब हुआ,
हमने जीवन के सब मनोरथ पाये ।

विनय भरे उत्तम वचन कह कर,
सब माताओं को श्रीराम ने संतुष्ट किया,
फिर गुरूजनों के चरणों को स्मरण कर,
नेत्रों को नींद के वश में किया ।

नींद में भी उनका सलोना मुखड़ा,
संध्या में लाल कमल सा सोह रहा,
सासुएं सुन्दर बहुओं को ले सो गयीं,
मानो सर्पों ने मणियों को छिपा लिया ।

पवित्र ब्रह्ममुहूर्त में प्रभु जागे,
भाट और मागधों ने किया गुण-गान,
नगर के लोग जोहार करने आये,
सब भाइयों ने किया गुरूजनों को प्रणाम ।

फिर महाराज दशरथ के साथ जाकर,
सरयू में स्नान किया चारों भाइयों ने,
उसके बाद संध्या-वन्दनादि कर,
आकर प्रणाम किया पिता के चरणों में ।

नवाह्नपारायण, तीसरा विश्राम

हृदय से लगा लिया राजा ने उन्हें,
तदनन्तर वे बैठे हर्षित हो आज्ञा पाकर,
फिर मुनि वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये,
राजा पुत्रों सहित लगे उनके चरणों जाकर ।

वसिष्ठजी कह रहे हैं धर्म के इतिहास,
राजा रनिवाससहित सुन रहे उसको,
वसिष्ठजी ने आनन्दित होकर वर्णन किया,
मुनि विश्वामित्रजी की पवित्र करनी को ।

सत्य हैं ये बातें, वामदेवजी बोले,
विश्वामित्रजी की कीर्ति छायी तीनों लोको में,
यह सुनकर सबको बड़ा आनन्द हुआ,
अधिक उत्साह श्रीराम-लक्ष्णम के हृदय में ।

नित्य नये मंगल, आनन्द और उत्सव,
सब ओर अयोध्या में छायी खुशियां,
विश्वामित्रजी रोज जाने को कहते हैं,
पर विनय कर रोक लेते राजा-रानियां ।

अन्त में जब विश्वामित्रजी ने विदा मांगी,
राजा पुत्रों सहित आगे खड़े हो गये,
हे नाथ ! यह सारी सम्पदा आपकी है,
मैं तो आपका सेवक हूँ, कहने लगे ।

हे मुनि ! लड़कों पर कृपा करते रहिये,
और दर्शन देते रहियेगा मुझे भी,
राजा परिवारसहित चरणों में गिर पड़े,
प्रेमवश मुंह से बात नही निकलती ।

बहुत प्रकार से आशीर्वाद दे कर,
ब्राह्मण विश्वामित्र वहां से चल पड़े,
भाइयों के साथ श्रीराम पहुँचाने चले,
फिर मुनि की आज्ञा पाकर लौटे ।

श्रीरामचन्द्रजी का रूप, दशरथजी की भक्ति,
मन ही मन विश्वामित्रजी सराहते जा रहे,
श्रीरामजी का यश त्रिलोकों में छा गया,
सर्वत्र लोग उनकी गाथा गा रहे ।

जब से श्रीरामचन्द्रजी विवाह कर घर आये,
सारा आनन्द आ बसा अयोध्या में,
प्रभु के विवाह में जो आनन्द-उत्साह हुआ,
शेष-शारदा भी वर्णन कर नही सकते ।

अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये,
तुलसी ने यश कहा श्रीराम का,
वरना तो उनका चरित्र अपार समुद्र है,
किस कवि ने पार पाया उसका ।

जो सादर इसको सुन कर गावेंगे,
वे प्रभु कृपा से सदा सुख पावेंगे,
श्रीरामजी का यश मंगल का धाम है,
जो इसे गावेंगे, सदा आनन्द पावेंगे ।

मासपारायण, बारहवां विश्राम

‘श्रीरामचरितमानस’

द्वितीय सोपान

‘अयोध्याकाण्ड’

गोद में जिनकी हिमाचलसुता पार्वतीजी,
मस्तक पर गंगा, चन्द्रमा ललाट पर,
देवों में श्रेष्ठ, सर्वेश्वर पापनाशक,
मेरी रक्षा करें सदा वे शिवशंकर ।

प्रसन्न हुई न जो राज्याभिषेक सुन,
न मलिन हुई बनवास के दु:ख से,
श्रीरामजी के मुखारविन्द की वह शोभा,
सदा सुन्दर मंगलमयी हो मेरे लिये ।

नीलकमल से श्याम और कोमल अंग,
श्रीसीताजी हैं जिनके वाम अंग में विराजमान,
हाथों में जिनके अमोध बाण और धनुष,
वे श्रीरामचन्द्रजी स्वीकार करें मेरा प्रणाम ।

श्रीगुरू चरण-कमलों की रज से,
अपने मनरूपी दर्पण को करके साफ,
कहता हूँ निर्मल यश श्रीरघुनाथ का,
जो चारों फल करा देता है प्राप्त ।

जब से श्रीराम विवाह कर घर आये,
नित-नये मंगल हो रहे अयोध्या में,
ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्तिरूपी नदियां,
उमड़-घुमड़ आ मिलीं अयोध्यारूपी सागर में ।

नगरवासी श्रीरामचन्द्रजी के मुख चन्द्र को देख,
सुखी हो रहे हैं सब प्रकार से,
अपना मनोरथ सफल देख माताएं खुश हैं,
राजा प्रसन्न श्रीराम के गुण-शील से ।

सबके हृदय में है ऐसी अभिलाषा,
कहते हैं वे मनाकर महादेव को,
अपने जीते-जी राजा दशरथ,
युवराज का पद दे दें श्रीराम को ।

एक समय महाराज दशरथ ने,
दर्पण में देखा चेहरा अपना,
कानों के पास सफेद बाल देख,
सोचा वक्त निकल गया कितना ।

क्यों न श्रीराम को युवराज पद देकर,
लाभ नही लेते अपने जीवन का,
शुभ दिन और शुभ समय पाकर,
अपना विचार वसिष्ठजी को जा कहा ।

राजा ने कहा, हे मुनिराज ! सुनिये,
सब प्रकार सब योग्य हो गये श्रीराम,
जिस प्रकार प्रिय हैं वो मुझको,
शत्रु और मित्रों को भी प्रिय श्रीराम ।

आपका आशीर्वाद ही शरीर धारण कर,
मानों हमारे सौभाग्य से हो रहा सुशोभित,
गुरू चरण-रज शीश लगाने वाले,
सब कुछ सहज ही कर लेते अर्जित ।

अब एक ही अभिलाषा है मन में,
जो आपके अनुग्रह से ही पूरी होगी,
राजा के सहज प्रेम से प्रसन्न हो,
मुनि ने पूछा क्या अभिलाषा है आपकी ।

हे राजन ! आपका नाम और यश ही,
सारी मनचाही वस्तुओं को है देने वाला,
आपकी इच्छा करने के पहले ही,
हे राजन ! उसका फल उत्पन्न हो जाता ।

अपने जी में उन्हे प्रसन्न जान,
हर्षित हो, कोमल वाणी से बोले राजा,
हे नाथ ! मेरे जीते जी ही आप,
श्रीराम को युवराज बनाने की दें आज्ञा ।

बस एक यही लालसा है बाकी,
फिर चाहे शरीर रहे या चला जाये,
दशरथजी के सुन्दर मंगलमय वचन सुन,
मुनि प्रसन्न हो, मन ही मन मुसकाये ।

बोले जिनसे विमुख हो लोग पछताते,
भजन बिना जी की जलन न जाती,
वही स्वामी श्रीराम आपके पुत्र हुए,
पवित्र प्रेम के जो हैं अनुगामी ।

अब देर न कीजिये, हे राजन !
शीघ्र ही सब जरूरी सामान सजायें,
शुभ दिन और सब मंगल तभी हैं,
जब श्रीरामचन्द्रजी युवराज हो जायें ।

राजा ने सुमन्त्रजी और सेवकों को बुलवाया,
कहा, यदि पंचों को मत अच्छा लगे,
तो श्रीरामचन्द्रजी का राजतिलक कीजिये,
इस शुभ काम में देर न लगे ।

सब आनन्दित हो गये, से वचन सुन,
महाराज को देने लगे वे दुआयें,
हाथ जोड़ विनती करते हैं मन्त्री,
हे जगत्पति ! आप अनन्त जीवन पायें ।

फिर मुनि आज्ञानुसार मन्त्रियों ने,
सब श्रेष्ठ तीर्थों का जल मंगवाया,
समस्त औषधि, फल, फूल, रत्न आदि,
सब प्रकार का मंगल सामान मंगवाया ।

सारा नगर ध्वजा-पताका से सजाकर,
कुल देवता और ब्राह्मणों की करी पूजा,
मुनीश्वर ने जिस काम के लिये आज्ञा दी,
मानों पहले से ही कर रक्खा था ।

श्रीराम के राज्यभिषेक की खबर सुनकर,
बधावे बजने लगे धूम से अवधपुर में,
शुभ शकुन हो, मंगल अंग फड़कने लगे,
श्रीराम और सीताजी दोनों के तन में ।

पुलकित हो कह रह एक-दूसरे से,
सूचना दे रहे ये भरत के आने की,
बहुत दिन हो गये ननिहाल गये उन्हें,
मन में आती है उनसे मिलने की ।

यही फल शकुन का, कुछ और नही,
भरत सा प्यारा नही कोई जगत में,
दिन-रात भरत के लिये सोचते राम,
जैसे कछुए का मन रहता अंड़ों में ।

इसी समय यह मंगल समाचार सुन,
सारा रनिवास हर्षित हो उठा,
जैसे चन्द्रमा को बढ़ते देख समुद्र में,
लहरों का विलास सुशोभित होता ।

आभूषण और वस्त्र बांटें रानियों ने,
देवी-देवताओं और नागों को पूजा,
सभी स्त्री-पुरुष हर्षित हुए नगर में,
विधाता को उन्होनें अपने अनुकूल समझा ।

तब श्रीराम को समयोचित उपदेश देने,
राजा ने वसिष्ठजी को महल में भेजा,
उनका आगमन सुनकर दरवाजे पर आकर,
श्रीराम ने उनके चरणों में सिर टेका ।

फिर अर्ध्य दे, पूजा कर सम्मान किया,
और सीताजी सहित चरण स्पर्श किये उनके,
फिर बोले, हे नाथ ! ऐसी ही नीति है,
इस दास को ही आप बुला भेजते ।

परतुं आपने यहां स्वयं पधारकर,
इस घर को पवित्र कर दिया, आज,
अब जो आज्ञा हो मैं वही करूँ,
स्वामी की सेवा में है सेवक का लाभ ।

इन प्रेम से सने वचनों को सुनकर,
मुनि ने प्रशंसा करते हुए कहा,
हे राम ! आप सूर्यवंश के भूषण हैं,
आप ऐसा क्यों न कहें भला ।

फिर वे बोले महाराज दशरथजी ने,
तैयारी की है आपके राज्याभिषेक की,
सो आज आप सब संयम कीजिये,
जिससे यह आशा पूरी हो राजा की ।

खेद हुआ श्रीराम के हृदय में,
हम सब भाई जन्में एक ही साथ,
खाना-पीना, खेल-कूद, यज्ञोपवित,
विवाह आदि उत्सव भी हुए साथ ।

पर इस निर्मल वंश में हो रही,
अनुचित बस यह एक बात ही,
कि और सब भाइयों को छोड़कर,
राज्याभिषेक हो रहा बड़े भाई का ही ।

श्रीरामचन्द्रजी के मन के ये भाव,
उनका यह सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा,
तुलसीदासजी कहते हैं, हरण कर ले,
भक्तों के मन की सम्पूर्ण कुटिलता ।

तभी आनन्द में मग्न लक्ष्मणजी आये,
प्रिय वचन कह राम ने किया सम्मान,
नगर के सब लोग प्रसन्न हो रहे,
विधाता पूरे कर रहा उनके अरमान ।

भरतजी जो गये हुए थे ननिहाल,
लोग मना रहे जल्दी आ जावें,
और इस राज्याभिषेक का उत्सव देख,
अपने नेत्रों का वे सुफल पावें ।

इधर लोग कर रहे कल की प्रतीक्षा,
उधर कुचक्री देवता विघ्न मना रहे,
बार-बार सरस्वतीजी के पैरों गिरकर,
सब के सब विनय कर रहे ।

कह रहे, हे माता ! हमारी विपत्ति देख,
कुछ ऐसा कीजिये श्रीराम वन चलें जायें,
राजतिलक न हो, वे राज्य त्याग दें,
तो हमारा सब कार्य सिद्ध हो जाये ।

खड़ी-खड़ी पछता रहीं शारदा,
कमलवन हेतु हुईं हेमन्त की रात,
पर देवता समझा रहे उन्हें,
श्रीरामचन्द्रजी को हर्ष होता न विषाद ।

आप तो जानती ही हैं उनका प्रभाव,
जीव कर्मवश ही दुख-सुख को पाता,
सो हमारे हित हेतु अयोध्या जाइये,
अब और देर न कीजिये, हे माता ।

संकोच में डाल दिया उन्हें उन्होनें,
वे सोच रहीं, इनकी बुद्धि है ओछी,
देख नही सकते औरों का ऐश्वर्य,
ऊंचा निवास पर करनी हैं नीची ।

पर राक्षसों का वध होगा यह सोच,
वे आयीं दशरथजी की पुरी अयोध्या,
कैकेयी की एक मन्दबुद्धि दासी थी,
अपयश की पिटारी बनायी, वही मंथरा ।

उसकी बुद्धि फेर चलीं सरस्वतीजी,
तब नगर को सजा देखा मंथरा ने,
लोगों से जाना राज्याभिषेक हो रहा,
कैसे यह काम बिगड़े सोचा उसने ।

कैकेयीजी के पास गयी मंथरा तब,
पूछा उन्होनें, तू क्यों हैं उदास,
मंथरा कुछ उत्तर नही देती,
बस लंबी-लंबी लेती है सांस ।

रानी हँसकर कहने लगी की तू,
है बहुत बढ़-चढ़ कर बोलने वाली,
क्या लक्ष्मण ने तुझे दण्ड दिया है,
तब भी मंथरा कुछ नही बोली ।

काली नागिन सी फुफकार रही वो,
डरकर रानी ने पूछा उससे,
अरी, तू कुछ कहती क्यों नही,
राजा और सब पुत्र हैं कुशल से ?

यह सुनकर कुबरी मंथरा के,
हृदय में हुई बड़ी ही पीड़ा,
बोली, क्यों कोई सीख देगा हमें,
बात करूंगी, मैं किसका बल पा ।

राजा युवराज पद दे रहे श्रीराम को,
उन्हें छोड़ आज कुशल है किसकी,
कौसल्या को विधाता बहुत दाहिने हुए,
तुम स्वयं जा क्यों नही देख लेती ।

परदेश में है तुम्हारा पुत्र,
पर सोच नही कुछ भी तुम्हें,
जानती हो हमारे वश है स्वामी,
उनकी चतुराई नही दिखती तुम्हें ।

मंथरा के प्रिय वचन सुनकर,
पर मन की मैली जानकर उसे,
रानी ने डपटकर कहा मंथरा को,
चुप रह, ऐसा न कहना फिर से ।

काने, लंगड़े और कुबड़ों को,
जानना चाहिये कुटिल और कुचाली,
उनमें भी स्त्री और दासी खासकर,
यह कह कैकेयीजी मुसकरा दीं ।

फिर बोलीं, हे प्रियवादिनी मंथरा,
क्रोधित नही हूँ, मैं तुझ पर,
सुन्दर, मंगलदायक दिन वह होगा,
जिस दिन होगा श्रीराम का तिलक ।

सूर्यवंश की सुहावनी रीति है यह,
बड़ा स्वामी, छोटा भाई सेवक होता,
तुझे जो अच्छा लगे मांग ले,
यदि कल सचमुच तिलक है राम का ।

सहज स्वभाव से सब माताएं,
कौसल्या सी प्यारी हैं राम को,
मुझ पर तो उनका विशेष स्नेह है,
जांच कर देखा है मैने राम को ।

यदि विधाता कृपा कर फिर जन्म दें,
तो श्रीराम पुत्र हों, बहु हो सीता,
श्रीराम प्राणों से भी प्रिय हैं मुझे,
उनके तिलक से तुझे क्षोभ कैसा ।

सौगंध देती हूँ तुझे भरत की,
छल-कपट छोड़कर कह सच-सच,
हर्ष के समय विषाद कर रही,
मुझे इसका कारण कह झट-पट ।

तब मंथरा ने कहा बातें बनाकर,
ताड़ने ही योग्य हूँ हे रानी मैं तो,
मेरा अभागा कपाल फोड़ने ही योग्य है,
जो भली बात भी लगती बुरी आपको ।

जो झूठी-सच्ची कहते हैं बनाकर,
वे ही प्रिय लगते हैं तुमको,
अब मैं भी ठकुरसुहाती कहा करूंगी,
वरना दिन-रात चुप रहूंगी मैं तो ।

परवश किया विधाता ने मुझे,
कोई राजा हो, क्या हानि हमें,
तुम्हारा अहित हमसे देखा नही जाता,
भूल हुई, अब क्षमा करो हमें ।

अस्थिर बुद्धि और माया वश होने से,
गूढ़, कपट भरे वचनों को सुनकर,
कैकेयी ने मंथरा का विश्वास कर लिया,
उसे अहैतुक हित करने वाली जानकर ।

भीलनी के गान से मोहित हिरनी सी,
रानी बारम्बार पूछ रही उससे आदर से,
अपना दाव सफल हुआ जान मंथरा,
खूब विश्वास जमाकर बोली रानी से ।

हे रानी ! तुमने जो यह कहा,
कि सीता-राम प्रिय हैं मुझे,
सो मित्र भी शत्रु हो जाते हैं,
यह बात सच थी बस पहले ।

सूर्य कमल का पौषण करता,
पर वही जला देता, उसे जल बिना,
समय रहते ही कुछ उपाय कर लो,
क्योंकि सौत कौसल्या चाहती तुम्हें उखाड़ना ।

तुम कुछ कपट-चतुराई जानती नही,
राजा मन के मैले, मीठे मुंह के,
कौसल्या ने अपनी बात बना ली,
भरत को अपने ननिहाल भेज के ।

राजा का तुम पर विशेष प्रेम है,
कौसल्या सौत होने से सह नही सकती,
राजा को जाल रच वश में कर लिया,
फिर भी तुम्हारी आंखें नही खुलती ।

राम का तिलक हो, उचित है यह,
पर आगे क्या होगा तुम नही जानती,
फिर सैकड़ों सौतों की कहानियां सुनाकर,
दोनों के बीच विरोध की दीवार खींच दी ।

होनहारवश विश्वास हो गया कैकेयी को,
रानी ने फिर भी पूछा उससे,
वह बोली तैयारियां होते पखवाड़ा हो गया,
पर तुमने खबर पाई है आज मुझसे ।

तुम्हारी हितैषी हूँ, सो सच कहती हूँ,
राजतिलक विपत्ति का बीज है तुमको,
चाकरी करोगी तभी तुम रह सकोगी,
दुध की मक्खी हो गयी तुम तो ।

कद्रु ने दुख दिया था विनता को,
वैसे ही दुख तुम्हें देगी कौसल्या,
भरत कारागार की हवा खायेंगें,
और लक्ष्मण पद पायेगें सहकारी का ।

मंथरा की कड़वी वाणी सुनते ही,
कैकेयी केले सी लगी कांपने,
तब मंथरा ने समझाया उसको तो,
कैकेयी को लगी वह प्यारी लगने ।

कैकेयी बोली सीधे स्वभाव के कारण,
मैं दाया-बायां कुछ नही जानती,
मैने कभी किसी का बुरा न किया,
क्यों देव विपरीत हैं, नही जानती ।

नैहर जाकर जी लूंगी मैं चाहे,
पर चाकरी सौत की नहीं करूंगी,
देव जिसे शत्रु के वश रखे,
उसका मरना अच्छा, अपेक्षा जीने की ।

जब बहुत दीन वचन कहे रानी ने,
त्रियाचरित्र फैलाया उन्हें सुनकर कुबरी ने,
बोली क्यों ला रही हो मन में ग्लानि,
जिसने तुम्हारा बुरा चाहा, बुराई मिलेगी उन्हें ।

तुम कहो तो मैं उपाय बतलाऊं,
राजा हैं तुम्हारी सेवा के वश में,
रानी बोली तुम जो कहोगी करूंगी,
तुम तो सोचती हो मेरे हित में ।

मंथरा ने सब तरह कबूल करवाकर,
तेज किया अपनी कपटरूपी छुरी को,
जैसे बलि का पशु मौत नही देखता,
बस चरता रहता हरी-हरी घास को ।

तब मंथरा बोली, तुमने कहा था,
राजा के पास दो वचन हैं धरोहर,
अपना भाग्य सुधार सकती हो तुम,
आज वे दोनो वचन राजा से मांगकर ।

जब राजा राम की सौगंध खा लें,
तब तुम राजा से वचन मांगना,
मांगना बनवास राम के लिये,
और भरत के लिये राज्य मांगना ।

बड़ी बुरी घात लगा कहा मंथरा ने,
आज की रात ही काम बना लेना,
जाओ अब तुम कोप भवन में,
राजा पर सहसा विश्वास मत कर लेना ।

प्राणों सी प्रिय जान कुबरी को,
रानी ने किया उसकी बुद्धि का बखान,
कोई तुझसा नही मेरा हितकारी,
तू मुझ बहती को हुई नाव समान ।

विधाता जो कर दे मेरा मनोरथ पूरा,
तो मैं तुझे बना लूं आंखों की पुतली,
इस तरह बहुत प्रकार उसे आदर दे,
कैकेयी जान-बूझ कोपभवन को चली ।

कलह बीज, दासी वर्षा ऋतु सी,
कैकेयी की कुबुद्धि जमीन बोने को,
कपटरूपी जल पर अंकुर फूट निकला,
वरदान पत्ते से, दु:खरूपी फल होने को ।

अपनी दुष्ट बुद्धि से नष्ट हो गयी,
कैकेयी कोपभवन में सोयी जा,
महल और नगर में धूम मच रही,
यह कुचाल कोई कुछ नही जानता ।

आनन्दित हो नगर के सब लोग,
साज सज रहे शुभ मंगलाचार के,
राजद्वार में बड़ी भीड़ हो रही,
हर्षित हो रहे सखा श्रीराम के ।

कौन है श्रीरघुनाथजी के समान,
शील और स्नेह को निबाहने वाला,
आपस में बड़ाई कर रहे उनकी,
जन्म-जन्म उनका सेवक बना दाता ।

सबकी यही अभिलाषा है नगर में,
पर कैकेयी का हृदय जल रहा,
नीच का मत हर लेता चतुराई,
कुसंगति से किसका हुआ भला ।

संध्या को कैकेयी के महल गये महाराज,
मानों साक्षात स्नेह निष्ठुरता के पास गया,
कोपभवन का नाम सुन सहम गये महाराज,
डर के मारे उनका मुख सूख गया ।

जिनकी भुजाओं के बल पर इन्द्र,
रहते हैं राक्षसों से निर्भय होकर,
वज्र की चोट भी जो सह लेते,
पुष्प-बाग से रह गये हार कर ।

डरते-डरते कैकेयी के पास गये वे,
बड़े दु:खी हुए देख दशा उसकी,
पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है,
खबर नही कुछ किसी चीज की ।

कैसी फब रही यह कुवेषता उसको,
मानों भावी विपदा की सूचना दे रही,
राजा नजदीक जा पूछ रहे हैं उसे,
पर वह राजा का हाथ झटक दे रही ।

क्रोधित नागिन सी देख रही कैकेयी,
दोनों वरदानों की वासनाएं जीभों सी,
और वे दोनों वरदान जहरीले दांत,
तलाश जिन्हें मर्मस्थल को काटने की ।

तुलसीदासजी कहते हैं होनहार के वश,
राजा समझ रहे कामदेव की क्रीड़ा इसे,
बार-बार तरह-तरह से पूछ रहे,
बार-बार सब तरह समझा रहे उसे ।

फिर रामजी की सौगंध खा बोले,
कुछ भी कपट कर नही मैं कहता,
बुरा वेश त्याग, मनचाहा मांग ले,
अपना मनोहर रूप आभूषणों से सजा ।

यह सुन और रामजी की सौगंध विचार,
मन्दबुद्धि कैकेयी हंसती हुई उठी,
मानो कोई भीलनी मृग को देख,
फंदा बनाकर तैयार हो उठी ।

अपने जी में कैकेयी को सुहृद जान,
दशरथजी पुलकित हो प्रेमसहित बोले,
हे भामिनि ! तेरा मनचीता हो गया,
घर-घर बज रहे आनन्द के बधावे ।

कल ही युवराज बना रहा राम को,
सो हे सुनयनी ! तू मंगलसाज सज,
यह सुन उसका कठोर हृदय फटने लगा,
मानों कोई बालतोड़ फोड़ा गया हो पक ।

पर यह भारी पीड़ा छिपा ली उसने,
जैसे चोर की पत्नी प्रकट नही रोती,
राजा लख नही रहे उसकी कपट-चतुराई,
पढ़ायी हुई थी वह कुटिल मंथरा की ।

यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं,
परंतु त्रियाचरित्र है अथाह समुद्र सा,
तब कैकेयी ने ऊपरी प्रेम बढ़ाकर,
नेत्र और मुंह मोड़ हंसते हुए कहा ।

मांग-मांग तो कहा करते हैं आप,
पर देते-लेते कुछ भी नही कभी,
दो वरदान देने को कहा था आपने,
पर संदेह है उनके मिलने में भी ।

राजा बोले अब मैं समझा,
मान करना परम प्रिय है तुम्हें,
तुमने वे वर कभी मांगे नही,
और स्वभाव वश याद नही रहा हमें ।

झूठ-मूठ दोष दो ना मुझे तुम,
दो के बदले चार वर मांग लो चाहे,
रघुकुल में सदा से रीति चली आयी,
प्राण चले जायें पर वचन न जाये ।

असत्य से बढ़कर कोई पाप नही,
सत्य ही जड़ समस्त सुकृत्यों की,
उस पर श्रीराम की शपथ निकल पड़ी,
सीमा मेरे पुण्य और स्नेह की ।

इस प्रकार बात पक्की कराकर,
दुर्बुद्धि कैकेयी राजा से हँसकर बोली,
मानों कुमत रूपी बाज को छोड़ने,
उसने उसकी आखों पर की पट्टी खोली ।

राजा का मनोरथ सुन्दर वन है,
सुख पक्षियों का समुदाय सुन्दर,
भीलनी की तरह छोड़ना चाहती है,
कैकेयी अपना वचनरूपी बाज भयंकर ।

मासपारायण, तेरहवां विश्राम

वह बोली, एक वर तो यह दीजिये,
कि राजतिलक हो मेरे पुत्र भरत का,
और दूसरा वर यह दीजिये मुझे,
कि राम बनवास काटें चौदह बरस का ।

कैकेयी के ये कोमल वचन सुनकर,
अत्यंत विकल हो उठे राजा,
कुछ कहते न बना, रंग उड़ गया,
ज्यों बिजली से झुलसा वृक्ष ताड़ का ।

सोचने लगे, हाय, यह क्या कर डाला,
अयोध्या नगरी को उजाड़ कर दिया,
विपत्ति की सुदृढ़ नींव डाल दी,
किस अवसर पर यह क्या हो गया ।

मारा गया स्त्री का विश्वास कर,
जैसे योगी को अविद्या नष्ट कर देती,
राजा को यों विचार करते देख,
क्रोधित हो बोली दुर्बुद्धि कैकेयी ।

क्या भरत आप के पुत्र नही,
या मुझे दाम देकर खरीद लाये,
बाण सा लगा मेरा वचन आपको,
अपना वचन निबाहे, चाहे ना निभायें ।

सत्य छोड़ अपयश लीजिये जगत में,
समझा था यह मांग लेगी चबेना,
राजा शिबि, दधीचि और बलि ने,
सब कुछ त्याग, वचन निभाया अपना ।

जले पर मानों नमक छिड़क रही हो,
ऐसे कड़वे वचन कह रही कैकेयी,
क्रोध रूपी नंगी तलवार सी दिखी,
उस समय महाराज दशरथ को कैकेयी ।

कुबुद्धि उस तलवार की मूठ,
और निष्ठुरता है धार उसकी,
कुबरी रूपी सान पर तेज हुई,
भयानक और कठोर बहुत ही ।

तब राजा अपना जी कड़ा करके,
बहुत ही नम्रता से बोले उससे,
क्यों कह रही हो ऐसे बुरे वचन,
भरत और राम दोनों हैं मुझे एक से ।

मैं अवश्य सबेरे ही दूत भेजूंगा,
भरत-शत्रुघ्न तुरंत आ जायेंगे सुनकर,
अच्छा दिन शोधवाकर, कर सब तैयारी,
भरत को राज्य दे दूंगा, डंका बजाकर ।

राम को राज्य का लोभ नही है,
और भरत पर बड़ा प्रेम है उनका,
मैं ही छोटे-बड़े का मन में विचार,
बड़े को राजतिलक देने जा रहा था ।

राम की सौ सौगन्ध खा कहता हूँ मैं,
कौसल्या ने इस विषय में कुछ न कहा,
बिना तुमसे पूछे यह किया सब कुछ,
इसी से मेरा यह मनोरथ खाली गया ।

अब क्रोध छोड़ मंगल साज सजो,
शीघ्र ही भरत हो जायेंगे युवराज,
पर तुमने जो यह दूसरा वर मांगा,
यह बना है मेरे दुख का काज ।

मेरा हृदय जल रहा उसकी आंच से,
यह दिल्लगी, क्रोध है या है सच्चा,
सब कहते हैं राम बड़े साधु हैं,
क्रोध त्यागकर राम का अपराध तो बता ।

तू भी बहुत स्नेह करती थी उससे,
कहीं वह सब तो नही था झूठ,
जिसका स्वभाव शत्रु को भी अनुकूल है,
वह क्यों कुछ करेगा माता के प्रतिकूल ।

हे प्रिये ! विचारकर वर मांग तू,
जी न सकूंगा मैं राम के बिना,
कैकेयी ने कहा, आप कुछ भी करें,
आपकी कोई भी चाल मुझसे चलेगी ना ।

या तो जो मैने मांगा, वह दीजिये,
या फिर बनिये अपयश के भागी,
कौसल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है,
साका कर उसको फल दूंगी वैसा ही ।

यदि सवेरा होते ही राम,
मुनि वेष धर नही जाते वन,
तो हे राजन ! निश्चित जान लीजिये,
आपका अपयश होगा, मेरा मरन ।

ऐसा कह उठ खड़ी हुई कैकेयी,
मानो क्रोध की नदी उमड़ी हो,
राजा दशरथरूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़,
विपत्तिरूपी समुद्र की ओर जा रही जो ।

राजा ने समझ लिया कैकेयी का हठ,
तब चरण पकड़ कर की विनती उससे,
कहा, मेरी मृत्यु का कारण मत बन,
राम को रख ले, जिस किसी प्रकार से ।

पर जब देखा उन्होनें रोग असाध्य है,
हा राम ! कह गिर पड़े भूमि पर,
व्याकुल हो, शरीर शिथिल पड़ गया,
कोई शब्द आता नही जबान पर ।

कैकेयी तब कड़वे-कठोर वचन बोली,
मानो घाव में भर रही हो जहर,
जो अन्त में ऐसा ही करना था,
तो ‘मांग’ ‘मांग’ कहा किस बल पर ।

ठहाका मार हंसना और गाल फुलाना,
क्या ये दोनों हो सकते एक साथ,
दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना,
लड़ाई तो लड़े, पर ना होवे घात ।

या तो वचन ही छोड़ दीजिये,
या फिर कीजिये धैर्य को धारण,
सत्यव्रती के लिये तिनके के समान है,
स्त्री, पुत्र, घर, पृथ्वी और धन ।

कैकेयी के मर्म-भेदी वचन सुनकर,
तू जो चाहे कह, राजा ने कहा,
मेरा काल पिशाच हो लग गया तुझे,
वही तुझसे यह सब कहला रहा ।

भरत तो भूलकर भी राजपद नही चाहते,
होनहारवश कुमति बसी तेरे जी में,
यह सब मेरे पापों का परिणाम है,
जो विधाता विपरीत हो गया कुसमय में ।

तेरी उजाड़ी हुई यह सुन्दर अयोध्या,
फिर बसेगी, श्रीराम की प्रभुता होगी,
सब भाई श्रीराम की सेवा करेंगे,
और तीनों लोकों में उनकी बड़ाई होगी ।

केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा,
यह किसी तरह भी नही जायेगा,
अब जीते जी बोलना ना मुझसे,
दूर चली जा, मुझे मुंह ना दिखा ।

बहुत तरह से समझाकर उसको,
गिर पड़े पृथ्वी पर महाराज,
पर कपट-सयानि कैकेयी बोलती नही,
मानों मसान-सिद्धि का कर रही प्रयास ।

व्याकुल राजा राम-राम रट रहे,
मानो पक्षी बिना पंख हो बेहाल,
मना रहे वो हो ना सवेरा,
श्रीराम से कहे ना कोई ये हाल ।

हे रघुकुल के गुरू, सूर्य भगवान,
आप उदय करें न कल अपना,
अयोध्या का ऐसा हाल देखकर,
आपके हृदय में होगी बड़ी पीड़ा ।

विलाप करते-करते हो गया सवेरा,
वाद्य बजने लगे राज-द्वार पर,
भाट विरूदावली, गवैये गान कर रहे,
बाण जैसे लगते, राजा को हृदय पर ।

मंत्री और सेवक प्रतीक्षा कर रहे,
क्यों नही जागे अवधपति अभी तक,
पिछले पहर ही जाग जाया करते वो,
पर आज उन सबको हो रहा अचरज ।

तब वे सब सुमन्त्र से बोले,
हे सुमन्त्रजी ! जाओं, राजा को जगाओ,
उनकी आज्ञा पा हम सब काम करें,
जल्दी से आप रावले को जाओ ।

पर महल का भयानक हाल देख,
डर रहे हैं महल में जाते हुए वो,
ऐसा लग रहा मानों काट खायेगा,
विषाद ने डेरा डाल रखा हो ।

जब सुमन्त्रजी ने जा कर देखा,
राजा दशरथ पड़े थे भूमि पर,
उन्हें देखकर तब कैकेयी यह बोली,
राजा जागते रहे हैं आज रात भर ।

राम-राम रट सबेरा कर दिया,
बतलाते नही कुछ भी पूछने पर ,
तुम जल्दी राम को बुला लाओ,
तब समाचार पूछना वापस आ कर ।

सब देख-समझ सुमन्तजी चले,
कुछ कुचाल करी है रानी ने,
वे वहां गये जहां श्रीराम थे,
और लिया साथ में उन्हें उन्होंने ।

रघुवंशमणि श्रीराम ने जा कर देखा,
राजा पड़े हैं बुरी हालत में,
सूखे ओठ, शरीर जल रहा है,
पास ही कैकेयी भरी क्रोध में ।

कोमल, करूणामय स्वभाव श्रीराम का,
जीवन में दु:ख देखा पहली बार,
धीरज धर माता कैकेयी से पूछा,
वो भी समय का कर के विचार ।

हे माता ! क्यों दुखी हैं पिताजी,
कारण कहो, निवारण हो सके जिससे,
कैकेयी ने कहा, हे राम ! सुनो,
बहुत स्नेह करते हैं राजा तुम से ।

दो वरदान राजा ने कहा था देंगे,
मुझे जो अच्छा लगा, मांगा मैने,
उसे सुन राजा सोच मे पड़ गये,
ये तुम्हारा संकोच छोड़ नही सकते ।

इधर पुत्र का स्नेह, उधर प्रतिज्ञा,
इसी धर्म-संकट में पड़े है राजा,
कर सकते हो तो राजाज्ञा शिरोधार्य करो,
ताकि इस क्लेश से उबरें राजा ।

बेधड़क ऐसे कड़वा बोल रही कैकेयी,
सुनकर कठोरता भी व्याकुल हो उठी,
जीभ धनुष, वचन बहुत-से तीर,
निगाहें राजा रूपी निशाने पर टिकी ।

सूर्यकुल के सूर्य, आनन्दनिधान श्रीरामजी,
मन में मुसकरा कर, बोले माता से,
माता-पिता के वचनों का जो अनुरागी,
धन्य है, माता-पिता संतुष्ट हों जिससे ।

वन में मुनियों का होगा मिलाप,
मेरा सब तरह कल्याण है जिस में,
उसमें भी फिर पिताजी की आज्ञा,
और तुम्हारी सम्मति है इस में ।

आज विधाता अनुकूल लगते हैं,
कि राज्य मिलेगा प्राणप्रिय भरत को,
यदि इसके लिये भी वन न जाऊँ,
सबसे बड़ा मूर्ख गिना जाऊंगा तब तो ।

ऐसा मौका कोई भी न चूकेगा,
जो सुअवसर आपने दिया है आज,
इतनी सी बात पर पिताजी व्याकुल हैं,
इस बात पर मुझे नही होता विश्वास ।

श्रीराम के सीधे-सरल वचन सुनकर भी,
टेढ़ा ही जान रही है कैकेयी उन्हें,
जैसे यद्यपि जल समान ही होता है,
पर टेढी़ ही चलती है जोंक उसमें ।

श्रीराम का रूख पा हर्षित कैकेयी,
बोली कपटपूर्ण स्नेह का कर प्रदर्शन,
तुम्हारी और भरत की सौगंध मुझे,
विदित नही मुझे कोई और कारण ।

हे तात ! अपराध योग्य नही तुम,
बल्कि सबको सुख देने वाले हो,
तुम जो कह रहे हो, सत्य है,
माता-पिता के वचनों में तत्पर हो ।

बलिहारी तुम्हारी, पिता को वही बात कहो,
बुढ़ापे में इनका अपयश न हो जिससे,
जिस पुण्य ने उन्हें तुमसे पुत्र दिये,
उचित है आदर देना ही उसे ।

कैकेयी के मुख में ये शुभ वचन,
मगध में गया आदि तीर्थ से लगते,
पर श्रीराम को अच्छे लगे माता के वचन,
ज्यों गंगा में सब जल शुभ ही रहते ।

इतने में मूर्छा दूर होने पर,
श्रीराम को चरणों में पड़ता देखा राजा ने,
मुख से वे कुछ कह नही सकते,
बस उनको हृदय से लगा लिया उन्होनें ।

मन में ब्रहमाजी को मना रहे राजा,
कि श्रीरामजी जायें न वन को,
फिर निहोरा करते महादेवजी से कहते हैं,
दुख दूर कीजिये, सेवक जान मुझको ।

प्रेरकरूप से सबके हृदय में हैं आप,
ऐसी बुद्धि दीजिये आप श्रीराम को,
मेरा वचन त्याग, शील-स्नेह को छोड़,
श्रीरामचन्द्र कदापि न जायें वन को ।

चाहे अपयश हो, नष्ट हो जाये सुयश,
मैं नरक में गिरूं, स्वर्ग चला जाये,
दु:सह दु:ख आप मुझसे सहन करा लें,
पर श्रीराम आंखों से दूर न जायें ।

इस तरह सोच विचार कर रहे राजा,
पर मन उनका पत्ते सा डोल रहा,
उधर श्रीराम ने प्रेमवश जान पिता को,
विनीत भाव से उनसे यह कहा ।

बस इतनी सी बात के लिये,
इतना दु:ख पाया हे तात ! आपने,
मुझे पहले किसी ने न बताया,
माता से पूछकर यह जाना मैने ।

उनसे यह सारा प्रसंग सुनकर,
बड़ी प्रसन्नता हुई है मुझे,
हे पिताजी ! स्नेहवश सोचना छोड़,
प्रसन्न हो, आज्ञा दीजिये मुझे ।

फिर बोले, उसका ही जन्म धन्य है,
जिसका चरित्र सुन पिता आनन्दित हों,
चारों पदार्थ उसकी मुट्ठी में रहते,
जिसको माता-पिता प्राणों से प्रिय हों ।

आज्ञा पालन कर जल्द लौट आऊंगा मैं,
अत: कृपा कर आज्ञा दीजिये मुझे,
माता से विदा मांग आता हूँ,
यह कह श्रीराम वहां से चल दिये ।

शोकवश कोई उत्तर दे न सके राजा,
कैकेयी चुपचाप खड़ी देखती रही,
बिच्छू का जहर जैसे चढ़ता है,
नगर में फैली यह बात वैसे ही ।

इस अप्रिय बात को सुनकर नगरवासी,
सिर धुन रह, विलाप कर रहे,
बनते-बनते बात बिगाड़ दी विधाता ने,
सब लोग कैकेयी को दोष दे रहे ।

पत्ते पर बैठ, पेड़ काट डाला,
सुख में घोल दिया जहर शोक का,
श्रीराम इसे प्राणों से प्रिय थे,
फिर न जाने क्यों ठानी कुटिलता ।

सत्य ही कहते हैं कवि जन,
स्त्री स्वभाव अथाह, भेद भरा होता,
परछायी भले ही पकड़ी जाये,
स्त्रियों की चाल कोई नही जानता ।

आग क्या जला नही सकती,
समुद्र में क्या समा नही सकता,
अबला क्या नही कर सकती,
काल से कौन बचा रहता ।

क्या से क्या कर दिया विधाता ने,
राजा बिना विचारे वर दे बैठै,
कैकेयी की बात मानने पर अड़े रह,
स्वयं दु:खों के पात्र बन बैठे ।

कोई कह रहा स्त्री के वश होने से,
मानो जाता रहा उनका गुण और ज्ञान,
जो सयाने है उन्हें दोष नही देते,
शिबि, दधीचि, हरिशचन्द्र का करते बखान ।

कोई भरतजी की सम्मति बताते इसमें,
कोई झूठ कहते ऐसी बातों को,
ऐसी बातों से पुण्य नष्ट हो जायेंगे,
प्राणों से प्रिय हैं राम भरत को ।

चन्द्रमा चाहे आग बरसाने लगे,
चाहे अमृत विष समान हो जाये,
परन्तु यह कदापि संभव नही,
कि भरतजी श्रीराम के विरूद्ध जायें ।

कोई एक विधाता को दोष देते हैं,
अमृत दिखाकर विष दे दिया जिसने,
खलबली मच गयी सब सोच में पड़े,
आनन्द, उत्साह की जगह ली दु:ख ने ।

कैकेयी की प्रिय, माननीय बड़ी-बुढ़िया,
सीख देने लगी, शील की सराहना कर,
पर कैकेयी को बाण से लगते हैं,
उनकी बातों का होता नही कुछ असर ।

वे कहती हैं राम प्यारे थे तुम्हें,
ना कभी सौतियाडाह किया तुमने,
कौसल्या या राम ने क्या अपराध किया,
कि राम को भेज रही हो वन में ।

क्या सीताजी छोड़ देंगी पति का साथ,
क्या लक्ष्मणजी घर पर रह सकेंगे,
क्या अयोध्या का राजा भोगेंगे भरतजी,
क्या राम बिन राजा जीवित रह सकेंगे ।

क्रोध छोड़ दो हृदय में ऐसा विचारकर,
शोक और कलंक की कोठी मत बनो,
अवश्य ही दे दो भरत को युवराजपद,
पर श्रीराम को वन मत जाने दो ।

भूखे नही हैं श्रीराम राज्य के,
विषयासक्ति उनमें है ही नही,
कोई शंका मन में ना लाओ,
राम कोई विघ्न डालेंगे नही ।

इतने पर भी मन न माने तो,
तुम राजा से यह वर मांग लो,
श्रीराम गुरू के घर जा कर रहें,
वन-गमन का वचन वापस ले लो ।

जिस तरह यह शोक और कलंक मिटे,
वही उपाय कर कुल की रक्षा कर,
दूसरी और कोई बात न चला,
लौटा ले श्रीराम को हठ कर ।

तुलसीदास कहते हैं, सूर्य के बिना दिन,
चन्द्रमा बिन ज्यों फीकी हो जाती रात,
वैसे ही अयोध्या शोभाहीन हो जायेगी,
जो मानी न तुमने हमारी यह बात ।

पर कुटिला कुबरी की सिखायी हुई,
कैकेयी ने इसपर दिया ना कान,
सब समझा-बुझा हारकर चल दी,
कैकेयी को मन्दबुद्धि, अभागिन जान ।

नगर के सब लोग विलाप कर रहे,
और अनेकों गालियां दे रहे कैकेयी को,
वियोग की आशंका से यों व्याकुल हो रहे,
ज्यों जल सूखने पर जलचर व्याकुल हों ।

माता कौसल्या के पास गये श्रीराम,
मुख प्रसन्न है, मन में चौगुना चाव,
बड़े भाई का ही राजतिलक क्यों होता,
मने से मिटा यह विषाद का भाव ।

चरणों में सिर नवाया श्रीराम ने,
माता ने उठा लगा लिया हृदय से,
उनका आनन्द कुछ कहा नही जाता,
नेत्र भर आये प्रेम में जल से ।

फिर वे बोलीं, हे तात ! कहो,
कब वो शुभ लग्न है आनन्दकारी,
नहा-धो कर पिता के पास जाना,
माता जाती है तुम पर बलिहारी ।

माता के ऐसे वचन सुनकर भी,
श्रीराम का मन उन पर ना अटका,
अत्यंत कोमल वाणी से माता से बोले,
पिता ने मुझे राज्य दिया है वन का ।

मेरा बड़ा काम बनने वाला है वहां,
सो तू प्रसन्न मन से दे आज्ञा मुझे,
मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नही,
लौटकर फिर चरणों में प्रणाम करूंगा तुझे ।

श्रीराम के ये नम्र और मीठे वचन,
बाण से लगे माता के हृदय में,
कौसल्याजी वैसे ही सहमकर रह गयीं,
जैसे जवासा सूख जाता है वर्षा में ।

हृदय का विषाद कुछ कहा नही जाता,
पर धीरज धर कहा माता ने,
प्राणों से प्रिय हो तुम पिता को,
फिर किस कारण बनवास दिया उन्होनें ।

तब रूख देखकर श्रीरामचन्द्रजी का,
मंत्री के पुत्र ने समझाया सब कारण,
सब सुन वह गूंगी सी हो गयीं,
उनकी दशा का नही हो सकता वर्णन ।

ना तो रोक सकती हैं वे उनको,
ना ही कह सकती चले जाओ, वन,
धर्म और स्नेह में द्वन्द्व हो रहा,
फिर मन को समझाकर बोलीं ये वचन ।

हे तात ! अच्छा किया तुमने,
पिता की आज्ञा को जो माना,
सब धर्मों का शिरोमणि धर्म,
पिता की आज्ञा पूरी कर लाना ।

लेशमात्र भी मुझे दुख नही इसका,
राज्य की जगह बनवास दे दिया,
पर भरत, महाराज और प्रजा को,
भारी क्लेश होगा तुम्हारे बिना ।

हे तात ! केवल पिता की आज्ञा हो,
तो माता को बड़ी जान रूक जाओ,
पर यदि माता-पिता दोनो ने कहा हो,
तो उनकी आज्ञा कदापि ना ठुकराओ ।

वन के देवी-देवता माता-पिता होंगे,
और पशु-पक्षी तुम्हारे चरणों के सेवक,
राजा को अन्त में बनवास ही उचित है,
पर तुम्हारी युवावस्था है दु:ख की कारक ।

हे रघुवंश तिलक ! वन बड़ा भाग्यवान है,
और यह अवधनगरी है बड़ी अभागी,
यदि मैं कहूं मुझे साथ ले चलो तो,
सोचोगे माता बहाने से मुझे रोकना चाहती ।

हे पुत्र ! तुम सबके परम प्रिय हो,
प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन,
तुम कहते, माता मैं वन को जाऊँ,
मैं बैठी पछताती, सुनकर तुम्हारे ये वचन ।

यह सोचकर, झूठा स्नेह बढ़ाकर,
हठ नही करती मैं, हे बेटा !
पर माता का नाता जान कर मुझे,
तुम भूल न जाना, हे बेटा ।

ज्यों पलकें आखों की रक्षा करती,
देव और पितर तुम्हारी रक्षा करें वैसे,
जल है तुम्हारी बनवास की अवधि,
प्रियजन और कुटुम्बी हैं मछली से ।

दया की खान, धर्म की धुरी हो तुम,
ऐसा विचारकर वही उपाय तुम करना,
सबके जीते-जी जिससे वापस आ मिलो,
यही निश्चय कर वन को गमन करना ।

सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया,
विपरीत हो गया कठिन काल हमारे,
ऐसा कह चरणों से लिपटी माता,
कैसे जी पाऊंगी मैं बिना तुम्हारे ।

हृदय से लगा लिया माता को राम ने,
फिर समझाया उन्हें कोमल वचन कहकर,
तभी यह समाचार सुन सीताजी अकुला उठी,
सास के चरणों में बैठीं शीश झुकाकर ।

आशीर्वाद दिया सास ने कोमल वाणी से,
व्याकुल हो उठीं सुकुमारी सीता को देखकर,
उधर पति से पवित्र प्रेम करने वाली,
सीताजी सोच रही हैं नजर झुकाकर ।

प्राणनाथ वन को चलना चाहते हैं,
देखें साथ होगा उनका किस पुण्यवान से,
शरीर और प्राण दोनों साथ जायेंगे,
या इनका साथ होगा केवल प्राण से ।

नख से धरती कुरेद रहीं सीताजी,
उससे नूपुरों से जो शब्द हो रहा,
मानों प्रेमवश नूपुर विनती कर रहे,
उनके चरणों का संग छूटे न जरा ।

जल बहा रहीं सीताजी नेत्रों से,
माता कौसल्या बोली उन्हें देखकर,
हे तात ! सुनो, सास-ससुर, कुटुम्बी,
प्यार करते हैं इन्हें प्राणों से बढ़कर ।

राजाओं के शिरोमणि हैं इनके पिता जनक,
और सूर्यकुल के सूर्य हैं ससुर इनके,
इस सूर्यकुलरूपी कमलवन को खिलानेवाले,
गुण और रूप के भण्डार हैं पति इनके ।

फिर रूप की राशि, गुण और शीलवाली,
प्यारी जानकी पुत्रवधु पायी है मैने,
आंखों की पुतली बना कर प्रेम बढ़ाया,
अपने प्राण लगा रक्खे हैं इनमें मैने ।

कल्पलता के समान बहुत तरह से,
स्नेहरूपी जल से सींचकर पाला इन्हें,
फलने-फूलने के समय विधाता हुए वाम,
क्या परिणाम होगा इसका पता न मुझे ।

पलंग, हिंडोले और गोद को छोड़कर,
पृथ्वी पर पैर न रक्खा सीता ने,
संजीवनी जड़ी समान रखवाली करती रही मैं,
बत्ती हटाने को भी कभी कहा न मैने ।

वो ही तुम्हारे साथ वन जाना चाहती है,
क्या आज्ञा होती है उसे, हे रघुनाथ !
चन्द्रमा की किरणों का रस चाहनेवाली चकोरी,
कैसे मिला सकती है सूर्य से आंख ।

अनेक दुष्ट जीव जन्तु विचरते वन में,
किस तरह सीता वहां रह सकेगी,
तस्वीर के बंदर से जो डर जाती,
कैसे उनका सामना वह कर सकेगी ।

देव सरोवर के कमलवन में विचरणे वाली हंसिनी,
योग्य है क्या तलैयों मे रहने के,
ऐसा विचारकर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो,
वैसी ही शिक्षा दूं जानकीजी को मैं ।

माता बोली यदि सीता घर में रहें,
तो बहुत सहारा हो जाय मुझको,
माता की प्रिय वाणी सुनकर श्रीराम ने,
प्रिय वचन कह संतुष्ट किया माता को ।

मासपारायण, चौदहवां विश्राम

माता के सामने कुछ कहते सकुचाते,
पर ऐसा अवसर कि कहना पड़ा,
बोले, हे राजकुमारी ! मेरी सिखावन सुनो,
मन में समझ न लेना अन्यथा ।

जो चाहती हो अपना और मेरा भला,
तो मेरा कहा मान, रहो घर में,
मेरी आज्ञा-पालन, सास की सेवा होगी,
सब तरह से भलाई है इस में ।

सास-ससुर की सेवा सर्वोपरि धर्म है,
माता के मन को बहलाती रहना,
मैं भी आज्ञा पालन कर शीघ्र लौटूंगा,
बड़ा ही क्लेशदायक है वन में रहना ।

भूमि पर सोना, वल्कल वस्त्र पहनना,
कन्द-मूल, फल का भोजन होगा,
और फिर वे भी मिलें, ना मिलें,
तरह-तरह के कष्टों को सहना होगा ।

वन के योग्य नही हो तुम,
इससे लोग मुझे अपयश देंगे,
मानसरोवर में पली-बढ़ी हंसिनी,
खारे समुद्र ले गये, लोग कहेंगे ।

स्वाभाविक ही हित चाहते गुरू और स्वामी,
उनकी बात जो सिर चढ़ाकर नही मानता,
उसके हित की हानि अवश्य होती है,
फिर पीछे वह सिर धुनकर पछताता ।

प्रियतम के कोमल, मनोहर वचन सुनकर,
जल भर आया जानकीजी के नेत्रों में,
ऐसी जलानेवाली हुई यह शीतल सीख,
जैसे चांदनी चकवी को शरद ऋतु में ।

कुछ उत्तर देते नही बनता उनसे,
पर व्याकुल हो उठीं वे यह सोचकर,
मेरे स्वामी मुझे छोड़कर जाना चाहते है,
तब कहने लगीं सास के पांव पड़कर ।

हे देवि ! क्षमा कीजिये मेरी ढिठाई,
मुझे हितकारी शिक्षा दी प्राणपति ने,
परंतु मैने मन में जान लिया कि,
पति-वियोग समान नही दु:ख जग में ।

हे प्राणनाथ ! हे दया के धाम !
हे सुन्दर, सुखदायी, हे सुजान !
आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये,
हे स्वामी ! है नरक के समान ।

माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री,
सास-ससुर, गुरू और भी स्वजन सभी,
सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं,
पति के बिना ये रिश्ते-नाते सभी ।

भोग रोग से, गहने भार भर,
और संसार यम-यातना के जैसे,
जीव देह बिना, नदी जल बिना,
हे नाथ ! स्त्री पति बिना वैसे ।

आपका साथ होने मात्र से ही,
मेरे लिये सभी सुख हैं सुलभ,
वन के पशु-पक्षी मेरे कुटुम्बी होंगे,
वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र ।

पर्णकुटी स्वर्ग सा सुख देने वाली,
वन देवी-देवता सास, ससुर समान,
कुशा और पत्तों की सुन्दर साथरी,
प्रभु के साथ मनोहर तोशक समान ।

कन्द, मूल, फल ही अमृत से फल,
पहाड़ अयोध्या के राजमहलों से,
क्षण-क्षण में प्रभु के चरणों के दर्शन,
आनन्दित करेंगे मुझे, चकवी को दिन से ।

हे नाथ ! आपने वन के बहुत से,
दु:ख, भय, विषाद और संताप कहे,
पर वे सब मिलकर भी, हे कृपानिधान !
आपके वियोग के समान नही लगते ।

साथ ले लीजिये हे प्रभु ! मुझे,
सबके हृदय की जानने वाले हैं आप,
यदि चौदह वर्ष अयोध्या में रखते हैं,
तो मुझे जीवित नही पायेंगे आप ।

क्षण-क्षण आपके चरणकमल देखते रहते,
थकावट न होगी मुझे मार्ग चलने में,
सब प्रकार से आपकी सेवा करूंगी,
और आपको प्रसन्न रखूंगी वन में ।

प्रभु के साथ रहते मेरी ओर देखे,
इतनी हिम्मत है भला किस में,
मैं सुकुमारी बन यहां पर सुख भोगुं,
और आपको उचित जाना वन में ?

जब ऐसे कठोर वचन सुनकर भी,
हे प्रभु ! मेरा हृदय न फटा,
तो मालूम होता है ये पामर प्राण,
भीषण दु:ख सहेंगे आपके वियोग का ।

बहुत व्याकुल हो गयी सीताजी यह कहकर,
संभाल न सकीं वे अपने आप को,
तब जान लिया श्रीरघुनाथजी ने जी में,
रख न सकेंगी सीताजी अपने प्राणों को ।

तब कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ने कहा,
सब सोच छोड़कर मेरे साथ चलो,
आज विषाद करने का अवसर नही,
तुरंत वनगमन की तैयारी करो ।

प्रिय वचन कह सीताजी को समझाया,
फिर आशीर्वाद लिया कौसल्या माता से,
माता ने कहा लौटकर जल्दी आना,
देख पाऊं जिससे मैं तुम्हें फिर से ।

यह देख कि माता अधीर हो गयी हैं,
इतनी अधिक की बोल नही निकलता,
अनेक प्रकार से उन्हें समझाया श्रीराम ने,
वह स्नेह वर्णन नही किया जा सकता ।

तब सास के पांव लग बोलीं सीताजी,
मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ, हे माता !
आप की सेवा करने के समय देव ने,
मेरा मनोरथ विफल कर दिया, माता ।

सीताजी के ऐसे मार्मिक वचन सुनकर,
बार-बार उन्होनें उन्हें लगाया हृदय से,
फिर बोलीं, जब तक गंगा-यमुना बहे,
तब तक अचल तुम्हारा सुहाग रहे ।

जब पाये ये समाचार लक्ष्मणजी ने,
वे व्याकुल हो उदास-मुंह उठ दौड़े,
रोमांचित और कम्पित हो रहा शरीर,
अधीर हो श्रीराम के चरण-कमल पकड़े ।

कुछ कह नही सकते, दीन हो रहे,
मानों मछली निकाल दी गयी जल से,
नही जानते वे क्या होने वाला है,
क्या श्रीराम ले चलेंगे साथ में अपने ।

तब नीति में निपुण श्रीरामचन्द्रजी बोले,
हे तात ! अधीर मत होओ प्रेम में,
गुरूजनों की शिक्षा जो माथे रखते,
उनका ही जीवन सफल होता जग में ।

हे भाई ! हृदय में ऐसा जानकर,
माता-पिता के चरणों की करो सेवा,
भरत-शत्रुघ्न भी घर पर नही हैं,
महाराज के मन में दु:ख है मेरा ।

ऐसे में यदि तुम्हें साथ ले जाऊँ,
तो अयोध्या हो जायेगी सभी प्रकार अनाथ,
जिसके राज्य में प्रजा दुखी रहती है,
वह राजा नरक में जाता, हे तात !

ऐसी नीति विचार तुम घर रह जाओ,
यह सुन व्याकुल हो गये लक्ष्मणजी,
इन वचनों से वे ऐसे सूख गये,
जैसे कमल, पाले का स्पर्श पाते ही ।

चरण पकड़ तब वे बोले राम से,
दास हूँ मैं, मेरे स्वामी हैं आप,
क्या इसमे मेरा वश चल सकता,
यदि यहीं मुझे जो छोड़ दें आप ।

यद्यपि आप की सीख है अच्छी,
पर बाहर है यह मेरे सामर्थ्य से,
नीति और शास्त्र के वे ही अधिकारी,
धारण करनेवाले जो धर्म-धुरी के ।

मैं तो आपके स्नेह में पला,
माता-पिता, गुरू को नही जानता,
मेरे तो सर्वस्व ही आप हैं,
आपके सिवाय और कुछ नही चाहता ।

मन, वचन और कर्म से जो,
प्रेम रखता हो आपके चरणों में,
वह भला क्या त्यागने योग्य है,
यह कह लक्ष्मणजी लिपटे चरणों में ।

भाई के कोमल और मृदु वचन सुनकर,
दयानिधि ने उठाकर गले से लगाया,
बोले माता से जाकर विदा मांग आओ,
लक्ष्मणजी ने अपना मन चाहा पाया ।

माता से विदा मांगने गये लक्ष्मणजी,
सब सुनकर सुमित्राजी सहमी ऐसे,
वन में चारों ओर आग लगी देख,
असहाय हिरनी सहम गयी हो जैसे ।

लक्ष्मणजी यह सोच सकुचा रहे,
कहीं स्नेहवश ये काम बिगाड़ न दें,
माँ से विदा मांगते डरते है,
कहीं ये मुझे जाने दें, ना दें ।

सुमित्राजी सोच रहीं कैकेयी ने,
बुरी तरह यह घात लगाया,
पर कुसमय जान धैर्य धारण कर,
कोमल वाणी से लक्ष्मणजी को समझाया ।

ते तात ! जानकीजी माता हैं तुम्हारी,
और स्नेही श्रीराम पिता के समान,
यदि वे दोनों वन जाते हैं तो,
तुम्हारा अयोध्या में कुछ भी नही काम ।

गुरू, माता-पिता, भाई, देवता और स्वामी,
इनकी सेवा करनी चाहिये प्राणों के समान,
फिर श्रीराम तो सबके स्वार्थरहित सखा हैं,
हृदय के भी जीवन, प्राणों के प्राण ।

पूजनीय और प्रिय लोग जहां तक,
मानने योग्य सब रामजी के नाते से,
ऐसा जान, उनके साथ वन जाओ,
और जीने का लाभ उठाओ जगत में ।

बड़ा ही सौभाग्य है हम दोनों का,
श्रीराम-चरणों में तुमने पाया स्थान,
जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजी का भक्त हो,
वही माता पुत्रवती, वरना बांझ समान ।

सम्पूर्ण पुण्यों का सर्वोत्तम फल यह,
स्वाभाविक प्रेम हो श्रीसीताराम चरणों में,
सब तरह से उनकी सेवा करना,
कोई क्लेश न पावें वे वन में ।

इस प्रकार उपदेश दे लक्ष्मणजी को,
वन जाने की आज्ञा दी सुमित्राजी ने,
फिर आशीर्वाद दिया, नित-नया प्रेम हो,
हे तात ! तुम्हारा उनके चरणों में ।

माता के चरणों में सिर नवाकर,
तुरंत चल दिये लक्ष्मणजी ऐसे,
सौभाग्यवश कठिन फंदे को छुड़ाकर,
कोई हिरण भाग निकला हो जैसे ।

वहां गये जहां श्रीरघुनाथजी थे,
बड़े प्रसन्न हुए वे मन में,
उधर नगर के सभी स्त्री-पुरुष,
बहुत उदास थे अपने मन में ।

सीताजी सहित श्रीराम और लक्ष्मण,
महाराज के पास गये राजमहल में,
स्नेहवश व्याकुल हो महाराज, उन्हें,
सीने से लगा लेते हैं अपने ।

भयानक संताप से घिरे महाराज से,
चरणों में सिर नवा विदा मांगी,
बोले प्रिय के प्रेमवश प्रमाद करने से,
जगत में अपयश और निन्दा होगी ।

यह सुनकर स्नेहवश राजा ने,
बैठा लिया राम को बांह पकड़कर,
बोले तुम्हारे लिये मुनि लोग कहते हैं,
तुम स्वामी हो, सेवक समस्त चराचर ।

शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार,
ईश्वर हृदय में विचारकर फल देते,
जैसा जो करता वैसा फल पाता,
वेद की नीति, सब यही कहते ।

किंतु यहां इससे विपरीत हो रहा,
करे कोई, फल कोई पा रहा,
प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है,
कौन जगत में समझ पा रहा ।

राजा ने इस प्रकार उन्हें रोकने को,
छल छोड़कर, बहुत से प्रयास किये,
पर धीर, धर्म-धुरन्धर, बुद्धिमान राम,
उन्हें रूकते हुए न जान पड़े ।

ऐसा देख सीताजी को समझाया उन्होनें,
वन के दु:सह दुखों को कहकर सुनाया,
पर सीताजी का मन राम चरणों में अनुरक्त,
किसी भी तरह से डिगने नही पाया ।

सुमन्त्रजी और वसिष्ठजी की पत्नियों ने भी,
कहा सीताजी को वन न जाने को,
बोली वे तुम्हें तो बनवास न दिया,
मानो अपने सास-ससुर के कहने को ।

सीताजी को ये बातें अच्छी न लगीं,
पर कह न सकीं कुछ संकोच वश,
ये बातें सुन कैकेयी तमककर उठी,
वन जाने का सामान दिया लाकर रख ।

फिर बोली राम से, हे रघुवीर !
प्राणों से प्रिय हो तुम राजा को,
शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे राजा,
कभी न कहेंगे तुम्हें वन जाने को ।

बड़ा सुख पाया श्रीराम ने यह सुन,
पर राजा को ये बाण से लगे,
मूर्छित हो गये राजा ये सोचकर,
अब भी ये अभागे प्राण न गये ।

उधर मुनि का सा वेष धारण कर,
सीता और लक्ष्मण संग चले श्रीराम,
राजमहल से निकल, ब्राह्मणों को बुलाकर,
वश में किया, दे आदर और दान ।

फिर दास-दासियों को गुरूजी को सौंपकर,
कहा माता-पिता बन रखिये इन्हें,
फिर सबको हाथ जोड़कर श्रीराम ने कहा,
वही करिये जिसमें महाराज सुखी रहें ।

फिर पुरवासियों से बोले, हे चतुर सज्जनों,
आप लोग करियेगा वही उपाय,
जिससे मेरी कोई भी माता,
मेरे विरह से दुखी होने न पाय ।

इस प्रकार सबको समझाकर श्रीराम,
गुरू-चरणों में सिर नवाकर चले,
फिर गणेश, पार्वती और महादेव को मना,
उनका आशीर्वाद पाकर वन को चले ।

भारी विषाद अयोध्या में छा गया,
और बुरे शकुन होने लगे लंका में,
उधर देवलोक में भी सब लोग,
हुए हर्ष और विषाद के वश में ।

हर्ष इसलिये कि नष्ट होंगे राक्षस,
विषाद, अयोध्यावासियों के दुख के कारण,
उधर महाराज मूर्च्छा से जागकर,
कहने लगे हाय ! राम चले गये वन ।

पर न जाने किस सुख के लिये,
नही निकल रहें हैं मेरे प्राण,
इससे अधिक और क्या व्यथा होगी,
जिसके कारण निकलेंगे ये प्राण ।

फिर धीरज धर सुमन्तजी से कहा,
तुम रथ ले श्रीराम संग जाओ,
दोनों कुमार और सुकुमारी जानकी को,
वन दिखा, चार दिन बाद लौटा लाओ ।

यदि दोनों भाई ना भी लौटें,
क्योंकि सच्चे हैं श्रीराम वचन के,
तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना,
कम से कम जानकीजी को लौटा दें ।

जब सीताजी वन को देखकर डरें,
तो मौका देखकर मेरी सीख कहना,
सास-ससुर ने कहा है लौट चलो,
कभी ससुराल, कभी पिता घर रहना ।

यदि सीताजी लौट आयें तो,
हो जायेगा मेरे प्राणों को सहारा,
वरना मेरा तो मरण ही होगा,
विधाता के आगे क्या है चारा ।

राजा की आज्ञा पाकर सुमन्त्रजी,
रथ जुड़वाकर तुरंत वहा गये,
सीतासहित दोनों भाई थे जहां,
रथ पर चढ़ा उन्हें ले चले ।

श्रीरामचन्द्रजी को जाते हुए देख,
सब लोग हो लिये साथ उनके,
बहुत तरह समझाकर लौटाते हैं राम,
पर वे वापस आ जाते फिर के ।

बड़ी डरावनी लग रही है अयोध्यापुरी,
मानो अन्धकारमयी कालरात्रि ही हो,
भयानक जन्तुओं से लग रहे लोग,
एक-दूसरे को देख डर रहे वो ।

पशु-पक्षी भी वियोग में व्याकुल हो,
जहां-तहां पर खड़े हैं ऐसे,
मानों किसी चित्रकार ने चित्र में,
खींचकर रख दिया हो उन्हें जैसे ।

फलों से परिपूर्ण सघन वन सा नगर,
नगरवासी बहुत से पशु-पक्षी से,
विधाता ने कैकेयी को भीलनी बना,
जला दिया उसे भयानक दावानल से ।

श्रीराम के बिना किस काम का नगर,
सोच कर सब लोग नगर छोड़ चले,
जिनको श्रीराम के चरण-कमल प्यारे हैं,
विषय-भोग कर नही सकते वश में ।

बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़,
सब लोग हो लिये श्रीराम के साथ,
पहले दिन तमसा नदी किनारे राम ने,
सबको साथ ले वहां किया निवास ।

प्रजा को प्रेम के वश देखकर,
द्रवित हो उठा हृदय श्रीराम का,
बहुत तरह समझा-बुझाकर लोगों को,
वापस अयोध्या लौट जाने को कहा ।

परंतु प्रेमवश लोग लौटते नही लौटाये,
शील और स्नेह छोड़ा नही जाता,
जब हार-थकरकर सो गये लोग,
श्रीराम ने उन्हें लौटाने का उपाय विचारा ।

सुमन्त्रजी से वे बोले, हे तात !
रथ के खोज मारकर हांकिये रथ को,
और किसी उपाय से बात न बनेगी,
बस यही मार्ग है लौटाने का उनको ।

श्रीशंकरजी के चरणों में सिर नवाकर,
राम-सीता, लक्ष्मण चढ़े रथ पर,
मंत्री सुमन्त्रजी ने उनके बैठते ही,
चला दिया रथ, खोज छिपाकर ।

सबेरा होते ही जब लोग जागे,
श्रराम चले गये, शोर मच गया,
सब लोग व्याकुल हो रहे ऐसे,
जैसे समुद्र में जहाज डूब गया ।

एक-दूसरे से कह रहे हैं वो,
हमें क्लेश होगा, यह जान श्रीराम ने,
छोड़ दिया है हम लोगों को यहां,
क्या रक्खा है ऐसे जीने में,

इस प्रकार प्रलाप करते हुए वो,
लौट आये अयोध्या नगरी को,
चौदह वर्ष की अवधि की आशा से,
रखे हुए हैं वे अपने प्राणों को ।

उधर श्रीराम श्रृंगवेरपुर जा पहुंचे,
जहां गंगाजी को दण्डवत की उन्होंने,
स्नान करते ही सब श्रम मिट गया,
जल पीकर मन प्रसन्न किया उन्होंने ।

जिनके स्मरण मात्र से जन्म-मृत्यु का,
महान श्रम भी तुरंत जाता हर,
उनके श्रम का मिटना कैसा,
यह तो केवल है लौकिक लीला भर ।

त्रिगुणों से रहित, मायातीत, दिव्य, सच्चिदानन्द,
सूर्यकुल के ध्वजारूप श्रीराम भगवान,
मनुष्यों के सदृश ऐसे चरित्र करते हैं,
भवसागर तरने को जो पुल समान ।

निषादराज गुह ने जब पायी खबर,
बन्धु-बान्धवों के साथ, भेंट ले चला,
अपार हर्ष था उसके हृदय में,
दण्डवत कर प्रभु को देखने लगा ।

कुशल पूछी प्रभु ने पास बैठाकर,
निषादराज ने कहा, प्रताप आपके चरणों का,
आज से मैं भी गिना जाऊंगा भाग्यवान,
यह पृथ्वी, धन, घर, सब है आपका ।

मैं तो सपरिवार आपका सेवक हूँ,
अब श्रृंगवेरपुर पधारिये कृपा कर,
श्रीराम ने पिता की आज्ञा बतलायी,
चौदह वर्ष रहना नही नगर जाकर ।

बड़ा दुख हुआ गुह को यह सुनकर,
स्त्री-पुरूष कर रहे बात आपस में,
कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं,
सुकुमार बालकों को दिया बनवास जिन्होंने ।

कोई कहता है, अच्छा किया राजा ने,
इस बहाने हमें दर्शन हुये इनके,
उधर निषादराज ने अशोक वृक्ष के नीचे,
ठहरने की व्यवस्था की उनके ।

फल-फूल और पानी अपने हाथों से,
लाकर रख दिये वहां निषादराज ने,
उन सबने जब खा-पी लिया,
लक्ष्मणजी लगे श्रीरामजी के पैर दबाने ।

फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को सोते जानकर,
लक्ष्मणजी उठे, सुमन्त्रजी को कहा सोने को,
और स्वयं धनुष-बाण से सजकर,
वीरासन में बैठ गये पहरा देने को ।

उधर गुह ने भी विश्वासपात्र पहरेदार,
नियुक्त कर दिये जगह-जगह पर,
फिर स्वयं भी लक्ष्मणजी के पास जा बैठा,
कमर में तरकस, धनुष पर बाण चढ़ाकर ।

प्रभु को जमीन पर सोते देखकर,
प्रेमवश निषादराज को विषाद हो आया,
पुलकित शरीर, जल बहने लगा नेत्रों से,
दशरथजी का महल उसे स्मरण हो आया ।

कहने लगा, इन्द्रभवन से सुन्दर महल,
पवित्र, विलक्षण, परिपूर्ण सब साधनों से,
जो सीताराम वहां विश्राम करते थे,
देखे नही जाते वे ऐसी दशा में ।

घास-फूस की साथरी पर थके,
सोये हुए हैं आज वे दोनों,
प्राणों सी संभार होती थी जिनकी,
पृथ्वी पर सोये हैं आज वे दोनों ।

महाराज जनकजी पिता हैं जिनके,
प्रभाव प्रसिद्ध हैं जिनका जगत में,
ससुर इन्द्र के मित्र, पति श्रीराम,
वो ही जानकीजी सोयी हैं जमीं पे ।

क्या ये दोनों वन के योग्य हैं,
विधाता प्रतिकूल होता नही किसको,
सच है कर्म प्रधान है जग में,
भाग्य ने भला बख्शा है किसको ।

बड़ी कुटिलता की कैकयनंदिनी ने,
बनवास दे दिया श्रीसीता-राम को,
कुल्हाड़ी बनी सूर्यकुलरूपी वृक्ष हेतु,
दु:खी कर दिया सम्पूर्ण जगत को ।

तब ज्ञान, वैराग्य और भक्तिरस सनी,
कोमल वाणी से बोले लक्ष्मणजी,
कोई किसी को दु:ख-सुख नही देता,
अपने ही किये को भोगते हैं सभी ।

संयोग-वियोग, भला-बुरा, जीना-मरना,
और जहां तक जंजाल हैं जगत के,
जो कुछ देखा, सुना, विचारा जाता,
मोह ही मूल में है इन सब के ।

जैसे स्वप्न में राजा रंक हो जाये,
या कंगाल हो जाये स्वामी स्वर्ग का,
तो भी जागने पर लाभ ना हानि,
यह दृश्य-प्रपंच भी देखना चाहिये वैसा ।

क्रोध नही करना चाहिये सोचकर ऐसा,
न व्यर्थ दोष देना चाहिये किसी को,
मोहरूपी रात्रि में सोने वाले हैं सब,
दिखायी देते हैं उन्हें स्वप्न अनेकों ।

योगी जागते हैं इस जगतरूपी रात्रि में,
परमार्थी और छूटे हुए प्रपंच से,
जागा हुआ जानना चाहिये तभी जीव को,
वैराग्य हो जाये जब सभी भोगों से ।

विवेक होने पर जब मोह मिट जाता,
प्रेम तब होता श्रीरघुनाथ चरणों में,
मन, वचन, कर्म से उनके चरणों में प्रेम,
यही सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ है जग में ।

परमवस्तु, परब्रहम, अविगत, अलख, अनादि,
अनुपम, विकाररहित, भेद-शून्य हैं श्रीराम,
नेति-नेति कह वेद निरूपण करते जिनका,
मनुष्य-तन धर लीला करते वे श्रीराम ।

मासपारायण, पंद्रहवां विश्राम

हे सखा ! मन में ऐसा समझकर,
मोह त्याग, श्रीसीताराम चरणों में प्रेम करो,
जिनको भजने से जग-जंजाल मिट जाते,
नित्य-निरन्तर उनका ही भजन करो ।

फिर सवेरा होन पर श्रीराम जागे,
स्नान-ध्यान कर बड़ का दूध मंगवाया,
छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित उस दूध को,
जटा बनाने हेतु सिर पर लगवाया ।

उदास हो गये सुमन्त्रजी यह देख,
बोले, कोसलनाथ का था यह कहना,
वन दिखाकर और गंगास्नान कराकर,
दोनों भाइयों को तुरंत लौटा लाना ।

ऐसी आज्ञा महाराज ने दी थी,
अब प्रभु कहें, करूँ मैं वैसे,
यह कह गिर पड़े श्रीराम चरणों पर,
और रोने लगे बालक के जैसे ।

फिर बोले कृपा कर वही कीजिये,
जिससे अयोध्या हो न अनाथ,
मंत्री को उठा, धैर्य बंधाते हुए,
श्रीराम ने कहा, सुनिये, हे तात !

अपने सभी धर्म-सिद्धान्त छान डाले,
धर्म हेतु करोड़ों कष्ट सहे लोगों ने,
वेद, शास्त्र और पुराण भी कहते हैं,
धर्म से बढ़कर कुछ न माना उन्होनें ।

सहज ही पा लिया मैने वह धर्म,
अपयश छा जायेगा जिसे छोड़ने से,
करोड़ों मृत्यु सा संताप देता है अपयश,
इससे अधिक क्या कहूं, हे तात ! आपसे ।

आप जाकर पिताजी के चरण पकड़कर,
विनती करियेगा वे हमारी चिन्ता न करें,
आप भी पिता से ही हितैषी हैं हमारें,
पिताजी दु:खी न होवें, कुछ ऐसा करें ।

व्याकुल हो गया निषादराज सब सुन,
तभी लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही,
बहुत ही अनुचित जानकर उसे श्रीराम ने,
सौगंध दिलायी सुमन्त्रजी को, कहें न कहीं ।

तब सुमन्त्रजी ने राजा का संदेश कहा,
सह न सकेंगी सीता क्लेश वन के,
जैसे भी हो सीता को लौटा लाना,
वरना जी ना सकूंगा, अकेला रह के ।

मायके या ससुराल जहां जी चाहे,
वहीं रह लेगीं सीता सुख से,
कहा नही जा सकता जैसे कहा,
राजा ने जिस दीनता और प्रेम से ।

पिता का संदेश सुनकर श्रीराम ने,
अनेक प्रकार से सीख दी सीता को,
कहा, जो तुम घर को लौट जाओ,
दूर कर दोगी सबकी चिन्ता को ।

तब सीताजी ने कहा, हे तात ! सुनिये,
परम ज्ञानी और करूणामय हैं आप,
क्या छाया शरीर का छोड़ सकती है,
क्या किरणें कर सकती सूर्य-चन्द्र का त्याग ।

इस प्रकार प्रेममयी विनती कर सीताजी,
बोली सुमन्त्रजी से आप हैं पिता समान,
बदले में आपको उत्तर देना अनुचित है,
पर क्षमा कीजिये मुझे आर्त्त जान ।

स्वामी के चरणकमलों के बिना जगत में,
मेरे लिये व्यर्थ हैं सभी नाते,
पति के बिना पिता के घर के,
सुख और ऐश्वर्य भी मुझे नही भाते ।

चक्रवर्ती सम्राट हैं मेरे ससुर कोसलराज,
चौदहों लोकों में प्रकट है प्रभाव जिनका,
आगे होकर इन्द्र भी स्वागत करता है,
आधे सिंहासन पर बैठने को स्थान देता ।

ऐसे ससुर और माता के समान सासुएं,
श्रीरघुनाथ चरणों बिना सुखदायक नही लगते,
दुर्गम वन, जंगली पशु-पक्षी, नदी, पहाड़,
मुझे सुखदायी होगें, प्राणपति के संग रहते ।

सो, हे तात ! सास-ससुर के पांव पकड़,
कहना वे मेरी सोच न करें,
कोई श्रम, दु:ख या थकावट न मुझे,
धनुर्धारी प्राणनाथ और देवर साथ हैं मेरे ।

ऐसे व्याकुल हुए सुमन्त्रजी यह सुन,
जैसे सांप मणि खो जाने पर,
कुछ सुनता नही, दिखाई नही देता,
कर नही सकते कुछ वो मगर ।

बहुत तरह समाधान किया श्रीराम ने,
पर सुमन्त्रजी को शान्ति मिलती नही,
बहुत यत्न किया साथ ले चलने का,
पर रघुनाथ के आगे कुछ चलती नही ।

उनकी आजा भी टाली नही जा सकती,
वश नही चलता कुछ कर्म-गति पर,
तब सिर नवाकर ऐसे लौटे सुमन्त्रजी,
जैसे कोई व्यापारी मूलधन लुटने पर ।

जब सुमन्त्रजी ने रथ को हांका,
घोड़े श्रीराम की ओर देख हिनहिनाते,
यह देख निषाद लोग विषाद वश,
अपना सिर धुन-धुनकर पछताते ।

पशु भी व्याकुल जिनके वियोग में,
प्रजा, माता-पिता जीते रहेंगे कैसे,
तब श्रीराम गंगा तीर पर आये,
और मांगी उन्होंने नाव केवट से ।

श्रीराम कह रहे हैं नाव लाने को,
फिर भी केवट नाव नही लाता,
कहता है, जान लिया आपका मर्म,
चरणधूलि से पाषाण मनुष्य बन जाता ।

पत्थर की शिला सुन्दर स्त्री हो गयी,
उस पर मेरी नाव है काठ की,
यदि वह भी कहीं स्त्री बन जाये,
तो मारी जायेगी मेरी तो रोजी ।

और कोई गुण नही है मुझमें,
कैसे परिवार का पालन करूंगा मैं,
यदि आप पार जाना चाहते हैं,
तो पहले दें मुझे चरण पखारने ।

चरण धो नाव चढ़ा लूंगा आपको,
और कोई उतराई मैं नही चाहता,
आपकी दुहाई और सौगंध दशरथजी की,
मैं तो सेवक हूँ आपके चरणकमलों का ।

लक्ष्मणजी भले ही मारें तीर,
पर जब तक पैर न लूंगा पखार,
तब तक हे तुलसी के नाथ ! कृपालु !
उतारूंगा नही मैं आपको उस पार ।

प्रेमासिक्त ये अटपटे वचन सुनकर,
हंसे जानकीजी और लक्ष्मण को देख श्रीराम,
फिर केवट से बोले, जो चाहे कर,
पर जल्दी पार उतारने का कर इंतजाम ।

एक बार नाम स्मरण करते ही जिनका,
मनुष्य उतर जाते भवसागर से पार,
और दो पग में त्रिलोकी नापी जिन्होंने,
वो ही केवट से कह रहे उतारो पार ।

प्रभु के इन वचनों को सुनकर,
मोहित हो गयी बुद्धि गंगाजी की,
परंतु प्रभु के पदनखों को देखते ही,
फिर हर्षित हो गयी देवनदी गंगाजी ।

अपनी उत्पत्ति का स्थान देखकर,
नष्ट हो गया मोह उनका,
वे समझ गयीं की प्रभु श्रीराम,
मनुष्य रूप में कर रहे हैं लीला ।

कठौते में जल ले आया केवट,
और धोने लगा श्रीराम के चरण,
परिवार सहित फिर वह चरणोदक पीकर,
किया पितरों का भवसागर से तरण ।

आनन्दपूर्वक फिर नाव में बैठाकर,
पार उतारा केवट ने उनको,
प्रभु के मन में संकोच हुआ,
कि दिया नही कुछ केवट को ।

तब पति के हृदय की जाननेवाली,
सीताजी ने अपनी अंगूठी उतारी,
जब श्रीराम देने लगे वह अंगूठी,
केवट ने करी उनसे विनती भारी ।

बोला, हे नाथ ! आपके चरण धोकर,
क्या कुछ नही पा लिया मैने,
अब तक तो बस मजूरी की थी,
आज जीने का फल पा लिया मैने ।

मेरे दोष, दु:ख और दरिद्रता सारी,
दूर हो गये सब के सब आज से,
हे नाथ ! आपके चरणकमल पखार कर,
धन्य भाग हो गया मैं आज से ।

अब कुछ नही चाहिये मुझे, हे नाथ !
लौटती बार जो देंगे मैं लूंगा,
तब भक्ति का वरदान दिया प्रभु ने,
और स्नान कर की शिव-पूजा ।

उधर सीताजी ने विनती की गंगाजी से,
हे माता ! पूरा कीजियेगा मेरा मनोरथ,
जिससे पति और देवर के साथ,
पुन: पूजा करूँ आपकी मैं लोटूं जब ।

सीताजी की प्रेम से सनी विनती सुनकर,
श्रेष्ठ वाणी सुनाई दी गंगा-जल से,
हे रघुबीर की प्रियतमा जानकी ! सुनो,
तुम्हारा प्रभाव जगत में मालूम न किसे ।

तुम्हारी कृपा से लोग लोकपाल हो जाते,
सब सिद्धियां करती हैं तुम्हारी सेवा,
तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनायी,
मुझे बड़ाई दी, मुझ पर करी कृपा ।

फिर भी हे देवि ! आशीर्वाद दूंगी तुम्हें,
मैं अपनी वाणी को सफल होने को,
पति और देवर संग लौटोगी तुम,
पाओगी जगत में सुन्दर यश को ।

मंगल के मूल वचन ये सुनकर,
बड़ी ही आनन्दित हुई सीताजी,
तब श्रीराम ने निषादराज से कहा,
अब वापस जाओ घर तुम भी ।

यह सुन, हाथ जोड़ बोला गुह,
कुछ दिन करने दें मुझे सेवा,
वन में आपकी पर्णकुटि बना दूंगा,
फिर जैसा कहेंगे, मैं करूंगा वैसा ।

उसका स्वाभाविक प्रेम देख राम ने,
अपने साथ ले लिया गुह को,
उधर उसने अपने लोगों को बुला,
संतोष करा, विदा किया उनको ।

तब गणेशजी और शिवजी का स्मरण कर,
और गंगाजी को सिर नवाकर श्रीराम,
निषादराज, लक्ष्मणजी, सीताजी को साथ ले,
चल दिये वन की ओर श्रीराम ।

रात बिता दूसरे दिन प्रातःकाल में,
दर्शन किये तीर्थराज प्रयागराज के,
सत्य मंत्री, श्रृद्धा प्यारी स्त्री,
श्रीवेणीमाधवजी से हितकारी मित्र उनके ।

चारों पदार्थों से भण्डार भरा है,
वह पुण्यमय प्रान्त सुन्दर देश राजा का,
दुर्गम, मजबूत और सुन्दर गढ़ वह क्षेत्र,
स्वप्न में भी शत्रु नही सकते पा ।

गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम,
अत्यंत सुशोभित सिंहासन है उसका,
अक्षयवट छत्र सा, मन कर लेता मोहित,
दर्शन से ही दूर हो जाती दरिद्रता ।

पुण्यात्मा, पवित्र साधु सेवा करते उसकी,
और पाते हैं सब मनोरथ मन के,
वेद और पुराणों के समूह भाट हैं,
जो बखान करते निर्मल गुणगान उसके ।

अपने श्रीमुख से प्रभु श्रीराम ने,
महिमा कहकर सुनायी तीर्थराज की,
फिर आकर त्रिवेणी का किया दर्शन,
जो है सब मंगलों को देने वाली ।

तब प्रभु भरद्वाजजी के पास आये,
और चरणों में दण्डवत किया उनके,
मुनि ने गले से लगा लिया उन्हें,
पा लिया फल को सभी पूण्यों के ।

प्रेम सहित आदर सत्कार किया मुनि ने,
कहा, मेरा जीवन आज सफल हो गया,
आपके दर्शन से कृतार्थ हो गया मैं,
अपने प्रेम का वरदान दें, करें कृपा ।

मन, वचन, कर्म से छल छोड़कर,
जब तक हो न जाता दास आपका,
तब तक करोड़ो उपाय करने पर भी,
कोई भी मनुष्य सच्चा सुख नही पाता ।

मुनि की भक्ति से आनन्दित हुए श्रीराम,
पर सकुचा गये लीला की दृष्टि से,
तब अपने ऐश्वर्य को छिपाते हुए,
मुनि का सुयश कहा अनेक प्रकार से ।

बोले, हे मुनीश्वर ! जिसे आप आदर दें,
वही बड़ा और गुणसमूहों का घर,
इस प्रकार दानों विनम्र हो रहे,
अनिर्वचनीय सुख अनुभव कर रहे परस्पर ।

उन लोगों की आने की खबर पा,
सभी बनवासी तपस्वी, मुनि आ गये,
श्रीराम ने उन सबको प्रणाम किया,
नेत्रलाभ पा वे आनन्दित हो गये ।

लौटे श्रीराम के सौन्दर्य की सराहना करते,
श्रीराम ने रात वहीं विश्राम किया,
फिर प्रात:कर्म से निवृत्त हो निकल पड़े,
मुनि से आगे का मार्ग दरियाफ्त किया ।

मुनि मन मे हँसकर कहते हैं उनसे,
आपके लिये सुगम है सभी मार्ग,
तभी मुनि के अनेक शिष्य आ गये,
बोले हमारा देखा हुआ है मार्ग ।

तब पूण्यात्मा, धन्य चार शिष्यों को,
मुनि ने कर दिया श्रीराम के साथ,
स्त्री-पुरुष दौड़-दौड़ कर देखते उनको,
जन्म का फल पाकर हो जाते सनाथ ।

तदन्तर श्रीराम ने विनती कर,
लौटा दिया मुनि के शिष्यों को,
मनचाहा भक्ति का पाया वरदान,
फिर मुनि के पास लौट गये वो ।

तब यमुनाजी पार उतरे वे सब,
लोग अपना काम छोड़ दौड़ते आये,
उनके मन में बहुत सी लालसायें हैं,
पर परिचय पूछते वे सकुचाये ।

उनमें जो वयोवृद्ध और चतुर थे,
पहचाना श्रीराम को युक्ति से उन्होंने,
सब कथा उन्होनें लोगों को सुनायी,
बहुत दु:खी हुए वे मन में अपने ।

उसी अवसर पर वहां एक तपस्वी आया,
जो सुन्दर, तेजपुंज, छोटी अवस्था का था,
वैरागी वेष, कवि गति नही जानते उसकी,
मन, वचन, कर्म से श्रीराम-प्रेमी था ।

अपने इष्टदेव प्रभु राम को पहचान कर,
जल भर आया उसके नेत्रों में,
गिर पड़ा चरणों में दण्ड की भांति,
उठा कर हृदय से लगाया प्रभु ने ।

कोई महादरिद्री पारस पा गया हो,
इतना अधिक आनन्द हुआ उसे,
प्रेम और परमार्थ शरीर धर मिले हों,
देखने वाले देख कह रहे उसे ।

फिर लगा वह लक्ष्मणजी के चरणों,
प्रेम से उमंगकर उठाया उसे उन्होंने,
फिर सीताजी की चरणधूलि सिर लगायी,
छोटा बच्चा जान आशीर्वाद दिया उन्होंने ।

तब निषादराज ने दण्डवत की उसे,
उसने निषाद को श्रीरामजी का प्रेमी जाना,
सो आनन्दित होकर वह मिला निषाद से,
निषाद ने भी बहुत आनन्द माना ।

वह तपस्वी अपने नेत्ररूपी दोनों से,
करने लगा श्रीराम के सौन्दये का पान,
ऐसे आनन्दित हुआ वह जैसे भूखे को,
मिल गया हो मनचाहे भोजन का दान ।

उधर गांव की स्त्रियां कह रही,
हे सखी ! कहो वे माता-पिता हैं कैसे,
ऐसे सुंदर-सुकुमारों को वन भेज दिया,
व्याकुल हो रहे वे सब स्नेह से ।

तब श्रीराम ने सखा गुह को समझाया,
उनकी आज्ञा मान चला वह घर को,
फिर उन्होनें यमुनाजी को प्रणाम किया,
और प्रसन्नतापूर्वक चल दिये आगे को ।

दानों भाइयों के अंगों में राजचिन्ह देख,
आते-जाते लोग पड़ रहे अचम्भे में,
समझ नही आता ज्योतिष शास्त्र झूठा है,
या कोई रहस्य है इस बात में ।

भारी जंगल और दुर्गम रास्ता,
तिस पर साथ में स्त्री सुकुमारी,
वे कहते हैं, हम साथ चलें,
पहुँचा आयें जहां इच्छा हो तुम्हारी ।

इस प्रकार वे प्रेमवश पुलकित हो,
नेत्रों मे जल भरकर पूछते,
किन्तु कृपालु श्रीराम विनय कर,
स्नेह सहित उन्हें लौटा देते ।

रास्ते में बसे गांव और पूरवे देखकर,
नागों और देवताओं के नगर ये कहते,
किस शुभ घड़ी में ये नगर बसे,
श्रीराम को देख जो धन्य हो रहे ।

जहां-तहां श्रीराम के चरण पड़ रहे,
अमरावती से भी बढ़कर वे हो रहे,
रास्ते में बसने वाले पूण्यात्माओं का भाग्य,
देवता भी उनकी सराहना कर रहे ।

जिन तालाबों और नदियों में,
श्रीसीताराम, लक्ष्मण कर लेते स्नान,
देवसरोवर और देवनदियों का भाग्य भी,
नही उन नदी-तालाबों के समान ।

जिस वृक्ष के नीचे प्रभु जा बैठते,
कल्पवृक्ष भी करते हैं बड़ाई उसकी,
श्रीराम की चरण रज स्पर्श कर के,
अपना बड़ा सौभाग्य मान रही पृथ्वी ।

चले जा रहे हैं श्रीसीताराम, लक्ष्मण,
निकलते जब किसी गांव के पास,
तब उनका आना सुन बालक-बूढ़े,
सब काम-काज छोड़ आ जाते पास ।

देख उन्हें मगन हो जाते प्रेम से,
वर्णन नही की जा सकती उनकी दशा,
कोई उनके साथ आगे चले जा रहे,
किसी की शिथिल हो रही मनो-दशा ।

कोई उनके विश्राम का करते प्रबन्ध,
कोई शीतल जल कर रहा अपर्ण उन्हें,
तब सीताजी को थकी हुई जानकर,
घड़ी भर विश्राम किया श्रीरघुनाथ ने ।

चकोर की तरह तन्मय हुए लोग,
देख रहे श्रीरामचन्द्रजी के मुखचन्द्र को,
नवीन तमाल वृक्ष सा वर्ण राम का,
लजा रहा जो करोड़ों कामदेवों को ।

दामिनी की सी कांति वाले लक्ष्मणजी,
नख से शिखा तक सुन्दर, मन भाते,
दोनों वल्कल वस्त्र पहने, तरकस कसे,
हाथों में धनुष-बाण शोभा पाते ।

सिरों पर सुन्दर जटाओं के मुकुट,
वक्ष:स्थल, भुजा और नेत्र हैं विशाल,
शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा से सुन्दर मुख,
मन को मोह लेते उनके कपाल ।

प्रेम के प्यासे वे लोग गांवों के,
निस्तब्ध रह जाते हैं उन्हें देखकर,
सीताजी के पास जाती हैं स्त्रियां,
पर कुछ पूछ नही पाती सकुचाकर ।

बार-बार सब उनके पांव लगती हैं,
कहती हैं सहज ही सीधे-सादे वचन,
बुरा न मानियेगा हमें गंवारी जानकर,
आपको देख शीतल हो गये हमारे मन ।

परम सुन्दर ये दोनों राजकुमार,
कांति जिनसे पायी रत्नों ने,
श्याम और गौर वर्ण, किशोर अवस्था,
कमल से नेत्र पाये हैं इन्होनें ।

मासपारायण, सोलहवां विश्राम
नवाह्नपारायण, चौथा विश्राम

अपनी सुन्दरता से कामदेव को लजाने वाले,
हे सुमुखि ! कहो तो कौन हैं ये तुम्हारे,
ऐसी प्रेममयी सुन्दर वाणी सुनकर,
सीताजी सकुचायीं, बोली मन में मुसका के ।

ये जो सहज स्वभाव, सुन्दर गौरवर्ण हैं,
लक्ष्मण, छोटे देवर हैं ये मेरे,
फिर अपना मुख ढ़क, इशारे से कहा,
ये श्यामवर्ण (श्रीरामचन्द्रजी) पति हैं मेरे ।

यह जान ऐसे आनन्दित हुईं वे स्त्रियां,
मानों कंगाल पा गया हो खज़ाना,
पैरों पड़ सीताजी को आशीष देती है,
बना रहे सदा-सदा सुहाग तुम्हारा ।

पार्वती सी प्यारी हो तुम पति को,
हे देवि ! हम पर कृपा न छोड़ना,
हम बारम्बार हाथ जोड़ विनती करती हैं,
जब लौटें आप, इसी राह लौटना ।

मधुर वचन कह-कहकर सीताजी ने,
भली-भांति संतुष्ट किया उन सबको,
तभी श्रीरामजी का रूख जान लक्ष्मणजी ने,
लोगों से मार्ग पूछा, आगे जाने को ।

यह सुनते ही वे उदास हो गये,
मानों मिली हुई सम्पत्ति छिन गयी,
पर कर्म की गति समझ उन्होंने,
सुगम मार्ग की दी सम्मति ।

चले लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित श्रीराम,
लोग देने लगे दोष देव को,
लगता है विधाता निरंकुश, निर्दयी है,
जिसने वन भेजा इन राजकुमारों को ।

जब विधाता ने इन्हें बनवास दिया,
तब भोग-विलास व्यर्थ ही बनाये उसने,
जब ये नंगे पांव चल रहे हैं,
अनेकों वाहन व्यर्थ ही रचे उसने ।

जब ये सोते कुश और पत्तों पर,
किसलिये बनाये पलंग और बिछौने उसने,
जब इनका निवास बनाया पेड़ों के नीचे,
व्यर्थ ही बनाये उज्जवल महल उसने ।

जो ये कन्दमूल और फल खाते हैं,
और पहनते है वत्कल वस्त्र मुनियों से,
तब विधात ने व्यर्थ परिश्रम कर,
क्यों रचीं तरह-तरह की चीजें जग में ।

कोई कहता ब्रह्मा के बनाये नही,
प्रकट हुए हैं ये अपने आप ही,
चौदह भवनों में खोजकर देख लो,
ऐसे स्त्री-पुरुष मिलेंगे कहीं नही ।

इन्हें देख विधाता मुग्ध हो गया,
लगा बनाने स्त्री-पुरुष इन जैसे,
पर जब वह इसमें सफल न हुआ,
जंगल में ला छिपा दिया इन्हें ।

कुछ कहते है हम कुछ नही जानते,
पर परम धन्य मानते हैं अपने को,
और हमारी समझ में वे भी पुण्यवान हैं,
जो देख रहे हैं और देखेंगे इनको ।

इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर,
प्रेमाश्रु भर रहे सब नेत्रों में,
कहते हैं ये सुकुमार शरीर वाले,
कैसे चलेंगे इन दुर्गम वनों में ।

स्त्रियां विकल हो स्नेहवश कह रही,
यदि जगदीश्वर ने इन्हें बनवास दिया,
तो इनके कोमल चरणों के अनुरूप,
पृथ्वी को पुष्पमय क्यों नही कर दिया ।

जो लोग देख न सके श्रीराम को,
पूछते हैं वे गये होंगे कहाँ तक,
जो समर्थ हैं, दौड़कर दर्शन करते हैं,
बच्चे, बूढ़े, अबलाएं रह गए हाथ मलकर ।

जिस-जिस गांव से गुजर रहे श्रीराम,
उनके दर्शन कर लोग आनन्दित हो रहे,
पर ऐसे सुकुमारों को बनवास देने वाले,
माता-पिता को वे दोष दे रहे ।

सीताजी और लक्ष्मणजी सहित श्रीराम,
चले जा रहे देखते हुए वन को,
आगे श्रीराम, पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित,
तपस्वी वेश में शोभा पा रहे दोनों ।

श्रीराम और लक्ष्मणजी के मध्य,
सुशोभित हो रही हैं सीताजी ऐसे,
जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया,
बुध और चन्द्रमा के बीच रोहिणी जैसे ।

श्रीराम के चरणचिन्ह भूमि पर,
चल रहीं बचाकर उन्हें सीताजी,
और उन दोनों के चरणचिन्हों को,
अपने दाहिने रख चल रहे लक्ष्मणजी ।

उन तीनों की सुन्दर प्रीति
वर्णन की नही जा सकती वाणी से,
चुरा लिया चित्त पशु-पक्षियों का भी,
जो देख मग्न हो जाते प्रेमानन्द से ।

इन प्यारे पथिकों को जिसने भी देखा,
भव का अगम मार्ग तय कर लिया,
स्वप्न में भी जिनके वे बटोही आ बसे,
श्रीराम का परमधाम उसने पा लिया ।

तब सीताजी को थकी हुई जानकर,
उस दिन वट-वृक्ष के नीचे रूके वो,
अगले दिन वाल्मीकिजी के आश्रम आये,
और देखा उनके अति सुन्दर आश्रम को ।

कमल और फूल खिल रहे आश्रम में,
मस्त भौंरे कर रहे हैं गुंजार,
पशु-पक्षी कोलाहल कर रहे हैं,
बैर का मन में आता न विचार ।

रघुश्रेष्ठ श्रीरामजी का आगमन सुनकर,
मुनि वाल्मीकिजी लेने आये उन्हें,
दण्डवत किया श्रीरामचन्द्रजी ने मुनि को,
आशीर्वाद दिया विप्रश्रेष्ठ मुनि ने उन्हें ।

आदर सत्कार किया मुनि ने उनका,
बड़ा आनन्द वे मना रहे मन में,
तब श्रीरघुनाथ ने हाथ जोड़कर,
सब कथा बतायी विस्तार से उन्हें ।

फिर कहा, पिता की आज्ञा का पालन,
माता का हित, भरत का राजा होना,
यह सब मेरे पुण्यों का प्रभाव है,
हे प्रभो ! मुझे आपके दर्शन होना ।

हे मुनिराज ! आपके चरणों के दर्शन से,
सब पुण्य सफल हो गये आज हमारे,
अब जहां आपकी आज्ञा हो कहें,
कुछ दिन कुटिया बना रहें हम सारे ।

कोई मुनि जहां उद्वेग न पाये,
क्योंकि जहां मुनि जन दुख पाते हैं,
वे राजा बिना अग्नि के ही,
दुष्ट कर्मों से ही भस्म हो जाते हैं ।

श्रीराम की सहज ही सरल वाणी सुनकर,
ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले, धन्य, धन्य,
हे राम ! आप ऐसा क्यों न कहेंगे,
आप वेद की मर्यादा का करते हैं रक्षण ।

आप वेद मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं,
और जानकीजी आपकी स्वरूपभूता माया,
जो आपकी कृपा का रूख पाकर,
सृजन, पालन और संहार करती जगत का ।

हजार मस्तक वाले, सर्पों के स्वामी,
पृथ्वी को करने वाले सिर पर धारण,
इस समय बने आपके छोटे भाई,
समस्त चराचर के स्वामी शेषजी लक्ष्मण ।

आप स्वयं राक्षसों के विनाश हेतु,
राजा का रूप किये हैं धारण,
अगोचर, अव्यक्त, अकथनीय, अपार हैं आप,
नेति-नेति कह वेद करते हैं वर्णन ।

जगत दृश्य और आप दृष्टा हैं राम,
ब्रह्मा, विष्णु, शंकर को भी नचाने वाले,
जब वे भी नही जानते आपका मर्म,
फिर भला कौन आपको जानने वाले ।

वही जानता, जिसे आप जना देते,
और जानते ही बन जाता स्वरूप आपका,
विकारों से रहित, चिदानन्दमय देह आपकी,
यह रहस्य बस अधिकारी भक्त जानता ।

देवता और संतों के कार्य के लिये,
नर शरीर धारण कर लीला करते,
मूर्ख आपको देख प्राप्त होते मोह को,
पर ज्ञानीजन सुख को प्राप्त करते ।

आप जो कहते हैं, करते हैं,
उचित ही है वह सब तो,
क्योंकि जैसा स्वांग भरे कोई,
चाहिये वैसा ही नाचना भी तो ।

आपने पूछा कि मैं कहाँ रहूँ,
परंतु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ,
जहां आप न हों, वह स्थान बताये,
तब मैं आपके लिये स्थान दिखाऊं ।

मुनि के प्रेममय वचन सुनकर,
श्रीराम सकुचाकर मन में मुसकराये,
तब वाल्मीकि ने हँसकर श्रीराम को,
अमृत से भरे ये वचन सुनाये ।

हे रामजी ! अब मैं वे स्थान बताता हूँ,
जहां आप तीनों कर सकते हैं निवास,
जो आपकी कथा सुनते रहते, तृप्त नही होते,
उनके हृदय में आपके लिये सुन्दर निवास ।

और चातक से जिनके नेत्र लालायित रहते,
आपके मेघरूपी दर्शन के लिये सदा,
आपके गुणरूपी मोती जिनकी जीभ चुगती रहती,
उनके हृदय में आप निवास करें सदा ।

जिनकी नासिका आपका प्रसाद ग्रहण करती रहती,
और जो आपको भोजनादि सब अर्पण करते,
गुरू, ब्राह्मण, देवता और आपकी चरण-पूजा,
और जो हृदय में आपका ही भरोसा रखते ।

जिनके चरण चलकर जाते आपके तीर्थों में,
राम-नाम जपते, परिवार सहित आपको पूजते,
भोजन कराकर जो दान देते ब्राह्मणों को,
गुरू को आपसे भी बड़ा जान सेवा करते ।

और इन सबका बस यही फल मांगते,
कि नित्य-निरन्तर प्रीति हो आपके चरणों में,
सीताजी और लक्ष्मणजी सहित हे प्रभु ! आप,
बसिये उन सबके हृदय रूपी मंदिरों में ।

काम, क्रोध, मद, अभिमान न जिनको,
मोह, लोभ, क्षोभ न राग-द्वेष,
न कपट, न दम्भ, न माया ही,
हे रघुनाथ ! कीजिये उनके हृदय में प्रवेश ।

सबके प्रिय और हित करने वाले सबके,
सुख-दु:ख, प्रशंसा-निंदा समान जिनको,
सत्य और प्रिय वचन विचारकर बोलते,
सोते-जागते आपकी ही शरण रहते जो ।

आप ही जिनकी अनन्य शरण हैं,
उनके मन में बसिये हे राम ! आप,
पराया धन, परायी स्त्री से परे जो,
उनके हृदय में निवास करिये आप ।

हर्षित होते दूसरों की सम्पत्ति देखकर,
दुखी होते जो औरों के दुख से,
प्राणों के समान आप जिन्हें प्यारे हैं,
सुशोभित हों उनके हृदय आप से ।

स्वामी, सखा, माता, पिता और गुरू,
सब कुछ आप ही हैं हे राम ! जिनके,
अवगुण छोड़ गुण ग्रहण करते जो,
हे राम ! रहिये आप उनके बन के ।

ब्राह्मण और गौ के लिये संकट सहते,
गुण आपके, दोषों को समझते अपना,
सब प्रकार से आपका ही भरोसा जिनको,
उनके हृदयों को घर बनाइये अपना ।

जाति, पांति, धन, धर्म, बड़ाई,
प्यारा परिवार, सुख देने वाला घर,
हे राम ! आप उसके हृदय में रहिये,
जो रहता केवल आपको धारण कर ।

स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान जिसे,
धनुर्धारी आपको ही जो सर्वत्र देखता,
मन, वचन और कर्म से आपका दास,
हे राम ! उसका हृदय हो निवास आपका ।

जिसको कभी कुछ भी नही चाहिये,
और आपसे स्वाभाविक प्रेम है जिसका,
उसके मन में निरन्तर बसिये आप,
हे राम ! वह अपना घर है आपका ।

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने,
रहने योग्य निवास बतलाये श्रीराम को,
फिर वे बोले अब इस समय के लिये,
सुखदायक आश्रम बतलाता हूँ आप को ।

चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये आप,
सब सुविधा हैं आपके लिये वहां,
हाथी, सिंह, हिरन और पक्षी बसते हैं,
सुंदर वन और सुहावना पर्वत है वहां ।

पुराणों में प्रशंसनीय नदी बहती है,
जिसे अनुसुया वहां लायी अपने तपोबल से,
गंगाजी की धारा, मन्दाकिनी नाम है उसका,
पवित्र कर देती है जो सब पापों से ।

अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि बसते,
लीन रहते जो योग, जप और तप में,
हे राम ! सबका परिश्रम सफल कीजिये,
चलकर रहिये पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट में ।

तब सीताजी सहित दोनों भाइयों ने,
आकर स्नान किया मन्दाकिनी नदी में,
बड़ा अच्छा घाट लगा वह उन्हें,
सो वहीं ठहरने को कहा प्रभु ने ।

तब लक्ष्मणजी ने पर्यास्वनी नदी के,
उत्तर के ऊंचे किनारे को देखा,
धनुष जैसा चारों और एक नाला था,
नदी मन्दाकिनी उस धनुष की प्रत्यंचा ।

चित्रकूट मानों अचल शिकारी सा,
शम, दम, दानरूपी बाण जिसके,
कलियुग के पाप हिंसक पशु से,
बच नही सकते जो निशाने से उसके ।

लक्ष्मणजी ने वह स्थान दिखलाया,
बहुत पसंद आया वह श्रीराम को,
जब देवताओं ने उनका रूख जाना,
चले साथ लेकर वे विश्वकर्मा को ।

कोल और भीलों के भेष में आकर,
पत्तों और घासों के बनाये घर सुन्दर,
वर्णनातीत दो सुन्दर कुटियां बनायी,
रहने लगे प्रभु उनमें आ कर ।

मासपारायण, सत्रहवां विश्राम

देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल,
आये उस समय वे सब चित्रकूट में,
और दु:ख दूर होने का आश्वासन पा,
लौट गये अपने-अपने लोकों में ।

चित्रकूट में रघुनाथ को आया जानकर,
बहुत से मुनि आये दर्शन को,
यथायोग्य सम्मान किया श्रीराम ने उनका,
सब साधना करने लगे निर्भीक हो ।

कोल-भील और अन्य बनवासी भी,
श्रीराम के दर्शन करने को आये,
जोहार कर, भेंट देते हैं वो,
ऐसे आनन्दित, मानों दरिद्र खजाना पाये ।

हाथ जोड़कर कहते हैं प्रभु से,
हमारे भाग्य हुआ आपका शुभागमन,
वे पृथ्वी, वन, मार्ग, पहाड़ धन्य हैं,
हे नाथ ! रक्खे जहां-जहां आपने चरण ।

हम सब भी परिवार सहित धन्य हैं,
जिन्होंने दर्शन किया आपका नेत्र भरकर,
हम सब आपकी सब तरह सेवा करेंगे,
बड़ी अच्छी जगह चुनी है आपने विचारकर ।

वेदों और मुनियों को भी अगम है जो,
वे करूणा के धाम, सुन रहे प्रेम से,
उन्हें तो केवल प्रेम ही प्यारा है,
भक्त के वश प्रभु हो जाते प्रेम से ।

जबसे श्रीरघुनाथ रहे वन में आकर,
तब से वन हो गया मंगलदायक,
अनेको प्रकार के वृक्ष फल-फूल रहे,
तने उन पर सुन्दर बेलों के मण्डप ।

कल्पवृक्ष समान स्वाभाविक सुन्दर हैं वे,
मानों छोड़कर आये हो नन्दन वन को,
भौरों की पंक्तियां गुंजार करती हैं,
पक्षियों की चहचहाट भली लगती कानों को ।

हाथी, सिंह, बंदर, सूअर और हिरन,
ये सब बैर छोड़ विचरते साथ,
शिकार को फिरते श्रीराम की छवि देख,
सब होते विशेष आनन्द को प्राप्त ।

देवताओं के वन भी उस वन को सिहाते,
सब नदियां मन्दाकिनी की करती बड़ाई,
चित्रकूट का यश सभी पर्वत गाते,
विन्ध्यांचल ने बिना परिश्रम ही पाई बड़ाई ।

जीव शोकरहित हो जाते श्रीराम को देख,
अचर सुखी हो रहे चरणों की रज पाकर,
यों सभी मोक्षपद के अधिकारी हो गये,
उनका सौभाग्य वर्णन हो सकता क्यों कर ।

मन, वचन और कर्म से लक्ष्मणजी,
सेवा सब तरह श्रीराम की करते,
श्रीसीताराम का अपने ऊपर स्नेह जानकर,
सपने में भी घर की याद न करते ।

सीताजी भी प्रसन्न हैं श्रीराम के साथ,
अनुरक्त उनका मन श्रीराम चरणों में,
सो वन प्रिय लगता हजारों अवध सा,
प्रियतम श्रीराम बसे बस उनके मन में ।

जिन श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण मात्र से,
तिनके सा त्याग देते भक्तजन भोग-विलास,
उनकी पत्नी और जगतमाता सीताजी के लिये,
कुछ भी आश्चर्यजनक नही सुखों का त्याग ।

सीताजी और लक्ष्मणजी को जिससे सुख मिले,
श्रीरामजी वही कहते और करते हैं,
प्राचीन कथाएँ और कहानियां कहते हैं भगवन,
लक्ष्मणजी और सीताजी सुख से सुनते हैं ।

अयोध्या को याद कर श्रीरामजी के,
भर आता है जल नेत्रों में,
किंतु फिर समय-कुसमय समझकर,
धीरज धर लेते हैं वे मन में ।

सीताजी और लक्ष्मणजी की संभाल,
रखते हैं श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार से,
नेत्रों के गोलकों की संभाल,
पलकें रखती है जिस प्रकार से ।

दूसरी तरफ लक्ष्मणजी और सीताजी,
श्रीराम की सेवा करते हैं ऐसे,
कोई अज्ञानी मनुष्य शरीर की,
सेवा करता हो जिस प्रकार से ।

उधर निषादराज जब वापस लौटा,
सुमन्त्रजी को देखा रथ के साथ उसने,
निषाद को अकेले वापस लौटा देखकर,
व्याकुल हो सुमन्त्रजी धरती पर गिर पड़े ।

घोड़े भी दक्षिण दिशा की ओर देख,
जिधर श्रीरामचन्द्रजी गये थे, देख हिनहिनाते,
न तो घास चरते हैं, न पानी पीते,
केवल आंखों से जल को बहाते ।

तब किसी तरह से निषादराज ने,
सुमन्त्रजी को धैर्य रखने को समझाया,
कोमल वाणी से विभिन्न कथाएँ कह,
जबरदस्ती सुमन्त्रजी को रथ पर बैठाया ।

परन्तु श्रीरामजी की विरह वेदना से,
शिथिल हो, वे रथ हांक नही सकते,
घोड़े तड़फड़ाते, ठीक से चल नही पा रहे,
ठोकर खाते, कभी पीछे को तकते ।

राम, लक्ष्मण या जानकी का नाम सुनकर,
घोड़े देखने लगते उस ओर प्यार से,
कैसे कही जा सकती है उनकी विरह दशा,
मणि के बिना सांप व्याकुल हो जैसे ।

मंत्री और घोड़ों की यह दशा देखकर,
निषादराज विषाद के वश हो गया,
तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुला,
उन्हें सारथी के साथ कर दिया ।

लौटा निषादराज सुमन्त्रजी को विदा करके,
विरह और दुख अपार हे उसका,
उधर सुमन्त्रजी भी सोच रहे हैं,
श्रीरघुवीर बिना जीना धिक्कार है उनका ।

हाथ मलकर, सिर पीटकर पछताते हैं,
मानों कंजूस खो बैठा खजाना धन का,
या मानों कोई बड़ा भारी वीर,
घबराकर युद्‌ध में पीठ दिखाकर भागा ।

बड़ा भारी संतापा हो रहा हृदय में,
चेहरा उनका बदरंग हो गया,
मुंह से वचन नही निकलते उनके,
सोच रहे अयोध्या में देखूंगा क्या ।

क्या उत्तर दूंगा मैं लोगों को,
क्या कहूँगा मैं जब माताएं पूछेंगी,
कैसे कहूँगा मैं उनको यह सब,
वन चले गये सीता, राम, लक्ष्मणजी ।

जिनका जीवन श्रीरघुनाथजी के ही अधीन है,
क्या कहूँगा उन्हें जब महाराज पूछेंगे,
लक्ष्मण, सीता और राम का समाचार सुन,
तिनके की तरह वे तन त्याग देंगे ।

श्रीरामरूपी जल के बिछुड़ते ही,
मेरा हृदय फटा न जो कीचड़ सा,
इससे मैं जानता हूँ विधाता ने,
मुझे यह 'यातनाशरीर' ही दिया ।

इस तरह पछतावा करते लौटे सुमन्त्रजी,
विनती कर चारों निषादों को लौटाया,
नगर में प्रवेश करते ग्लानि हो रही,
सारा दिन एक पेड़ के नीचे बिताया ।

अन्धेरा होने पर अयोध्या में घुसे,
फिर चुपके से वे गये महल में,
उनको अकेले देख व्याकुल हो गया रनिवास,
पूछने पर शब्द आता नही मुंह में ।

राजा को पूछते, गये कौसल्याजी के महल,
देखा उन्हें मलिन, गिरे हुए पृथ्वी पर ,
ऐसी विकल दशा हो रही महाराज की,
ज्यों सम्पाती गिरा हो पंख जलने पर ।

बार-बार पुकारते हैं वे राम को,
फिर हा लक्ष्मण, हा जानकी कहने लगते,
सुमन्त्रजी ने जयजीव कह प्रणाम किया,
सुनते ही राजा व्याकुल हो कर उठे ।

हृदय से लगा लिया सुमन्त्र को उन्होंने,
फिर पूछने लगे कहो कहाँ हैं राम,
क्या उन्हें अपने साथ लौटा लाये हो,
या कर गये वो वन को प्रस्थान ।

श्रीराम का शील-स्वभाव याद कर,
सोच करते हैं राजा अपने हृदय में,
राज्य की जगह बनवास दे दिया,
फिर भी विषाद हुआ न मन में ।

ऐसे पुत्र के बिछुड़ने पर भी,
जो अब तक गये न मेरे प्राण,
तो भला कौन होगा मुझसे बढ़कर,
अभागा या पापी कोई मेरे समान ।

हे सखा ! श्रीराम, लक्ष्मण, जानकी जहां हैं,
मुझे भी शीघ्र वहीं पहुँचा दो,
वरना मैं सत्य भाव से कहता हूँ,
कि मेरे प्राण हैं तैयार चलने को ।

बार-बार पूछते हैं राजा मंत्री से,
सुमन्त्रजी कह रहे कोमल वाणी से,
हे देव ! आप धीर, ज्ञानी पुरुष हैं,
और जानते हैं आप सब प्रकार से ।

जन्म-मरण, सुख-दुख के भोग,
हानि-लाभ, मिलना-बिछुड़ना प्यारों का,
काल और कर्म के अधीन है सब,
दिन और रात की तरह होना इनका ।

दु:ख-सुख में रोते हर्षित होते मूर्ख,
पर दोनों समान होते धीरों को,
आप विवेक विचारकर धीरज धरिये,
और त्याग दीजिये, हे नाथ ! शोक को ।

फिर बतलाया सब हाल वहां का,
और कहा जो श्रीराम ने कहा था,
हे पिताजी ! आपकी आज्ञा का पालन कर,
फिर लौट कर दर्शन करूंगा आपका ।

और कहा था माताओं के चरण पकड़,
उनका सब तरह से समाधान करना,
कोशलपति पिताजी जिसमें कुशल रहें,
तुम सब तरह वही प्रयत्न करना ।

बार-बार चरण कमलों को पकड़कर,
गुरू वसिष्ठजी से मेरा संदेशा कहना,
कि वे महाराज को वही उपदेश दें,
जिससे छोड़ दें मेरे बारे में सोचना ।

पुरवासियों, कुटुम्बियों से अनुरोध करना कि,
महाराज को सुखी रखने की करें चेष्टा,
भरत से कहना कि राजपद पाने पर,
प्रजा का पालन, माताओं की सेवा करना ।

माता-पिता और स्वजनों की सेवा कर,
भाईपने को हे भाई ! अन्त तक निबाहना,
मेरी किसी प्रकार से सोच न करें,
पिताजी का उसी प्रकार से रखना ।

लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे,
पर श्रीराम ने बरज अनुरोध किया मुझसे,
और बार-बार मुझे सौगंध दिलायी कि,
लक्ष्मण का लड़कपन कहना ना किसी से ।

सीताजी भी कुछ कहना चाहती थीं,
परतुं स्नेहवश शिथिल हो गयीं वो,
वाणी रूक गयी, नेत्रों में जल,
शरीर रोमांच से गया व्याप्त हो ।

तभी रामचन्द्रजी का रूख पा कर,
नाव चला दी केवट ने,
इस प्रकार श्रीराम चल दिये,
बस खड़ा देखता रह गया मैं ।

कैसे कहूं मैं अपने क्लेश को,
जो यह संदेशा ले जीता लौट आया,
ऐसा कह उनकी वाणी रूक गयी,
मन ग्लानि के वश हो आया ।

पृथ्वी पर गिर पड़े राजा सुनते ही,
होने लगी भयानक जलन हृदय में,
सब रानियॉ विलाप कर रो रही हैं,
कोहराम मच गया अयोध्या नगरी में ।

राजा के प्राण कण्ठ में आ गये,
विकल हो गयीं इन्द्रियां सब उनकी,
उनकी ऐसी मरणासन्न स्थिति देखकर,
समयानुकुल वचन कहने लगीं कौसल्याजी ।

हे नाथ ! धीरज धर सोचिये,
अपार समुद्र है वियोग राम का,
अयोध्या जहाज, आप कर्णधार हैं,
सारा समाज इस जहाज पर चढ़ा ।

जो आप मन में धीरज रखेंगे,
तभी सब लोग पार पहुँच पायेंगें,
यदि मान लेंगे आप मेरी विनती,
फिर सीता-राम लक्ष्मण से मिल पायेंगे ।

कौसल्याजी के कोमल वचन सुनकर,
राजा ने आंखें खोलकर देखा,
मानों तड़पती हुई दीन मछली पर,
शीतल जल किसी ने हो छिड़का ।

धीरज धर कर राजा उठ बैठे,
सुमन्त्र कहो, कहाँ हैं श्रीराम,
कहाँ हैं लक्ष्मण, जानकी कहाँ हैं,
युं विलाप करते रात बीती युग समान ।

तभी राजा को याद आ गयी,
अंधे तपस्वी के शाप की बात,
सब कथा कौसल्या को कह सुनायी,
श्रवणकुमार के पिता ने जो दिया शाप ।

फिर कहने लगे बहुत दिन जी लिया,
श्रीराम, सीता, लक्ष्मण के बिना मैं,
मेरे प्रेम का प्रण जिसने न निबाहा,
क्या करूंगा रखकर इस शरीर का मैं ।

राम-राम कह, फिर राम कहकर,
फिर राम-राम कह, फिर कहकर राम,
सुरलोक को सिधार गये राजा दशरथ,
राम के विरह में तज दिये प्राण ।

जीने और मरने का फल तो,
बस राजा दशरथजी ने ही पाया,
जीते जी श्रीराम का मुख-चन्द्र देखा,
उनका विरह मरने का निमित्त बनाया।

शोक के मारे व्याकुल हो रहीं रानियां,
गिर-गिर पड़ रहीं वे धरती पर,
दास-दासीगण भी विलाप कर रहे,
शोकमग्न हो रहा अयोध्या में हर घर ।

सब गालियां देते हैं कैकेयी को,
नेत्रहीन कर दिया सारे जगत को जिसने,
यो विलाप करते वह कठिन रात बीती,
प्रात: काल सब ज्ञानी-मुनि आये मिलने ।

तब वसिष्ठ मुनि ने समय के अनुकूल,
उपदेश दे शोक दूर किया सबका,
फिर एक नाव में तेल भरवाकर,
राजा का शरीर उसमें दिया रखवा ।

दूतों को बुलवाकर कहा, 'जल्दी जाओ',
दौड़कर जाओ जल्दी भरत के पास,
मृत्यु का समाचार किसी से न कहना,
कहना गुरूजी ने बुलवाया, तुम्हें किया याद ।

उधर भरतजी को हो रहे अपशकुन,
देखते थे भयंकर स्वप्न रात को,
और जागने पर किया करते थे,
बुरी-बुरी तरह की कल्पनायें अनेकों ।

अनिष्ट शान्ति के लिये वे प्रतिदिन,
रूद्राभिषेक करते और दान देते थे,
महादेवजी को हृदय में मनाकर उनसे,
माता-पिता और सबकी कुशल मांगते थे ।

वे इस तरह चिन्ताग्रस्त थे जब,
तभी अयोध्या से दूत आ पहुंचे,
गुरूजी की आज्ञा कानों से सुनते ही,
तुरंत ही अयोध्या के लिये चल पड़े ।

मन में बहुत सोच हो रहा था,
किसी तरह पहुँच जाये जल्दी से अयोध्या,
युगों सा बीत रहा था हर पल,
जाने कितनी दूर हो गयी आज अयोध्या ।

नगर में उनके प्रवेश करते ही,
अपशकुन होने लगे तरह-तरह के,
कौवे बुरी जगह बैठ कांव-कांव कर रहे,
विपरीत बोल रहे है सियार और गदहे ।

बड़ी पीड़ा हो रही भरत के हृदय में,
मन ही मन बुरे ख्याल उठ रहे,
बहुत भयानक लग रहा सब नगर,
नदी-तालाब, बगीचे शोभाहीन हो रहे ।

श्रीराम के वियोग से दु:खी हुए,
पशु-पक्षियों की दशा देखी नही जाती,
नगर के लागे कुछ कहते नही,
भरतजी से भी बात पूछी नही जाती ।

पुत्र के अयोध्या पहुंचने की सुनते ही,
कैकेयी उठ दौड़ी आरती सजाकर,
भरत-शत्रुघ्न को महल में ले आयी,
हर्षित हो, दरवाजे पर ही मिलकर ।

केवल कैकेयी ही हर्षित दिखती है,
मानों भीलनी ने जला दिया हो जंगल,
पुत्र को सोचवश और मनमारे देख,
पूछने लगी अपने नैहर का मंगल ।

सब कुशल भरतजी ने कह सुनायी,
फिर अपने कुल की पूछी कुशल-मंगल,
पूछा कहाँ हैं पिताजी और माताऐं,
कहाँ हैं मेरे भाई श्रीराम-लक्ष्मण ।

तब नेत्रों में कपट का जल भरकर,
कैकेयी शूल से चुभती बोली वचन,
विधाता ने बिगाड़ दिया काम जरा सा,
राजा ने कर दिया देवलोक को गमन ।

यह सुनते ही विषाद के मारे भरत,
व्याकुल हो गिर पड़े भूमि पर,
विलाप कर कहने लगे, मैं उनको,
देख भी न सका अन्तिम समय पर ।

फिर धीरज धर सम्हल कर उठे,
पूछा पिता की मृत्यु का कारण,
कुटिल और कठोर कैकेयी ने सुना दी,
अपनी सब करनी-धरनी प्रसन्न मन ।

श्रीरामचन्द्रजी का वन जाना जानकर,
भूल गया भरतजी को पिता का मरण,
सारे अनर्थ का स्वयं को कारण जान,
बोलती बंद हो गयी, रह गये सन्न ।

पुत्र को व्याकुल देख समझाने लगी कैकेयी,
मानो लगा रही हो नमक जले पर,
हे तात् ! राजा सोच के योग्य नही,
वे इन्द्रलोक गये, सुख और यश भोगकर ।

सोच छोड़ दो ऐसा विचारकर,
और समाज सहित करो राज्य नगर का,
बहुत सहम गये भरत यह सुनकर,
मानो घाव पर स्पर्श हुआ अंगार का ।

लंबी सांस लेकर बोले, हे पापिनी !,
नाश कर दिया कुल का तूने,
यदि तेरी ऐसी ही दुष्ट इच्छा थी,
तो जन्मते ही क्यों न मार दिया तूने ।

पेड़ को काटकर सींचा पत्ते को,
मछली बचाने को पानी उलीच डाला,
मेरा हित करने जाकर उलटा तूने,
मेरा सबसे बड़ा अहित कर डाला ।

सूर्यवंश सा वंश, दशरथ से पिता,
और राम-लक्ष्मण से भाई मिले मुझे,
पर विधाता पर कुछ वश नही चलता,
क्या किया जाए, मेरी माता बनाया तुझे ।

जब तूने यह बुरा निश्चय ठाना,
टुकड़े क्यों न हो गये तेरे हृदय के,
तेरी जीभ न गली ऐसा वरदान मांगते,
क्यों न पड़ गये तेरे मुंह में कीड़े ।

कैसे विश्वास कर लिया राजा ने तेरा,
शायद विधाता ने हर ली बुद्धि उनकी,
विधाता भी नही जानता स्त्रियों का हृदय,
फिर कैसे जानते वे तेरे हृदय की ।

समस्त चराचर में भला कौन है ऐसा,
जिसे प्यारे नही श्रीरघुनाथ प्राणों से,
बैरी लगे तुझे वो सबके प्रिय श्रीराम,
मुंह काला कर चली जा दूर यहां से ।

श्रीरामजी के विरोधी तेरे हृदय से,
उत्पन्न किया है विधाता ने मुझे,
दूसरा कौन है मेरे जैसा पापी,
व्यर्थ ही कुछ कहता हूँ मैं तुझे ।

माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजी के,
सभी अंग जल रहे हैं क्रोध से,
पर उनका कुछ वश चलता नही,
तभी वहां आ गयी कुबरी सज के ।

उसे सजा देख क्रोध में भरकर,
कुबरी के कूबर पर मारी एक लात,
वह चिल्लाती मुंह के बल गिर पड़ी,
कूबड़ टूटा और टूट गये सब दांत ।

वह कहने लगी, क्या बिगाड़ा मैने,
जो भला करते बुरा फल पाया,
झोंटा पकड़कर घसीटने लगे शत्रुघ्नजी,
पर दयानिधि भरत ने उसे छुड़ाया ।

फिर दोनों चले कौसल्याजी के पास,
मलिन, उदास, सूख गया शरीर उनका,
मानो सोने की सुन्दर कल्पलता को,
वन में मार गया हो पाला ।

भरत को देखते ही उठ के दौड़ी,
पर गिर पड़ीं चक्कर आ जाने से,
गिर पड़े उनके चरणों में भरतजी,
पूछने लगे पिता कहाँ हैं उनसे ।

कहाँ हैं मरे दोनों भाई और सीताजी,
यह सब कैसे हो गया अनर्थ,
कैकेयी जगत में क्यो जन्मीं,
क्यों मुझ कुल-कलंक को जन्मा व्यर्थ।

पिताजी स्वर्ग में, वन में श्रीराम,
केतु सा मैं ही इन सबका कारण,
बांस के वन में आग बना मैं,
दाह, दु:ख और सब दोषों का कारण ।

भरतजी के कोमल वचन सुनकर,
माता कौसल्या फिर संभलकर उठीं,
लगा लिया छाती से भरत को,
नेत्रों से आसूं बहाने लगीं ।

सरल स्वभाव माता ने प्रेम से,
दोनों भाइयों को लगा लिया गले,
शोक और स्नेह हृदय में समाता नही,
मानों राम-लक्ष्मण फिर आ मिले ।

फिर बोलीं भरत से धैर्य धरो,
बुरा समय जानकर शोक त्याग दो,
काल और कर्म की गति अमिट जान,
हृदय से हानि और ग्लानि त्याग दो ।

हे तात् ! किसी को दोष मत दो,
विधाता हो गया सब तरह मुझे उलटा,
इनते दु:ख पर भी जिला रहा है मुझे,
कौन जानता है उसे क्या भा रहा ।

हे तात् ! पिता की आज्ञा से राम,
चल दिये वन को वस्त्र, आभूषण त्याग,
कोई हर्ष, विषाद न था उनके मन में,
सीता और लक्ष्मण भी हो लिये साथ ।

पर मैं न तो साथ गयी स्वयं,
ना अपने प्राण ही उनके साथ भेजे,
जीना और मरना तो राजा ने जाना,
मेरा हृदय कठोर निकला वज्र के जैसे ।

कौसल्याजी के वचनों को सुनकर,
राजमहल शोक का निवास बन गया,
विलाप करने लगे भरत-शत्रुघ्न भी,
तब कौसल्याजी ने हृदय से लगा लिया ।

अनेकों प्रकार से समझाया भरत को,
विवेक भरी बातें सुनायी कहकर,
भरतजी ने भी सब माताओं को समझाया,
पुराण और वेदों की कथाएँ कहकर ।

फिर छलरहित, पवित्र वाणी से बोले,
जो पाप होता स्वजनों को मारने से,
यदि इस काम में मेरा मत हो,
तो महापातक पाप सब लगें मुझे ।

श्रीहरि और शंकरजी के चरणों को छोड़,
भयानक भूत और प्रेतों को जो भजते,
हे माता ! यदि इसमें मेरा मत हो,
तो विधाता मुझे उनकी सी गति दे ।

चुगलखोर, दूसरों के पापों को कह देते,
कपटी, कलहप्रिय, कुटिल और क्रोधी,
वेदों के निन्दक, धर्म दुहने वाले,
और जो हैं विश्व भर के विरोधी ।

लोभी, लम्पट और लालचियों से,
परायी स्त्रियों की रहते जो ताक में,
उनकी ही सी गति को मैं पाऊँ,
यदि मेरी सम्मति हो इस काम में ।

भाता नही जिनको सतसंग कभी,
और विमुख परमार्थ मार्ग से,
सुहाता नही हरि-हर का सुयश,
मनुष्य तन पा भजन नही करते ।

वेदमार्ग के प्रतिकूल जो चलते,
वेष बनाकर जगत को छलते,
यह भेद यदि मैं जानता भी होऊं,
तो शंकरजी मुझे उनकी सी गति दें ।

स्वाभाविक, सरल और सच्चे वचन सुनकर,
माता कौसल्या लगीं भरतजी को कहने,
हे तात् ! मन, वचन और शरीर से,
तुम ता सदा हो राम के अपने ।

चन्द्रमा चाहे लगे विष चुआने,
पाला लगे चाहे आग बरसाने,
जलचर जल से विरक्त हो जायें,
ज्ञान हो जाय, पर मन न माने ।

यह सब हो जाय लेकिन फिर भी,
प्रतिकुल नही हो सकते तुम राम के,
तुम्हारी सम्मति यदि कोई इसमें कहे,
सुख और शुभगति पावेंगे न स्वप्न में ।

ऐसा कहकर माता कौसल्या ने,
लगा लिया भरतजी को हृदय से,
हो गयीं वे ऐसी प्रेम-विह्वल,
बहने लगे प्रेमाश्रु उनकी आंखों से ।

तब वसिष्ठजी और वामदेवजी ने आकर,
बहुत तरह से भरतजी को समझाया,
कहा, हे तात् ! मन में धीरज धर,
करो वह काम जिसका समय हो आया ।

उठे भरतजी गुरू का आदेश सुन,
और कहा सब तैयारियां करने को,
फिर सब माताओं के चरण पकड़कर,
प्रार्थना की उनसे सती न होने को ।

विधि-विधान से तब भरत ने,
सुन्दर चिता बनाई सरयू तट पर,
पिता की देह को अग्नि-स्नान करा,
तिलांजलि दी विधिपूर्वक स्नान कर ।

जहां जैसी आज्ञा दी वसिष्ठजी ने,
भरतजी ने हजारों प्रकार किया वैसा ही,
शुद्ध हो विधिपूर्वक सब दान दिये,
अनेक सवांरिया, गौएं, घोड़े और हाथी ।

सिंहासन, गहने, कपड़े और अन्न,
पृथ्वी, धन-धान्य और मकान,
भूदेव ब्राह्मण परिपूर्णकाम हो गये,
भरतजी से पाकर मनचाहा दान ।

पिताजी के लिये भरत ने जो किया,
लाखों मुखों से कहा नही जा सकता,
तब शुभ दिन शोध वसिष्ठजी आये,
मंत्रियों और सब महाजनों को बुला भेजा ।

बैठ गये जब सब राजसभा में,
दोनों भाइयों को बुलवा लिया मुनि ने,
सब कथा बखानी, राजा का यश गाया,
शरीर त्यागकर प्रेम निबाहा जिन्होंने ।

और श्रीराम का गुण-शील बखानते,
नेत्रों में जल भर आया मुनि के,
फिर लक्ष्मण और सीताजी की बड़ाई करते,
मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गये ।

बिलख कर कहा मुनि ने, हे भरत !
होनहार होती है बलवान बड़ी,
हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश,
ये सब हैं हाथ विधाता के ही ।

फिर किसको कोई दोष दिया जाय,
और व्यर्थ ही क्रोध किया जाय किस पर,
विचार करो मन में ऐसा, हे तात् !
सोच के योग्य नही हैं राजा दशरथ ।

सोच उचित उस ब्राह्मण के लिये,
वेद न जाने, विषय-भोग में लीन,
सोच उचित उस राजा के लिये,
नीति न जाने, प्रजा को समझे हीन ।

सोच उचित उस वैश्य के लिये,
अतिथि सत्कार नही, धनी हो कंजूसी करता,
सोच उचित उस शुद्र के लिये,
ब्राह्मणों का अपमान, ज्ञान का घमंड करता ।

पुन: उस स्त्री का सोच उचित है,
पति से छल, कुटिल और कलह करती,
और सोच उस ब्रह्मचारी का उचित है,
ब्रह्मचर्य छोड़, मानता न आज्ञा गुरू की ।

सोच करना चाहिये उस गृहस्थ का,
मोहवश कर्म-मार्ग का जो त्याग करता,
सोच करना चाहिये उस संयासी का,
ज्ञान-वैराग्य हीन, दुनिया में फंसा रहता ।

वानप्रस्थी वही सोच करने योग्य है,
तपस्या छोड़ भोग अच्छे लगते जिसे,
सोच चुगलखोर और अकारण क्रोधी का,
विरोध माता-पिता, गुरू और बान्धवों से ।

सब प्रकार से सोच करना चाहिये उसका,
जो दूसरों का अनिष्ट करता रहता,
दया नही जिसको औरों के लिये,
बस अपना ही पोषण करता रहता ।

और वह तो सब तरह सोच योग्य,
छल छोड़ हरि का भक्त न होता,
कौसलराज दशरथ सोच के योग्य नही,
जिनसा राजा हुआ, न आगे होगा ।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल,
सब दशरथजी के गुणों की कथाएँ कहते,
उनकी बड़ाई कोई कैसे करे जिनके पुत्र,
हों राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न सरीखे ।

राजा सब प्रकार से बड़भागी थे,
व्यर्थ है उनके लिये करना विषाद,
यह सुन-समझकर सोच त्याग दो,
रखो राजा की आज्ञा सिर-माथ ।

राजपद दिया है तुमको राजा ने,
सत्य करना चाहिये पिता का वचन तुम्हें,
वचन के लिये त्याग दिया श्रीराम को,
और आहुति शरीर की दे दी विरह में ।

प्राण से अधिक उन्हें वचन प्रिय थे,
सो सत्य करो पिता के वचनों को,
सिर चढ़ाकर पालन करो उनकी आज्ञा,
सब तरह से भलाई मिलेगी तुम को ।

पिता की आज्ञा मान परशुरामजी ने,
सिर काट डाला अपनी माता का,
ययाति को पुत्र ने जवानी दे दी,
पाप या अपयश पुत्र को न लगा ।

पिता के वचन जो पालन करते,
अनुचित और उचित का विचार छोड़कर,
अन्त में स्वर्ग में निवास करते हैं,
सुख और सुयश के पात्र होकर ।

सो शोक त्याग करो प्रजा का पालन,
स्वर्ग में राजा संतोष पावेंगे इससे,
तुमको पुण्य और सुन्दर यश मिलेगा,
किसी तरह का दोष लगेगा न इससे ।

वेद प्रसिद्ध और शास्त्र सम्मत है,
वही राजतिलक पाता पिता जिसे दे,
सो ग्लानि त्याग राज्य करो तुम,
हित जानो तुम अपना इन वचनों में ।

श्रीराम और जानकीजी इससे सुख पावेंगे,
और कोई पण्डित इसे अनुचित न कहेगा,
कौसल्याजी आदि सब माताओं को भी,
प्रजा के इस सुख में सुख मिलेगा ।

जो तुम्हारा और श्रीराम का सम्बंध जान लेगा,
वो सभी प्रकार से मानेगा भला तुमसे,
श्रीराम के लौटने पर सौंप देना उन्हें राज्य,
और उनकी सेवा करना सुन्दर स्नेह से ।

मन्त्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं,
गुरूजी की आज्ञा-पालन अवश्य कीजिये,
श्रीरघुनाथजी के अयोध्या लौटने पर,
जो उचित हो, फिर वैसा ही कीजिये ।

कौसल्याजी भी धीरज धर कह रहीं,
हे तात् ! गुरूजी की आज्ञा का करो आदर,
और त्याग कर देना चाहिये विषाद का,
काल की इस कठिन गति को जानकर ।

श्रीराम वन में, महाराज स्वर्ग में,
और तुम ऐसे कातर हो रहे हो,
प्रजा, मंत्री, कुटुम्ब और माताओ के,
सबके एक तुम ही सहारे हो ।

विधाता को प्रतिकूल, काल को कठोर जान,
गुरू की आज्ञा अनुसार ही कार्य करो,
माता तुम्हारी बलिहारी जाती है, तात् !
प्रजा का पालन, कुटुम्बियों का दुख हरो ।

सबके वचनों को भरतजी ने सुना,
माता की वाणी सुन व्याकुल हो गये,
उनके नेत्र-कमल आसूं बहाकर,
विरह रूपी अंकुर को सींचने लग गये ।

उनकी वह दशा देखकर उस समय,
सुध भूल गयी सबको अपने शरीर की,
सब लोग आदरपूर्वक सराहना करने लगे,
स्वाभाविक प्रेम की सीमा, श्रीभरतजी की ।

धैर्य की धुरी को धारण करने वाले,
कमल के समान हाथों को जोड़कर,
सबको उचित उत्तर देने लगे,
भरतजी वचनों को मानों अमृत में डुबोकर ।

मासपारायण, अठारहवां विश्राम

सुन्दर उपदेश दिया गुरूजी ने मुझे,
यही सम्मति है प्रजा-मंत्री आदि की,
माता ने भी आज्ञा दी उचित समझकर,
सिर चढ़ाना चाहता हूँ उसे मैं भी ।

गुरू, पिता, माता, स्वामी और सुहृद,
प्रसन्न मन से माननी चाहिये उनकी बात,
उचित-अनुचित विचारने से धर्म जाता है,
और सिर पर चढ़ता है पाप का भार ।

आप तो मेरी भलाई की कह रहे हैं,
पर संतोष नही होता मेरे ह्रदय में,
मैं उत्तर दे रहा हूँ, क्षमा कीजिये,
साधु-पुरुष दुखियों के दोष नही गिनते ।

पिता स्वर्ग में हैं, श्रीराम वन में,
पर मुझे कह रहे राज्य करने को,
इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं,
या चाहते, आपका कार्य सिद्ध हो ।

मेरा कल्याण तो श्रीसीताराम की चाकरी में,
सो छीना माता की कुटिलता ने उसे,
मैने मन में अनुमान कर जान लिया,
मेरा कल्याण नही किसी अन्य तरह से ।

क्या मूल्य इस शोक के समुदाय राज्य का,
लक्ष्मण, श्रीराम, सीताजी के चरण देखे बिना,
जैसे कपड़ों के बिना गहनों का बोझ व्यर्थ,
और ब्रह्म-विचार व्यर्थ है वैराग्य बिना ।

भोग व्यर्थ हैं जैसे रोगी शरीर को,
हरि-भक्ति बिना जैसे जप-योग व्यर्थ,
सुन्दर देह व्यर्थ है ज्यों जीव बिना,
वैसे ही श्रीराम बिना मेरा जीवन व्यर्थ ।

श्रीराम के पास जाने की आज्ञा दीजिये,
एक ही आंक, मेरा हित है इसी में,
मुझे राजा बना अपना भला चाहते हैं आप,
यह कह रहे हैं आप मोह के वश में ।

सुख चाहते हैं आप मेरे राज्य से,
मोह के वश होकर ही सोचते ऐसा,
कैकेयी का पुत्र, राम विमुख, निर्लज्ज,
कहाँ होगा कोई अधम मेरे जैसा ।

सत्य कहता हूँ आप मेरा विश्वास करें,
राजा होना चाहिये धर्मशील व्यक्ति को ही,
आप हठ कर मुझे ज्यों ही देंगे राज्य,
पृथ्वी पाताल में धंस जायेगी त्यों ही ।

कौन होगा मुझ जैसा पापी,
बना श्रीसीताराम के बनवास का कारण,
और उनके बिछुड़ते ही राजा ने,
स्वयं कर लिया स्वर्ग को गमन ।

और मैं सारे अनर्थों का कारण,
सुन रहा हूँ यहां बैठे सब बातें,
श्रीरघुनाथ के बिना यह घर देख,
और उपहास सहकर भी प्राण न जाते ।

इसका यही कारण है कि ये प्राण,
आसक्त नही हैं श्रीराम चरणों में,
भूमि और भोगों के ही भूखे हैं,
वज्र सा कठोर हृदय पाया मैने ।

कारण से कार्य कठिन होता ही है,
दोष नही है कुछ मेरा इसमें,
कैकेयी से उत्पन्न देह के प्रेमी,
पामर प्राण अभागे मेरे तन में ।

लक्ष्मण, श्रीराम और सीता को वन दिया,
स्वर्ग भेजकर पति का किया कल्याण,
स्वयं विधवा बनी और अपयश पाया,
प्रजा को दिया शोक और संताप ।

मुझे सुख, यश और उत्तम राज्य दिया,
बना दिया कैकेयी ने सबका काम,
इससे अच्छा अब मुझको क्या होगा,
आप ले रहे मुझे राजतिलक का नाम ।

कैकेयी से जन्म लेकर जगत में,
कुछ भी अनुचित नही यह मेरे लिये,
विधाता ने बना दी मेरी सब बात,
फिर आप लोग क्यों सहायता कर रहे ।

जिसके पीछे कुग्रह लगे हों,
ऊपर से पीड़ित हो वायुरोग से,
फिर उसी को डंक मार दे बिच्छु,
उसका इलाज किया जाये मदिरा से ?

कैकेयी पुत्र को जो कुछ योग्य था,
चतुर विधाता ने वही दिया मुझे,
पर दशरथ-पुत्र, राम का छोटा भाई,
यह बड़ाई व्यर्थ ही मिली मुझे ।

आप भी टीका कढ़ाने को कह रहे,
राजाज्ञा अच्छी है सभी के लिये,
मैं किस-किस को कैसे उत्तर दूं,
जिसकी जैसी रूचि हो वैसा ही कहे ।

मेरी कुमाता कैकेयी समेत मुझे छोड़कर,
कहिये कौन कहेगा, किया अच्छा काम,
मेरे सिवा कौन है चराचर में,
जिसे श्रीराम न प्यारे, प्राण के समान ।

जो परम हानि है दिखती नही,
दिख रहा है बड़ा लाभ सभी को,
बुरा दिन मेरा, किसी को दोष नही,
सब उचित ही है, आप कहते हैं जो ।

संशय, शील और प्रेम के वश हैं आप,
और बहुत सरल हृदय हैं श्रीराम की माता,
उस पर भी विशेष स्नेह करती हैं मुझे,
सो स्नेहवश कह रहीं वो, देख मेरी दीनता ।

जगत जानता, गुरूजी ज्ञान के समुद्र हैं,
वे भी साज सज रहे मेरे तिलक का,
सत्य है विधाता के विपरीत होने पर,
हर कोई प्राणी के विपरीत हो जाता ।

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी को छोड़कर,
कोई नही कहेगा इसमें मेरी सम्मति नही,
मैं उसे सुखपूर्वक सुनूंगा और सहूंगा,
क्योंकि जहां पानी कीचड़ होता ही है वहीं ।

जगत बुरा कहेगा, न परलोक का सोच,
सोच है बस श्रीसीताराम के दु:ख का,
जीवन का लाभ तो पाया लक्ष्मण ने,
झूठ-मूठ मैं अभागा क्यों पछताता ।

श्रीरामजी के चरणों के दर्शन बगैर,
जायेगी न मेरी जी की जलन,
सबको सिर झुका दीनता से कहता हूँ,
बस यही उपाय मानता है मेरा मन ।

मेरे मन में बस यही निश्चय है,
प्रात: होते ही चल दूंगा वन को,
शरण में सम्मुख आया हुआ देखकर,
क्षमा कर देंगे, वो दीनानाथ मुझको ।

शील, संकोच, कृपा और स्नेह के घर,
अनिष्ट न किया कभी शत्रु का उन्होंने,
यद्यपि मैं टेढ़ा हूँ, पर उनका गुलाम,
आशीर्वाद दें, मैं लौटा लाऊं उन्हें ।

यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ,
और हूँ दुष्ट तथा दोषयुक्त भी,
फिर भी भरोसा हैं मुझे श्रीराम का,
मुझे अपना जानकर, त्यागेंगे न कभी ।

प्यारे लगे सबको भरतजी के वचन,
मानों श्रीराम के प्रेमरूपी अमृत में पगे,
वियोगरूपी भीषण विष से जले सब लोग,
मानों बीजसहित मंत्र सुनते ही जाग उठे ।

माता, मंत्री, गुरू और सभी लोग वहां,
स्नेहवश व्याकुल हो गये बहुत ही,
सब भरतजी को सराह कर कहते हैं,
साक्षात मूर्ति हैं आप श्रीराम प्रेम की ।

हे तात् ! आप ऐसा क्यों न कहें,
प्राणों से प्यारे हैं आप राम को,
कैकेयी के कारण आप पर संदेह करे,
नीच और मूर्ख ही होगा वह तो ।

सांप के पाप और अवगुण को,
उसकी मणि नही करती है धारण,
बल्कि विष, दु:ख और दरिद्रता,
सब दूर हो जाते हैं उसके कारण ।

आपने बहुत अच्छी बात विचारी,
हम डूबते हुओं को दिया सहारा,
प्राणप्रिय लगने लगे सभी को भरतजी,
सबने उनके साथ चलने का विचारा ।

कोई नही घर रूकने को तैयार,
हृदय में हर्ष श्रीराम के दर्शन होंगे,
सब अपनी-अपनी सवारियां सजा रहे हैं,
प्रात: होते ही भरतजी संग रवाना होंगे ।

उधर भरतजी ने घर जाकर विचार किया,
यह सारी सम्पदा है श्रीरघुनाथजी की,
उचित व्यवस्था किये बिना उसे छोड़ना,
बनायेगा मुझे स्वामी से द्रोह का भागी ।

सेवक वही जो हित सोचे स्वामी का,
चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे,
ऐसा विचार विश्वासपात्र सेवकों को बुलाया,
जो स्वप्न में भी धर्म से न डिगे ।

सब भेद समझाकर, सावधान कर,
योग्यता अनुसार नियुक्त किया उन्हें,
सब व्यवस्था कर, रक्षकों को रख,
भरतजी कौसल्या माता को चले मिलने ।

पालकियां सजवायीं माताओं के लिये,
नगरवासियों की रात बीती जागते,
भरतजी ने मंत्रियों को बुला कहा,
तिलक का सामान ले चलों सजाके ।

कहा, वन में ही मुनि वसिष्ठजी,
कल यह सब राज्य देंगे श्रीराम को,
यह सुनकर वन्दना की मंत्रियों ने,
चले हाथी, घोड़े, सब सामान सजा के ।

सबसे आगे चले वसिष्ठजी रथ पर,
अरुन्धती और अग्निहोत्र का सामान सजाकर,
फिर तेजोमय ब्राह्मणों के समुह चले,
अपनी-अपनी सवारियों पर चढ़-चढ़कर ।

रथों पर चढ़ चले सब पुरवासी,
सुन्दर पालकियों पर चढ़ रानियां चलीं,
सब सुख छोड़ श्रीरामजी वन में है,
यह सोच दोनों भाई चले पैदल ही ।

उनका स्नेह देख सब प्रेममग्न हो गये,
चलने लगे पैदल सब सवारियां छोड़कर,
तब कौसल्या माता ने प्रेम से समझाया,
तो दोनो भाई चले रथ पर चढ़कर ।

पहले दिन तमसा पर वास कर,
दूसरे दिन मुकाम किया गोमती किनारे,
दूध, फलाहार या एक बार ही भोजन,
इस प्रकार चले सब व्रत निभाते ।

जब सब पहुंचे श्रृंगवेरपुर के समीप,
निषादराज ने सुन विचार किया ह्रदय में,
भरत के मन में अवश्य कपट है,
वरना सेना क्यों लेते भरत साथ में ।

छोटे भाई सहित श्रीराम को मारकर,
समझते है निष्कण्टक राज्य करूंगा सुख से,
पहले तो बस कलंक ही लगा था,
हाथ धोना पड़ेगा अब तो जीवन से ।

जुट जायें सब दैत्य-देव भी जो,
कौन जीत सकता है भला राम को,
विष की बेलें अमृतफल नही देती,
क्या आश्चर्य इसमें, भरत कर रहे जो ।

ऐसा विचार गुह ने साथियों से कहा,
सब लोग मरने के साज सजा लो,
रोक दो सब घाटों को मिलकर,
भरत सहित सभी लोगों को डुबा दो ।

उतरने न दूंगा गंगा पार उन्हें मैं,
चाहे प्राण ही चले जाये इस में,
श्रीराम का काम और क्षणभंगुर जीवन,
ऐसी मृत्यु लिखी होती किसके भाग्य में ।

मारा गया तो भी यश पाऊंगा मैं,
जो जीता तो भी यश मिलेगा मुझे,
श्रीराम चरणों में जिसकी भक्ति नहीं,
माता व्यर्थ ही जन्म देती उसे ।

कहा साथियों को धनुष-बाण ले आओ,
हर्ष के साथ चल पड़े सब निषाद,
अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र सजा कर वो,
जोश में भर चले साधने श्रीराम-काज ।

सब वीर जोश में भर कह रहे,
जीते जी पांव पीछे न रखेंगे,
हे निषादराज ! आप अधीर न हों,
पृथ्वी को रूण्ड-मुण्डमयी कर देंगे ।

जब निषादराज ने कहा ढ़ोल बजाओ,
बायीं ओर छीक हुई इतना कहते ही,
शकुन विचारने वालों ने कहा,
शकुन अच्छा हैं, जीत होगी आपकी ही ।

तब एक बूढ़े ने शकुन विचार कहा,
लड़ाई न होगी, मिल लीजिये भरत से,
भरत श्रीराम को मनाने जा रहे हैं,
विरोध नही है, ऐसा लगता है मुझे ।

यह सुन निषादराज गुह ने कहा,
करना नही चाहिये कुछ बिना विचारे,
मैं जाकर भरतजी का भेद लेता हूँ,
इतनें घाटों को रोक लो तुम सारे ।

वैर और प्रेम छिपाये नही छिपते,
यह कह भेंट का समान सजाया,
निषादराज ने मुनिराज वसिष्ठजी को देख,
नाम बता, दूर से दण्डवत प्रणाम पहुँचाया।

मुनि ने उसको राम का प्यारा जान,
आशीर्वाद दिया और बतलाया भरत को,
यह श्रीराम का मित्र है, सुनते ही,
रथ से उतर, भरत चले मिलने को ।

अपना नाम, गांव और जाति बताकर,
माथा टेक जोहार की निषादराज ने,
उसको यो दण्डवत करते देखकर,
उठाकर सीने से लगा लिया भरत ने ।

जिसकी छाया से भी बचते लोग,
इस तरह गले लगाते देख उसे,
धन्य-धन्य कह सिरहाते देवता,
फूल बरसा रहे हैं वो नभ से ।

भरतजी ऐसे पुलकिल हो रहें है,
मानों लक्ष्मणजी ही मिल गये उन्हें,
जिनका नाम लेने से धुल जाते पाप,
उसे गले लगया था उन्हीं राम ने ।

कर्मनाशा का जल गंगा में मिलने पर,
कौन नही उसे सिर पर रखता,
वाल्मीकिजी ब्रह्म समान हो गये,
सब जानते हैं जपकर ‘मरा-मरा’ ।

मूर्ख, शबर और पामर चाण्डाल,
खस, यवन, कोल और किरात,
राम नाम कहते ही पवित्र हो जाते,
हो जाते त्रिभुवन में विख्यात ।

किस को बड़ाई दी न राम ने,
युग-युग से चली आ रही यह रीत,
यों देवता महिमा कह रहे राम-नाम की,
सुन-सुनकर अयोध्यावासी हो रहे हर्षित ।

प्रेम सहित निषादराज से मिलकर,
कुशल-क्षेम पूछी भरतजी ने उससे,
भरतजी का शील और स्नेह देखकर,
तन-मन की सुध भूल गयी उसे ।

टकटकी लगा देखता रहा गुह भरत को,
फिर हाथ जोड़कर करने लगा वन्दना,
कुशल के मूल आपके चरणों का दर्शन कर,
तीनों लोकों में कुशल जान लिया अपना ।

अब आपके परम अनुग्रह से,
करोड़ों कुलों सहित मेरा हो गया कल्याण,
मेरी करतूत और कुल को समझकर,
और प्रभु श्रीराम की महिमा का कर ध्यान ।

कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति,
लोक और वेद से मैं अन्जान,
पर जब से श्रीराम ने मुझे अपनाया,
तब से हो गया विश्व के भूषण समान ।

उसकी प्रीति और सुन्दर विनय सुनकर,
फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी मिले उनसे,
फिर निषाद ने अपना नाम ले-लेकर,
आदरपूर्वक जोहार की सब माताओं से ।

लक्ष्मण समान समझ वे आशीर्वाद देती हैं,
सुखपूर्वक जिओ तुम सौ लाख वर्षों,
नगरवासी निषाद को देख यों प्रसन्न हुए,
मानों लक्ष्मणजी को ही देख रहे हों ।

सब कह रहे जीने का लाभ इसी का,
श्रीरामजी ने गले से लगाया इसे,
परम आनन्दित हो निषादराज तब,
सबको साथ लिवा ले चला अपने ।

इशारे से बताया सब साथियों को,
सब उनके लिये सुविधाएं जुटाने लगे,
श्रृंगवेरपुर देख प्रेम के कारण,
भरतजी के सब अंग शिथिल हो गये ।

निषादराज के कन्धे पर हाथ रख,
इस प्रकार शोभा पा रहें हैं वो,
मानों विनय और प्रेम स्वयं ही,
साक्षात शरीर धारण किये हुए हों ।

दर्शन किये जग-पावनि गंगा के,
और श्रीरामघाट को प्रणाम किया भरत ने,
सब पुरवासी प्रणाम कर आनन्दित हो रहे,
श्रीराम-चरणों में प्रेम मांगा उन्होनें ।

भरतजी ने कहा – हे गंगे ! आपकी रज,
सुखदायी और कामधेनु है सेवक के लिये,
हाथ जोड़ मांगता कि मेरा स्वाभाविक प्रेम,
कभी कम न हो श्रीसीताराम के लिये ।

फिर स्नान कर गुरूजी की आज्ञा ले,
भरत-शत्रुघ्न चले कौसल्या माता के पास,
चरण दबाकर, कोमल वचन कह-कहकर,
सब माताओं का किया उन्होनें सत्कार ।

श्रीसीता, राम और लक्ष्मण जहां सोये,
पूछा निषादराज से वह स्थान हैं कहाँ,
पवित्र अशोक के नीचे विश्राम किया था,
निषादराज भरतजी को ले गया वहां ।

अत्यंत प्रेम से सादर दण्डवत कर,
भरतजी ने साथरी की करी प्रदिक्षणा,
श्रीराम चरणों की रज आंखों में लगायी,
कहते नही बनती प्रेम की अधिकता ।

दो-चार स्वर्णकण जो वहां देखे,
सीताजी समान समझ रख लिया सिर पर,
उनके नेत्र प्रेममयी जल से भरे हैं,
और ग्लानि का भार रखा हृदय पर ।

कहा निषाद से सीताजी के बिना,
कान्तिहीन हो रहे हैं ये कण स्वर्ण के,
भोग और योग दोनों जिनके वश में हैं,
उन जनकसुता की तुलना करूँ मैं किस से ।

सूर्यकुल सूर्य दशरथ जिनके ससुर हैं,
और प्राणनाथ श्रीरघुनाथ हैं जिनके,
जो इतने बड़े, कि बड़ाई पाने वाले,
उनकी बड़ाई से होते हैं बड़े ।

उन श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियों में शिरोमणि,
सीताजी की यह कुशशय्या देखकर,
क्यों हहराकर फट नही जाता मेरा हृदय,
वज्र से भी कठोर है यह, हे शंकर ।

बहुत सुंदर और प्यार करने योग्य हैं,
कोई हुआ न होगा, भाई लक्ष्मण सा,
वन में सब तरह की विपत्तियां सह रहे,
जिनके तन न लगी कभी गर्म हवा ।

जन्म ले उजागर कर दिया जग को,
रूप, शील, सुख, समस्त गुणों के सागर,
पुरवासी, गुरू, माता-पिता सभी को,
श्रीराम का स्वभाव है सुख का सागर ।

कौन गिन सकता श्रीरामजी के गुणों को,
मंगल और आनन्द के भण्डार हैं वो,
विधाता की गति बड़ी ही बलवान है,
पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं वो ।

कभी दुख का नाम न सुना उन्होनें,
पिता और माताएं संभाल करते थे उनकी,
वही अब जंगलों में पैदल फिरते हैं,
भोजन में बस कन्द-मूल और फल ही ।

धिक्कार है अमंगल की मूल कैकेयी को,
प्रतिकूल हो गयी जो पति से,
मुझ पापी और अभागे को धिक्कार है,
सब उत्पात हुए जिसके कारण से ।

कुल-कलंक बना पैदा किया मुझे विधाता ने,
और कुमाता ने बना दिया स्वामीद्रोही मुझे,
यह सुन निषादराज ने कहा, हे नाथ !
दोष तो है प्रतिकूल विधाता के ही माथे ।

बावली बना दिया माता कैकेयी को उसने,
विधाता का ही किया-धरा है सारा,
श्रीराम को आप समान प्रिय न कोई,
कृपा के धाम है वो, जानता जग सारा ।

श्रीराम के ठहरने का स्थान जानकर,
सब आतुर हो देखने चले वह स्थान,
नेत्रों में जल भर-भर लेते हैं,
परिक्रमा करते हैं और करते हैं प्रणाम ।

कोई भरत के स्नेह की सराहना करते,
कहते है खूब निबाहा प्रेम भरत ने,
सब निषाद की प्रशंसा करते हैं,
कहते हैं जीने का फल पाया उसने ।

यो जागते रहे रात भर सब,
सवेरा होते ही नाव पर चढ़ चले,
गुरूजी को, फिर माताओं को चढ़ाया,
चार घड़ी में गंगा पार हो लिये ।

आगे किया निषादगणों को भरत ने,
और सेना चलायी पीछे उनके,
माताओं, गुरूजी और ब्राह्मण चले तब,
भरतजी पैदल चले, बिना सवारी के ।

उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं,
हे नाथ ! सवार हो लीजिये घोड़े पर,
भरत कहते हैं, पैदल ही गये श्रीराम,
कैसे चलुं मैं घोड़े या रथ पर ।

मुझे उचित है सिर के बल चलुं,
सेवक का धर्म कठिन होता है सबसे,
उनकी दशा देख और कोमल वाणी सुन,
सेवकगण गले जा रहे ग्लानि से ।

प्रेमसहित सीताराम कहते-कहते,
पहुंचे प्रयाग में वे तीसरे पहर,
उनके चरणों में छाले ऐसे चमकते,
जैसे ओस की बूंद कमल-कली पर ।

भरतजी पैदल ही चलकर आये है,
यह जान सारा समाज दुखी हो गया,
स्नान किया सबने श्वेत-श्याम जल में,
ब्राह्मणों को दान दे सम्मान किया ।

गंगाजी और यमुनाजी की लहरें देख,
भरतजी का तन पुलकित हो उठा,
हाथ जोड़कर बोले, हे तीर्थराज,
मैं अपना धर्म छोड़, आपसे भीख मांगता ।

न अर्थ की इच्छा, न धर्म की,
न काम या फिर मोक्ष चाहता,
जन्म-जन्मांतर श्रीराम-चरणों में प्रेम हो,
बस आपसे मैं यही वरदान मांगता ।

भले ही श्रीरामजी मुझे कुटिल समझें,
चाहे लोग गुरूद्रोही तथा स्वामीद्रोही कहें,
पर श्रीसीताराम के चरणों में मेरा प्रेम,
आपकी कृपा से हर दिन बढ़ता ही रहे ।

मेघ चाहे भुला दे चातक की सुध,
जल मांगने पर वज्र या पत्थर गिरा दे,
चातक की रटन घटने से प्रतिष्ठा घटेगी,
प्रेम बढ़ने में भलाई उसकी सब तरह से ।

जैसे आग में तपने पर,
सोना निर्मल हो चमक जाता,
प्रियतम के चरणों में प्रेम से,
वैसे ही प्रेमी का गौरव बढ़ जाता ।

भरतजी के वचन सुनकर त्रिवेणी से,
सुन्दर मंगलकारी कोमल वाणी हुई,
हे तात भरत ! तुम सब तरह साधु हो,
श्रीराम को तुम सा कोई प्रिय नही ।

अथाह प्रेम है श्रीराम चरणों में तुम्हारा,
तुम व्यर्थ ग्लानि कर रहे मन में,
पुलकित हो गये भरतजी यह सुन,
हर्ष छा गया उनके हृदय में ।

धन्य हैं, धन्य हैं, कहकर देवता,
भरतजी पर फूल बरसाने लगे,
प्रयागराज में रहने वाले साधु-संत,
भरतजी के प्रेम को सराहने लगे ।

तब भरतजी गये मुनि भरद्वाज के पास,
और दण्डवत कर प्रणाम किया उनको,
मुनि ने उठाकर लगा लिया हृदय से,
और आशीर्वाद दे कृतार्थ किया उनको ।

भरतजी सिर नवाकर ऐसे बैठे,
मानों धरती में घुस जाना चाहते हों,
सोच रहे हैं यदि मुनि कुछ पूछेंगे,
तो क्या उत्तर दूंगा मैं उनको ।

उनके शील और संकोच को देख,
ऋषि बोले हम पा चुके सब खबर,
विधाता के किये पर वश नही चलता,
ग्लानि न करो माता की करतूत याद कर ।

हे तात् ! कैकेयी का भी दोष नही,
सरस्वती बिगाड़ गयी थी बुद्धि उनकी,
लोक और वेद दोनों को मान्य है,
पिता जिसे दे पाता है राज्य वही ।

होनी बलवान है होकर ही रहती,
विधाता की गति भला किसने जानी,
जो कोई इसमें माने दोष तुम्हारा,
तो वो है असाधु, अधम और अज्ञानी ।

राज करने पर भी तुम्हें दोष न होता,
सुनकर श्रीराम को भी संतोष ही होता,
पर अब तो बहुत अच्छा किया है तुमने,
यही मत तुम्हारे लिये सबसे उचित था ।

श्रीराम चरणों में प्रेम होना ही,
समस्त मंगलों का मूल जगत में,
सो वह तो तुम्हारा जीवन-धन है,
कौन बड़भागी तुम्हारे समान जगत में ।

हे भरत ! सुनो श्रीराम के मन में,
प्रेम पात्र नही कोई तुम सा दूसरा,
तुम मानों शरीरधारी श्रीराम के प्रेम हो,
तुम सा राम-प्रेमी होगा न दूसरा ।

घटेगा नही तुम्हारा यह यशरूपी निर्मल चन्द्रमा,
बल्कि यह तो दिन-दिन होगा और दूना,
दिन-रात सभी को यह परम सुख देगा,
कैकेयी का कुकर्मरूपी राहू ग्रसेगा कभी ना ।

श्रीराम के अमृतरूपी प्रेम से पूर्ण,
दूषित नही यह चन्द्रमा किसी दोष से,
यह अमृत सुलभ किया तुमने पृथ्वी पर,
अब रामभक्त तृप्त हों ले पी के इसे ।

राजा भगीरथ जो गंगाजी को लायें,
जिसका स्मरण ही सब मंगलों की खान,
दशरथजी के गुण बखानेगा क्या कोई,
जगत में कोई नही जिनके समान ।

जिनके शील और प्रेमवश हो कर,
आकर प्रकट हुए स्वयं भगवन् श्रीराम,
पर तुमने कीर्तिरूपी यह चन्द्रमा दिया,
तुम्हारा हृदय, श्रीराम प्रेम का धाम ।

हे भरत ! सुनो हम झूठ नही कहते,
उदासीन, तपस्वी, हम वन में रहते,
कहते नही हम किसी की मुंह देखी,
न किसी से कोई प्रयोजन ही रखते ।

सब साधनों को उत्तम फल हमें,
श्रीसीता-राम-लक्ष्मण का हुआ दर्शन,
उस महान फल का परम फल यह,
जो आज हुआ यहां तुम्हारा दर्शन ।

धन्य, धन्य हो तुम, हे भरत !
जीत लिया जग अपने यश से तुमने,
यह कह मुनि प्रेम-मग्न हो गये,
और नभ से फूल लगे बरसने ।

भरतजी भी प्रेममग्न हो गये,
श्रीसीताराम हृदय में, प्रेमाश्रु नैनों में,
मुनियों की मण्डली को प्रणाम कर,
तब भरतजी बोले गदगद् वाणी में ।

मुनियों का समाज और फिर तीर्थराज,
सच्ची सौगंध से भी यहां होती हानि,
कुछ बनाकर यदि यहां कहा जाय,
तो इससे नीच कोई होगी न करनी ।

आप सर्वज्ञ हैं, अन्तर्यामी हैं श्रीराम,
माता कैकेयी की कुछ सोच नही मुझे,
न मेरे मन में यह दुख है कि,
जगत में कोई नीच समझेगा मुझे ।

न परलोक का डर, न शोक पिता का,
उनका पुण्य और यश सब जानते जग में,
श्रीराम और लक्ष्मण से उन्होंने पाये पुत्र,
जिनके बिछुड़ते ही तन त्यागा पल में ।

क्या प्रसंग फिर उनके लिये शोक का,
सोच मुझे है बस इसी बात का,
श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी बिना जूती के,
वन-वन फिरते, वेष बनाये मुनियों का ।

वल्कल वस्त्र, कन्द-मूलों को भोजन,
पृथ्वी पर सोते हैं पत्ते बिछाकर,
सर्दी-गर्मी, वर्षा, हवा सहते हैं,
रह जाती है मेरी छाती जलकर ।

दिन में भूख न लगती मुझको,
रातों में नींद न मुझको आती,
सारा जग खोज के देख लिया,
इस कुरोग की औषध मुझे न पाती ।

माता के कुमत, पापों के मूल बढ़ई ने,
हमारे हित को बसूला बना लिया,
कलहरूपी कुकाठ का कुयन्त्र बनाकर उससे,
बनवासरूपी कुमन्त्र पढ़कर उसे गाड़ दिया ।

यह सारा कुठार मेरे लिये रचकर,
छिन्न-भिन्न कर डाला सारे जगत को,
इस कुयोग के मिटने का उपाय,
श्रीरामचन्द्रजी का लौटना फिर अवध को ।

भरतजी के वचन सुनकर सभी ने,
बहुत प्रकार से बड़ाई की उनकी,
मुनि ने कहा तुम्हारा दुख मिट जायेगा,
श्रीराम-चरणों के दर्शन करते ही ।

फिर बोले, हमारे प्रिय अतिथि बन,
जो कन्द-मूल हैं स्वीकार कीजिये,
भरतजी बोले आपकी आज्ञा का पालन,
हमारा धर्म हैं, आप आदेश कीजिये ।

विश्वासपात्र सेवकों को बुलाकर मुनि ने,
कन्द-मूल, फल लाने को कहा उन्हें,
पर बहुत बड़े मेहमान को न्यौता है,
मन-ही-मन यह चिन्ता हुई उन्हें ।

जैसा देवता, वैसी ही पूजा हो,
यह सोच ऋद्धि-सिद्धियों को किया याद,
मुनि के याद करते ही वे आ गयीं,
और पूछने लगीं क्या आज्ञा है, नाथ ।

मुनि ने कहा, शत्रुघ्न और समाज सहित,
भरतजी व्याकुल हैं श्रीराम के विरह में,
उनका ठीक से आतिथ्य-सत्कार कर,
उनके श्रम को दूर करो क्षण में ।

श्रीभरतजी से अतुलनीय अतिथि को पाकर,
बड़भागिनी समझने लगी वे अपने को,
कहने लगीं, हमें आज वही करना चाहिये,
जिससे यह सारा राज समाज सुखी हो ।

तुरंत ही बहुत से सुन्दर घर बना,
सब ठाट-बाठ का सामान रख दिया,
सब प्रकार की सामग्री उपलब्ध करा,
अनेक सेवकों को सेवा में रख दिया ।

पहले औरों को मनचाहा निवास दें,
फिर कुटुम्ब-सहित निवास दिया भरत को,
मुनि श्रेष्ठ की ऐसी ही आज्ञा थी,
वे जान गये थे भरतजी के मन को ।

मुनिश्रेष्ठ ने अपने तप के बल से,
अनूठा वैभव रच दिया एक ही पल में,
मुनि के प्रभाव को देख भरत को,
लोकपालों के लोक भी लगे तुच्छ लगने ।

आसन, सेज, सुन्दर वस्त्र और चंदोले,
फल-फूल और भोजन तरह-तरह के,
संयमी पुरुष भी देख विचलित हो जायें,
चारों पदार्थ उपलब्ध डेरों में सबके ।

वसन्त ऋतु, त्रिविध हवा चल रही,
हर्ष और विषाद हो रहा साथ में,
हर्ष सब भोग सामग्रियां देख हो रहा,
विषाद हो रहा श्रीराम वियोग में ।

भोग विलास चकवी, भरतजी चकवा,
और खेल है मुनि की आज्ञा,
जिसने दोनों को रक्खा आश्रम में,
और ऐसे ही सवेरा हो गया ।

जैसे बहेलिये द्वारा एक ही पिंजरे में,
रखने पर भी चकवी-चकवा मिलते नहीं,
वैसे ही भोग-सामग्रियों के बीच रह,
भरतजी ने मन से भी उनको छुआ नही ।

मासपारायण, अठारहवां विश्राम

प्रात:काल तीर्थराज में स्नान कर,
मुनि की आज्ञा ले चले भरतजी,
न उनके पैरों में जूते हैं,
न उनके सिर पर है छाया ही ।

श्रीराम-लक्ष्मण और सीताजी के,
रास्ते की बातें पूछते हैं गुह से,
उनके विश्राम-स्थल और वृक्षों को देख,
प्रेम-हृदय में रोके रूकता नही उनके ।

भरतजी की यह प्रेममय दशा देखकर,
गगन से फूल बरसाने लगे देवता,
पैरों के तले धरती कोमल हो गयी,
और मार्ग बन गया मूल मंगल का ।

बादल छाया किये जा रहे हैं,
बह रही है सुख देने वाली हवा,
उनके जाते ऐसे सुखदायी हुआ मार्ग,
जैसा रामजी के जाते भी न हुआ ।

समस्त चराचर जिन्होंने राम को देखा था,
हो गये परमपद के वो अधिकारी,
परंतु अब भरतजी के दर्शन से तो,
तुरंत पा गये वे परमपद भारी ।

बड़ी बात नही यह भरतजी के लिये,
जिन्हें स्वयं स्मरण करते रहते हैं श्रीराम,
वे भी तरने-तारने वाले हो जाते,
जो भी एक बार कह लेते हैं राम ।

फिर भरतजी तो उनके प्यारे भाई हैं,
तो मार्ग मंगलदायक हो न कैसे,
सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि कह कर,
अपने हृदय में हर्ष-लाभ कर रहे ।

भरतजी के इस प्रेम के प्रभाव को देख,
देवराज इन्द्र को यह सोच हो गया,
कहीं इनके प्रेमवश लौट न जायें राम,
बिगड़ न जाय हमारा काम बना-बनाया ।

गुरू बृहस्पतिजी से कहा इन्द्र ने,
हे नाथ ! श्रीराम-भरत का मेल न हो,
बनी-बनायी बात बिगड़ना चाहती है,
कुछ ऐसा कीजिये जो इसका तोड़ हो ।

देवराज की बात सुन मुस्कुराये बृहस्पति,
सहस्त्रनयन इन्द्र को नेत्र-रहित समझा,
उलटकर उसके ऊपर ही आ पड़ती है,
मायापति के सेवक संग जो माया करता ।

जो उनके भक्त का अपराध करता है,
जल जाता है वह उनकी क्रोधाग्नि में,
इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं,
कथा प्रसिद्ध है लोक और वेद में ।

श्रीरामजी स्वयं जिन भरतजी को जपते है,
कौन प्रेमी होगा श्रीराम को उन सा,
यह विचार अपने मन से निकाल दो,
इससे कतिपय भी हमारा कल्याण न होगा ।

परमप्रिय हैं श्रीराम को सेवक अपने,
अपने सेवक की सेवा में सुख मानते,
उनके सेवक से यदि कोई बैर करे,
तो उसे बड़ा भारी बैरी वे मानते ।

यद्यपि वे सम हैं, बिना राग-द्वेष के,
पाप-पुण्य, गुण-दोष गहते न किसी का,
कर्म को ही प्रधान कर रक्खा है उन्होंने,
जो जैसा करता है, फल वैसा ही भोगता ।

तथापि भक्त और अभक्त के हृदयानुसार,
करते हैं व्यवहार वे सम और विषम,
अगुन, अलेप, अमान, एकरस श्रीराम ने,
भक्तों के कारण ही किये गुण धारण ।

सदा अपने सेवकों को रूचि रखते आये,
वेद, पुराणादि सब साक्षी हैं इसके,
कुटिलता छोड़ दो ऐसा हृदय में जानकर,
और प्रीति करो चरणों में भरत के ।

हे देवराज इन्द्र ! श्रीरामचन्द्रजी के भक्त,
सदा ही दूसरों के हित की सोचते,
फिर भरतजी तो हैं भक्तों के शिरोमणि,
सो बिल्कुल भी डरो न तुम उनसे ।

सत्यप्रतिज्ञा और देव हितकारी हैं राम,
और भरतजी चलते हैं आज्ञानुसार उनकी,
तुम व्यर्थ ही मोहवश व्याकुल हो रहे,
भरतजी का इसमें कोई दोष ही नही ।

बृहस्पतिजी की श्रेष्ठ वाणी को सुनकर,
बड़ा आनन्द हुआ इन्द्र के मन में,
चिन्ता मिट गयी देवराज इन्द्र की,
भरतजी की सराहना कर लगे फूल बरसाने ।

उधर प्रेममग्न हो चले जा रहे भरतजी,
चलते-चलते आ गये यमुनाजी के तट पर,
भरत-सहित सारा समाज प्रेमविह्वल हो गया,
श्रीराम के तन सा जल का रंग देखकर ।

पर जब यह सोचा उन्होनें मन में,
जल्द ही श्रीराम के दर्शन करेंगे,
तो विरहरूपी समुद्र में डूबते-डूबते,
विवेकरूपी जहाज पर वे चढ़ गये ।

उस दिन निवास कर यमुना तट पर,
सबेरे ही सब लोग पार हो गये,
आगे अच्छी-अच्छी सवारियों पर श्रेष्ठ मुनि,
बाकी सब लोग उनके पीछे हो लिये ।

बहुत ही सादी वेष-भूषा में,
चल रहे हैं पैदल भरत-शत्रुघ्न,
सेवक, मित्र और मंत्रीपुत्र साथ में हैं,
करते जा रहे हैं श्रीराम का सुमिरन ।

मार्ग में बसने वाले स्त्री-पुरुष,
सब काम-काज छोड़ दौड़े जाते,
दोनों भाइयों को देख आश्चर्यचकित हैं,
उन्हें राम-लक्ष्मण सा ही वे पाते ।

पर संदेह हो रहा उन्हें दुखी देख,
साथ में न सीता, न वल्कल वस्त्र,
उस पर इनके आगे चली जा रही,
चतुरंगिनी सेना लेकर अस्त्र-शस्त्र ।

जो सच जानते, सराहते हैं उन्हें,
प्रशंसा करते हैं शील और स्नेह की,
कहते हैं, श्रीराम को मनाने जा रहे,
कौन इनके समान, भला होगा बड़भागी ।

भरतजी का भाईपना, भक्ति और आचरण,
कहने-सुनने से दु:ख दोष दूर होते,
थोड़ा है उनके लिये कुछ भी कहना,
श्रीराम के भाई, ऐसे क्यों न होते ।

उनके गुण सुन और दशा देखकर,
स्त्रियां कहतीं, योग्य नही ये कैकेयी के,
कोई कह रही, यह कैकेयी का दोष नही,
किया है यह सब विधाता ही ने ।

पर हमारे लिये तो अनुकूल ही है यह,
कहाँ लोक और वेद-विधि से हीन हम,
यह महान पुण्यों का परिणामरूप दर्शन,
अन्यथा किस प्रकार कर सकते थे हम ।

गांव-गांव आनन्द और आश्चर्य हो रहा,
मानों मरूभूमि में कल्पवृक्ष उग गया हो,
भाग्य खुल गये उन्हें देखने वालों के,
सिंहलवासियों को ज्यों प्रयाग मिल गया हो ।

अपने और श्रीरामजी के गुणों को सुनते,
चले जा रहे हैं भरतजी भजते श्रीराम,
वे तीर्थों को देख स्नान करते हैं,
आश्रम और मंदिर देख करते हैं प्रणाम ।

मार्ग में मिलने वालों से पूछते,
किस वन में मिलेंगे उन्हें श्रीराम,
जो लागे कहते, हमने उन्हें देखा है,
भरतजी को लगते वे राम समान ।

सबको लालसा है प्रभु से मिलन की,
मंगलसूचक शकुन हो रहे हैं सबको,
समाज सहित भरतजी को उत्साह हो रहा,
दु:ख जल्द मिटेगा, मिलेंगे श्रीराम उनको ।

प्रेम में सब मतवाले हो रहे,
अंग शिथिल, पग डगमगा रहे,
मनोरथ कर रहे अपने जी का,
प्रेमवश विह्वल वचन कह रहे ।

तभी स्वाभाविक ही सुहावना पर्वतशिरोमणि,
कामदगिरि दिखलाया रामसखा निषाद ने,
जिसके निकट ही पयस्विनी के तट पर,
निवास बनाया सीतासहित दोनों भाइयों ने ।

जयघोष की उन्होनें, पर्वतश्रेष्ठ को देख,
सारा राजसमाज मग्न हो उठा प्रेम में,
मानों श्रीरामजी अयोध्या लौट चलें हों,
कहा नही जा सकता वह प्रेम शब्दों में ।

सब ऐसे शिथिल हो रहे प्रेम में,
कि दिन भर दो ही कोस चल सके,
बिना खाये-पिये ही रूके रात को,
सुबह होते ही भरतजी आगे चले ।

उधर श्रीराम जागे रात शेष रहते ही,
सीताजी अपना स्वप्न सुनाने लगी उन्हें,
प्रभु वियोग में संतप्त शरीर भरत का,
समाजसहित आते देखा उन्होनें जिन्हें ।

उदास, दीन और दुखी हैं सब,
सासुओं को भी देखा और वेश में,
श्रीरामजी के नेत्रों में जल भर आया,
लीला से हो गये सोच के वश में ।

लक्ष्मण से बोले यह स्वप्न नही अच्छा,
सुनायेगा कोई बहुत ही बुरी खबर,
ऐसा कह भाई सहित स्नान किया उन्होनें,
साधुओं का सम्मान किया, शिव-पूजन कर ।

देव-पूजन और मुनियों की वन्दना कर,
देखने लगे श्रीराम उत्तर दिशा को,
धूल छा रही, पशु-पक्षी विकल हो,
भागे आ रहे उनके आश्रम को ।

सोचने लगे प्रभु क्या कारण है,
तभी कोल-भीलों ने आकर बतलाया,
आनन्दित हो पुलक से भर गये वो,
नेत्रों में उनके जल भर आया,

फिर सोच वश हो गये वो,
क्या कारण है भरत के आने का,
फिर एक ने आकर यूँ कहा कि,
उनके साथ है भारी चतुरंगिनी सेना ।

एक तरफ पिता का वचन,
दूसरी तरफ संकोच भाई का,
प्रभु श्रीराम सोच में पड़ गये,
जानते थे वे स्वभाव भरत का ।

अपने चित्त को ठहराने के लिये,
नही पाते वे कोई भी स्थान,
साधु, सयाने, मेरे कहने में हैं भरत,
यह जानकर हो गया उनका समाधान ।

उधर श्रीराम को चिन्तित देख,
समयानुकुल नीतियुक्त वचन बोले लक्ष्मण,
हे स्वामी ! आपके बिना पूछे कहता हूँ,
समझे न इसे मेरा अनुचित आचरण ।

हे नाथ ! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं,
पर मैं कहता हूँ अपनी समझ से,
आप सुहृद, शील, स्नेही, प्रेमी, विश्वासी,
सबको समझते आप अपने ही से ।

परंतु प्रभुता पाकर मूढ़ विषयी जीव,
प्रकट कर देते अपने असली रूप को,
भरत नीतिज्ञ, साधु, चतुर, आपके प्रेमी हैं,
सारा जगत जानता इस बात को ।

वे भी आज आपका पद पाकर,
चले हैं धर्म की मर्यादा मिटाकर,
आप वन में अकेले, असहाय है,
यह सोच भरत आये हैं सेना लेकर ।

यदि कोई कपट या कुचाल न होती,
तो रथ, घोड़े, हाथी किसे सुहाते,
पर भरत का ही इसमें दोष क्या,
कौन राजपद पा बौरा नही जाते ।

सब जानते हैं इनकी कथा,
चन्द्रमा, सहस्त्रबाहु, त्रिशंकु, इन्द्र, नहुष,
नीच न होगा राजा वेन सा कोई,
जो लोक और वेद दोनों से हुआ विमुख ।

क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी,
जरा भी शेष नही रखना चाहिये,
उचित ही किया यह उपाय भरत ने,
उसे ऐसा ही करना ही चाहिये ।

पर भरत ने यह अच्छा न किया,
जो असहाय समझ आपका किया निरादर,
पर अच्छी तरह समझ लेंगे वे आज,
संग्राम में आपका क्रोधपूर्ण मुख निहारकर ।

इतना कह नीतिरस भूल गये लक्ष्मणजी,
वीररस छा गया उनके शरीर में,
श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की वन्दना कर,
अपना स्वाभाविक बल वे लगे कहने ।

हे नाथ ! मेरा कहा अनुचित न मानिये,
कम नही प्रचारा है हमें भरत ने,
आखिर कहाँ तक सहा जाय जब,
स्वामी साथ और धनुष हाथ में ।

क्षत्रिय जाति, रघुकुल में जन्म,
फिर मैं अनुरागी सेवक आपका,
धूल भी सिर चढ़ जाती है,
जब कोई उस पर लात मारता ।

यों कह सिर पर जटा बांध,
कहा हाथ में धनुष-बाण सजाकर,
भरत-शत्रुघ्न रणशय्या पर सोवेंगे,
आपके निरादर का मुझसे फल पाकर ।

अच्छा हुआ, जो सारा समाज एकत्र है,
आज करूंगा सब पिछला क्रोध प्रकट,
जैसे सिंह हाथियों का झुंड कुचल डालता,
और जैस बाज लवे को लेता लपट ।

वैसे ही छोटे भाई और सेना सहित,
पछाड़ूंगा मैदान में मैं भरत को,
आपकी सौगंध, यदि शंकरजी भी सहायता करें,
तो भी अवश्य मार डालूंगा मैं उनको ।

लक्ष्मणजी को क्रोध में तमतमाया देख,
और उनकी सत्य सौगंध को सुनकर,
भयभीत हो उठे लोग सभी,
और लोकपाल भागना चाहते घबड़ाकर ।

तभी आकाशवाणी हुई, हे तात !
कौन नही जानता तुम्हारे प्रताप को,
परंतु उचित अनुचित खूब विचारकर,
तभी करना चाहिये किसी काम को ।

वेद और विद्वान सभी कहते हैं,
जो करते कुछ भी बिना विचारे,
बुद्धिमान नही कहे जाते हैं वो,
जो जल्दी करते फिर पीछे पछताते ।

सकुचा गये लक्ष्मणजी देववाणी सुनकर,
श्रीराम-सीता ने किया उनका सादर सम्मान,
बोले तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही,
सबसे कठिन राज्य का होता अभिमान ।

मतवाले होते राजमदरूपी मदिरा से वे,
साधुओं का संग कभी न किया जिन्होनें,
हे लक्ष्मण ! सुनो भरत सा उत्तम पुरुष,
देखा न सुना, सृष्टि में किसी ने ।

अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या,
ब्रह्मा, विष्णु या महादेव का पद पाकर भी,
भरत को राज्य का मद होना असम्भव है,
ज्यों क्षीरसमुद्र नही फाड़ सकती बूंद कांजी की ।

चाहे अंधकार निगल जाय सूर्य को,
आकाश समाकर मिल जाय बादलों में,
गोपद जितने जल में डूब जायं अगस्त्यजी,
चाहे पृथ्वी अपनी क्षमाशीलता छोड़ दे ।

चाहे कुछ भी असंभव, संभव हो जाये,
पर राजमद हो नही सकता भरत को,
तुम्हारी शपथ, पिताजी की आन लेता हूँ,
भरत सा श्रेष्ठ भाई मिलेगा न किसी को ।

गुणरूपी दूध और अवगुणरूपी जल मिला कर,
विधाता ने रचा यह संसार समस्त,
परतुं भरत ने हंसरूप जन्म लेकर,
गुण और दोषों को कर दिया विभक्त ।

गुण ग्रहण और अवगुणरूपी जल त्याग कर,
उजियाला कर दिया जगत में भरत ने,
उनका गुण, शील और स्वभाव कहते-कहते,
श्रीरघुनाथजी मग्न हो गये प्रेमसमुद्र में ।

कौन कृपा के धाम प्रभु सम,
कहने लगे यह देख सब देवता,
यदि भरत न जन्मते धरती पर,
तो कौन धर्म की धुरी धारण करता ।

अत्यंत सुखी हुए श्रीसीताराम और लक्ष्मण,
देवताओं की यह मंगल वाणी सुन कर,
उधर स्नान-ध्यान कर, आज्ञा लेकर,
भरत चले ये तीनों थे जहां पर ।

मन-ही-मन सकुचा रहे भरतजी,
अपनी माता की करनी को समझकर,
सोच रहे चले जायें न कहीं और,
श्रीराम, सीता, लक्ष्मण मेरा नाम सुनकर ।

मुझे माता के मत में मानकर,
थोड़ा है, वे जो कुछ भी करें,
पर अपने विरह और संबंध को देख,
अवश्य ही मुझ शरणागत को क्षमा करें ।

प्रभु चाहें जैसा भी करें मेरे संग,
मुझे तो उनकी जूतियां ही हैं शरण,
वे स्वामी, मैं नित्य दास हूँ उनका,
समस्त दोषों का मैं ही हूँ कारण ।

चले जा रहे यह सब सोचते भरतजी,
शिथिल हो रहे प्रेम और संकोच से,
माता की की बुराई लौटाती है उन्हें,
पर चले जाते हैं भक्ति के बल से ।

जब श्रीरघुनाथ का स्वभाव सुमरते हैं,
पड़ने लगते हैं जल्दी-जल्दी पांव,
भरतजी का सोच और प्रेम देखकर,
निषदराज भूले देह के हाव-भाव ।

मंगल शकुन सुनकर और विचारकर,
निषादराज ने कहा कि सोच मिटेगा,
प्रभु श्रीरघुनाथ से मिलकर होंगे हर्षित,
लेकिन अन्त में दु:ख ही मिलेगा ।

सत्य जाने भरतजी ने उसके वचन,
तभी वे आश्रम के समीप जा पहुंचे,
वहां के वन-पर्वतादि को देख भरतजी,
अत्यंत आनन्दित हो रहे मन में ।

जैसे इति के भय से दु:खी प्रजा,
पीड़ित जो तीनों तापों, महामारियों से,
सुखी हो जाती उत्तम राज्य में जाकर,
भरतजी की दशा थी ठीक वैसे ।

श्रीराम के निवास से वन की सम्पत्ति,
सुशोभित हो रही, सुखदायी हो रही,
मानों किसी अच्छे राजा को पाकर,
सारी प्रजा सुखी हो आनन्दित हो रही ।

सुहावना वन ही पवित्र देश है,
विवेक राजा और वैराग्य मन्त्री,
यम-नियम योद्धा, पर्वत राजधानी,
श्रेष्ठ रानियां शान्ति और सुबुद्धि ।

राज्य के सब अंगों से पूर्ण,
श्रीराम चरणों के आश्रित वह राजा,
उत्साहित हो मोहरूपी शत्रु को जीत,
निष्कण्टक राज्य कर रहा वह राजा ।

सुख, सम्पत्ति और सुकाल नगर में,
मुनियों के निवासस्थान शोभा नगर की,
अनेकों पशु-पक्षी प्रजाओं का समाज,
आपसी वैर को भूल रह रहे सभी ।

झर रहे हैं पानी के झरने,
और चिंघाड़ रहे हैं मतवाले हाथी,
पक्षियों के झुंड प्रसन्न मन कूंज रहे,
फल-फूल, लताओं से लदे वृक्षादि ।

श्रीराम के पर्वत की शोभा देखकर,
अत्यन्त प्रेम हुआ भरतजी के हृदय में,
जैसे तपस्या का फल पाकर,
तपस्वी को सुख मिलता अन्त में ।

मासपारायण, सोलहवां विश्राम
नवाह्नपारायण, चौथा विश्राम

तब दौड़कर ऊंचे चढ़ गया केवट,
कहने लगा भरतजी से भुजा उठाकर,
ये जो वृक्ष दिखायी देते हैं,
जिनके बीच विशाल वट-वृक्ष है सुन्दर ।

उसके पत्ते नीले और सघन हैं,
और लगे हैं लाल-लाल फल उसमें,
घनी छाया सब ऋतुओं में सुखदायक,
रचा विशेषरूप से जिसे ब्रह्मा ने ।

ये वृक्ष उस नदी के समीप हैं,
जहां पर्णकुटी छायी है श्रीराम की,
तुलसी के बहुत से वृक्ष लगाये,
एक सुन्दर वेदी छाया मे बड़ की ।

मुनियों के संगे बैठ जहां श्रीराम,
सुनते नित्य शास्त्र, वेद और पुराण,
श्रीसीताजी और भाई लक्ष्मण सहित,
यहीं पर प्रभु करते हैं विश्राम ।

नेत्रों में जल भर आया भरत के,
उमड़ आया हृदय में प्रेम अपार,
प्रभु के चरणचिह्न देख हर्षित हो रहे,
उस रज पर सब कुछ रहे वार ।

उनको ऐसे प्रेम विह्वल देखकर,
जड़-चेतन सब प्रेम-मग्न हो गये,
भूल गया निषादराज भी रास्ता,
फूल बरसा देवता मार्ग बताने लगे ।

उनके प्रेम की यह स्थिति देखकर,
सिद्ध और साधक भी करने लगे प्रशंसा,
यदि पृथ्वी पर भरत जन्म न लेते,
कौन जड़ को चेतन, चेतन को जड़ करता ।

प्रेम अमृत, विरह मन्दराचल पर्वत,
और भरतजी हैं समुद्र अथाह,
स्वयं अपने हाथों से मथकर श्रीराम ने,
किया इस प्रेमरूपी अमृत को प्रवाह ।

सघन वन की आड़ के कारण,
लक्ष्मणजी नही देख पाये इन सबको,
लेकिन भरतजी ने आह्लादित होकर देखा,
समस्त सुमंगलों के धाम आश्रम को ।

उस आश्रम में प्रवेश करते ही,
भरतजी का दु:ख और दाह मिट गया,
मानों किसी साधनारत योगी को,
प्रभु-कृपा से परमतत्त्व मिल गया ।

भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी,
प्रभु के सम्मुख कुछ कह रहे हैं,
सिर पर जटा, कमर में वल्कल वस्त्र,
और हाथों में धनुष-बाण सजे हैं ।

मुनियों और साधुओं के समुदाय सहित,
सीताजीसहित प्रभु हैं स्वयं विराजमान,
धारण किये हुए हैं वे वल्कल वस्त्र,
सिर पर जटा, सुशोभित तन है श्याम ।

श्रीसीता-राम युगल ऐसे लग रहे,
जैसे कामदेव मुनिवेश किये हो धारण,
प्रभु हँसकर जिसकी ओर देख लेते हैं,
हर लेते हैं उसके जी की जलन ।

सुन्दर मुनिमण्डल के बीच ऐसे,
सुशोभित हो रहे सीताजी और श्रीराम,
मानों ज्ञान की सभा में सशरीर,
साक्षात भक्ति और सच्चिदानन्द हैं विराजमान ।

छोटे भाई शत्रुघ्न और निषादराज सहित,
भरतजी का मन मग्न हो रहा प्रेम से,
हे नाथ ! हे गुसाईं ! रक्षा कीजिये कहकर,
वे पृथ्वी पर गिर पड़े, दण्ड से ।

पहचान लिया लक्ष्मणजी ने उनको,
जान गये भरत कर रहे हैं प्रणाम,
एक ओर भाई का प्रेम खींच रहा,
दूसरी ओर सेवा में न हो व्यवधान ।

सो न उनसे भरत से मिलते बनता,
न प्रेमवश वे कर सकते उपेक्षा,
कौन उनकी यह दुविधा करे वर्णन,
भाई के प्रेम पर भारी पड़ी सेवा ।

तब मस्तक नवाकर कहा उन्होनें,
हे रघुनाथजी, भरतजी कर रहे हैं प्रणाम,
सुनते ही प्रेम से अधीर हो उठे,
कहीं तरकस, कहीं धनुष, कहीं बाण ।

कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने भरत को,
जबरन उठा लगा लिया हृदय से,
सबको अपनी सुध-बुध भूल गयी,
देख उन्हें मिलते ऐसे प्रेम से ।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भुलाकर,
दोनों भाई पूर्ण हो रहे परम प्रेम से,
पहुँच नही ब्रह्मा, विष्णु, महेश की,
उस प्रेम को कवि कह सकता कैसे ।

उनके मिलने का यह ढंग देखकर,
भयभीत हो उठे सभी देवता,
जब देवगुरू ने समझाया उन्हें,
फूल बरसाकर करने लगे प्रशंसा ।

फिर श्रीराम शत्रुघ्न और केवट से मिले,
बड़े प्रेम से भरतजी मिले लक्ष्मण से,
तब लक्ष्मणजी छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले,
फिर प्रेम से मिले वे निषादराज से ।

भरत-शत्रुघ्न ने तब उपस्थित मुनियों से,
प्रणाम कर मन चाहा आशीर्वाद पाया,
तब सीताजी के चरण स्पर्श किये,
सीताजी ने उन्हें अपने पास बैठाया ।

स्नेह मग्न, सुध-बुध नही देह की,
यों सीताजी को देख निश्चित हुए भरत,
उन्हे सब तरह अपने अनुकूल देख,
अपने कल्पित भय से मुक्त हुए भरत ।

सबके मन संकल्प-विकल्प रहित हो गये,
कोई कुछ न कहता, न पूछता,
तब निषादराज विनती कर कहने लगे,
हे नाथ ! सुनिये मैं जो कुछ कहता ।

मुनिनाथ वसिष्ठजी और सब माताएं,
सारा समाज आया है भरतजी के साथ,
गुरूजी के आगमन की बात सुनते ही,
उनके पास चल दिये प्रभु वेग के साथ ।

लक्ष्मणसहित दण्डवत किया चरणों में, राम ने,
मुनि ने दौड़कर लगा लिया उन्हें गले से,
तब पुलकित हो केवट ने किया प्रणाम,
रामसखा जान मुनि ने लगाया हृदय से ।

सबको मिलने के लिये व्याकुल जान,
सबसे उनकी रूचि अनुसार मिले श्रीराम,
सबका संताप मिटा दिया पल भर में,
एक ही साथ सबसे मिले श्रीराम ।

सब माताओं को दु:खी देख कर,
सबसे पहले मिले वे माता कैकेयी से,
काल, कर्म, विधाता को दोष दे,
सांत्वना दी उन्हें हर तरह से ।

फिर वे सब माताओं से मिले,
समझा-बुझाकर संतोष कराया उन्हें,
कहा, जगत ईश्वर के अधीन है,
क्यों व्यर्थ हम किसी को दोष दें ।

फिर गुरूमाता और ब्राह्मण स्त्रियों के,
चरणों की वन्दना की श्रीराम ने,
गंगा-गौरी सम सम्मान किया उनका,
प्रसन्न हो आशीर्वचन कहे उन्होनें ।

फिर दोनों भाई चरण पकड़कर,
माता सुमित्रा की गोद में जा चिपटे,
हृदय से लगाकर बड़े स्नेह से,
प्रेमाश्रुओं से नहला दिया उन्हें ।

फिर सबको आश्रम ले चले वो,
सीताजी मुनि वसिष्ठ के चरणों लगी,
मन चाहा आशीर्वाद पाकर उनसे वे,
मुनिपत्नियों सहित अरूंधतीजी से मिलीं ।

जब सुकुमारी सीताजी ने सासुओं को देखा,
सहम कर आंखे बन्द कर ली उन्होनें,
राजहंसिनियां वधिक के हाथ पड़ गयी हो,
उनकी बुरी दशा देख ऐसा लगा उन्हें ।

हृदय से धीरज धर कर तब सीताजी,
सब सासुओं से पैरों लगकर मिलीं,
सब सासुऐं आशीर्वाद दे रही प्रेम से,
कि तुम सदा सुहाग से रहो भरी ।

मुनि वसिष्ठजी ने समझाया सबको,
और राजा के स्वर्गगमन की बात कही,
अपने प्रति पिता का अत्यंत स्नेह जान,
बहुत ही व्याकुल हो गये रामजी ।

सब दु:ख से आक्रान्त हो उठे,
मुनि वसिष्ठजी ने सबको समझाया,
तब समाजसहित स्नान किया श्रीराम ने,
और किसी ने कुछ पिया न खाया ।

दूसरे दिन मुनि वसिष्ठजी के कहे अनुसार,
क्रिया विधि सम्पन्न कर प्रभु शुद्ध हुए,
जिनका नाम पाप-समूह भस्म कर डालता,
वे नित्य-शुद्ध-बुद्ध श्रीराम शुद्ध हुए ।

तब दो दिन बाद मुनि वसिष्ठ से,
बहुत ही कोमलता से श्रीराम ने कहा,
हे नाथ ! यहां सब दुखी हो रहे हैं,
मुझे एक-एक पल युग समान लग रहा ।

आप यहां, राजा अमरावती में हैं,
सूनी पड़ी है अयोध्यापुरी सारी,
मेरी ढ़िठाई क्षमा कीजिये, हे गोसाईं !
वही कीजिये जो बात आपने विचारी ।

वसिष्ठजी ने कहा, हे राम ! तुम हो,
धर्म के सेतु और दया के धाम,
लोग दु:खी हैं, तुम्हारे दर्शन कर,
दो दिन उन्हें और करने दो विश्राम ।

श्रीराम के वचनों से भयभीत समाज,
कुछ शान्त हुआ सुन वसिष्ठजी के वचन,
पवित्र पयस्विनी में स्नान कर वो,
श्रीराम के नेत्र भर करते हैं दर्शन ।

कामदगिरि और वन देखते हैं वो,
सब दु:खों का अभाव है वहां,
अमृत सा जल बरसाते झरने,
ताप-हरनी त्रिविध हवा बहती वहां ।

असंख्य जाति के वृक्ष, लताएं, तृण,
विविध प्रकार के फल, फूल, पत्ते,
सुन्दर शिलाएं, शीतल सघन छाया,
वन की शोभा कही जा सकती कैसे ।

कमल खिल रहे तालाबों में,
पशु-पक्षी वन में कर रहे विहार,
कोल, किरात, भील, चीजें ला लाकर,
खिलाते हैं सबको कर-कर मनुहार ।

कहते हैं वे श्रीराम का प्रभाव है,
वरना हमारी भला क्या है औकात,
जड़ जीव, जीवों की हिंसा करने वाले,
कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजात ।

जब से प्रभु के चरणकमल देखे हमने,
हमारे दु:सह दु:ख और दोष मिट गये,
वनवासियों के वचन सुनकर अयोध्यावासी,
उन्हें सराहने लगे, प्रेम से भर गये ।

उन कोल-भीलों की वाणी सुनकर,
वे अपने प्रेम का करते हैं निरादर,
तुलसीदास कहते हैं, यह श्रीराम की कृपा है,
कि लौहा तैर गया नौका को लेकर ।

सब आनन्दित हो विचरते वन में,
दिन बीते जा रहे पल के समान,
जितनी सासुएं, उतने ही वेष बनाकर,
सीताजी सबकी सेवा करतीं एक समान ।

श्रीराम के सिवा कोई भेद न जाना,
सब मायाएं हैं सीताजी की माया में,
सीताजी ने अपनी सेवा से कर लिया,
सब सासुओं को अपने वश में ।

सीता सहित दोनों भाइयों का सरल स्वभाव देख,
कुटिल रानी कैकेयी भर पेट पछतायी,
कर रहीं पृथ्वी और यमराज से याचना,
पर धरती फटी, न मौत ही आयी ।

सब सोच रहे श्रीराम अयोध्या जाएँगे या नही,
भरतजी को न नींद आती, न भूख लगती,
सोचते हैं किस प्रकार हो श्रीराम का राज्याभिषेक,
कोई भी विधि उनको इसकी नही सूझती ।

गुरूजी की आज्ञा मानकर तो श्रीराम,
अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगें,
परंतु श्रीरामजी की रूचि जानकर ही,
मुनि वसिष्ठजी उन्हें चलने को कहेंगें ।

माता कौसल्या के कहने से भी,
श्रीरघुनाथ लौट सकते हैं अयोध्या को,
पर श्रीरामजी को जन्म देने वाली माता,
क्या कभी ऐसा हठ करेंगी वो ।

मुझ सेवक की तो बात ही क्या,
उस पर भी समय खराब, प्रतिकूल विधाता,
घोर कुकर्म होगा यदि मैं हठ करूँ,
क्योंकि कैलास से भी भारी, धर्म सेवक का ।

एक भी युक्ति उनके मन में न ठहरी,
सोचते-सोचते ही बीत गयी रात,
प्रात: होते ही गुरूजी ने बुलावा भेजा,
सभी लोग भी आ बैठे साथ ।

समयोचित वचन बोले मुनि वसिष्ठजी,
धर्मधुरन्धर और स्वतंत्र भगवान हैं श्रीराम,
सत्यप्रतिज्ञ, वेद की मर्यादा के रक्षक,
अवतरित हुए, जगत का करने कल्याण ।

आज्ञाकारी गुरू, माता और पिता के,
दुष्टों के संहारक, देवों के हितकारी,
नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को,
तत्त्व से जानने वाले, परम उपकारी ।

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य,
दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल,
समस्त प्रभुता, वेद-शास्त्रों में वर्णित सिद्धियां,
सब उनकी आज्ञा में रहते सब काल ।

अतएव हम सबका हित होगा,
उनकी आज्ञा और रूख रखने में,
अब सब मिल वही उपाय करो,
सब की सम्मति हो जिस में ।

उनका राज्याभिषेक सबके लिये सुखदायी,
यही एक मार्ग मंगल और आनन्द का,
अब किस तरह वे अयोध्या चलें,
विचारकर कहो, क्या उपया हो इसका ।

किसी को कोई उत्तर नही सूझा,
तब भरतजी बोले हाथ जोड़कर,
हे नाथ ! आप की महिमा अपार है,
विधाता भी चलते हैं आपसे पूछकर ।

अब आप मुझसे पूछते हैं उपाय,
यह सब अभाग्य ही है मेरा,
भरतजी के प्रेममय वचनों को सुनकर,
अतिशय प्रेम मुनि के हृदय में उमड़ा ।

वे बोले, हे तात ! यह बात सत्य है,
पर है सब यह श्रीरामजी की कृपा से,
सिद्धि नही पाते रामविमुख स्वप्न में भी,
जो भी मिलता, मिलता उनकी कृपा से ।

हे तात ! में सकुचाता कहने में,
बंद्धिमानों ने कहा है विचारकर,
छोड़ दिया करते हैं वे आधे को,
अपने स्र्वस्व को जाता हुआ देखकर ।

सो अब तुम दोनों, भरत-शत्रुघ्न,
राम-लक्ष्मण की जगह रहो वन में,
हर्षित हो उठे दोनों भाई यह सुन,
परमानंद छा गया उनके मन में ।

हानि कम, लाभ अधिक दिखा लोगों को,
पर माताओं को दु:ख-सुख था समान,
दो पुत्रों का वियोग तो सहना ही होगा,
चाहे भरत-शत्रुघ्न या लक्ष्मण और राम ।

भरतजी बोले, मुनि का कहा करने से,
सब जीवों को तृप्त करने का फल होगा,
चौदह वर्ष क्या, जन्म-भर रहूंगा वन में,
मेरे लिये इससे बढ़कर सुख क्या होगा ।

भरतजी बोले, ऐसा ही कीजिये, हे नाथ !
अपने कहे अनुसार ही व्यवस्था कीजिये,
भरतजी के वचन सुन, उनका प्रेम देखकर,
सब लागे मुनि सहित विदेह हो गये ।

भरतजी की महान महिमा समुद्र सी है,
मुनि की बुद्धि तट पर खड़ी अबला सी,
खोज रही उस पार जाने के उपाय,
पर समुद्र पार करने का उपाय नही पाती ।

तब मुनि गये श्रीराम के पास,
बोले, हे सुजान ! हे सर्वज्ञ ! सुनिये,
जिसमें पुरवासी, माताओं, भरत का हित हो,
वही उपाय कृपा कर हमसे कहिये ।

आर्त जन विचारकर कहते न कभी,
अपना ही दॉव सूझता है जुआरी को,
मुनि की बात सुन कहने लगे श्रीराम,
हे नाथ ! कहिये आपकी आज्ञा हो जो ।

आपका रूख रखने और आज्ञा पालन में,
सब तरह से हित है हम सबका,
आप जिसको जैसा कहेंगे, सब तरह से,
पालन करेगा सब तरह हुक्म आपका ।

हे राम ! सच कहा, कहने लगे मुनि,
पर भरत के प्रेम ने निर्विचार कर दिया,
भरत की भक्ति के वश हो गयी बुद्धि,
शुभ ही होगा, भरत का जो कहा किया ।

सुन लीजिये आदरपूर्वक भरत की विनती,
कीजिये उस पर भली भांति विचार,
नीति और वेदों का निचोड़ निकाल,
कीजिये उन सबकी सम्मति के अनुसार ।

भरतजी पर गुरूजी का स्नेह देखकर,
श्रीराम के हृदय को विशेष आनन्द हुआ,
बोले, आपकी सौगंध और पिताजी की दुहाई,
भरत के समान कोई भाई न हुआ ।

अनुरागी होते जो गुरू-चरण-कमलों के,
लोक और वेद में होते हैं बड़भागी,
और फिर जिस पर ऐसा स्नेह गुरू का,
उस भरत की कौन कर सकता बराबरी ।

छोटे भाई के मुंह पर बड़ाई करने में,
हे नाथ ! सकुचाती है मेरी बुद्धि,
भरत जो कहें, भलाई है उसी में,
यह कह कर श्रीराम ने साध ली चुप्पी ।

तब मुनि ने भरत से कहा, हे तात !
सब संकोच त्याग, कहो बात हृदय की,
गुरू और स्वामी को अपने अनुकूल जान,
सारा बोझ स्वयं पर जान, बोले भरतजी ।

मुनिनाथ ने ही निबाह दिया मेरा कहना,
अब कहूं क्या मैं और अधिक इससे,
अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ,
अपराधी पर भी कभी क्रोध नही करते ।

मुझ पर तो उनका विशेष स्नेह है,
खेल में भी कभी रीस की न उन्होंने,
मेरे मन को तोड़ा न कभी भी,
खेल में भी कभी मुझे दिया न हारने ।

मैने भी प्रेम और संकोचवश,
कभी मुंह नही खोला उनके सामने,
प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक,
तृप्त न हुए उनके दर्शन से ।

पर विधाता मेरा दुलार सह न सका,
माता के बहाने उसने डाल दिया अन्तर,
यह भी कहना आज शोभा नही देता,
कौन साधु हुआ खुद को पवित्र समझकर ।

माता नीच और मैं सदाचारी साधु,
यह विचार ही करोड़ों दुराचारों समान,
माता को कटु वचन कह व्यर्थ जलाया,
अपने पापों का विचारे बिना परिणाम ।

मैं अपना हृदय खोज कर हार गया,
अपनी भलाई का कोई साधन नही सूझता,
बस गुरू और स्वामी की ओर देख,
मुझे परिणाम कुछ अच्छा जान पड़ता ।

साधु, गुरू और स्वामी के समक्ष,
कहता हूँ सत्य भाव से इस तीर्थस्थान में,
यह प्रेम है या प्रपंच, झूठ या सच,
इसे मुनि वसिष्ठ व सर्वज्ञ श्रीराम जानते ।

व्याकुल माताएं देखी नही जाती,
पुरवासी जल रहे दु:सह ताप से,
इन सब अनर्थों का मूल मैं हूँ,
सब दुख सहा मैने यह जान के ।

मुनिवेष में स्वामी वन चले गये,
यह सुन कर भी मैं जीता रह गया,
फिर निषादराज का प्रेम देखकर भी,
यह वज्र सा हृदय फट नही गया ।

अब यहां आकर देख लिया सब,
यह जड़ जीव जीता रह सभी सहावेगा,
जिस कैकेयी ने श्रीराम को शत्रु जाना,
उसके पुत्र को छोड़ किसे यह दुख सहावेगा ।

प्रेम, विनय और नीति में सनी,
यह वाणी सुन सब विह्वल हो गये,
तब मुनि ने समाधान किया भरत का,
फिर श्रीराम भरत को समझा कहने लगे ।

हे तात ! तुम व्यर्थ ही करते हो ग्लानि,
ईश्वर के अधीन है जीव की गति,
मेरे मत में तीनों कालों और लोकों में,
कोई पुण्यात्मा पुरुष तुम से बढ़कर नही ।

तुम पर कुटिलता के विचार मात्र से,
यह लोक और परलोक भी नष्ट हो जाता,
माता कैकेयी को वे ही दोष देते हैं,
सतसंग न किया जिन्होनें गुरू और संतों का ।

हे भरत ! तुम्हारे नाम के स्मरण मात्र से,
मिट जायेंगें सब पाप और अमंगल,
यह पृथ्वी तुम्हारे रक्खी रह रही है,
व्यर्थ ही अपने मन को करो न विकल ।

वैर और प्रेम छिपाये नही छिपते,
पशु-पक्षी भी पहचान लेते इनको,
फिर मनुष्य शरीर तो भण्डार है गुणों का,
मैं जानता हूँ तुम्हारे अतिशय प्रेम को ।

पर क्या करूँ, जी में दुविधा है बड़ी,
राजा ने मुझे त्याग सत्य को रक्खा,
प्रेम-प्रण के लिये छोड़ दिया तन,
उनका वचन मेटते लगता नही अच्छा ।

पर उससे भी बढ़कर संकोच है तुम्हारा,
उस पर भी मुझे आज्ञा दी है गुरू ने,
इसलिये अब तुम जो कुछ कहो,
अवश्य ही वही करना चाहता हूँ मैं ।

तुम प्रसन्न मन और संकोच त्याग कर,
जो कुछ कहो, मैं वही करूँ आज,
सत्यप्रतिज्ञ रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम के वचन सुन,
अति प्रसन्न हो उठा सारा समाज ।

देवगणों सहित इन्द्र भयभीत हो गये,
अब बिगड़ना ही चाहता बना-बनाया काम,
कुछ उपाय करते नही बनता उनसे,
मन ही मन ले रहे प्रभु का नाम ।

सोच रहे प्रभु भक्ति के वश रहते,
सो सब कुछ है भरतजी के हाथ,
इसलिये निर्णय लिया सब देवों ने,
भरतजी की शरण लें प्रेम के साथ ।

उनका मत सुन देवगुरू बृहस्पतिजी ने कहा,
अच्छा विचार किया, बड़े भाग्य हैं तुम्हारे,
श्रीराम के सेवक की सेवा अमित फलदाई,
भरतजी की भक्ति मन में आयी है तुम्हारे ।

हे देवराज ! भरतजी का प्रभाव तो देखो,
पूर्णरूप से वश में हैं प्रभु उनके,
भरतजी को श्रीरामजी की परछाई जान,
सब डर निकाल दो मन से अपने ।

देवताओं की सम्मति और सोच सुनकर,
संकोच हुआ अंतर्यामी प्रभु श्रीराम को,
भरतजी सब बोझा अपने सिर जान,
हृदय में अनुमान लगाने लगे अनेकों ।

सब विचार, निर्णय किया यह अन्त में,
प्रभु की आज्ञा में ही है अपना कल्याण,
अपना प्रण छोड़ उन्होनें मेरा प्रण रक्खा,
कौन उन सम कृपालु भक्तवत्सल भगवान ।

बोले, मन की कल्पित पीड़ा मिट गयी,
कोई आधार नही था मेरी सोच का,
मुझ शरणागत की रक्षा कर आपने,
हे शरणागत वत्सल ! अपना वचन निबाहा ।

प्रतिकूल हो जाये यदि सारा जगत भी,
पर आपकी कृपा हो, फिर क्या कहना,
कल्पवृक्ष के समान है आपका स्वभाव,
मांगते ही मनचाहा फल प्रदान करना ।

गुरू और स्वामी का स्नेह देखकर,
क्षोभ मिट गया, कोई संदेह न रहा,
हे दयानिधि ! अब वही कीजिये जिससे,
प्रभु के चित्त में रहे न क्षोभ बचा ।

स्वामी को संकोच में डाल, अपना भला चाहे,
निश्चित ही नीच बुद्धि है उस सेवक की,
सेवक का हित, सुख और लोभ छोड़कर,
सदा सेवा करते रहना अपने स्वामी की ।

आपके लौटने में स्वार्थ है सभी का,
पर आपकी आज्ञापालन में सर्वविधि कल्याण,
यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है,
समस्त पुण्यों का फल, सुख का विधान ।

हे देव ! मेरी एक विनती सुनकर,
फिर जैसा उचित हो वैसा कीजिये,
सजाकर लायी गयी है राजतिलक की सामग्री,
प्रभु का मन माने तो सफल कीजिये ।

शत्रुघ्न सहित मुझे वन भेजकर,
अयोध्या लौट सबको सनाथ कीजिये,
या लक्ष्मण और शत्रुघ्न को लौटाकर,
मुझे अपने साथ ले लीजिये ।

या हम तीनों भाई वन चले जायें,
आप सीताजी सहित लौट जाइये अयोध्या,
हे दयासागर ! अब आप वही कीजिये,
जिसमें प्रसन्न हो मन प्रभु का ।

आपने सब भार रख दिया मुझ पर,
पर मुझमें नीति, न विचार धर्म का,
कह रहा मैं अपने स्वार्थ के लिये,
आर्त्त के चित्त में विवेक नही रहता ।

स्वामी की आज्ञा सुन जो उत्तर दे,
लाज लजाती देख उस सेवक को,
मैं अवगुणों का ऐसा ही अथाह समुद्र हूँ,
पर आप साधु कह सराहते मुझ को ।

हे कृपालु ! अब वही मत भाता है मुझे,
मन संकोच न पावे जिससे स्वामी का,
प्रभु के चरणों की शपथ, सत्य कहता हूँ,
एक यही उपाय है, जग के कल्याण का ।

प्रसन्न मन से संकोच त्याग कर,
प्रभु आप जिसे जो आज्ञा देंगे,
पालन करेंगे सिर चढ़ाकर सब लोग,
सभी उलझनें और उपद्रव मिटेंगे ।

साधु-साधु कह सराहने लगे देवता,
अयोध्यावासी असमजंस के वश हो गये,
तपस्वी-बनवासी हर्ष मना रहे मन में,
पर संकोची श्रीरघुनाथजी चुप ही रह गये ।

प्रभु की यह स्थिति देखकर,
सारी सभा पड़ गयी सोच में,
उसी समय जनकजी के दूत आये,
मुनि ने बुलवा लिया तुरंत उन्हें ।

मुनियों का सा वेष देख राम का,
दूतों के मन में दुख हुआ अपार,
मुनि वसिष्ठजी ने दूतों से बात पूछी,
पूछा राजा जनक का कुशल-समाचार ।

मुनि का कुशल-प्रश्न सुन सकुचाकर,
पृथ्वी पर मस्तक नवाकर वे बोले,
हे स्वामी ! आपका आदर के साथ पूछना,
कुशल का कारण हो गया है ये ।

नही तो हे नाथ ! कुशल-क्षेम सब,
चली गयी सब कोसलनाथ दशरथजी के साथ,
यों तो सारा जगत अनाथ हो गया,
पर मिथिला और अवध विशेषरूप से अनाथ ।

अयोध्यानाथ दशरथजी का परलोकगमन सुनकर,
जनकपुरवासी शोकवश हो गये बावले से,
तब जिन्होनें जनकजी को शोकमग्न देखा,
वे विदेह हैं, सोच सके न वे ऐसे ।

भरतजी का राज्य, श्रीरामजी को बनवास सुनकर,
बड़ा दं:ख हुआ मिथिलेश्वर के हृदय में,
सब सोच-विचार, सभासदों से सलाह कर,
चार गुप्तचर भेजे जनकजी ने अवध में ।

कहा अयोध्या जा, श्रीरामजी के प्रति,
भरतजी का भाव पता लगाकर आओ,
किसी को तुम्हारा पता लगने न पावे,
शीघ्रता से यह कार्य निपटा कर आओ ।

वहां का सब हाल जानकर दूतों ने,
जनकजी को आकर सब हाल बतलाया,
उसे सुनकर गुरू, राजा, मन्त्री सभी का,
हृदय स्नेह से अत्यंत व्याकुल हो आया ।

जनकजी ने भरतजी की बड़ाई कर,
योद्धाओं और साहनियों को बुलवाया,
घर, नगर, देश में रक्षक रखकर,
बहुत सी संवारियों को सजवाया ।

चल पड़े उसी समय मुहूर्त साधकर,
कहीं विश्राम न किया मार्ग में,
जब सब लोग यमुनाजी उतरने लगे,
खबर लेने भेज दिया उन्होनें हमें ।

अपनी बात कह, सिर नवाया दूतों ने,
भीलों के साथ मुनि ने विदा किया उन्हें,
सब हर्षित हुए जनकजी का आगमन सुन,
पर संकोच हो आया श्रीराम के मन में ।

कैकेयी मन-ही-मन गली जा रहीं,
किस से कहे और किस को दोष दें,
नर-नारी यह सोचकर प्रसन्न हो रहे,
इस बहाने कुछ दिन और रह सकेंगे वे ।

दूसरे दिन सब स्नान-ध्यान कर,
मना रहे सब देवी-देवताओं को,
श्रीरामजी राजा हों, रानी हों जानकीजी,
और युवराज पद मिले श्रीभरत को ।

गुरू, समाज और भाइयों समेत,
अवधपुरी में श्रीरामजी का राज्य हो,
और उनका राज्य रहते-रहते ही,
अवधपुरी में हमारा मरण हो ।

उनकी प्रेममयी वाणी सुन ज्ञानी मुनि भी,
अपना ज्ञान और वैराग्य कुछ नही समझते,
करते हैं प्रेमपूर्वक सब प्रभु का दर्शन,
प्रभु भी आदरसहित सबको सम्मान देते ।

शील और संकोच के समुद्र श्रीराम,
प्रेम की रीत का करते हैं पालन,
सब सराहते हैं भाग्य अपना-अपना,
श्रीराम मानते हैं उन्हें अपना जन ।

तभी मिथिलापति जनकजी का आना सुन,
सबको साथ ले श्रीराम चले वेग से,
उधर पर्वतराज कामदनाथ को देख जनकजी,
पैदल ही चल दिये उतर के रथ से ।

श्रीराम के दर्शन और उत्साह के कारण,
थकावट का क्लेश हुआ न किसी को,
मन तो है श्रीराम-जानकीजी के संग,
मन के बिना तन की सुध किसे हो ।

जनकजी के निकट आने पर सब,
प्रेम से भर, आपस में मिलने लगे,
सबने प्रणाम किया मुनियों को,
फिर श्रीराम जनकजी को लिवा ले चले ।

श्रीरामजी का आश्रम समुद्र है,
परिपूर्ण शान्तरसरूपी पवित्र जल से,
जनकजी का समाज करूण रस की नदी,
लिये जा रहे हैं श्रीरामजी जिसे ।

यह करूणा की नदी डूबाती जाती है,
ज्ञान और वैराग्यरूपी किनारों को,
शोक भरे वचन नद और नाले हैं,
मिलते हैं जा इस नदी में जो ।

सोच की लंबी-लंबी सांसे ही,
वायु के झकोरों से उठनेवाली तरंगे,
तोड़ रही जो अपने वेग से,
धैर्यरूपी वृक्ष किनारे पर उगे ।

भयानक विषाद तेज धारा नदी की,
भय और भ्रम असंख्य चक्र और भंवर,
विद्वान मल्लाह हैं, विद्या बड़ी नाव,
पर जानते नही उसे खेने की अटकल ।

कोल किरात ही बेचारे यात्री हैं,
जो नदी देख, थक गये हारकर,
अकुला उठा वह समुद्र जब, वही नदी,
मिली उस आश्रमरूपी समुद्र में जाकर ।

शोक से व्याकुल हो गये दोनों राजसमाज,
ज्ञान, धीरज न लाज रही किसी को,
दशरथजी के गुण और शील को सराहते,
शोक समुद्र में डूब सब रहे हैं रो ।

तुलसीदास कहते हैं, कोई नही है ऐसा,
जो जनकजी की दशा देख प्रेममग्न न हो,
तब मुनियों ने समझा-बुझा किया शांत,
और धैर्य रखने को कहा जनकजी को ।

जिन राजा जनक का ज्ञानरूपी सूर्य,
भव-रूपी रात्रि का नाश कर देता,
क्या उन राजा जनकजी के समीप,
कभी आ सकते हैं मोह और ममता ।

यह तो महिमा है श्रीसीतारामजी के प्रेम की,
नही इसका कारण लौकिक मोह-ममता,
जो लौकिक मोह-ममता पार कर चुके,
उन पर यह प्रभाव दिखायें बिना न रहता ।

विषयी, साधक और ज्ञानवान सिद्ध पुरुष,
बताये ये तीन प्रकार के जीव वेदों ने,
इनमें जिनका चित्त प्रभु-प्रेम से सरस रहता,
उसी का बड़ा आदर होता साधु-सभा में ।

शोभाहीन ज्ञान प्रभु प्रेम बिना,
जैसे जहाज बिना कर्णधार के,
इस प्रकार विदेहराज को वसिष्ठजी ने,
समझाया-बुझाया हर प्रकार से ।

शोक से पूर्ण स्त्री-पुरुषों ने,
बिता दिया वह दिन बिना पानी के,
प्रियजन और कुटुम्बियों की बात ही क्या,
पशु-पक्षी भी बिना खाये-पिये रहे ।

अगले दिन स्नानादि के बाद,
सब वटवृक्ष के नीचे आ बैठे,
धर्म, नीति, वैराग्य तथा विवेकयुक्त,
उपदेश दिये उपस्थित मुनियों ने ।

तब श्रीरघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा,
हे नाथ ! सब लोग निराहार हैं कल से,
जनकजी ने कहा, अन्नाहार उचित न होगा,
तो बनवासी फल-फूल ले आये बहुत से ।

श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से सब पर्वत,
मनचाहा देने वाले, दुख हरने वाले हो गये,
तालाब, नदी और वन के सब भाग,
सब प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण हो गये ।

फल-फूलों से भर गये लता और वृक्ष,
पशु, पक्षी, भौंरें गा रहे मधुर स्वर से,
चलने लगी शीतल, मन्द सुगन्धित हवा,
सारा वन भर गया अतुलित आनन्द से ।

वन की मनोहरता वर्णन से परे,
मानों पृथ्वी जनकजी की पहुनाई कर रही,
जनकपुरवासी प्रेम विभोर हो रहे,
इस प्रकार चार दिन बीत गये यूँ ही ।

श्रीसीतारामजी के साथ वन में रहना,
करोड़ों देवलोकों से ज्यादा सुखदायक,
उन्हें छोड़ जिन्हें लगे घर अच्छा,
विधाता नही है उनका सहायक ।

जब दैव सबके अनुकूल हो,
तभी श्रीराम संग रहना हो सकता,
मन्दाकिनीजी का तीनों समय स्नान,
मंगल का मूल, दर्शन श्रीराम का ।

चौदह वर्ष पल से बीत जायेंगे,
पर हमारे ऐसे भाग्य कहाँ,
सब कह रहे, हम इस योग्य नही,
हम वहीं रहें, रहें श्रीराम जहां ।

उसी समय सुनयनाजी की भेजी दासियां,
उचित अवसर देखकर वहां आयीं,
कौसल्या आदि रानियो से मिलने,
जनकराज के रनिवास को पहुँचा आयीं ।

कौसल्याजी ने सादर सम्मान किया,
और समयोचित आसन दिये उन्हें लाकर,
कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं,
उनका परस्पर शील और स्नेह देखकर ।

शरीर पुलकित और शिथिल हैं,
शोक और प्रेम के आसूं नेत्रों में,
सभी श्रीसीतारामजी के प्रेम की मूर्ति सी,
मानों करूणा सशरीर उनके वेष में ।

सीताजी की माता सुनयनाजी ने कहा,
बुद्धि बड़ी टेढ़ी है विधाता की,
जो कोमल और निर्दोष लोगों पर,
ढ़ा रहा है विपत्ति पर विपत्ति ऐसी ।

अमृत केवल सुनने में आता है,
विष जहां-तहां प्रत्यक्ष देखे जाते,
जहां-तहां कौए, उल्लू और बगुले हैं,
हंस तो एक मानसरोवर में ही पाते ।

यह सुन सुमित्राजी शोक सहित बोलीं,
बड़ी विपरीत और विचित्र विधाता की चाल,
सृष्टि को बनाता, पालता, बिगाड़ता,
बालकों के खेल सा ही है उसका हाल ।

कौसल्याजी ने कहा किसी का दोष नही,
दुख-सुख, हानि-लाभ, सब कर्म अधीन,
शुभ और अशुभ जो भी फल मिलता,
विधाता ही जानता, उसे जानना है कठिन ।

विधाता का प्रपंच ऐसा अनादि और अचल,
उसकी आज्ञा रहती सभी के सिर पर,
महाराज के मरने की जो चिन्ता हम करतीं,
करतीं हैं अपना ही हित विचार कर ।

फिर वे बोली राम, लक्ष्मण, सीता के,
वन गमन का परिणाम अच्छा ही होगा,
मुझे इनकी इतनी चिन्ता नही मन में,
जितनी है मुझे प्रिय भरत की चिन्ता ।

ईश्वर का अनुग्रह और आपका आशीर्वाद है,
मेरे चारों पुत्र और वधुऐं हैं गंगा से,
मैने कभी श्रीराम की सौगंध नही की,
उनकी शपथ आज कहती हूँ सत्य भाव से ।

भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन,
भाईपन, भक्ति और भरोसे का वर्णन,
सरस्वतीजी की बुद्धि से भी परे है,
जानती हूँ भरत को सदा से कुलभूषण ।

कसौटी पर कसे जाने पर सोना,
और रत्न परखा जाता जौहरी मिलने पर,
वैसे ही पुरुष की परीक्षा होती है,
समय पड़ने पर उसका चरित्र देखकर ।

किंतु अनुचित है मेरा आज ऐसा कहना भी,
शोक और स्नेह में हो जाता विवेक कम,
लोग कहेंगे स्नेहवश ही बड़ाई कर रही हूँ,
पर सच ही कौन हो सकता भरत सम ।

फिर कौसल्याजी ने कहा धीरज धर,
हे सुनयनाजी ! कौन आपको उपदेश दे सकता,
फिर भी राजा को समझाकर कहिये,
लक्ष्मण घर रहें, भरत दें साथ राम का ।

मुझे भरत का अत्यंत सोच है,
गूढ़ प्रेम है भरत के मन में,
उनके प्राणों को भय न हो जाय,
यदि भरत जो रूक जायें घर में ।

कौसल्याजी की वाणी को सुनकर,
सारा रनिवास निस्तब्ध हो गया,
तब सुमित्राजी ने कहा, हे देवि !
दो घड़ी रात का समय हो गया ।

यह सुन प्रेमपूर्वक उठीं कौसल्याजी,
और प्रेमसहित बोलीं सदभाव से,
हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं,
या मिथिलेश्वर जनकजी सहायक हैं हमारे ।

उनका प्रेम देख और विनम्र वचन सुन,
सुनयनाजी ने पकड़ लिये चरण उनके,
हे देवि ! आपको ऐसी नम्रता उचित ही है,
महाराज दशरथ पति, श्रीराम हैं पुत्र आपके ।

अपने नीच जनों का भी आदर करते हैं,
प्रभु रखते हैं उनको हृदय से लगाकर,
अग्नि धुएं को और पर्वत तृण को,
जैसे धारण करते हैं अपने सिर पर ।

कर्म, मन और वाणी से,
हमारे राजा तो सेवक हैं आपके,
सदा सहायक तो शिव-पार्वतीजी हैं,
कौन समर्थ सहायक होने में आपके ।

वन जा कर, देवताओं का कार्य साधकर,
श्रीरामचन्द्रजी अचल राज्य करेंगे अवध का,
सब लोक श्रीराम के बल से सुखी होंगे,
झूठा नही हो सकता, यह वचन याज्ञवल्क्यजी का।

फिर प्रेम से पैरों पड़, आज्ञा ले,
सीताजी को साथ ले सुनयनाजी चलीं,
जानकीजी अपने प्यारे कुटुम्बियों से,
जैसे जो जिस योग्य था उससे वैसे मिलीं ।

उधर जनकजी गुरू वसिष्ठजी की आज्ञा पा,
डेरे में आकर सीताजी से मिले,
अपने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी,
जानकीजी को उन्होनें लगा लिया गले ।

माता-पिता के प्रेम में विकल हो,
संभाल न सकीं सीताजी स्वयं को,
उधर सीताजी को तपस्विनी वेष में देख,
विशेष प्रेम और संतोष हुआ विदेहराज को ।

बोले, दोनों कुल पवित्र कर दिये तूने,
जगत उज्जवल हो रहा तेरे यश से,
पिता ने तो स्नेह से सच्ची वाणी कही,
पर सीताजी मानों समा गयी संकोच में ।

सीताजी कुछ कहती नहीं हैं,
पर सकुचा रही हैं अपने मन में,
कि सासुओं की सेवा छोड़कर,
अच्छा नही मेरा यहां रहने में ।

उनके मन की बात समझकर,
विदा किया राजा-रानी ने उन्हें,
फिर समय पाकर भरतजी की दशा का,
राजा से वर्णन किया रानी ने ।

भरत का ऐसा सुन्दर व्यवहार सुनकर,
उनके यश की सराहना करने लगे जनक,
भरतजी का धर्म, शील, गुण और कीर्ति,
भला कौन कहने में हो सकता समर्थ ।

असीम गुण सम्पन्न और उपमा रहित,
भरतजी के समान, बस हैं भरत ही,
उनकी अपरिमित महिमा बस श्रीराम जानते,
पर वे भी वर्णन कर सकते नही ।

यूँ भरतजी का प्रभाव वर्णन कर,
राजा ने कहा, भला है इसमें सबका,
कि लक्ष्मणजी वापस अवध लौट जायें,
और भरत साथ दें श्रीराम का ।

श्रीरामचरणों में भरतजी का प्रेम,
परे है बुद्धि-विचार की सीमा से,
स्वप्न में भी उनकी आज्ञा के विरूद्ध,
भरतजी कभी जा नही सकते ।

इस प्रकार भरतजी के गुणों को कहते,
दोनों की रात बीत गयी पल में,
उधर सुबह उठ, वसिष्ठजी के पास जा,
चरणों की वन्दना कर कहा श्रीराम ने ।

हे नाथ ! भरत, अवधपुरवासी और माताएं,
सभी दु:खी और व्याकुल हैं शोक से,
राजा जनकजी को भी समाज सहित,
बहुत दिन हो गये क्लेश को सहते ।

सो हे तात ! जो उचित हो कीजिये,
आप ही के हाथ है सभी का हित,
उनकी सकुचाहट और शील-स्वभाव देख,
मुनि वसिष्ठजी हो रहे पुलकित ।

वे बोले, तुम्हारे बिना, हे राम,
सब सुख उनको हैं नरक समान,
हे तात ! तुम सब सुखों का मूल हो,
आत्मा के आत्मा, प्राणों के प्राण ।

तुम्हें छोड़ जिन्हें घर सुहाता है,
विधाता विपरीत है उन लोगों के,
श्रीराम-चरणों में जहां प्रेम नही,
वह ज्ञान समान है अज्ञान के ।

तुम्हारे बिना ही दुखी हैं सब,
जो सुखी हैं, हैं सुखी तुम्हीं से,
जानते हो तुम सभी के जी की,
आपकी आज्ञा सिर पर है सभी के ।

इतना कह मुनि गये जनकजी के पास,
जाकर श्रीराम के सुन्दर वचन सुनाये,
फिर कहा, हे महाराज ! अब वही कीजिये,
जिससे दोनों समाज कुछ सुखी हों पाये ।

मुनि वसिष्ठजी के बचनो को सुनकर,
प्रेममग्न हो, जनकजी करने लगे विचार,
हम यहां आये, यह अच्छा न किया,
महाराज दशरथ सा, छोड न दिया संसार ।

तब वे भरतजी के पास चले,
आगे बढ़ स्वागत किया भरत ने उनका,
वे बोले, श्रीराम सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं,
शील और स्नेह रखनेवाले हैं सबका ।

सह रहे इसलिये सब वे संकोचवश,
सो तुम जो कहो, कहा जाये उनसे,
भरतजी बोले, आप पिता समान पूज्य हें,
और हितैषी नही कोई गुरू वसिष्ठ से ।

विश्वामित्र आदि मुनि और मन्त्रियों का समाज,
और आज के दिन ज्ञान के समुद्र आप,
मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञाकारी समझ,
जो उचित हो करना, कहिये हे तात !

फिर भी यहां आप के पूछने पर,
मौन रहने पर मलिन समझा जाऊंगा,
तथापि छोटा मुंह बड़ी बात कहता हूँ,
विधाता को प्रतिकूल जान क्षमा कीजियेगा ।

वेद, पुराण और शास्त्र कहते हैं,
कि सेवाधर्म कठिन होता है बड़ा,
स्वामिधर्म और स्वार्थ विरोधी है संसार,
बैर अंधा, प्रेम में ज्ञान नही रहता ।

पराधीन जान, मुझसे कुछ न पूछकर,
श्रीराम के रूख और रूचि के अनुसार,
सबके सम्मत और सबके लिये हितकारी,
कीजिये वही, सबके प्रेम को विचार ।

सराहना करने लगे सब भरत की,
थोड़े अक्षर पर अर्थ भरा अपार,
जैसे दपर्ण में प्रतिविम्ब पकड़ा नही जाता,
वैसे ही पकड़ा नही जाता उसका सार ।

तब जनकजी, भरत और मुनियों के साथ,
चले वहां जहां श्रीरामजी विराजमान थे,
उनकी प्रेम-विह्वल और स्नेहमयी दशा देख,
देवता घबड़ाकर मन-ही-मन हारे ।

करने लगे वे सब सरस्वतीजी से विनती,
अपनी माया से बुद्धि फेर दें भरत की,
वे बोलीं, भला चांदनी भी कहीं,
प्रचण्ड किरणवाले सूर्य को चुरा सकती ।

श्रीसीताराम का निवास है भरत के हृदय में,
भला कैसे रह सकता है वहां अंधेरा,
ऐसा कह वे ब्रह्मलोक को चली गयीं,
देवता ऐसे व्याकुल हुए ज्यों रात्रि में चकवा ।

उधर वसिष्ठजी ने सब संवाद कह सुनाया,
और बोले, हे राम ! जो तुम कहो, करें,
यह सुन हाथ जोड़कर बोले श्रीराम,
हे नाथ ! आप और जनकजी बड़े हैं मेरें ।

आपके रहते, मेरा कुछ कहना अनुचित है,
आपकी आज्ञा सबके सिर पर होगी,
उनकी बात सुन सब स्तम्भित रह गये,
तब भरतजी ने सभी की चुप्पी तोड़ी ।

सबको प्रणाम कर कहने लगे भरत,
क्षमा कीजिये, मेरे ये कठोर वचन,
फिर उन्होनें सरस्वतीजी का स्मरण किया,
जिन्होनें उनकी जिह्वा पर किया आसन ग्रहण ।

श्रीसीताजी और श्रीरामजी को स्मरण कर,
वे बोले, हे प्रभु, आप हैं मेरे सर्वस्व,
समस्त गुणों के भण्डार, सर्वज्ञ, सुजान,
न आपसा स्वामी, न मुझसा द्रोही सेवक ।

आपके और पिता के वचनों का उल्लंघन कर,
मोहवश, समाज बटोरकर मैं यहां आया,
मैने सब प्रकार से बड़ी ढ़िठाई की,
पर प्रभु ने उसे मेरी सेवा ही मनाया ।

अपनी कृपा और भलाई से,
हे नाथ ! आपने मेरा भला किया,
जिससे मेरे दूषण, भूषण हो गये,
चारों ओर मेरा यश छा गया ।

हे नाथ ! आपकी बड़ाई जग-प्रसिद्ध है,
वेद और शास्त्रों ने गाया है जिसे,
परम अधम, क्रूर, नास्तिक, दुष्टों को भी,
सम्मुख आया जान, शरण में ले लेते ।

ऐसा कौन कृपालु स्वामी जो,
सज दे सेवक का सारा समान,
उस पर अपनी कुछ करनी न समझे,
उलटे सेवक के संकोच का रखे ध्यान ।

भुजा उठाकर, प्रण रोपकर कहता हूँ,
कोई नही ऐसा दूसरा सिवा आपके,
प्रवीण हो जाते पशु-पक्षी सीखकर,
परंतु वे सिखानेवाले के अधीन रहते ।

इस प्रकार सेवकों की बिगड़ी बना,
उन्हें सम्मान दे साधु-शिरोमणि बना दिया,
और कौन हठपूर्वक पालन करेगा,
अपनी बिरदावली का भला आपके सिवा ।

शोक, स्नेह या बालक-स्वभाव से,
आपकी आज्ञा न मान, मैं चला आया,
तो भी आपने अपनी ओर देखकर,
इसमें कुछ भी अनुचित न पाया ।

आपके चरणों के दर्शन कर जाना कि,
स्वभाव से ही अनुकूल हैं आप मुझ पर,
इतनी बड़ी चूक होने पर भी,
कितना अनुराग है स्वामी का मुझ पर ।

मैं जिसके जरा भी लायक न था,
ऐसी कृपा करी है आपने मुझ पर,
मैने जो मन में आया वो कहा,
हे नाथ ! क्षमा करें, मुझे आर्त जान कर ।

सुहृद, बुद्धिमान और श्रेष्ठ मालिक से,
बहुत कहना है बड़ा अपराध,
सो हे देव ! अब मुझे आज्ञा दीजिये,
आपकी आज्ञा पालन, मेरा धर्म है नाथ ।

बहुत विवश हो गये प्रेम से भरत,
नेत्रों में जल, शरीर पुलकित हो उठा,
व्याकुल हो चरण पकड़ लिये राम के,
उनका स्नेह, समर्पण कहा नही जाता ।

हाथ पकड़कर कृपासिन्धु श्रीराम ने,
बैठा लिया अपने पास भरत को,
मन-ही-मन सब सराहने लगे,
भरतजी की भक्ति और भाईपन को ।

उधर छली और मलिन-मन इन्द्र,
सोच रहा बस अपने ही लाभ की,
किसी पर नही कहीं उसका विश्वास,
कौए के समान है रीति उसकी ।

पहले तो कुमत कर कपट बटोरा,
डाल दिया उचाट सबके सिर पर,
देवमाया से सबको मोहित कर दिया,
पर श्रीराम प्रेमवश हुआ कम ही असर ।

भय और उचाट के वश होने से,
स्थिर नही है किसी का भी मन,
क्षण में घर अच्छा लगने लगता है,
क्षण में अच्छा लगने लगता वन ।

मन की इस दुविधामयी स्थिति से,
दुखी हो रही है सारी प्रजा,
मन-ही-मन श्रीरामजी हंसने लगे,
प्रजा की देख यह उचाट दशा ।

भरत, जनकजी, मुनिजन और मंत्री,
और ज्ञानी साधु-संतों को छोड़कर,
बाकी सब पर देवमाया लग गयी,
जो जिस योग्य था, वैसी उस पर ।

सब चित्रलिखित से देख रहे,
सकुचाये हुए, सिखाये से वचन बोलते,
भरतजी की प्रीति और विनय का,
भला शब्द कैसे वर्णन कर सकते ।

भरतजी का स्मरण करने से जिसको,
सुलभ न हुआ प्रेम श्रीराम का,
उस व्यक्ति के समान भला,
अभागा कौन दुनिया में होगा ।

तब श्रीराम ने सबकी दशा देखकर,
देश, काल, समाज और अवसर विचारकर,
कहा हे भरत ! तुम्हारे समान तुम ही हो,
कौन हो सकता है तुम से बढ़कर ।

जानते हो तुम सबका कर्तव्य,
अपना और मेरा धर्म भी पता,
तुम पर पूरा भरोसा है मुझे,
फिर भी समयानुसार मैं कुछ कहता ।

हे तात ! पिताजी के बिना हमारी बात,
सम्हाल रक्खी है केवल गुरूवंश कृपा ने,
वरना हमारे सहित प्रजा, परिवार कुटुम्ब,
सब के सब बर्बाद हो रहते ।

यदि असमय सूर्य अस्त हो जाय,
तो किसे क्लेश न होगा जग में,
वैसे ही है यह असामायिक मृत्यु पिता की,
पर बचा लिया मुनि और मिथिलेश्वर ने ।

सब राज-काज और धर्म का पालन,
संभव है सब गुरूजी की ही कृपा से,
उनका अनुग्रह ही हमारा रक्षक है,
सब शुभ ही होगा उनकी कृपा से ।

माता, पिता, गुरू और स्वामी की आज्ञा,
उसका पालन है सार धर्म का,
तुम वही करो, और मुझसे भी कराओ,
यही साधन है दाता सब सिद्धियों का ।

इसे विचार, भारी संकट सहकर भी,
सुखी करो प्रजा और परिवार को,
मेरी विपत्ति तो सबने बांट ली है,
पर चौदह वर्ष बड़ी कठिनाई है तुमको ।

तुम्हें कोमल जानकर भी मैं,
कह रहा हूँ तुमसे वियोग की बात,
अनुचित नही यह बुरे समय में,
श्रेष्ठ भाई ही तब देते साथ ।

सब प्रेममग्न हो गये यह सुनकर,
भरतजी का सारा विषाद मिट गया,
प्रेमपूर्वक प्रणाम कर वे बोले, हे नाथ !
मुझे जन्म लेने का लाभ मिल गया ।

हे कृपालु ! अब जैसी आज्ञा हो,
सादर करूँ उसे सिर पर धारण,
पर, जिससे इस अवधि का पार पा जाऊँ,
हे नाथ ! दें मुझे कोई ऐसा अवल्मबन ।

हे देव ! आपके अभिषेक के लिये,
लेता आया हूँ जल सब तीर्थों का,
अब उनके साथ क्या किया जाय,
हे नाथ ! कहिये क्या है आपकी आज्ञा ।

और एक मनोरथ है मेरे मन में,
जो भय और संकोचवश कहा नही जाता,
जब श्रीराम ने पूछा तो वे बोले,
हे नाथ ! मैं यह वन-क्षेत्र देखना चाहता ।

आपके चरण-चिह्नों से अंकित यह भूमि,
नदी-तालाब, चित्रकूट के पवित्र स्थान,
पशु-पक्षी और वन-पर्वतों के समूह,
और भी इस क्षेत्र के उत्तम स्थान ।

प्रभु ने कहा, अत्रि ऋषि की आज्ञा से,
जहां चाहो वहां वन में विचरो,
और वे जहां के लिये आज्ञा दें,
उसी स्थान पर पवित्र जल स्थापित करो ।

श्रीराम-भरत का संवाद सुन,
देवता हर्षित हो लगे फूल बरसाने,
मुनि वसिष्ठ, जनकजी और सभासद,
पुलकित हो मन में लगे हर्षाने ।

दु:ख और सुख दोनों को समान जानकर,
माता कौसल्या ने औरों को धैर्य बंधाया,
सब श्रीराम के बड़प्पन की चर्चा कर रहे,
भरत के अच्छेपन से सबने सुख पाया ।

तब अत्रि ऋषि ने भरतजी से कहा,
यहां पर्वत के समीप है एक कुआं सुंदर,
इस पवित्र और अमृत जैसे तीर्थ जल को,
स्थापित कर दीजिये उसी के अन्दर ।

मुनि अत्रिजी की आज्ञा पा भरत ने,
जल के सब पात्र कर दिये रवाना,
फिर छोटे भाई और साधु-समाज सहित,
भरतजी चले जहां था वह कुआं सुहाना ।

जब उस पुण्यस्थल में जल रख दिया,
तब अत्रि ऋषि बोले आनन्दित होकर,
हे तात् ! यह अनादि सिद्धस्थल है,
जो रह गया था लुप्त होकर ।

तब सेवकों ने वहां एक कुआं बनाया,
और वह पवित्र जल उसमें रख दिया,
अबसे इसको लोग भरतकूप कहेंगे,
जो तीर्थजल के कारण पवित्र हो गया ।

फिर सब लोग गये श्रीराम के पास,
अत्रिजी ने तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया,
धर्म-चर्चा करते वह रात बीत गयी,
इस प्रकार बातों-बातों में सवेरा हो आया ।

सवेरे भरत-शत्रुघ्न वन-भ्रमण को चले,
कोमल चरण, चल रहे बिना जूतों के,
यह देख पृथ्वी सकुचाकर कोमल हो गयी,
शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा लगी चलने ।

देवता फूल बरसाकर, बादल छाया कर,
वृक्ष फल-फूलकर, तृण अपनी कोमलता से,
मृग देखकर, पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर,
सब उनकी सेवा करने लगे ऐसे ।

जंभाई लेते समय भी राम कहने से,
सुलभ हो जाती हैं सभी सिद्धियां,
तब श्रीरामजी के प्यारे भरत के लिये,
इसमें भला आश्चर्य की बात है क्या ।

सुन्दर, पवित्र और दिव्य स्थान देखकर,
भरतजी पूछते हैं और अत्रिजी बता रहे,
कहीं स्नान, कहीं प्रणाम करते हैं भरत,
कहीं श्रीराम-लक्ष्मण का स्मरण कर रहे ।

भरतजी का स्वभाव, प्रेम और सेवाभाव देख,
आशीर्वाद देते हैं वन-देवता आनन्दित होकर,
ढ़ाई पहर तक यूँ घूमते हैं भरतजी,
और प्रभु-चरणों के दर्शन करते हैं लौटकर ।

पांच दिन में सब वन घूम लिया,
छठवें दिन आ जुटा सब समाज,
वह विदा करने का अच्छा दिन है,
पर प्रभु को कुछ कहते आती है लाज ।

ताक कर सबकी ओर प्रभु श्रीराम,
फिर सकुचाकर ताकने लगे पृथ्वी को,
उनका शील सराह सोचते हैं सभी,
मिलेंगे कहाँ ऐसे स्वामी किसी को ।

सुजान भरतजी श्रीरामजी का रूख देखकर,
दण्डवत कर हाथ जोड़कर कहने लगे,
हे नाथ ! आपने मेरी सब रूचियां रक्खी,
सबने मेरे लिये सब संताप सहे ।

आपने भी बहुत प्रकार से दु:ख पाया,
अब आज्ञा दें, हे स्वामी ! मुझे,
जाकर चौदह वर्ष अवध का सेवन करूँ,
फिर आपके चरणों का दर्शन मिले मुझे ।

हे गोसाईं ! आपके प्रेम और सम्बन्ध से,
पुरवासी और कुटुम्ब सब हैं आनन्दित,
आपके लिये भव-दु:ख में जलना अच्छा,
आपके बिना मोक्ष भी है निन्दित ।

आप सुजान, सबके हृदय की जानते,
हमारा पालन करेंगे और निबाहेंगे हमें,
मेरी दीनता और आपके स्नेह ने मिलकर,
जबरन ढीठ बना दिया है मुझे ।

इस बड़े दोष को दूर कर, हे स्वामी !
संकोच त्यागकर मुझे दीजिये शिक्षा,
भरतजी की यह विनती सुनकर,
सारी सभा ने की उनकी प्रशंसा ।

भरतजी के दीन और छलरहित वचन सुन,
समयानुसार वचन कहे कृपालु श्रीराम ने,
गुरू वसिष्ठजी और महाराज जनक को,
मेरी, तुम्हारी सबकी चिन्ता है उन्हें ।

उनके हमारे सिर पर रहते,
स्वप्न में भी क्लेश नही है हमें,
मेरा और तुम्हारा तो धर्म यही है,
कि पिताजी की आज्ञा का पालन करें ।

गुरू, पिता, माता और स्वामी की,
आज्ञा का पूर्ण पालन करने से,
सेवक का कभी पतन नही होता,
चाहे कुमार्ग पर भी चलना पड़े ।

देश, खजाना, परिवार आदि का भार,
गुरू चरण-रज पर सब है निर्भर,
तुम तो गुरू, माता, मंत्रियों की शिक्षा मान,
बस राजधानी की रक्षा करते रहना भर ।

तुलसीदास कहते हैं, श्रीराम ने कहा,
मुखिया होना चाहिये मुख के समान,
जो खाने-पीने को तो एक-अकेला,
पर सब अंगों को देता जान ।

बहुत तरह से समझाया राम ने,
पर हुआ नही संतोष भरत को,
चाहते थे कोई अवलम्बन मिल जाये,
पर संकोच हो रहा था श्रीराम को ।

इधर तो भरत का शील और प्रेम,
उधर गुरूजन, मंत्री और समाज,
आखिर भरत के प्रेमवश श्रीराम ने,
कृपा कर पांवरी दी भरत के हाथ ।

आदरपूर्वक सिर पर रखी भरत ने,
प्रजा के प्राणों की मानों पहरेदार,
भरतजी के प्रेम-रत्न के लिये तिजोरी,
रघुकुल की रक्षा हेतु दो किवाड़ ।

श्रेष्ठ कर्म के लिये दो हाथ से,
निर्मल नेत्र, धर्म की राह चलाने को,
जैसा श्रीसीता-राम के रहने से होता,
ऐसा आनन्द हृदय में हुआ भरत को ।

प्रणाम कर विदा मांगी भरत ने,
श्रीराम ने उन्हें लगा लिया हृदय से,
उधर इन्द्र ने बुरा मौका पाकर,
लोगों को भरमा दिया उच्चाटन से ।

पर वह कुचाल भी हितकारी हो गयी,
संजीवनी हो गयी जीवन के लिये,
वरना वियोगरूपी रोग से घबड़ाकर,
प्राणों पर बन आती लोगों के लिये ।

श्रीरामजी की कृपा ने उलझन सुधार दी,
गले मिल रहे वे भाई भरत से,
धीरज की धुरी ने धीरज त्याग दिया,
प्रेमाश्रु बहने लगे उनके नेत्रों से ।

मुनिजन और जनकजी से धीर-धुरन्धर,
मन, सोने सा जो कस चुके थे,
निर्लेप ही रचा था ब्रह्मा ने जिनको,
जगतरूपी जल में थे जो पत्ते से ।

वे भी श्रीरामजी और भरतजी के,
उपमारहित अपार प्रेम को देखकर,
वैराग्य सहित तन, मन, वचन से,
रह गये उसमें वे मग्न हो कर ।

भरतजी से भेंटकर समझाया राम ने,
फिर शत्रुघ्न को लगा लिया हृदय से,
सेवक और मंत्री भरतजी का रूख पा,
चलने की तैयारियां लगे करने ।

प्रभु के चरणकमलों की वन्दना कर,
और उनकी आज्ञा को रख सिर पर,
मुनि, तपस्वी, वनदेवता, सीताजी, लक्ष्मण,
चले उनसे भेंट और प्रणाम कर ।

छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत श्रीराम ने,
सिर नवा जनकजी की बहुत बड़ाई की,
हे देव ! दयावश आपने बहुत दु:ख पाया,
समाज सहित वन की सब तकलीफें सही ।

अब आशीर्वाद देकर पधारिये नगर को,
यह सुन जनकजी ने धीरज धर गमन किया,
फिर श्रीराम ने विष्णु और शिव समान समझ,
ब्राह्मणों और साधुओं का सम्मान किया।

फिर दोनों भाई गये सुनयनाजी के पास,
चरण वन्दना कर आशीर्वाद पा लौट आये,
फिर नगर निवासी, मंत्री आदि लोगों को,
यथायोग्य प्रणाम कर विदा कर आये ।

माता कैकेयी से निश्छल प्रेम से मिलकर,
उनका सारा संकोच श्रीराम ने मिटा दिया,
उधर सीताजी नैहर के कुटुम्बियों से मिली,
और सासुओं के गले लगीं, प्रणाम किया ।

उनकी शिक्षा सुन, मनचाहा आशीर्वाद पा सीताजी,
दोनों ओर की प्रीति में समायी रहीं,
फिर रघुनाथ ने माताओं को पालकियों पर चढ़ाया,
मन मार कर सारी प्रजा वापस लौट रही ।

वसिष्ठजी और अरून्धतीजी की चरण वन्दना कर,
हर्ष-विषाद सहित श्रीसीताराम, लक्ष्मण लौट आये,
फिर निषादराज और वनवासियों को विदा कर,
बड़ की छाया में बैठ, भरत के गुण गाये ।

उनकी दशा देख, फूल बरसाये देवों ने,
फिर अपनी घर-घर की कही दशा,
प्रणाम कर आश्वासन दिया श्रीराम ने,
तब उनके मन में कोई डर न रहा ।

लक्ष्मणजी और सीताजी सहित प्रभु,
पर्णकुटी में हो रहे हैं ऐसे सुशोभित,
मानों वैराग्य, भक्ति और ज्ञान तीनों,
शरीर धारण कर हो रहे हों शोभित ।

भरत, जनकजी, वसिष्ठजी सहित सब,
विह्वल हैं श्रीरामचन्द्रजी के विरह में,
प्रभु के गुण मन में स्मरण कर,
सब मार्ग में चुपचाप चले जा रहे ।

पहले दिन सब पार हुये यमुना के,
वह दिन बीत गया बिना भोजन के,
दूसरा मुकाम गंगा उतर श्रृंगवेरपुर में हुआ,
जहां सब प्रबन्ध किया निषादराज ने ।

फिर सई उतर स्नान किया गोमती में,
चौथे दिन सब अयोध्या जा पहुंचे,
चार दिन अयोध्या रूक, राज-काज सम्हलाकर,
सारा साज-सामान ठीक कर जनकजी लौटे ।

श्रीरामचन्द्रजी के पुन: दर्शन के लिये,
नगरवासी नियम और उपवास करने लगे,
भूषण और सुख-भोगों को छोड़कर,
वे अवधि की आशा पर जीने लगे ।

मंत्रियों और विश्वासी सेवकों को समझाकर,
भरतजी ने अपने-अपने काम पर लगाया,
फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर,
माताओं की सेवा उनके जिम्में ठहराया ।

ब्राह्मणों को बुला, प्रणाम कर भरत ने,
कहा जो भी काम हों, दीजियेगा आज्ञा,
फिर प्रजा और नागरिकों को बसाकर,
दण्डवत प्रणाम किया गुरूजी के घर जा ।

नियमपूर्वक रहने की उनसे आज्ञा मांगी,
गुरूजी ने कहा पुलकित शरीर हो,
तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे, करोगे,
जगत में धर्म का सार होगा वो ।

यह सुन, शिक्षा और आशीर्वाद पाकर,
भरतजी ने ज्योतिषियों से अच्छा दिन सधवाया,
फिर उस दिन प्रभु की चरणपादुकाओं को,
आदर से सिंहासन पर विराजित करवाया ।

माता कौसल्या और गुरूजी को शीश नवाकर,
और प्रभु की चरणपादुकाओं की आज्ञा पाकर,
धर्म-धुरी धारण करने में धीर भरतजी,
रहने लगे नन्दीग्राम में पर्णकुटी छाकर ।

सिर पर जटाजूट, मुनियों से वल्कल वस्त्र,
पृथ्वी को खोद, कुश की आसनी बिछायी,
भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम सभी में,
ऋषियों के कठिन धर्म की रीति अपनायी ।

त्याग दिये सब सुख के साधन,
मन, तन, वचन से तृण तोड़कर,
शरीर घट रहा, पर मन-प्रसन्न है,
प्रभु-प्रेम बढ़ रहा, नित्य नया होकर ।

शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि,
भरतजी के हृदयाकाश के नक्षत्र से,
विश्वास ही उस आकाश का ध्रुवतारा,
अवधि का ध्यान, समान पूर्णिमा के ।

स्वामी श्रीराम की स्मृति प्रकाशित अकाशगंगा सी,
रामप्रेम ही अचल और कलंकरहित चन्द्रमा,
उनकी रहनी, करनी, भक्ति और गुणों की,
भला कौन कवि कर सकता गणना ।

नित्य प्रति पादुकाओं का पूजन करते हैं,
समाता नही है प्रेम हृदय में उनके,
और पादुकाओं से आज्ञा मांग-मांग कर,
राज-काज करते हैं वे सब प्रकार के ।

पुलकित शरीर, श्रीसीताराम हृदय में,
राम-नाम जपती रहती है रसना,
श्रीसीता-राम, लक्ष्मण रहते हैं वन में,
पर भरतजी के हृदय में है बसना ।

दोनों ओर की स्थिति समझकर,
सराहना करते हैं सब भरतजी की,
उनके व्रत और नियमों को सुनकर,
सकुचा जाते हैं साधु-संत भी ।

भरतजी का परम-पवित्र आचरण,
सब आनन्द और मंगलों का खजाना,
कलियुग के पाप-क्लेशों को हरता,
महामोहरूपी रात्रि के लिये सूर्य समाना ।

पाप समूहरूपी हाथी के लिये सिंह सा,
सारे संतापों के दल का नाश करने वाला,
श्रीराम प्रेम रूपी चन्द्रमा का अमृत है,
भक्तों को सब सुख-शांति देने वाला ।

श्रीसीतारामजी के प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण,
भरतजी का जन्म यदि नही होता,
तो मुनियों के मन को भी अगम,
कठिन व्रतों का पालन किस से होता ।

दु:ख, दरिद्रता, संताप, दंभादि दोषों का,
अपने सुयश के बहाने हरण कौन करता,
और कलिकाल में इस शठ के जैसे,
लोगों को प्रभु के सम्मुख कौन करता ।

तुलसीदास कहते हैं, जो कोई भी,
भरतजी के चरित्र को आदर सहित सुनेंगे,
सांसारिक विषय-रस से वैराग्य पाकर,
श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम करेंगे ।

मासपारायण, इक्कीसवां विश्राम

द्वितीय सोपान समाप्त

'अरण्यकाण्ड'

धर्म के मूल, विवेक के सागर,
पाप विनाशक, त्रितापों को हरने वाले,
श्रीराम के प्रिय, शंकरजी को प्रणाम,
मोहरूपी बादलों को हटाने वाले ।

जलयुक्त मेघ से सुन्दर, आनन्दघन,
हाथों में धनुष-बाण, तरकस कमर में,
भजता हूँ मैं प्रभु श्रीरामचन्द्र को जो,
श्रीसीता, लक्ष्मण सहित चल रहे मार्ग में ।

गूढ़ है गुण श्रीराम के, हे उमा !
जिन्हें समझकर भक्त वैराग्य पा जाते,
लेकिन जो भगवान से विमुख हैं,
वे महामूढ़ मोह ग्रसित हो जाते ।

पुरवासियों और भरतजी के प्रेम का,
मैने अपनी बुद्धि अनुसार गुण-गान किया,
अब सुनो, सबके मन को भाने वाले,
वे चरित्र, जिन्हें प्रभु ने वन में किया ।

एक बार प्रभु ने अपने हाथों से,
फूलों से भांति-भांति के गहने बनाये,
सुन्दर स्फटिक शिला पर बैठे प्रभु ने,
आदर सहित गहने सीताजी को पहनाये ।

तभी देवराज इन्द्र का मूर्ख पुत्र जयन्त,
कौए का रूप धर, बल देखने आया,
भागा जो सीताजी के चरणों में चोंच मार,
प्रभु ने सींक का बाण चढ़ाया ।

दीनों के प्रेमी, कृपाल भगवन संग,
छल किया उस मूर्ख जयन्त ने,
मन्त्र से प्रेरित, उस बाण के भय से,
भाग चला वह कौआ प्राणों को बचाने ।

असली रूप धर पिता के पास गया,
पर रक्खा न पास, उस रामविरोधी को,
सभी लोकों में भागता फिरा जयन्त,
पर बैठने तक किसी ने न पूछा उसको ।

काकमुशुण्डिजी कहते हैं, हे गरूड़ सुनिये,
रामद्रोही को भला कौन रख सकता,
माता मृत्यु सी, पिता यमराज से,
अमृत विष सा उसके लिये हो रहता ।

मित्र शत्रुओ सी करनी करने लगते,
गंगाजी वैतरणी सी हो जाती उसको,
समस्त जगत उसके लिये दावानल सा,
श्रीरामचन्द्रजी के विमुख हो जाता जो ।

तब व्याकुल देख उसे नारद ने,
कहा, श्रीराम ही बचा सकते हैं तुझे,
जाकर चरण पकड़ लिये प्रभु के,
कहा, रक्षा कीजिये, क्षमा कीजिये मुझे ।

आपकी अतुलित प्रभुता मैं जान न पाया,
पा लिया फल मैने अपने कर्म का,
हे उमा ! तब प्रभु ने कृपा कर उसको,
छोड़ दिया काना कर एक आंख का ।

बहुत भीड़ हो गयी जब चित्रकूट में,
प्रभु चल दिये अत्रिजी के आश्रम को,
उठकर दौड़े मुनि प्रभु को आता देख,
दण्डवत किया दोनों भाइयों ने मुनि को ।

उठाकर हृदय से लगा लिया मुनि ने,
प्रेमाश्रुओं से नहला दिया दोनों को,
आदरपूर्वक मुनि उन्हें आश्रम में ले आये,
और हाथ जोड़ करने लगे स्तुति वो ।

हे भक्तवत्सल ! हे कृपालु ! कोमल स्वभाववाले,
नमस्कार करता हूँ, हे प्रभु ! मैं आपको,
नितान्त सुन्दर, श्याम, आवागमन छुड़ाने वाले,
हे कमलनयन ! छुड़ानेवाले सब दोषों को ।

असीम है आपका पराक्रम और ऐश्वर्य,
धनुष-बाण धारी, तीनों लोकों के स्वामी,
सूर्यवंश के भूषण, शिव-धनुष तोड़ने वाले,
असुरों के नाश करनेवाले, देव सुखदायी ।

कामदेव के शत्रु शिवजी पूजते आपको,
ब्रह्मा आदि देवता सेवा करते आपकी,
विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह, हे सुखों की खान,
सीताजी, लक्ष्मण सहित, पूजा करता आपकी।

जो मनुष्य मत्सर रहित होकर,
आपके चरण-कमलों का सेवन करते,
तर्क-वितर्क रूपी तरंगों से पूर्ण,
संसाररूपी समुद्र में फिर नही गिरते ।

इन्द्रिय-निग्रह कर जो आपको भजते,
प्राप्त होते वे अपने स्वरूप को,
सर्वसमर्थ, इच्छारहित, ईश्वर, सनातन, परम,
तुरीय, अपने स्वरूप में स्थित हैं जो ।

विषयी पुरुषों के लिये अत्यन्त दुर्लभ,
पर कल्पवृक्ष से अपने भक्तों के लिये,
सम, सुन्दर, पृथ्वीपति, हे जानकीनाथ !
मुझे अपने चरणों की भक्ति दीजिये ।

इस स्तुति को आदरपूर्वक पढ़ने वाले,
प्राप्त होते है प्रभु के परमपद को,
फिर सिर नवाकर मुनि बोले, हे नाथ !
कभी न छोड़ूं मैं आपके चरणकमलों को ।

फिर परम शीलवती और विनम्र श्रीसीताजी,
अनसूयाजी के चरण पकड़कर मिलीं उनसे,
उन्होनें उन्हें दिव्य वस्त्र व आभूषण पहनाये,
जो नित्य निर्मल और सुहाने बने रहते ।

उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से,
ऋषिपत्नी कहने लगीं स्त्रियों के धर्म बखानकर,
माता, पिता, भाई सभी हित करने वाले हैं,
परतुं पति होता है इन सबसे बढ़कर ।

अधम है वह स्त्री जो,
करती नही अपने पति की सेवा,
धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री,
विपत्ति में ही इनकी होती परीक्षा ।

वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन या दीन,
चाहे क्रोधी हो या अंधा बहरा,
ऐसे पति का भी अपमान करने से,
स्त्री यमपुरी में पाती है दु:ख गहरा ।

तन, मन, वचन और कर्म से,
सेवा करना पति के चरणों की,
स्त्री के लिये, बस यही एक धर्म,
यही एक व्रत और नियम यही ।

वेद, पुराण और संत सब कहते,
चार प्रकार की पतिव्रताएं हैं जगत में,
उत्तम पतिव्रताएं ऐसा भाव रखती हैं,
पति को छोड़, न पुरुष जगत में ।

भाई, पिता या पुत्र सा देखती हैं,
मध्यम श्रेणी की पतिव्रता स्त्रियां,
धर्म या मर्यादा हेतु जो बची रहतीं,
वे होती निम्न श्रेणी की स्त्रियां ।

मौका न मिलने से या भयवश,
बनी रहती है पतिव्रता जो स्त्री,
ऐसी स्त्री को तो, हे राजकुमारी !
समझना जगत में अधम स्त्री ही ।

और पति को धोखा देनेवाली,
पराये पुरुष से रति जो करती,
ऐसी स्त्री तो सौ कल्प तक,
रौरव नरक में ही पड़ी रहती ।

पतिव्रत-धर्म ग्रहण करती छल छोड़कर,
बिना परिश्रम परमगति वह स्त्री पाती,
लेकिन पति के प्रतिकूल जो चलती,
जन्म-जन्म जवानी में विधवा हो जाती ।

जन्म से ही अपवित्र होने पर भी,
पति सेवा से अनायास शुभ गति पाती,
इसी कारण वेद उनका यश गाते हैं,
और भगवान को प्रिय लगती 'तुलसीजी' ।

तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर,
स्त्रियां पालन करेंगी पतिव्रत धर्म का,
तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणों से प्रिय हैं,
जगत हित हेतु की मैने यह कथा ।

परम सुख पाया जानकीजी ने सुनकर,
आदरपूर्वक सिर नवाया उनके चरणों में,
तब कृपालु श्रीराम ने मुनि से कहा,
आज्ञा हो तो जाऊ अब दूसरे वन में ।

सेवक जान मुझ पर कृपा करते रहिये,
यह सुनकर ज्ञानी मुनि बोले प्रेम से,
ब्रह्मा, शिव, सनकादि जिनकी कृपा चाहते,
वे प्रभु आप बोल रहे इतनी कोमलता से ।

अब मैने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी,
जिन्होनं आपको ही भजा सब देवता छोड़कर,
जिनके समान अत्यन्त बड़ा नही कोई,
उनका शील भला ऐसा होगा न क्योंकर ।

किस प्रकार कहूँ, हे स्वामी ! जाइये,
आप अन्तर्यामी हैं कहिये आप ही,
यह कह मुनि प्रभु को देखने लगे,
आंखों से बही प्रेमाश्रुओं की नदी ।

अत्यंन प्रेम से पूर्ण हैं मुनि,
शरीर पुलकित, नेत्र ताक रहे प्रभु को,
मन में सोच रहे किस कारण से,
देख रहा मैं इन्द्रियों से परे प्रभु को ।

श्रीरामचन्द्रजी का सुन्दर निर्मल यश है,
कलियुग के पापों का नाश करनेवाला,
न धर्म, ज्ञान, न योग, जप इसमें,
बस श्रीराम-भजन ही पार लगाने वाला ।

मुनि के चरण कमलों में सिर नवाकर,
सबके स्वामी श्रीरामजी चले वन को,
दोनों भाइयों के बीच सीताजी शोभित ऐसे,
जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो ।

नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियां,
अपने स्वामी को पहचान रास्ता दे देते,
जहां-जहां प्रभु श्रीरघुनाथजी जाते हैं,
वहां-वहां बादल छाया करते जाते ।

मार्ग में उन्हें किराध राक्षस मिला,
मार डाला श्रीराम ने सामने आते ही उसे,
उसने तुरंत सुन्दर रूप धारण कर लिया,
अपने परम धाम को भेजा प्रभु ने उसे ।

फिर लक्ष्मणजी और सीताजी सहित प्रभु,
वहां आये जहां मुनि शरभंगजी थे,
प्रभु का मुख-कमल देख आदर सहित,
उसका पान कर रहे नेत्र मुनि के ।

मुनि ने कहा, हे कृपालु रघुबीर !
मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था,
इतने में सुना आप वन में आवेंगे,
तब से आप की राह देखता रहा ।

आज आपको देखकर, हे नाथ !
शीतल हो गयी हैं मेरी छाती,
सब साधनों से हीन हूँ मैं पर,
अपना सेवक जान आपने कृपा की ।

यह आपका एहसान नही, हे भक्त-मनचोर !
आपने अपने प्रण की ही रक्षा की,
अब इस दीन के कल्याण हेतु रूकिये,
जब तक शरीर छोड़, शरण न लूं आपकी ।

जप-तप सब अर्पण कर प्रभु को,
बदले में भक्ति का वरदान ले लिया,
फिर योगाग्नि से अपना शरीर जला,
प्रभु चरणों मे परमपद पा लिया ।

शरभंगजी की यह दुर्लभ गति देखकर,
ऋषिसमूह स्तुति कर रहे प्रभु श्रीराम की,
और कह रहे, जय हो ! जय हो ! जय हो !
हे शरणागतहितकारी करूणाकंद आपकी।

फिर आगे वन में चले रघुनाथ,
बहुत से मुनिगण साथ हो लिये उनके,
एक जगह हड्डियों का ढेर देखकर,
दयानिधान ने दया कर पूछा मुनियो से ।

वे बोले आप सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं,
सब जानते हुए भी पूछ रहे हम से,
राक्षसों ने सब मुनियों को खा डाला,
यह सुन जल छलक आया नेत्रों से ।

तब भुजा उठाकर प्रण किया राम ने,
मैं राक्षसों से रहित कर दूंगा पृथ्वी को,
फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जाकर,
दर्शन एवं सम्भाण्ण का सुख दिया उनको ।

मुनि अगस्त्यजी के एक शिष्य थे सुतीक्ष्ण,
बड़ी प्रीति थी भगवान में उनकी,
मन, वचन, कर्म से थे रामचरणों के सेवक,
किसी अन्य पर भरोसा नही स्वप्न में भी ।

ज्यों ही प्रभु का आगमन सुना उन्होनें,
अनेक मनोरथ लिये दौड़े शीघ्रता से,
हे विधाता ! क्या दीनबन्धु श्रीरघुनाथजी,
दया करेंगे दुष्ट पर भी, मुझ जैसे ।

क्या वे छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित,
मुझसे मिलेंगे अपने सेवक की भांति,
मेरे हृदय में दृढ़ विश्वास नही होता,
भक्ति, ज्ञान, वैराग्य नही मुझ में कुछ भी ।

सतसंग, योग, जप, यज्ञ न किया,
न ही दृढ़ अनुराग प्रभु चरणों में,
हां, प्रभु की इस बान का भरोसा,
अनन्य सेवक प्रिय होता है उन्हें ।

प्रभु की इस बात का स्मरण आते ही,
मुनि आनन्दमग्न हो कहने लगे मन में,
अहा ! प्रभु के मुखारविन्द के दर्शन कर,
नेत्रों को धन्य करूंगा आज मैं अपने ।

हे भवानी ! मुनि प्रेम में पूर्ण मग्न हैं,
उनकी वह दशा कही नही जाती,
उन्हें दिशा, विदिशा और रास्ता,
सूझ नही रहा है कहीं कुछ भी ।

कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ,
यह भी मुनि अब नही जानते,
कभी आगे, कभी पीछे चलने लगते हैं,
प्रभु के गुण गा-गाकर नाचने लगते ।

प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली मुनि ने,
प्रभु आड़ में छिपकर देख रहे,
मुनि का अत्यंत प्रेम देखकर भवभयहारी,
उनके हृदय में प्रकट हो गये ।

हृदय में प्रभु के दर्शन पाकर मुनि,
बीच रास्ते में स्थिर हो बैठ गये,
उनका शरीर रोमांच से भर गया,
तब श्रीरघुनाथ उनके पास आ गये ।

जागे नही मुनि कैसे भी जगाने से,
क्योंकि प्रभु के ध्यान में मग्न थे वे,
तब श्रीरामजी ने अपना राजरूप छिपा लिया,
और चतुर्भुज रूप में वे प्रकटे हृदय में ।

अपने इष्ट-स्वरूप के अन्तर्धान होते ही,
बहुत ही व्याकुल हो उठे मुनि,
जैसे श्रेष्ठ सर्प व्याकुल हो जाता,
जब खो जाती है उसकी मणि ।

सीताजी और लक्ष्मणजी सहित अपने सामने,
मुनि ने देखा श्यामसुन्दर विग्रह श्रीराम को,
लाठी की तरह गिर पड़े चरणों में,
प्रभु ने उठा, हृदय से लगाया उनको ।

मुनि टकटकी लगाये देख रहे प्रभु को,
मानों चित्र में लिखकर बनाये गये हों,
तब धीरज धर बारम्बार चरण छुए,
और अपने आश्रम में ले गये प्रभु को ।

कहने लगे, कैसे आपकी करूँ स्तुति,
महिमा अपार और बुद्धि अल्प है मेरी,
हे प्रभु ! आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ,
आप ही रक्षा करनेवाले हैं मेरी ।

हे नीलकमल की माला से श्याम तनधारी,
जटाओं का मुकुट, वल्कल वस्त्र पहने हुए,
नमस्कार करता हूँ, हे श्रीराम ! आपको,
हाथों में धनुष, कमर में तरकस कसे हुए ।

मोहरूपी वन का जलाने हेतु अग्नि,
संतरूपी कमलों को खिलाने हेतु सूर्य से,
राक्षसरूपी हाथियों को पछाड़ने हेतु सिंह,
भवरूपी पक्षी को मारने हेतु बाज से ।

हे अरूण नयन और सुन्दर वेष वाले,
हे सीताजी के नेत्ररूपी चकोर के चन्द्रमा,
शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के बालहंस,
आपका हृदय विशाल है और विशाल भुजा ।

हे संशयरूपी सर्प को ग्रसने को गरूड़,
विषाद विनाशक, आवागमन को मिटनेवाले,
हे कृपा के समूह ! नमस्कार आपको,
हे देवताओं के रक्षक ! आनन्द देनेवाले ।

हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप,
हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे,
हे अनुपम, निर्मल, सम्पूर्ण दोषरहित श्रीराम,
नमस्कार आपको, हे प्रभु मेरी रक्षा करें ।

जो भक्तों के लिये कल्पवृक्ष के बगीचे हैं,
काम, क्रोध, मद, लोभ को डरानेवाले,
संसाररूपी समुद्र से तरने को सेतु से,
वे आप श्रीरामजी मेरी रक्षा करनेवाले ।

जिनकी भुजाओं का प्रताप अतुलनीय,
बल के धाम, कवच धर्म के,
जिनके गुणसमूह आनन्द देनेवाले हैं,
वे श्रीराम सदा मेरा कल्याण करें ।

सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी आपको,
जो जैसा जानते हैं, वो वैसा जाने,
मेरे हृदय में तो आप इसी रूप में,
हे कोसलपति कमलनयन अपना घर बनावें ।

भूलकर भी न भूलूं, मैं सेवक हूँ,
और आप श्रीरघुनाथजी स्वामी हैं मेरे,
बहुत प्रसन्न हुए प्रभु यह सुनकर,
लगा लिया उन्होनें मुनि को हृदय से ।

और कहा, जो चाहो वर मांग लो,
मुनि ने कहा, जो अच्छा लगे आपको,
प्रभु ने भक्ति, वैराग्य और ज्ञान का,
प्रसन्न होकर वर दिया मुनि को ।

तब मुनि ने मनचाहा वर मांगा,
कहा छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित,
धनुष-बाणधारी आप स्थिर होकर, हे प्रभु !
मेरे हृदयाकाश में हों चन्द्रमा से शोभित ।

एवमस्तु कह श्रीरामचन्द्रजी हर्षित हो,
अगस्त्य ऋषि के आश्रम को चले,
सुतीक्ष्णजी बोले गुरूजी का दर्शन पाये,
और यहां आये बहुत दिन हो चले ।

आश्रम पहुँच गुरूजी के पास गये सुतीक्ष्णजी,
और दण्डवत कर उनसे कहने लगे,
हे नाथ ! आप जिनका जप करते रहते हैं,
वे ही आये हैं आज आप से मिलने ।

यह सुनते ही अगस्त्यजी उठ दौड़े,
प्रभु को देखते ही नेत्र भर आये,
दोनों भाई मुनि के चरणों में गिर पड़ें,
मुनि हर्षित हैं उन्हें गले से लगाये ।

बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा कर,
मुनि ने कहा, कौन भाग्यवान है मुझ सा,
अन्य मुनि भी दर्शन के लिये आ गये,
सबने प्रभु को अपने सम्मुख बैठे देखा ।

तब श्रीरघुनाथजी ने मुनि से कहा,
हे प्रभो ! आपसे तो कुछ छिपाव नही,
मैं जिस कारण आया, आप जानते हैं,
इसी से समझाकर कुछ कहा नही ।

वही मंत्र दीजिये, मुझे हे प्रभो !
जिससे मारूं मैं मुनि द्रोही राक्षसों को,
प्रभु की वाणी सुन मुनि मुसकाये,
बोले, क्या समझ यह पूछा मुझको ।

आपके भजन के ही प्रभाव से, हे नाथ !
जानता हूँ कुछ थोड़ी सी महिमा आपकी,
अनेकों ब्रह्माण्डों के समूह जिसके फल हैं,
गूलर के विशाल वृक्ष सी माया आपकी ।

उन फलों के भीतर रहनेवाले जन्तुओं से,
समस्त चराचर जीव रहते हैं जगत में,
उन फलों का भक्षण करनेवाला कराल काल,
वह भी सदा रहता है आपके भय में ।

समस्त लोकपालों के स्वामी होकर आपने,
मनुष्य की भांति प्रश्न किया हैं मुझसे,
मैं मांगता हूँ, श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी सहित,
आप सदा-सदा मेरे ह्रदय में बसें ।

प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य और सतसंग दीजिये,
और अटूट प्रेम आपके चरणकमलों में,
यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं,
पर मैं प्रेम मानता आपके इस स्वरूप में ।

सेवकों को बड़ाई दिया करते हैं आप,
इसी से यह प्रश्न आपने पूछा मुझसे,
दण्डकवन में पंचवटी नामक स्थान है,
अपने चरणकमलों से पवित्र कीजिये उसे ।

हर लीजिये मुनि गौतमजी के शाप को,
मुनियों पर दया कर कीजिये वहां निवास,
उनकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी चल दिये,
और शीघ्र ही जा पहुंचे पंचवटी के पास ।

भेंट हुई वहां गृध्रराज जटायु से,
उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर,
प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गोदावरीजी के समीप,
रहने लगे वहां एक पर्णकुटी छाकर ।

डर जाता रहा तबसे मुनियों का,
पर्वत, नदी, तालाब भर गये शोभा से,
जहां प्रत्यक्ष श्रीरामजी स्वयं विराजमान हैं,
उस वन का वर्णन हो सकता किस से ।

एक बार प्रभु जब सुखासीन थे,
लक्ष्मणजी ने पूछा सरल भाव से,
ज्ञान, वैराग्य, माया और भक्ति,
ईश्वर और जीव का भेद समझायें मुझे ।

मेरे शोक, मोह, भ्रम नष्ट हो जायें,
और आपके चरणों में प्रीति हो जिससे,
हे नाथ ! आपके चरणरज की सेवा करूँ,
इसलिये सब समझाकर कहिये मुझसे ।

श्रीरामजी ने कहा, हे तात ! कहता हूँ,
थोड़े ही में सब समझाकर तुम्हें,
मैं और मेरा, तू और तेरा, माया है,
जिसने जीवों को कर रक्खा वश में ।

विषयों को और जहां तक मन जाता,
हे भाई ! माया ही जानना इन सबको,
उसके भी दो भेद कहता हूँ,
एक को विद्या, अविद्या कहते दूजी को ।

दु:खरूप और दोषयुक्त है अविद्या,
संसारकूप में पड़ा हुआ है जीव जिससे,
विद्या के वश में गुण होते हैं,
जगत की रचना होती है जिससे ।

प्रभु से प्रेरित होती है विद्या,
अपना बल कुछ भी नही है उसके,
ज्ञान वह जहां कोई भी दोष नही,
और समानरूप से ब्रह्म देखता सब में ।

सारी सिद्धियों और तीनों गुणों को,
जो त्याग चुका हो तिनके के समान,
और किसी चीज की चाह न हो,
कहना चाहिये उसे ही परम वैराग्यवान ।

माया, ईश्वर और अपना स्वरूप,
जो नही जानता वह जीव कहाता,
सबसे परे और माया का प्रेरक,
बन्धन और मोक्ष देनेवाला ईश्वर कहाता ।

वैराग्य धर्म से, ज्ञान योग से,
मोक्ष ज्ञान से, वेदों में वर्णित,
पर भक्ति से शीघ्र प्रसन्न होता हूँ,
और भक्ति भक्तों को करती हर्षित ।

संतों की कृपा से मिलती भक्ति,
जिससे जीव मुझे सहज पा जाते,
मन, वचन, कर्म से मेरे आश्रित,
अपने हृदय में मुझे वो सदा पाते ।

इस भक्तियोग को सुनकर लक्ष्मणजी ने,
प्रभु श्रीरामजी के चरणों में शीश नवाया,
इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण, नीति कहते,
पंचवटी में रहते कुछ समय बिताया ।

शूर्पणखा नामक रावण की एक बहिन थी,
नागिन सी भयानक और दुष्ट हृदय की,
घूमती-फिरती एक बार गयी पंचवटी में,
दोनों राजकुमारों को देख विकल हो गयी ।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं – हे गरूड़ जी !
शूर्पणखा जैसी राक्षसी धर्माज्ञान-शून्य स्त्री,
मनोहर पुरुष को देख चाहे कोई हो,
अपने मन को नही रोक सकती ।

सुन्दर रूप धर, प्रभु के पास जाकर,
उसने बहुत मुसकरा कर उनसे कहा,
तुम सा पुरुष और मुझसी स्त्री,
विधाता ने यह संयोग विचारकर रचा ।

मेरे योग्य पुरुष जगत भर में नही,
मैने तीनों लोकों को देखा खोजकर,
इसी से मैं अब तक रही कुमारी,
अब कुछ मन माना है तुम्हें देखकर ।

प्रभु ने सीताजी की ओर देखकर,
कहा कि मेरा छोटा भाई है कुमार,
तब वह लक्ष्मणजी के पास गई,
वे कोमल वाणी से बोले इस प्रकार ।

हे सुन्दरी ! मैं तो पराधीन दास हूँ,
अतः होगा न तुम्हें मुझसे कुछ सुभीता,
प्रभु समर्थ हैं, कौसलपुर के राजा है,
वे जो कुछ करें, उन्हें सब सुहाता ।

सेवक सुख, भिखारी सम्मान, व्यसनी धन,
लोभी यश, व्यभिचारी शुभगति चाहे,
आकाश दुहकर दूध लेना चाहते हैं वे,
जैसे अभिमानी चारों फल चाहे ।

लौटकर गयी वह श्रीरामजी के पास,
उन्होनें फिर उसे लक्ष्मणजी के पास भेजा,
लक्ष्मणजी ने कहा – तुम्हें वही वरेगा जो,
लज्ज़ा को तृण तोड़कर त्याग देगा ।

तब खिसियाकर श्रीरामजी के पास गई वह,
और दिखाया उसने अपना रूप भयंकर,
सीताजी को भयभीत देखकर प्रभु ने,
लक्ष्मणजी से कहा इशारा देकर ।

लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसको,
कर दिया बिना नाक और कान की,
मानों इस तरह उसके हाथों उन्होनें,
दे डाली हो रावण को चुनौती ।

रक्त बहने लगा ऐसे उसके शरीर से,
काले पर्वत से ज्यो गेरू की धारा,
विलाप करती गई खर-दूषण के पास,
रो-राकर उनके पौरूष को धिक्कारा ।

पूछने पर समझाकर कहा शूर्पणखा ने,
सेना तैयार कर राक्षसों के झुंड दौड़े,
अनेक भयानक हथियार धारण किये हैं,
और शूर्पणखा को कर रखा है आगे ।

गरजते, ललकारते चले जा रहे वो,
अपशकुन हो रहे, पर गिनते नही,
कह रहे दोनों भाइयों को पकड़ लो,
स्त्री छीन लो, उन्हें मार दो वहीं ।

तब श्रीरामजी ने लक्ष्मण से कहा,
सीताजी को ले जाओ सुरक्षित कन्दरा में,
लक्ष्मणजी सीताजी सहित धनुष-बाण ले चले,
और कठिन धनुष को चढ़ाया रघुनाथ ने ।

पकड़ो-पकड़ो पुकारते, राक्षस दौड़ते आये,
और घेर लिया प्रभु को चहुं ओर से,
पर प्रभु की सौन्दये-माधुर्य-निधि देख,
वो उन पर बाण नही छोड़ सके ।

तब खर-दूषण ने मंत्री से कहा,
कहीं ऐसा अप्रतिम सौन्दर्य देखा न हमने,
यह अनुपम पुरुष वध योग्य नही है,
यद्यपि हमारी बहन को कुरूप किया इसने ।

कहो, अपनी छिपायी स्त्री हमें दे दो,
और दोनों भाई जीते जी लौट जाओ,
उनकी बात सुनकर मुसकुराकर बोले श्रीराम,
हम क्षत्रिय हैं हमें डर न दिखाओ ।

ढूंढते हैं शिकार हेतु तुम जैसे पशु,
और लड़ सकते हैं हम काल से भी,
दैत्यकुल नाशक और मुनियों के रक्षक,
दुष्टों को दण्ड देते, बालक होने पर भी ।

यदि बल न हो तो घर लौट जाओ,
पीठ दिखाने वालों को मैं नही मारता,
दूतों ने जाकर सब बातें कहीं तो,
खर-दूषण का हृदय अत्यन्त जल उठा ।

अपने भयानक अस्त्र-शस्त्र उठा दौड़े राक्षस,
तो श्रीराम ने धनुष का कठोर टंकार किया,
जिसे सुन राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये,
उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा ।

फिर जब उन्होनें आक्रमण किया प्रभु पर,
प्रभु ने उनके अस्त्र-शस्त्र काट डाले,
फुफकारते, सर्प से चलते बाणों से घबरा,
राक्षस वीर अपनी पीठ दिखाकर भागे ।

तब खर-दूषण और त्रिशिरा,
तीनों भाई बोले क्रुद्ध होकर,
जो रण से भागकर जायेगा,
अपने हाथों उसका करेंगे वध ।

तब राक्षस दोनों तरह मरना जान,
लौटकर प्रहार करने लगे प्रभु पर,
प्रभु ने बहुत से बाण छोड़े,
मार डाला राक्षसों को काट-काट कर ।

वे माया कर फिर उठ खड़े होते हैं,
कटे हुए अंग उड़ रहे गगन में,
उनके धड़ जहां-तहां गिर पड़ते हैं,
फिर उठते हैं और लगते हैं लड़ने ।

अपनी सेना को व्याकुल देखकर,
त्रिशिरा और खर-दूषण आगे बढ़े,
भयानक आक्रमण किया राक्षस योद्धाओं ने,
श्रीराम ने भी उन पर बाण छोड़े ।

सब राक्षस सेनापतियों के हृदय में,
दस-दस बाण मारे श्रीराम ने,
राक्षस चौदह हजार, प्रभु अकेले,
तब एक कौतुक किया प्रभु राम ने ।

एक-दूसरे को राम-रूप देख शत्रु सेना,
आपस में ही युद्ध करके लड़ मरी,
ऐसे क्षण भर में मार डाला उनको,
और कृपा कर दी उन्हें परम-पद पदवी ।

हर्षित हो फूल बरसाने लगे देवता,
तब लक्ष्मणजी सीताजी को ले आये,
शूर्पणखा ने जाकर रावण को भड़काया,
बहुत दिन तूने यूँ ही बिताये ।

शराब पीकर दिन भर सोया रहता है,
शत्रु सिर पर खड़ा है, खबर नहीं,
अग्नि, रोग, पाप, शत्रु, स्वामी और सर्प,
कभी इन्हें छोटा कर समझना चाहिये नही ।

बहुत प्रकार विलाप कर कह रही शूर्पणखा,
तेरे जीते-जी, मेरी क्या दशा हो गयी,
उसकी बात सुन व्याकुल हो गये सभासद,
रावण ने पूछा, किसने ऐसी हिम्मत की ।

वह बोली, अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र,
वन में शिकार खेलने जो आये,
मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ती है,
कि पृथ्वी को राक्षस-रहित करने आये ।

जिनकी भुजाओं का बल पाकर मुनि,
वन में निर्भय हो लगे हैं विचरने,
दिखते बालक से, पर काल समान,
लगे हैं दुष्टों का वध करने में ।

अतुलनीय बल और प्रताप है उनका,
शोभा के धाम, राम नाम है उनका,
उनके साथ एक तरूणी सुन्दरी स्त्री है,
सौ रति निछावर, ऐसा रूप है उसका ।

उन्हीं राम के छोटे भाई ने,
मेरे नाक और कान काट डाले,
खर-दूषण मेरी सहायता करने आये,
पर वे सब राम ने मार डाले ।

खर-दूषण और त्रिशिरा का वध सुनकर,
जल उठे सब अंग रावण के,
बहुत प्रकार शूर्पणखा को बल बखाना,
पर चिन्ता बस गयी भीतर मन के ।

देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में,
कोई मेरे सेवक को भी पा नही सकता,
खर-दूषण तो मेरे समान ही बलवान थे,
सिवा भगवान उन्हें और कौन मार सकता ।

यदि स्वयं भगवान ने ही अवतार लिया,
तो हठपूर्वक मैं उनसे बैर करूंगा,
और प्रभु के हाथों अपने प्राण गंवाकर,
अनायास ही भवसागर से तर जाऊंगा ।

भजन न होगा इस तामस शरीर से,
तो मन, वचन, कर्म से है यही विचार,
दोनों का हरा उनकी स्त्री को हर लूंगा,
यदि मनुष्यरूप में है वो कोई राजकुमार ।

सो अकेला ही चला रावण रथ चढ़कर,
गया समुद्र तट पर जहां मारीच रहता था,
हे पार्वती ! यहां श्रीराम ने जो युक्ति रची,
सुनो मुझ से तुम वह सुन्दर कथा ।

कन्द-मूल लेने वन गये जब लक्ष्मण,
जानकीजी से हँसकर बोले प्रभु श्रीराम,
हे प्रिये ! अब मैं कुछ नर-लीला करूंगा,
तब तक तुम करो अग्नि में विश्राम ।

श्रीरामजी ने ज्यों ही समझाकर कहा,
सीताजी समा गयीं अग्नि में,
अपनी ही छायामूर्ति वहां रख दी,
वैसी ही शील-स्वभाव और रूप में ।

भगवान ने जो कुछ लीला रची,
इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी न जाना,
उधर स्वार्थी और नीच रावण वहां गया,
जहां मारीच था, और उसको सिर नवाया ।

दुखदायी होता है नीच का झुकना भी,
जैसे अंकुश, धनुष, सांप, बिल्ली का झुकना,
हे भवानी ! दुष्ट की मीठी वाणी को भी,
बिना ऋतु के फूल सी भयकारी समझना ।

तब मारीच ने रावण की पूजा कर,
आदरपूर्वक उससे पूछा, हे तात !
किस कारण आप इतने व्यग्र हैं,
और क्यों अकेले ही आये हैं आप ।

अभिमान सहित सारी कथा कही रावण ने,
और कहा उसे कपट-मृग बनने को,
वह बोला, वे नर-रूप में ईश्वर हैं,
जिलाते-मारते वे ही सब जीवों को ।

भलाई नही उनसे वैर करने में,
उनका विरोध करने से मिलेगी न सफलता,
विश्वामित्रजी के यज्ञ-रक्षा हेतु गये थे ये,
तब मुझे बिना फल का बाण मारा था ।

क्षण भर में सौ योजन पर आ गिरा,
कीट-भृंग सी हो गई मेरी दशा,
श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को देखता हूँ,
जिधर देखता हूँ, उन्हें देखता हूँ वहां ।

जिसने ताड़का और सुबाहु को मार,
क्षण में तोड़ दिया धनुष शिवजी का,
खर-दूषण और त्रिशिरा को मार डाला,
ऐसा प्रचण्ड बली क्या मनुष्य हो सकता ।

लौट जाइये, कुल की कुशल विचार,
यह सुन रावण क्रुद्ध हो उठा,
दुर्वचन कहे, और पूछा रावण ने,
मुझसा योद्धा कही हो तो बता ।

तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया,
इन नौ का विरोध करने में नही कल्याण,
शस्त्रधारी, भेद जानने वाला, समर्थ स्वामी,
वैद्य, भाट, कवि, रसोइया, मूर्ख और धनवान ।

दोनों प्रकार से अपना मरण देख,
श्रीराम के हाथों मरने की सोची उसने,
उनके दर्शन का हर्ष मन में समाया,
पर यह बात प्रकट न करी उसने ।

सोच रहा, परम प्रियतम को देख,
उनके चरणों में लगाऊंगा अपना मन,
जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है,
उनके हाथों से होगा मेरा मरण ।

धनुष-बाण लिये, मेरे पीछे फिरते,
प्रभु को फिर-फिर कर मैं देखूंगा,
भला मुझसा कौन होगा धन्यभागी,
प्रभु के हाथों अपने प्राण तजूंगा ।

जब पहूंचा रावण उस वन के निकट,
तब मारीच माया से मृग बन गया,
वर्णन से परे था वह कपट-मृग,
जिसका सारा शरीर था मणियों से सजा ।

सीताजी ने उस मृग को देख,
कहा, इसकी छाल है बहुत ही सुन्दर,
वे बोलीं, हे कृपालु रघुबीर ! सुनिये,
इसका चमड़ा ला दिजिये, इसे मारकर ।

देवताओं का काम बनाने हेतु श्रीराम,
सब जानते हुए भी, हर्षित हो उठे,
फिर लक्ष्मणजी को समझाकर कहा,
सावधानी से सीताजी की रखवाली करें ।

माया-मृग के पीछे दौड़ रहे प्रभु,
जिनको वेद नेति-नेति कह रह जाते,
छिपता, छल करता दूर ले गया उन्हें,
जब देखा मृग ने उन्हें पीछे आते ।

तककर कठोर बाण मारा श्रीराम ने,
जिससे गिर पड़ा वह मृग पृथ्वी पर,
पहले उसने 'हा लक्ष्मण' जोर से कहा,
फिर प्राण त्यागे श्रीराम का स्मरण कर ।

उसके हृदय का प्रेम पहचान प्रभु ने,
मुनियों को भी दुर्लभ गति दी उसे,
असुर को भी अपना परमपद दे दिया,
देवता प्रभु की स्तुति कर रहे ऐसे ।

उधर सीताजी ने जब 'हा लक्ष्मण' सुना,
भयभीत हो, वे बोलीं लक्ष्मण से,
तुम्हारे बड़े भाई बडे संकट में है,
सहायता के लिये पुकार रहे हैं तुम्हें ।

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा – हे माता !,
जिनके भ्रुकुटिविलास से प्रलय हो जाता,
स्वप्न में भी उन प्रभु श्रीराम पर,
क्या कभी कोई संकट आ सकता ।

तब सीताजी कुछ मर्म-वचन बोलीं,
होनीवश लक्ष्मणजी भी उद्विग्न हो उठे,
वन और दिशाओं के देवताओं को सौंप,
सीताजी को छोड़, लक्ष्मणजी चल पड़े ।

सूना मौका देखकर तब रावण,
सन्यासी बन, सीताजी के निकट आया,
जिसके डर से देवता भी कांपते थे,
वही कुत्ते सा भड़िहाई के लिये आया ।

अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर,
राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया उसने,
सीताजी ने कहा – हे यति गोसाईं ! सुनो,
दुष्ट की तरह ही वचन कहे तुमने ।

भयभीत हो गयीं सीताजी रावण ने जब,
अपना नाम बताया और असली रूप दिखाया,
तब गहरा धीरज धरकर सीताजी ने उसको,
प्रभु आ रहे हैं, अरे दुष्ट ! कह धमकाया ।

सिंह की स्त्री की चाह में ज्यों खरगोश,
वैसे ही तू कालवश हुआ, अरे रावण,
ये सुनते ही उसे क्रोध आ गया,
पर चरण-वन्दना की मन-ही-मन ।

फिर क्रोधित हो, रथ में बैठाकर,
सीताजी को ले चला आकाश मार्ग से,
बड़ी उतावली से चला जा रहा है,
पर रथ नही हांका जा रहा उससे ।

सीताजी विलाप कर रही थीं,
क्यों भुला दिया – हे नाथ ! मुझे,
'हा लक्ष्मण', तुम्हारा दोष नही था,
अपने क्रोध का ही फल मिला मुझे ।

सीताजी का भारी विलाप सुनकर,
जड़-चेतन सब दु:खी हो गये,
गृध्रराज जटायु ने उनकी वाणी सुन,
पहचान लिया कि सीताजी हैं ये ।

यह देख कि राक्षस लिये जा रहा है,
वह बोला, हे पुत्री ! भय मत कर,
फिर वज्र सा रावण की ओर दौड़ा,
और रूकने को कहा उसे ललकार कर ।

कहा जानकीजी को छोड़ घर चला जा,
वरना श्रीराम के क्रोध में भस्म होगा,
जब रावण ने कोई उत्तर न दिया,
तब गिद्ध उसकी ओर क्रोध कर दौड़ा ।

बाल पकड़ नीचे उतार लिया रावण को,
घायल कर दिया चोचों से मार-मार कर,
एक घड़ी तक रावण मूर्छित पड़ा रहा,
फिर कटार निकाल जटायु के काटे पर ।

जब पृथ्वी पर गिर पड़ा जटायु,
सीताजी को ले चला फिर रावण,
सीताजी यों विलाप कर रही हैं,
जैसे व्याध के जाल में फंसा हिरन ।

पर्वतों पर बैठे हुए बंदरों को देख,
हरिनाम ले वस्त्र डाला सीताजी ने,
इस प्रकार हर ले गया उन्हें रावण,
और ले जाकर रखा अशोक वन में ।

बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखा,
जब वह दुष्ट थक-हार गया,
तब सब व्यवस्था ठीक कर उसने,
अशोक वृक्ष के नीचे उन्हें रख दिया ।

नवाह्नपारायण, छठा विश्राम

जिस प्रकार कपट मृग के साथ,
दौड़ चले थे उसके पीछे रामजी,
उसी छबि को हृदय में रखकर,
हरिनाम रटती रहती हैं सीताजी ।

उधर लक्ष्मणजी को अपनी ओर आते देख,
बहुत चिन्ता प्रकट की श्रीरघुनाथ ने,
कहा, जानकीजी को छोड़ दिया अकेला,
मेरी आज्ञा का पालन किया न तुमने ।

वन में फिरते रहते राक्षसों के झुंड,
सीता आश्रम में नही, लगता मन में,
लक्ष्मणजी ने चरण पकड़, हाथ जोड़ कहा,
हे नाथ! मेरा कुछ दोष नही इसमें ।

आश्रम में जा, सीताजी को न देख,
बहुत व्याकुल और दीन हो गये श्रीराम,
अनेक प्रकार से समझाया लक्ष्मणजी ने,
तब सीताजी को ढूंढनें लगे श्रीराम ।

लताओं और वृक्षों से पूछ रहे हैं,
पशु-पक्षियों से पूछते, कहाँ है सीता,
साधारण मनुष्य से विरह में व्याकुल,
अजन्मा, अविनाशी, प्रभु कर रहे नर-लीला ।

आगे जाने पर उन्होनें जटायु को देखा,
कृपानिधान ने सिर पर फेरा हाथ,
स्पर्श करते ही उसकी सब पीड़ा मिटी,
कहा, रावण ने की यह दशा, हे नाथ !

उसी दुष्ट ने हरा जानकीजी को,
दक्षिण दिशा को ले गया है वो उन्हें,
कुररी की तरह वे विलाप कर रही थीं,
यही बताने को प्राण रोक रखे थे मैने ।

अन्तकाल जिनके नाम से मुक्ति मिलती,
वही प्रभु आप सामने खड़े है मेरे,
प्रभु ने कहा, प्राण रोके रखिये, हे तात !
जटायु ने कहा, देह रक्खूं अब किस लिये ।

तब नेत्रों में जल भर बोले श्रीराम,
श्रेष्ठ कर्मों से आपने पायी गति दुर्लभ,
जिनके मन में दूसरों का हित बसता,
उनके लिये जगत में कुछ नही दुर्लभ ।

शरीर छोड़ आप मेरे परमधाम जाइये,
क्या दूं आपको, आप तो हैं पूर्णकाम,
स्वर्ग में जा, सीताहरण पिताजी से न कहिये,
दशमुख स्वयं जा कहेगा, यदि मैं हूँ राम ।

गिद्ध देह त्याग, हरि रूप धरा,
और दिव्य वस्त्राभूषण पहने गिद्ध ने,
श्याम शरीर, विशाल चार भुजाएं,
प्रेम और आनन्द के आंसू आंखों में ।

स्तुति कर रहा, आपकी जय हो !
अनुपम, निर्गुण और सगुण हैं आप,
अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, एक, अगोचर,
भव-मय हारी, संत-हितकारी आप ।

नमस्कार करता हूँ, हे श्रीराम ! आपको,
त्रिलोकी के स्वामी, ब्रहम, व्यापक, निर्विकार,
फिर अखण्ड भक्ति का वर पाकर,
प्रभु के परमधाम चला, करता जयकार ।

दाहकर्म आदि सारी क्रियाएं प्रभु ने,
स्वयं अपने हाथों यथाविधि की,
पक्षियों में भी अधम उस गिद्ध को,
योगियों को भी दुर्लभ परमगति दी ।

शिवजी कहते हैं – हे पार्वती ! सुनो,
अभागे ही विषयों से अनुराग करते,
फिर दोनों भाई चले आगे को,
वन की सघनता देखते जाते ।

सघन वन भरा लता और वृक्षों से,
उसमें है बहुत से सिंह और हाथी,
रास्ते में कबंध राक्षस को मारा,
उसने अपने शाप की बात कही ।

कहा, दुर्वासा मुनि ने शाप दिया था,
आपके दर्शन से जो मिट गया,
प्रभु बोले जो ब्राह्मणों से द्रोह करता,
समझो उसका समस्त पुण्य ही मिट गया ।

मन, वचन और कर्म से कपट छोड़,
जो भूदेव ब्राह्मणों की सेवा करता,
मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि देवता,
सबको अपने वश में वो करता ।

निज-धर्म समझाकर कहा प्रभु ने,
उसकी प्रीति देख, प्रभु को वह भाया,
तदनन्तर उनके चरणों में सिर नवा वह,
आकाश में चला, गन्धर्व-स्वरूप फिर पाया ।

फिर श्रीरामजी गये शबरी के आश्रम,
मतंगजी के वचन याद किये उसने,
चरणों में गिर पड़ी, प्रेममग्न हो गयीं,
और बार-बार लगी चरणों में पड़ने ।

चरण धो और सुन्दर आसनों पर बिठा,
मीठे-रसीले फल ला दिये प्रभु को,
प्रभु बार-बार प्रशंसा करते हैं उनकी,
और प्रेमसहित खा रहे हैं फलों को ।

फिर हाथ जोड़ स्तुति करने लगी शबरी,
बोलीं, मैं मन्दबुद्धि, नीच, अधम स्त्री हूँ,
श्रीरघुनाथ ने कहा – हे भामिनि ! सुन,
मैं तो बस भक्ति ही मानता हूँ ।

जाति, पांति, कुल, धर्म, बड़ाई,
धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता,
ये होने पर भी भक्तिहीन मनुष्य,
बिन जल के बादल जैसा ही लगता ।

कहता हूँ तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति,
सावधान हो सुन, कर मन में धारण,
पहली भक्ति हैं संतो का सतसंग,
दूसरी, प्रेमसहित मेरी कथाओं का श्रवण ।

तीसरी निराभिमान हो गुरू-चरणों की सेवा,
चौथी कपट छोड़ मेरे गुणों का गान,
वेदों में प्रसिद्ध मेरी पांचवी भक्ति है,
दृढ़ विश्वास और मेरे मंत्र का गान ।

छठी शील, दम, बहु कर्मों से वैराग्य,
निरन्तर संतपुरुषों के आचरण में लगे रहना,
सातवीं भक्ति जगत को मुझमय जान,
संतों को मुझसे भी अधिक कर समझना ।

आठवीं भक्ति है संतोषी हो रहना,
भूले से भी देखता न दोष औरों का,
सरलता, निष्कपटता, मेरा भरोसा हृदय में,
हर्ष-विषाद रहित होना नवीं भक्ति का ।

इन नवधा भक्ति में कोई भी हो,
स्त्री-पुरुष हो, चाहे जड़ हो या चेतन,
अत्यंत प्रिय वह भक्त मुझे होता,
और तू तो है इन सबसे सम्पन्न ।

सो जो गति योगियों को भी दुर्लभ है,
वही सुलभ हो गयी है आज तेरे लिये,
मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है,
सहज स्वरूप सुलभ हो जाता जीव के लिये ।

फिर पूछा सीताजी के विषय में,
वह बोली, सब जानते पूछते हैं आप,
पंपा सरोवर को जाइये, सुग्रीव मिलेंगे,
उन्हीं से सीताजी के हाल जानेंगे आप ।

फिर योगाग्नि से अपनी देह त्यागकर,
शबरी दुर्लभ हरिपद में लीन हो गयी,
विविध कर्म, अधर्म और मत शोकप्रद हैं,
तुलसी उन्हें त्याग लो शरण प्रभु की ।

तब उस वन को भी छोड़ चले प्रभु,
विरही की तरह प्रभु कर रहे विषाद,
कह रहे, जरा वन की शोभा तो देखो,
इसे देख किसके मन में होगा न विषाद ।

सभी पशु-पक्षी अपने जोड़े सहित हैं,
मानों कर रहे हैं सब निन्दा मेरी,
हिरनियां अपने हिरनों से कह रही हैं,
तुम्हारी नही, इन्हें खोज है स्वर्ण-मृग की ।

हाथी हथिनियों को साथ रख शिक्षा देते,
स्त्री को कभी अकेला नही छोड़ना चाहिये,
देखते रहना चाहिये भली-भांति पढ़ा शास्त्र भी,
राजा को वश में न समझना चाहिये ।

युवती स्त्री, शास्त्र और राजा,
वश में रहते नही किसी के,
इस सुन्दर वसन्त को तो देखो,
भय उत्पन्न कर रहा, बिना प्रिया के ।

विरह से व्याकुल, बलहीन और अकेला जान,
कामदेव ने संगियों संग बोल दिया धावा,
पर देखा जब मैं भाई के साथ हूँ,
तो सेना को रोक स्वयं डेरा डाला ।

शोभित हो रहे वृक्ष नाना प्रकार से,
कोयल कूंज रही, भौंरे गुंजार रहे,
जगत में उन्हीं वीरों की प्रतिष्ठा,
जो इन्हें देख भी धीर बना रहे ।

कामदेव को स्त्री का बड़ा भारी बल,
उससे जो बच जाय, योद्धा श्रेष्ठ वही,
काम, क्रोध और लोभ अत्यंत प्रबल दुष्ट,
क्षुब्ध कर देते मन मुनियों का भी ।

लोभ को इच्छा और दम्भ का बल,
काम को बल है केवल स्त्री का,
और क्रोध को कठोर वचनों का बल है,
श्रेष्ठ मुनि विचारकर कहते हैं ऐसा ।

हे उमा! श्रीराम गुणातीत चराचर के स्वामी,सर्वज्ञ,
ये बातें कह दिखा रहे कामियों की दीनता,
लेकिन जिन पर प्रसन्न होते कृपालु भगवान,
वह माया-रूपी इन्द्रजाल में नही भटकता ।

फिर प्रभु गये पंपा सरोवर तीर पर,
संतों के हृदय सा निर्मल जल उसका,
रंग-बिरंगे कमल उसमें खिले हैं,
मानों प्रभु को देख कर रहे प्रशंसा ।

सुन्दर पक्षियों की बोली सुहावनी लगती,
बुलाये लेती हो मानों जाते पथिकों को,
फलों के बोझ से झुक रहे वृक्ष,
बड़ी सम्पत्ति पा, परोपकारी झुक जाते ज्यों ।

स्नान किया प्रभु ने तालाब में,
फिर लक्ष्मणजी सहित छाया में बैठे,
नारदजी के हृदय में विशेष सोच हुआ,
प्रभु को इस तरह जब देखा बैठे ।

ऐसा अवसर फिर न मिलेगा सोचकर,
रामचरित का गान करते नारद आ पहुंचे,
दण्डवत करते देख उठा लिया प्रभु ने,
बहुत देर तक लगाये रक्खा हृदय से ।

फिर कुशल पूछ बैठा लिया पास में,
लक्ष्मणजी ने आदर सहित उनके चरण धोये,
विनती कर और प्रभु को प्रसन्न जान,
नारदजी ने हाथ जोड़कर ये वचन कहे ।

हे स्वभाव से ही उदार श्रीरघुनाथजी !,
सुन्दर, अगम और सुगम वर के देनेवाले,
एक वर मांगता हूँ, वह मुझे दीजिये,
यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं, सब जाननेवाले ।

प्रभु बोले, आप स्वभाव जानते हैं मेरा,
क्या मैं छिपाव करता हूँ अपने भक्तों से,
मुझे कौन सी ऐसी वस्तु प्रिय है,
जिसे हे मुनि श्रेष्ठ ! तुम मांग नही सकते ।

नारदजी बोले, यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम है,
वेद कहते, वे एक-से-एक हैं बढ़कर,
तो भी हे नाथ ! राम नाम सबसे बढ़कर हो,
भक्तिरूपी पूर्णिमा में रहे चन्द्रमा बनकर ।

कृपानिधान ने 'एवमस्तु' कहा मुनि से,
मुनि ने हर्षित हो चरणों में शीश नवाया,
फिर पूछा जब मोहित किया मुझे माया से,
किस कारण तब मेरा विवाह न कराया ।

प्रभु बोले, हर्ष के साथ कहता हूँ,
जो अनन्य भाव से केवल मुझे भजते,
मैं सदा उनकी वैसे ही रक्षा करता हूँ,
जैसे माता-पिता बालक की करते ।

बच्चा जब तक छोटा रहता है,
माता उसे हर खतरे से बचाती,
सयाना होने पर प्रेम तो रहता,
पर पहले सी वो बात न रहती ।

ज्ञानी मेरे प्रौढ़ पुत्र से हैं,
पर तुमसा सेवक छोटे शिशु समान,
मेरे सेवक को मेरा बल रहता है,
ज्ञानी को रहता ज्ञान का भान ।

मेरे भक्त ज्ञान होने पर भी,
भजते रहते हैं केवल मुझको,
ज्ञानी को अपने शत्रु का विनाश,
स्वयं करना पड़ता है उसको ।

काम, क्रोध, लोभ और मद आदि,
ये सब प्रबल सेना हैं मोह की,
इनमें माया की साक्षात मूर्ति स्त्री,
देनेवाली होती है दारुण दुख की ।

मोहरूपी वन को विकसित करने को,
स्त्री वसन्त ऋतु सी होती,
जप, तप, नियमरूपी सब जल स्थानों को,
ग्रीष्मरूप होकर सब सोख लेती ।

मेढ़क रूपी काम, क्रोध, मद, मत्सर को,
वर्षा ऋतु हो हर्षित करती,
बुरी वासनाएं कुमुदों के समुद्र से,
जिन्हें शरद ऋतु सा सुख देती ।

समस्त धर्म कमलों के झुंड हैं,
विषयसुख दे, हिमऋतु सी जला डालती,
फिर ममतारूपी जवास के वन को,
शिशिर ऋतु सा हरा-भरा करती ।

पापरूपी उल्लु समूह के लिये यह स्त्री,
सुख देनेवाली घोर अन्धकारमय रात्रि सी,
बुद्धि, बल, शील, सत्यरूपी मछलियों के लिये,
चतुर पुरुष इसे कहते बंसी सी ।

अवगुणों की मूल, पीड़ा देनेवाली,
युवती स्त्री सब दु:खों की खान,
सो तुम्हें विवाह करने से रोका था,
मैने अपने जी में ऐसा जान ।

पुलकित हो गये मुनि यह सुनकर,
बोले, ऐसी रीत प्रभु के सिवा कहाँ,
जो भ्रम को त्याग उन्हें नही भजते,
ऐसे अज्ञानी और अभागे और कहाँ ।

फिर नारदजी ने पूछे संतों के लक्षण,
प्रभु बोले, वे होते काम, क्रोध रहित,
लोभ, मोह, मद, मत्सर छूते नही उनको,
स्थिर बुद्धि, त्यागी, मितहारी और पवित्र ।

सावधान रह मान देते औरों को,
प्रशंसा और अभिमान से दूर ही रहते,
सन्देहों से सर्वदा छूटे हुए होते हैं,
मेरी भक्ति से अधिक कुछ न समझते ।

जप, तप, व्रत, दम, संयम, नियम,
श्रृद्धा, क्षमा, मैत्री, दया और मुदिता,
गुरू, गोविन्द और ब्राह्मणों से प्रेम,
सत्य मार्ग का अनुसरण करना सदा ।

मेरी लीलाओं को गाते-सुनते रहते,
अहैतु औरों के हित में लगे रहते,
हे मुनि ! संतों के जितने गुण है,
शेष और शारदा भी कह नही सकते ।

पकड़ लिये नारदजी ने प्रभु के चरण,
बारम्बार सिर नवा ब्रह्मलोक को चले,
तुलसीदास कहते हैं, वे पुरुष धन्य हैं,
सब आशा छोड़, हरि के रंग में रंगे ।

मासपारायण, बाईसवां विश्राम

तीसरा सोपान समाप्त

(अरण्यकाण्ड समाप्त)

'किष्किन्धाकाण्ड'

अति सुन्दर, बलवान, विज्ञान के धाम,
श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदों के द्वारा वन्दित,
गौ एवं ब्राह्मणों के समूह के प्रेमी,
माया से नर-रूप में हुए अवतरित ।

श्रेष्ठ धर्म के लिये कवच-स्वरूप,
सबके हितकारी, श्रीसीताजी की खोज में लगे,
पथिकरूप रघुकुल श्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणजी,
दोनों भाई निश्चय ही भक्तिप्रद हों हमें ।

धन्य हैं वे पुण्यात्मा पुरुष जो,
भगवान श्रीशम्भु को ध्याते रहते,
और श्रीरामनामरूपी अमृत का जो,
पान नित्य निरन्तर करते रहते ।

बसते हैं जहां स्वयं श्रीशिव-पार्वती,
मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान,
क्यों न रहा जाय काशी में जाकर,
उसे पापों का नाश करनेवाली जान ।

जला रहा था जो सब सुरों को,
उस हलाहल का पान कर लिया जिसने,
कौन कृपालु होगा उन शंकर समान,
रे मन्द मन क्यों न भजता तू उन्हें ।

फिर श्रीरघुनाथजी वहां से आगे चले,
ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया,
सुग्रीव जो रहते थे वहां डर गये,
हनुमानजी को पता लगाने को कहा ।

बोले, तुम ब्रह्मचारी का वेष धर जाओ,
जो बात हो इशारे से मुझे बतलाना,
यदि वे बालि के भेजे हुए हों तो,
उचित है मुझे यहां से चले जाना ।

ब्राह्मण का वेष धर हुनमानजी गये,
मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे,
हे वीर ! सांवले और गोरे शरीर वाले,
कौन हैं आप, क्यों यूँ वन में फिर रहे ।

अथवा आप हैं जगत के मूल कारण,
सम्पूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान,
जो लोगों को भवसागर से तारने हेतु,
लीला कर रहे पृथ्वी पर मुनष्य समान ।

श्रीराम ने कहा, हम दशरथजी के पुत्र हैं,
पिता की आज्ञा मान आये हैं वन में,
राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाईयों के,
मेरी पत्नी को हर लिया है राक्षस ने ।

हम उसे ही खोजते-फिरते हैं,
बस यही परिचय है हम दोनों का,
हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया,
हे ब्राह्मण ! अब कहिये हमें अपनी कथा ।

प्रभु को पहचान, चरण पकड़ हुनमानजी,
पृथ्वी पर गिर दण्डवत करने लगे,
पुलकित शरीर, वाणी मौन हो रही है,
फिर हर्षित हो प्रभु से कहने लगे ।

हे स्वामी ! जो मैने पूछा, न्याय था,
वर्षों बाद देख, मैं पहचान न पाया,
पर आप मनुष्य की तरह पूछ रहे,
क्या प्रभु ने भी मुझे भुला दिया ।

हे नाथ ! मुझमें बहुत से अवगुण हैं,
पर भूल न जायं स्वामी सेवक को,
हे नाथ ! जीव आपकी माया से मोहित,
आपकी कृपा का ही भरोसा उसको ।

हे रघुवीर ! आपकी शपथ कर कहता हूँ,
भजन-साधन मैं कुछ भी नही जानता,
सेवक स्वामी के, पुत्र माता के,
हे नाथ ! भरोसे हो निश्चित हो रहता ।

ऐसा कहकर अकुलाकर हनुमानजी,
गिर पड़े प्रभु के चरणों में,
अपना असली रूप प्रकट कर दिया,
प्रेम छा गया उनके हृदय में ।

उठाकर हृदय से लगा लिया प्रभु ने,
बोले, मन में ग्लानि न मानना,
लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय हो तुम,
सेवक मुझे अत्यंत प्रिय हैं जानना ।

क्योंकि अनन्य गति होता है सेवक,
खुद को सेवक सदा ही मानता,
और जग में जितने चर-अचर हैं,
सबको अपने प्रभु का रूप जानता ।

स्वामी को प्रसन्न देख कर हनुमानजी बोले,
हे नाथ ! वानरराज सुग्रीव रहता है पर्वत पर,
उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिये,
धन्य कीजिये उसे अपना मित्र बनाकर ।

फिर राम-लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ा,
सुग्रीव के पास ले गये वे उन्हें,
चरणों में सिर नवा, सादर मिले सुग्रीव,
अग्नि की साक्षी में मित्र बनाया उन्हें ।

दोनों ने हृदय से प्रीति की,
कुछ भी अन्तर नहीं रक्खा,
फिर लक्ष्मणजी ने श्रीरामचन्द्रजी का,
सारा इतिहास सुग्रीव से कहा ।

सुग्रीव ने नेत्रों में जल भरकर कहा,
हे नाथ ! जानकीजी मिल जायेंगी आपको,
शत्रु के वश, विलाप करती हुई,
आकाश मार्ग से जाते देखा था उनको ।

हमें देख, राम ! राम ! हा राम ! कह,
गिरा दिया था अपना वस्त्र उन्होनें,
तुरंत दे दिया सुग्रीव ने मांगने पर,
ह्रदय से लगा लिया उसे श्रीराम ने ।

सुग्रीव ने कहा, सोच छोड़ दीजिये,
सब प्रकार से सहायता करूंगा आपकी,
तब श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा,
क्या वजह है वन में रहने की ।

वह बोले, मैं और बालि भाई हैं,
बहुत ही प्रीति थी हम दोनों में,
मय दानव का मायावी नामक पुत्र था,
एक बार आया वो हमारे गांव में ।

आधी रात को उसने ललकारा,
तो बालि दौड़ा लड़ने को उससे,
उसे देखकर जब मायावी भागा,
मैं भी भागा बालि के पीछे ।

एक गुफा में जा घुसा मायावी,
तब बालि ने कहा मुझे समझाकर,
एक पखवाड़े तुम मेरी राह देखना,
मरा समझ लेना जो न आऊँ लौटकर ।

महीने भर तक मैं वहां रहा,
गुफा से निकली रक्त की धारा,
मैने समझा मायावी के हाथों,
मेरा भाई बालि गया है मारा ।

अब आकर वह मारेगा मुझे,
यह सोच भाग आया मैं वहां से,
लेकिन उस गुफा का द्वार मैं,
बंद कर आया एक शिला से ।

नगर को बिना स्वामी का देख,
मन्त्रियों ने जबरन मुझे राज्य दे दिया,
बालि जब लौटा मायावी को मारकर,
उसने मुझसे बैर ठान लिया ।

शत्रु के समान बहुत मारा मुझे,
छीन लिया मेरा सर्वस्व और स्त्री को,
बेहाल हो, मैं यहां आ रहने लगा,
शापवश यहां नही आ सकता वो ।

सेवक का दु:ख सुन दयालु प्रभु की,
दोनों विशाल भुजाएं फड़क उठीं,
बोले, एक ही बाण से मार डालूंगा,
बालि के प्राण ने बचेंगे कैसे भी ।

मित्र के दु:ख से होते न दुखी,
उन्हें देखने से भी पाप लगता,
मित्र का धर्म, बुरे मार्ग से रोके,
गुण प्रकट करें, छिपाव अवगुणों का ।

देने-लेने में मन में शंका न रक्खे,
बल के अनुसार करता रहे हित सदा,
विपत्ति में तो सौ गुणा स्नेह करे,
वेद कहते हैं श्रेष्ठ मित्र होता ऐसा ।

जो सामने तो कहता है कोमल वचन,
पर पीठ पीछे बुराई, मन में कुटिलता,
ऐसे मित्र को त्यागने में ही भलाई है,
सांप की चाल सा टेढ़ा मन जिसका ।

मूर्ख सेवक और कंजूस राजा,
कुलटा स्त्री और कपटी मित्र,
हे सखा ! ये पीड़ा देनेवाले है,
इनसे दूर रहने में ही हित ।

मेरे बल पर अब चिन्ता छोड़ दो,
सब प्रकार से सहायता करूंगा तुम्हारी,
तब सुग्रीव ने कहा, हे रघुबीर ! सुनिये,
बालि का बल है बहुत ही भारी ।

फिर उसने दुन्दुभि राक्षस की हड्डियां,
और ताल के वृक्ष दिखलाये,
श्रीरघुनाथ ने बिना ही परिश्रम के,
वे ताल के वृक्ष पृथ्वी पर गिराये ।

उनका अपरिमित बल देख सुग्रीव को,
विश्वास हो गया श्रीराम के बल का,
बोला, सुख, सम्पत्ति, परिवार छोड़कर,
गुणगान करूंगा अब मैं आप का ।

शत्रु-मित्र, सुख-दुख आदि द्वन्द,
सब मायारचित हैं परर्माथत: नही,
बालि तो मेरा परम हितकारी है,
मिले आप मुझे उसके कारण ही ।

स्वप्न में भी अब उससे लड़ने पर,
बड़ा संकोच होगा मेरे मन में,
अब तो आप ऐसी कृपा कीजिये,
दिन-रात लगा रहूँ आपके भजन में ।

सुग्रीव के क्षणिक वैराग्य को देख,
धनुर्धारी श्रीरामजी बोले मुस्कुराकर,
हे सखा ! तुमने जो कहा, सत्य है,
पर मैने जो कहा, रहेगा होकर ।

बालि मरेगा, तुम्हें राज्य मिलेगा,
मेरे वचन मिथ्या नही होते,
काकभुशुण्डिजी कहते हैं, हे गरूड़राज,
श्रीराम मदारी से, सबको नचाते ।

तब बालि के पास भेजा सुग्रीव को,
सुग्रीव गरजा तो बालि पीछे दौड़ा,
उसके चरण पकड़, पत्नी तारा ने समझाया,
दोनों भाईयों को बल समझिये न थोड़ा ।

कौसलाधीश दशरथजी के पुत्र वे दोनों,
काल को भी जीत सकते हैं रण में,
बालि बोला, श्रीरामजी समदर्शी प्रभु हैं,
उनके हाथों परमपद मिलेगा पल में ।

ऐसा कह वह महान अभिमानी बालि,
सुग्रीव को तिनके सा जान चला,
बहुत ही धमकाया सुग्रीव को उसने,
घूंसा मारकर बड़े जोर से गरज़ा ।

वज्र सा लगा वह घूंसा उसको,
व्याकुल होकर तब सुग्रीव भागा,
बोला, मेरा भाई नही, काल है,
हे रघुवीर ! मैने पहले की कहा था ।

प्रभु बोले, तुम दोनों एक से हो,
इसी कारण मैने नही मारा उसे,
फिर सुग्रीव को जो छुआ उन्होनें,
उसका शरीर हो गया वज्र के जैसे ।

फिर उसके गले में माला डाल,
भारी बल देकर पुन: भेजा उसे,
दोनों में अनेक प्रकार से युद्ध हुआ,
श्रीराम देख रहे थे उन्हें आड़ से ।

बहुत से छल-बल किये सुग्रीव ने,
पर अन्त में हृदय से हार गया,
तब तानकर बाण मारा श्रीराम ने,
व्याकुल हो बालि नीचे गिर गया ।

किन्तु प्रभु को सम्मुख देख उठा,
श्याम शरीर, जटा बनाये हैं सिर पर,
लाल नेत्र, धनुष और बाण लिये हैं,
मन मे रख लिया उन्हें देख कर ।

हृदय में प्रीति पर वचन कठोर,
बोला, धर्म रक्षा हेतु आपने लिया अवतार,
मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा आपको,
व्याध की तरह छिपकर किया वार ।

अनुज वधु, बहिन, पुत्रवधु और कन्या,
बुरी दृष्टि से जो देखता इनको,
प्रभु ने कहा, उसे मारने से,
कुछ भी पाप न लगता उसको ।

हे मूढ़ ! तुझे अत्यंत अभिमान है,
तूने पत्नी की सीख भी सुनी नही,
सुग्रीव को मेरे आश्रित जानकर भी,
उसे मारने की जिद छोड़ी नही ।

बालि ने कहा, हे स्वामी ! आपसे,
मेरी चतुराई नही चल सकती,
क्या अब भी मैं पापी ही रहा,
अन्तकाल में आपकी शरण पाकर भी ।

उसके ये कोमल वचन सुन प्रभु ने,
अपने हाथ से सिर को छुआ उसके,
बोले, तुम्हारे शरीर को अचल कर दूं,
यदि अपने प्राण तुम रखना चाहते ।

बालि ने कहा, जिस गति के लिये,
मुनिजन अनेक साधन करते रहते,
वही प्रभु आप मेरे सम्मुख हैं,
अन्त समय जब ये प्राण निकलते ।

हे नाथ ! मुझ पर दयादृष्टि कर,
जो मांगता हूँ वह मुझे दीजिये,
कर्मवश जिस भी योनि में जन्म लूं,
आपके चरणों में प्रेम मुझे दीजिये ।

विनय और बल में मेरे ही समान,
इस मेरे पुत्र अंगद को स्वीकार कीजिये,
हे देवता और मनुष्यों के नाथ !
बांह पकड़ अपना दास बना लीजिये ।

श्रीरामचरणों में दृढ़ भक्ति सहित,
त्याग दिया तब शरीर बालि ने,
नगरवासी सब व्याकुल हो दौड़े,
उसकी पत्नी तारा विलाप लगी करने ।

तारा को व्याकुल देख प्रभु ने,
उसे ज्ञान दिया और माया हर ली,
कहा पांच तत्त्वों से बनी देह तो,
तुम्हारे सामने ही रखी है यहीं ।

देह अनित्य, पर जीव नित्य है,
फिर रो रही हो किस के लिये,
ज्ञान होने से, प्रभु चरणों लगी वह,
कहा, हे प्रभु ! मुझे भक्ति दीजिये ।

शिवजी कहते हैं, हे उमा ! प्रभु श्रीराम,
कठपुतली की तरह नचाते हैं सबको,
फिर आज्ञा देकर बालि का दाहकर्म,
विधिपूर्वक करवाया सुग्रीव के हाथों ।

छोटे भाई लक्ष्मण को कहा समझाकर,
जाकर सुग्रीव को दे दो राज्य,
तदानुसार अंगद को युवराज पद दिया,
और सुग्रीव को दे दिया राज्य ।

श्रीराम समान, हे उमा ! जगत में,
और कोई नही ऐसा हित करनेवाला,
जो सुग्रीव भय से व्याकुल रहता था,
बना दिया उसे वानरों का राजा ।

हृदय में ऐसा जानते हुए भी,
जो लोग त्याग देते ऐसे प्रभु को,
किस तरह उनका भला हो सकता,
क्यों न विपत्ति के जाल में फंसे वो ।

फिर सुग्रीव को बुलाकर श्रीराम ने,
बहुत प्रकार से शिक्षा दी राजनीति की,
और कहा, चौदह वर्ष गांव नही जाऊंगा,
पर्वत पर ही रहूंगा, वर्षा ऋतु आ गयी ।

राज करो तुम अंगद के साथ,
और मेरे काम का रखना ध्यान,
फिर चले प्रवर्षण पर्वत पर प्रभु,
चुना उसको अपने रहने का स्थान ।

देवताओं ने वहां एक गुफा को,
प्रभु के लिये सुन्दर सजा रक्खा था,
वे यहां आकर कुछ दिन निवास करेंगे,
पहले से ही उन्होनें सोच रक्खा था ।

जब से प्रभु ने वहां निवास किया,
तब से वन मंगल स्वरूप हो गया,
पशु-पक्षियों का शरीर धारण कर,
देवता और मुनि करते हैं सेवा ।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और राजनीति की,
कहते हैं अनेक कथाएँ लक्ष्मण को,
उमड़-घुमड़, घने, जल भरे मेघ,
बहुत सुहावने लगते हैं मन को ।

तरह-तरह की उपमायें देकर श्रीराम,
छोटे भाई लक्ष्मण को मन की कहते,
सीताजी के बिना, गरजते काले बादल,
उनके हृदय को हर्षित नही करते ।

बिजली की चमक बादल में नही रूकती,
जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नही रहती,
भरे हुए बादल नीचे को झुक जाते,
जैसे विद्या के साथ विनम्रता आ रहती ।

बूंदों की चोट पर्वत सहते हैं ऐसे,
जैसे संतजन सहते वचन दुष्टों के,
छोटी नदियां किनारे तोड़कर चलतीं,
जैसे थोड़ा सा धन पा दुष्ट इतराते ।

नीचे गिरते ही पानी गंदला हो गया,
जैसे शुद्ध जीव के माया लिपटी हो,
जल से ऐसे तालाब भर रहे हैं,
जैसे भर रहे हों सद्गुण सज्जनों को ।

नदी का जल समुद्र में जाकर,
उसी प्रकार से स्थिर हो जाता,
जैसे जीव श्रीहरि को पाकर,
आवागमन चक्र से मुक्त हो जाता ।

घास से ढ़क हरी हो गयी पृथ्वी,
जिससे रास्ते समझ नही आते,
जैसे पाखण्ड मत के प्रचार से,
सद्ग्रन्थ गुप्त-लुप्त हो जाते ।

मेढ़कों की ध्वनि ऐसी लग रही, जैसे,
विद्यार्थियों के समुदाय पढ़ रहे हो वेद,
वृक्ष हरे-भरे हो ऐसे सुशोभित हो गये,
जैसे साधक का मन, पाने पर विवेक ।

मदार और जवासा पत्ते रहित हो गये,
ज्यों सुराज से दुष्ट दूर चले जाते,
धूल कहीं खोजने पर भी नही मिलती,
जैसे क्रोध करने से सद्गुण मिट जाते ।

हरी-भरी धरती ऐसे शोभित हो रही,
जैसे धन-सम्पत्ति उपकारी पुरुष की,
जुगनु चमक रहे अंधेरे में ऐसे,
जैसे आ जुटी हो बारात दम्भियों की ।

फूट चली हैं क्यारियां वर्षा से,
जैसे निरंकुश स्त्रियां बिगड़ जाती,
पृथ्वी जीवों से भरी हो गयी,
जैसे सुराज में प्रजा बढ़ जाती ।

कभी-कभी तेज हवा चलने से,
बादल जहां-तहां गायब हो जाते,
जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से,
कुल के सुधर्म नष्ट हो जाते ।

कभी दिन में घोर अंधकार छा जाता,
कभी चहूं ओर प्रकाश नजर आता,
जैसे कुसंग से नष्ट हो जाता ज्ञान,
और सुसंग पा फिर उत्पन्न हो जाता ।

हे लक्ष्मण ! देखो, वर्षा ऋतु बीत कर,
परम सुन्दर शरद-ऋतु आ गयी,
मानों वर्षा ऋतु ने बुढ़ापा प्रकट किया,
फूले हुए कास से पृथ्वी छा गयी ।

अगस्त्य तारे ने उदित होकर,
सोख लिया है मार्ग के जल को,
जिस प्रकार संतोष आने पर,
सोख लेता है मन से लोभ को ।

निर्मल जल नदी-तालाबों में,
इस प्रकार पा रहा है शोभा,
जैसे मद और मोह रहित,
पवित्र हृदय होता संतों को ।

सूख रहा नदी-तालाबों का जल,
जैसे विवेकी पुरुष त्याग रहे ममता,
शरद ऋतु जान खंजन पक्षी आ गये,
जैसे समय पा प्रकट होना पुण्यों का ।

न धूल, न कीचड़, धरती निर्मल,
जैसे नीति निपुण राजा की करनी,
जल कम होने से मछलियां व्याकुल हैं,
जैसे धन के बिना कुटुम्बी की बैचेनी ।

बिना बादलों का निर्मल आकाश,
इस तरह हो रहा है शोभित,
जैसे सब आशाओं को छोड़कर,
भगवद् भक्त होते हैं शोभित ।

शरद ऋतु की कहीं-कहीं पर वर्षा,
जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते,
राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी क्रमशः,
विजय, तप, व्यापार और भिक्षा को जाते ।

अथाह जल में ऐसे सुखी हैं मछलियां,
ज्यों भक्त प्रभु की शरण लेने पर,
कमलों से तालाब ऐसे शोभा दे रहे,
जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर ।

भौरें गुंजार, पक्षी चहक रहे हैं,
चकोर टकटकी लगाये देख रहा चन्द्रमा को,
रात्रि देख चकवे को ऐसा दुख हो रहा,
जैसे दूसरे की सम्पत्ति देख दुष्ट को ।

वर्षा बीत गयी, शरद ऋतु आ गयी,
पर कोई खबर न मिली सीता की,
एक बार कैसे भी पता पाऊं तो,
काल को भी जीतकर ले आऊँ जानकी ।

कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो,
अवश्य ही ले आऊंगा उन्हें कैसे भी,
राज्य, खजाना, स्त्री और नगर पाकर,
सुधि भुला दी मेरी, सुग्रीव ने भी ।

हे तात ! जिस बाण से बालि मारा था,
मारूं उसी बाण से उस मूढ़ को,
हे उमा ! क्या कभी क्रोध आ सकता,
मद और मोह छुड़ानेवाले प्रभु को ।

श्रीरघुनाथ चरणों में प्रीति है जिनकी,
वे ही जानते प्रभु की लीला को,
लक्ष्मणजी ने जब प्रभु को क्रोधयुक्त जाना,
हाथ में ले लिया बाण चढ़ा धनुष को ।

तब दया की सीमा श्रीरघुनाथजी ने,
कहा छोटे भाई लक्ष्मणजी से,
हे तात ! सुग्रीव को मारना नही है,
बस भय दिखलाकर ले आओ उसे ।

उधर पवनकुमार हनुमानजी ने विचारा,
कि सुग्रीव ने श्रीरामजी का कार्य भुलाया,
उनके पास जा, चरणों में सिर नवा,
चारों प्रकार की नीति कह उन्हें समझाया ।

बहुत ही भय माना सुग्रीव ने,
कहा विषयों ने हर लिया ज्ञान को,
अब जहां-जहां वानरों के यूथ रहते हैं,
भेजो तुरंत ही वहां बुला दूतों को ।

कहला दो, जो न आगया पखवाड़े में,
मेरे हाथों वध होगा उस-उसका,
तुरंत हनुमानजी ने दूतों को बुलवाकर,
भय, प्रीति और नीति दिखलाकर भेजा ।

उसी समय लक्ष्मणजी वहां आये,
वानर भागे उनका क्रोध देखकर,
धनुष पर बाण चढ़ाकर बोले लक्ष्मणजी,
अभी राख कर दूंगा, नगर जलाकर ।

नगर को व्याकुल देख अंगद आये,
सिर नवा क्षमा-भावना की लक्ष्मणजी से,
उधर सुग्रीव ने हनुमानजी को बुलाकर,
कहा, विनती करो जाकर लक्ष्मणजी से ।

वन्दना करी पवनपुत्र ने लक्ष्मणजी की,
विनती कर उन्हें ले आये महल में,
वानरराज सुग्रीव ने चरणों मे सिर नवाया,
गले से लगा लिया उन्हें लक्ष्मणजी ने ।

सुग्रीव ने कहा, हे नाथ ! सुनिये,
और कोई मद नही विषय के समान,
मुनियों का मन भी मोह लेता,
फिर मुझ विषयी जीव का क्या बखान ।

सुग्रीव के विनययुक्त वचन सुनकर,
लक्ष्मणजी ने उन्हें बहुत तरह से समझाया,
तब जिस तरह से दूत भेजे गये,
हनुमानजी ने वह सब हाल सुनाया ।

तब अंगद आदि वानरों को साथ ले,
और लक्ष्मणजी को सबके आगे कर,
सुग्रीव चले जहां श्रीरघुनाथजी थे,
और कहने लगे चरणों में सिर रखकर ।

अत्यंत प्रबल है आपकी माया, हे नाथ !
तभी छूटती है जब आप दया करते,
मैं तो पामर पशु, उसमें भी वानर,
देवता, मनुष्य, मुनि भी वश में रहते ।

स्त्री का नयन-बाण जिसको न लगा,
और क्रोध के वश जो नही होता,
हे रघुनाथजी ! वह तो आप ही के समान है,
जिसके मन में कभी लोभ न होता ।

साधन से नही मिलते ये गुण,
आप ही की कृपा से पाते इन्हें,
हे प्रभु ! अब मुझ पर कृपा कीजिये,
वे धन्य हैं आपकी कृपा मिले जिन्हें ।

तब श्रीरघुनाथजी मुसकराकर बोले,
प्यारे हो तुम मुझे भरत से,
अब मन लगाकर वही उपाया करो,
सीता की खबर मिले जिस से ।

तभी वानरों के झुंड आ गये,
जिनकी संख्या गिनी नही जा सकती,
चरण-वन्दना, प्रभु के दर्शन कर,
प्यास बुझा रहे अपनी आंखों की ।

एक भी ऐसा वानर नही था,
प्रभु ने जिससे कुशल पूछी नही,
विश्वरूप और सर्व-व्यापक प्रभु के लिये,
इसमें कुछ भी बड़ी बात नही ।

तब सुग्रीव ने सबको समझाकर कहा,
यह श्रीराम का कार्य और निहोरा मेरा,
चारों ओर जा, जानकीजी को खोजो,
लौटकर आओ और बताओं जो देखा ।

महीने भर में लौटकर आ जाना,
पर बिना पता लगाये जो लौटेगा,
हे वानरों ! सब ध्यान से सुन लो,
मेरे द्वारा उसे मरवाते ही बनेगा ।

चल दिये तुरंत ही सभी वानर,
तब सुग्रीव ने प्रधान योद्धाओं को बुलवाया,
नल-नील, अंगद, जाम्बवान और हनुमान,
उन्हें दक्षिण दिशा की ओर भिजवाया ।

कहा, तुम सब दक्षिण दिशा को जाओ,
सब किसी से सीताजी का पता पूछना,
मन, वचन, कर्म से सब उपाय सोच,
प्रभु का कार्य शीघ्र ही सफल करना ।

धूप पीछे से, अग्नि सामने से,
हे वानर वीरो ! सेवन करनी चाहिये,
परन्तु स्वामी की सेवा तो हर पल,
छल छोड़, सर्व-भाव से करनी चाहिये ।

विषयों की ममता-आसक्ति को छोड़,
करना चाहिये परलोक का सेवन,
देह-धारण करने का यही फल है,
सब छोड़ किया जाय प्रभु का भजन ।

प्रभु-चरणों में सिर नवा चले सब,
सबके बाद हनुमानजी ने सिर नवाया,
अन्तर्यामी प्रभु ने कार्य विचार कर,
पवनसुत हनुमान को अपने पास बुलाया ।

अपने कर-कमल से प्रभु ने,
स्पर्श किया हनुमान के सिर का,
अपने हाथ की अंगूठी उतारकर दी,
और कहा उन्हें सेवक जानकर अपना ।

बहुत प्रकार से समझाना सीता को,
मेरा बल, विरह कह शीघ्र लौट आना,
प्रभु को हृदय में धारण कर हनुमान,
अपना जीवन सफल करने हुए रवाना ।

देवों के रक्षक प्रभु सब जानते हैं,
पर कर रहे हैं राजनीति की रक्षा,
उधर सब वानर, नदी, तालाब, पर्वत,
और खोज रहे हैं हर एक कन्दरा ।

कोई राक्षस जो पड़ जाता सामने,
एक ही चपत में प्राण हर लेते,
सब वनों और पर्वतों को खोज रहे,
कोई मुनि मिले तो पूछने लगते ।

इतने में ही सबको प्यास लगी,
पर पानी न मिला कहीं उनको,
पहाड़ी पर चढ़ जब हनुमानजी ने देखा,
तो एक गुफा दिखलायी दी उनको ।

कुछ पक्षी उसके ऊपर उड़ रहे थे,
कुछ कर रहे थे प्रवेश गुफा में,
हनुमानजी वहां सब वानरों को ले गये,
और प्रवेश किया गुफा में उन्होनें ।

गुफा में एक उपवन और तालाब था,
एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी दिखी मन्दिर में,
सिर नवा, पूछने पर वृत्तांत कह सुनाया,
तब वानरो से जलपान को कहा उसने ।

जलपान कर जब वानर लौटकर आये,
उसने अपनी कथा कह सुनायी उनको,
और कहा अब मैं वहा जाऊंगी,
श्रीरघुनाथजी के दर्शन जहां मिलेंगे मुझको ।

आंखे मूंद लो तुम लोग अपनी,
और बाहर जाओ गुफा को छोड़कर,
और कहा, तुम सीताजी को पा जाओगे,
निराश न होओ, कुछ और सोचकर ।

फिर वानरों ने जब आंख खोली तो,
पाया स्वयं को समुद्र तीर पर,
और उस स्त्री ने श्रीराम चरणों में,
पाया प्रभु की अचल भक्ति का वर ।

यहां वानर मन में विचार कर रहे,
अवधि बीती पर कुछ काम न बना,
अब लोटकर भी हम क्या करेंगे,
सीताजी की कोई खबर लिये बिना ।

दोनों ही प्रकारसे मृत्यु होगी,
वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे हमें,
अंगद कह रहे, मेरा मरण निश्चित है,
श्रीराम ने ही पहले बचाया था मुझे ।

अंगद के वचन सुन वानर वीरों के,
बहने लगा जल नेत्रों से,
क्षणभर के लिये हो गये सोचमग्न,
फिर कहने लगे वे उनसे ।

हे युवराज ! सीताजी की खोज लिये बिना,
लौटेंगे नही हम लोग कैसे भी,
ऐसा कह, लवण सागर के तट पर जा,
कुश बिछा कर बैठे गये सभी ।

अंगद का दुख देख कहने लगे जाम्बवान्,
हे तात ! मनुष्य न मानो श्रीरामजी को,
निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा हैं वे,
उनका सेवक जान बड़भागी समझो खुद को ।

जब जाम्बवान् ये सब कह रहे थे,
इनकी बातें कन्दरा में सुनी सम्पाति ने,
बाहर निकल उसने बहुत से वानर देखे,
बोला बहुत आहार भेज दिया ईश्वर ने ।

उसकी वाणी सुन व्याकुल हो गये वानर,
सोचा, आज अवश्य ही मरण होगा,
अंगद ने कहा, श्रीराम के लिये मरने वाले,
कौन उस जटायु के समान धन्य होगा ।

जटायु का नाम सुन, निकट आया सम्पाति,
और अभयदान दिया सब वानरों को,
फिर जब वानरों से पूछा उसने,
जटायु की सब कथा कह सुनायी उसको ।

भाई जटायु की करनी सुन सम्पाति ने,
बहुत प्रकार प्रभु की महिमा की वर्णन,
फिर कहा, मुझे समुद्र किनारे ले चलो,
वहां जाकर जटायु के लिये करूँ तर्पण ।

और कहा, इस सहायता के बदले,
मैं तुम्हें सीताजी का बतला दूंगा पता,
फिर समुद्र किनारे तर्पण क्रिया कर,
कहने लगा वानरों को वह अपनी कथा ।

बोला, एक बार उठती जवानी में हम,
दोनों भाई उड़ सूर्य के निकट गये,
वह जटायु तो लौट गया तेज के कारण,
पर मुझ अभिमानी के पंख जल गये ।

चीख कर गिर पड़ा मैं जमीन पर,
चन्द्रमा नामक मुनि ने करी दया,
बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सुनाकर,
मेरा देहजनित अभिमान छुड़ा दिया ।

उन्होंने कहा था कि त्रेतायुग में,
साक्षात परब्रह्म करेंगे नर-तन धारण,
उनकी स्त्री राक्षस राजा हर ले जायेगा,
उन्हें ढूंढतें उनके दूत फिरेंगे वन-वन ।

पवित्र हो जायेगा उनसे मिलने पर तू,
और उग आयेंगे फिर पंख तेरे,
मुनि की वह वाणी आज सत्य हुई,
अब प्रभु का कार्य करो, सुनो वचन मेरे ।

त्रिकुट पर्वत पर बसी है लंका,
वहां रहता है स्वभाव से निडर रावण,
वहीं अशाके नामक उपवन में सीताजी,
बैठी हुई हैं सोच में मग्न ।

गिद्ध की दृष्टि अपार होने के कारण,
मैं देख सकता हूँ, तुम नही देख सकते,
क्या करूँ, मैं बूढ़ा हो गया नही तो,
कुछ न कुछ अवश्य बनता मुझसे करते ।

सौ योजन समुद्र बांध सके, बुद्धिमान हो,
वही श्रीरामजी का कार्य कर सकेगा,
जिनकी कृपा से मेरे पंख उग आये,
उन्हीं की कृपा से तुम्हारा काम सधेगा ।

पापी भी जिनका नाम स्मरण कर,
तर जाते अत्यंत अपार भवसागर से,
तुम उनके दूत हो, कायरता त्याग,
उपाय करो, धर उन्हें हृदय में ।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं, हे गरूड़जी !,
ऐसा कह जब गिद्ध चला गया,
विस्मित वानर अपना बल जांचने लगे,
पर समुद्र पार जाने में संदेह किया ।

जाम्बवान् बोले जब खरारि वामन बने थे,
तब मैं जवान था, अब बूढ़ा हो गया,
अंगद ने कहा, पार तो चला जाऊंगा,
पर वापस लौटने में संदेह व्यक्त किया ।

तब जाम्बवान् ने हनुमानजी से कहा,
हे हनुमान ! चुप क्यों साधी है तुमने,
तुम पवनपुत्र हो, बल में पवन से,
बुद्धि, विवेक और ज्ञान भरा तुममें ।

ऐसा क्या कठिन है जग में,
जो, हे तात ! हो सके न तुमसे,
श्रीराम काज के लिये जन्में हो तुम,
सुनते ही हनुमानजी हो गये पर्वत से ।

तेजोमय और सोने का सा रंग,
मानों दूसरे पर्वतराज सुमेरू हों,
बार-बार सिंहनाद कर कहने लगे,
खेल-खेल में बांध सकता हूँ इसको ।

समुद्र को लांघ, रावण को मार,
ला सकता हूँ त्रिकुट पर्वत उखाड़ कर,
हे जाम्बवान् ! बतलाइये क्या करना है,
जो अचित हो कहिये मुझे समझाकर ।

जाम्बवान् बोले, बस इतना ही करो,
सीताजी को देख, ले आओ उनकी खबर,
तब श्रीरामजी जानकीजी को ले आयेंगे,
खेल के लिये हो लेंगे संग वानर ।

राक्षसों का संहार करके श्रीराम,
सीताजी को अपने संग वापस ले आयेंगे,
तब देवता और नारदादि मुनि प्रभु के,
त्रिलोक पवित्र करने वाले यश को गायेंगे ।

श्रीरघुनाथजी के यश का गुण-गान,
भवरूपी रोग की है अचूक दवा,
जो स्त्री और पुरुष इसे सुनेंगे,
सब तरह मनोरथ सिद्ध होगा उनका ।

मासपारायण, तेईसवां विश्राम

(किष्किन्धाकाण्ड समाप्त)

'सुन्दरकाण्ड'

शान्त, सनातन, प्रमाणों से परे,
निष्पाप, मोक्षरूप, परम शान्ति देने वाले,
ब्रह्मा, शम्भु और शेषजी से सेवित,
राजाओं के शिरोमणि, राम कहलाने वाले ।

वेदान्त द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक,
सबसे बड़े, समस्त पापों को हरने वाले,
हे जगदीश्वर ! आपकी वन्दना करता हूँ,
माया से मनुष्य रूप में दीखने वाले ।

सत्य कहता हूँ मैं, हे रघुनाथजी,
सर्वज्ञ हैं आप, सबके हैं अन्तरात्मा,
कोई और इच्छा नही मेरे हृदय में,
बस आपकी पूर्ण भक्ति की एक कामना ।

अतुल बल के धाम, हे गुण-निधान !,
ज्ञानियों में अग्रगण्य, हे पवनपुत्र हुनमान !,
वानरों के स्वामी श्रीरघुनाथजी के प्रिय भक्त,
हे दैत्यों के नाशक ! आपको प्रणाम ।

जाम्बवान् के सुन्दर वचन सुने जो,
हनुमानजी के हृदय को बहुत ही भाये,
सबको उनके लौटने की राह देखना कह,
प्रभु को स्मरण कर, उन्होंने कदम बढ़ाये ।

समुद्र के तीर पर एक पर्वत था,
अनायास ही वे जा चढ़े उस पर,
बारम्बार स्मरण कर श्रीरघुवीर का,
बड़े वेग से उछले वे ऊपर ।

जिस पर्वत पर से वे उछले,
तुरंत जा धसां वह पाताल में,
जैसे प्रभु का अबोध बाण चलता है,
हनुमानजी चले उसी वेग में ।

श्रीरामजी का दूत समझ समुद्र ने,
मैनाक पर्वत से विश्राम देने को कहा,
हनुमानजी ने प्रणाम कर कहा उससे,
प्रभु का काम किये बिना विश्राम कहाँ ।

उनकी बल-बुद्धि को जानने के लिये,
देवताओं ने सापों की माता को भेजा,
सुरसा ने आकर कहा हनुमानजी से,
देवताओं ने आज मेरे लिये भोजन भेजा ।

यह सुन पवनपुत्र हनुमानजी बोले,
प्रभु श्रीराम का काम कर आने दो,
फिर मैं स्वयं तुम्हारे पास आ जाऊंगा,
हे माता ! अभी तुम मुझे जाने दो ।

जब किसी तरह न मानी सुरसा,
तो हनुमानजी बोले, लो खा लो मुझे,
सुरसा ने योजन भर मुख जो खोला,
हनुमानजी हो गये सुरसा से दूने ।

उसने जो सोलह योजन का मुख किया,
हनुमानजी हो गये बत्तीस योजन के,
ज्यों-ज्यों वह विस्तार बढ़ाती थी,
हनुमानजी लगे दुगना रूप दिखलाने ।

जब सुरसा ने सौ योजन मुख फैलाया,
बहुत छोटा रूप धर लिया उन्होंने,
मुख में घुस तुरंत बाहर निकल आये,
और सिर नवा लगे विदा मांगने ।

सुरसा बोली, तुम्हारी बल-बुद्धि जांच ली,
जिसके लिये देवताओं ने भेजा था,
तुम श्रीरामजी का सब कार्य करोगे,
हनुमानजी चले उससे यह आशीर्वाद पा ।

समुद्र में एक राक्षसी रहती थी,
परछाई पकड़ लेती थी उड़ने वालों की,
इससे वे समुद्र में गिर पड़ते थे,
और वह उन्हें खा लेती थी ।

यही कपट उसने हनुमानजी से किया,
उसे मार हनुमानजी समुद्र पार गये,
सामने एक विशाल पर्वत देख कर,
हनुमानजी दोड़ कर उस पर चढ़ गये ।

पर्वत पर चढ़ उन्होनें लंका देखी,
बहुत बड़ा किला, कुछ कहा नही जाता,
ऊंचे किले के चारो ओर समुद्र है,
और सोने का बना किले का परकोटा ।

बहुत से सुन्दर घर हैं नगर में,
चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियां,
हाथी-घोड़े, रथ-खच्चर, बलवती सेना,
वन-उपवन, तालाब, कुएं और बावलियां ।

मनुष्य, नाग, देवता और गन्धर्व कन्याएं,
हर लें जो मुनियों के भी मनों को,
कहीं पर्वताकार मल्ल गरज रहे हैं,
ललकार रहे जो एक-दूजे को ।

भयंकर योद्धा यत्न कर सावधानी से,
कर रहे हैं उस नगर की रक्षा,
उन्हें देख विचार किया पवनपुत्र ने,
छोटा रूप रख रात्रि में प्रवेश का ।

मच्छर के समान छोटे हो हनुमानजी,
चले प्रभु श्रीराम का स्मरण कर,
द्वार पर लंकिनी नामक राक्षसी थी,
बोली, मुझसे पूछे बिना चले किधर ।

हनुमानजी ने उसे एक घूंसा मारा,
खून उलटती, गिर पड़ी पृथ्वी पर,
फिर अपने को संभालकर उठी वो,
और विनती करने लगी हाथ जोड़कर ।

बोली, जब ब्रह्माजी ने वर दिया था,
बतलायी राक्षसों के विनाश की पहचान,
कहा, जब तूझे बंदर व्याकुल कर दे,
तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान ।

हे तात ! मेरे बड़े पुण्य हैं,
कि आज आपको नेत्रों से देखा,
स्वर्ग और मोक्ष से बढ़कर सुख,
क्षण मात्र के सतसंग से होता ।

श्रीरघुनाथजी को हृदय में रक्खे हुए,
नगर में प्रवेश कर कीजिये सब काम,
उसके लिये सब सहज-सुलभ हो जाता,
जिस पर कृपादृष्टि कर देते श्रीराम ।

तब हनुमानजी ने बहुत ही छोटे होकर,
प्रवेश किया उस लंका नगर में,
एक-एक महल की खोज कर वे,
फिर गये लंकापति रावण के महल में ।

महल में रावण शयन किये था,
पर जानकीजी दिखायी दी न वहां,
फिर देखा उन्होनें एक सुन्दर महल,
भगवान का एक मन्दिर बना था जहां ।

श्रीराम के धनुष-बाण से अंकित,
तुलसी के वृक्ष समूहों से शोभित,
उस राक्षसों की नगरी में मन्दिर देख,
मन-ही-मन हनुमानजी हो रहे चकित ।

तभी राम-नाम उचारते विभीषण जी जागे,
उन्हें सज्जन जान हर्षित हुए हनुमानजी,
सोचा, हठ करके इनसे परिचय करूंगा,
सो ब्राह्मण बन उनसे मिले हनुमानजी ।

विभीषणजी ने प्रणाम कर कुशल पूछी,
बोले, हे ब्राह्मणदेव ! कहिये अपनी कथा,
क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं,
या स्वयं प्रभु करने आये कृपा ।

तब श्रीरामचन्द्रजी की सारी कथा कह,
हनुमानजी ने अपना नाम बताया,
सुनते ही दोनों पुलकित हो गये,
मन प्रेम और आनन्द से भर आया ।

विभीषण बोले, मैं यहां ऐसे रहता हूँ,
जैसे जीभ रहती दांतों के बीच में,
मुझे अनाथ जानकर क्या श्रीरघुनाथ,
ले लेंगे कभी अपनी शरण में ।

तामसी शरीर, कुछ साधन नही बनता,
न मन में प्रेम श्रीराम चरणों में,
लेकिन अब मुझे विश्वास हो गया,
क्योंकि श्रीराम कृपा बिन संत नही मिलते ।

श्रीहनुमान ने कहा, प्रभु की रीत यही हैं,
वे सेवक से सदा प्रेम किया करते,
मुझे देखो, चंचल वानर, सब तरह नीच,
सुबह मुंह देखने वाले भोजन नही पाते ।

हे सखा ! मुझ जैसे अधम पर भी,
प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने की है कृपा,
जो उन जैसे कृपालु को भुला दे,
वो दु:ख में क्यों न रहे फंसा ।

फिर जिस प्रकार वहां जानकीजी रहती थीं,
विभीषणजी ने कही सब वह कथा,
हनुमानजी ने कहा वे देखना चाहते हैं,
विभीषणजी ने बताया, कैसे और करें क्या ।

मसक-सरीखा रूप धर गये अशोक वन,
प्रणाम किया मन ही में उन्हें देखकर,
तन दुबला, सिर पर जटाओं की वेणी,
हृदय में श्रीरघुनाथ का जाप निरन्तर ।

उसी समय वहां रावण आया,
बहुत तरह से समझाया सीताजी को,
कहा, सब रानियों को दासी बना दूंगा,
एक बार मेरी ओर तुम देखो तो ।

प्रभु का स्मरण, तिनके की आड़ कर,
वे बोली, रे दुष्ट, दूर हो जा,
तुझे श्रीरघुवीर के बाण की खबर नही,
मुझे हर लाया तुझे आती नही लज्जा ।

सुनकर सीताजी के कठोर वचन,
तलवार निकाल रावण बोला गुस्से से,
सीता ! तू ने मेरा अपमान किया है,
तेरा सिर काट डालूंगा कृपाण से ।

हे सुमुखि, जल्दी मेरी बात मान ले,
वरना हाथ धोना पड़ेगा जीवन से,
सीताजी ने कहा, हे दशग्रीव सुन,
मेरा सच्चा प्रण कहती हूँ तुझ से ।

प्रभु की श्याम कमल की माला सी,
और हाथी की सूंड सी भुजा,
या तो वो ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी,
या वार सहूंगी तेरी कृपाण का ।

फिर वे बोलीं, हे चन्द्रहास (तलवार),
मेरी विरह की अग्नि हर ले,
तेरी ठंडी और तेज धार है,
मेरे दुख के बोझ को हर ले ।

यह सुनते ही रावण मारने दौड़ा,
पर मन्दोदरी ने नीति कह समझाया,
तब रावण ने सब राक्षसियों को बुलाकर,
सीताजी को भय दिखाने को बताया ।

और कहा, महीने में ना माने तो,
मैं मार डालूंगा तलवार से इसे,
उधर रावण के जाने के बाद,
सीताजी को डराना शुरू किया उन्होंने ।

उनमें एक त्रिजटा नामक राक्षसी थी,
श्रीराम-चरणों में प्रीति थी उसकी,
उसने सबको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया,
कहा, करो तुम सेवा सीता की ।

बोली, स्वप्न में मैने देखा है,
एक वानर ने लंका जला दी,
रावण नंगा हैं, गदहे पर सवार,
सिर मुंडा, बीसों भुजाएं कटी उसकी ।

इस प्रकार यमपुरी जा रहा वो,
और लंका पायी है विभीषण ने,
नगर में श्रीरामचन्द्रजी की फिरी दुहाई,
बुलवा भेजा सीताजी को प्रभु ने ।

निश्चय के साथ कहती हूँ मैं,
कुछ ही दिनों में यह सत्य होगा,
सारी लंका राक्षस-विहीन हो जायेगी,
सीताजी का श्रीराम से मिलन होगा ।

सब राक्षसियां यह सुन डर गयीं,
और गिर पड़ी सीताजी के चरणों पर,
उधर सीताजी सोच रही कि रावण,
मार डालेगा महीना बीत जाने पर ।

हाथ जोड़, वे बोलीं त्रिजटा से,
हे माता ! जल्दी कोई ऐसा उपाय कर,
जिससे मैं यह शरीर छोड़ सकूं,
यह विरह अब भार हो चला मुझ पर ।

काठ लाकर चिता बना सजा दे,
फिर उसमें हे माता ! आग लगा दे,
कौन सुने रावण की ये बातें,
तू मेरी प्रीति को सच कर दे ।

बहुत तरह समझाया त्रिजटा ने,
समझा-बुझा शान्त किया सीता को,
कहा, रात्रि में आग नही मिलेगी,
फिर चली वह अपने घर को ।

सीताजी सोच रहीं, विधाता विपरीत है,
न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी,
आकाश में अंगारे दे रहे दिखायी,
पर पृथ्वी पर आता नही एक भी ।

हे अशोक वृक्ष ! मेरी विनती सुन,
मेरा शोक मिटा, अपना नाम सत्य कर,
वह क्षण हनुमानजी का कल्प सा बीता,
सीताजी को विरह से व्याकुल देखकर ।

तब हनुमानजी ने विचार कर हृदय में,
अंगूठी डाल दी, सीताजी के आगे,
रामनाम से अंकित वह अंगूठी देखकर,
सीताजी के मन में कई विचार जागे ।

वे सोच रहीं, श्रीरघुनाथ तो अजेय है,
कौन जीत सकता है भला उनको,
और माया के उपादान से सर्वदा रहित,
बनाया नही जा सकता इस अंगूठी को ।

तभी श्रीराम गुणगान करने लगे कपि,
सुनते ही सीताजी का दु:ख भागा,
वे मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं,
हनुमानजी ने आदि से अन्त कह डाला ।

सीताजी ने उन्हें सामने आने को कहा,
उन्हें देख सीताजी का बड़ा आश्चर्य हुआ,
कैसे वे श्रीराम से मिले पूछने पर,
हनुमानजी ने कह सुनायी सब कथा ।

हनुमानजी के प्रेमयुक्त वचन सुनकर,
सीताजी के मन में विश्वास हो गया,
पुलकित शरीर, जल भर आया नेत्रों में,
पूछा, श्रीराम ने मुझे क्यों भुला दिया ।

तब हनुमानजी ने संदेशा कह सुनाया,
बोले श्रीरामजी ने कहा है, हे सीते !,
तुम्हारे वियोग में सब प्रतिकूल हो गया,
अग्नि समान लगते हैं वृक्षों के पत्ते ।

मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते,
त्रिविध हवा लगती सांप के श्वास समान,
अपने मन का दु:ख मैं किससे कहूं,
इस दु:ख का नही किसी को भान ।

हे प्रिये ! हमारे प्रेम का तत्त्व,
बस एक मेरा ही मन जानता,
वो मन तुम्हारे साथ है हरदम,
मेरे प्रेम का बस सार है इतना ।

यह सुन, प्रेम-मग्न हो गयीं सीताजी,
कुछ सुध न रही उन्हें अपनी,
तब हनुमानजी ने धैर्य धरने का कहा,
और बोले, हे माता ! सुनो मेरी कथनी ।

पतंगों के समान हैं राक्षसो के समूह,
और श्रीरघुनाथ के बाण अग्नि समान,
राक्षसों को जला हुआ ही समझो,
प्रभु पल में ले लेंगे इनके प्राण ।

मैं आपको अभी यहां से लिवा जाऊँ,
पर आज्ञा नही है, मुझे प्रभु की,
हे माता ! बस थोड़ा सा धैर्य धरो,
वानरों सहित शीघ्र यहां आवेंगे रामजी ।

ले जायेंगे आपको, राक्षसों को मारकर,
नारद आदि मुनि उनका यश गायेंगे,
सीताजी बोलीं, तुम जैसे नन्हें वानर,
कैसे विकट राक्षसों को मार पायेंगे ।

तब यह सुनकर हनुमानजी ने,
अपना शरीर बड़ा कर प्रकट किया,
सुमेरू सा, शत्रुओं को डराने वाला,
जिसे देख सीताजी ने विश्वास किया ।

फिर छोटे बन गये हनुमानजी,
बोले, वानरों में बहुत बुद्धि बल नही होता,
लेकिन प्रभु श्रीराम की कृपा से,
छोटा सर्प भी गरूड़ को खा सकता ।

हनुमानजी के भक्तिमय ये वचन सुनकर,
सीताजी ने आशीर्वाद दिया उनको,
हे पुत्र ! तुम अजर, अमर होओ,
श्रीरामजी की अपार कृपा मिले तुमको ।

सुनते ही प्रेम-मग्न हो गये हनुमानजी,
बारम्बार सीताजी के चरणों में सिर नवाया,
बोले, हे माता ! आपका आशीर्वाद अमोघ है,
मैने अपने जीने का फल पाया ।

फिर सीताजी की आज्ञा लेकर वे,
फल खाने, वृक्षों को तोड़ने लगे,
वन के रखवालों को मार भगाया,
वे जाकर रावण को पुकारने लगे ।

हे नाथ ! एक बड़ा भारी बंदर आया है,
जिसेन उजाड़ डाली है अशोक वाटिका,
फल खाये, उखाड़ डाला वृक्षों को,
रखवालों को मसल-मसलकर दे मारा ।

रावण ने कुछ योद्धाओं को भेजा,
हनुमानजी ने उन्हें भी मार डाला,
तब रावण ने अक्षयकुमार को भेजा,
हनुमानजी ने उसे भी मार डाला ।

पुत्र का वध सुनकर रावण ने,
अपने ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद को भेजा,
कहा, मारना नही, उस बंदर को तुम,
पकड़ लाना, देखें है वो कहाँ का ।

इन्द्र को जीतने वाला मेघनाद चला,
भाई की मृत्यु से क्रोधित था वो,
उसे देख कटकटा कर दौड़े हनुमानजी,
एक वृक्ष उखाड़, तोड़ दिया रथ को ।

रथ को तोड़ मेघनाद को नीचे पटका,
साथी योद्धाओं को मसल-मसलकर मारा,
उन्हें मार फिर लड़ने लगे मेघनाद से,
और बड़े जोर से उसे घूसां मारा ।

क्षण भर को मूर्छित हो गया मेघनाद,
फिर उसने बहुत सी माया रची,
पर पवनमुत्र उससे जीते नही जाते,
हनुमानजी के आगे उसकी एक न चली ।

अन्त में उसने ब्रह्मास्त्र चलाया,
तब हनुमानजी ने मन में विचार किया,
यदि मैं ब्रह्मास्त्र को नही मानता तो,
मिट जायेगी उसकी अपार महिमा ।

ब्रह्मबाण लगने से जो गिरे हनुमानजी,
मेघनाद ने बांध लिया नागपाश में,
शिवजी कहते हैं, जो भव-बन्धन छुड़ा देते,
क्या उनका दास बंध सकता बन्धन में ।

किंतु प्रभु के कार्य के लिये,
हनुमानजी ने बंधा लिया अपने को,
बंदर का बांधा जाना सुनकर,
सब राक्षस दौड़े उन्हें देखने को ।

रावण की सभा में ले जाये गये,
जिसका ऐश्वर्य कुछ कहा नही जाता,
हाथ जोड़े, बड़ी नम्रता के साथ,
हुक्म बजाने खड़े दिक्पाल और देवता ।

लेकिन हनुमानजी निडर खड़े हैं,
जैसे सर्पों के बीच गरूड़ खड़ा हो,
दुर्वचन कह, क्रोधित हो रावण ने पूछा,
जिसके बल पर खड़ा तू, कौन है वो ।

किस अपराध के लिये मारा राक्षसों को,
क्या भय नही तुझे प्राण जाने का,
तब हनुमानजी बोले, हे रावण ! सुन,
देता हूँ कुछ परिचय अपने स्वामी का ।

जिनके बल से ब्रह्मा, विष्णु, महेश,
सृजन, पालन और संहार करते सृष्टि का,
शेषजी ब्रह्माण्ड को सिर पर धारण करते,
और अवतार ले देवताओं की करते रक्षा ।

तोड़ डाला शिवजी का कठोर धनुष,
खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि को मारा,
और जिनकी पत्नी को तुम हर लाये,
मैं दूत हूँ उन्हीं प्रभु श्रीराम का ।

खूब जानता हूँ तुम्हारी प्रभुता मैं,
सहस्त्रबाहु से हुई थी तुम्हारी लड़ाई,
और बालि से युद्ध कर तुमने,
बहुत ही पाई थी जग में बड़ाई ।

हनुमानजी के ये व्यंग्य-वचन सुनकर,
हँसकर टाल दी बात रावण ने,
फिर हनुमान जी ने कहा, हे रावण !
भूख-वश फल और वृक्ष तोड़े मैने ।

जब दुष्ट राक्षस मुझे मारने लगे,
मैने भी उन मारने वालों को मारा,
उस पर तुम्हारे पुत्र ने बांध लिया,
प्रभु का काम मैने मन में विचारा ।

सो हे रावण ! विनती करता हूँ तुमसे,
अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो,
अपने पवित्र कुल का विचार कर,
भ्रम छोड़कर प्रभु के भक्त बनो ।

समस्त चराचर को जो खा जाता,
वह काल भी भय खाता जिन से,
उनसे कदापि तुम बैर न करो,
जानकीजी को दे दो मेरे कहने से ।

शरणागत वत्सल और कृपालु रघुनाथ,
तुम्हारे अपराध भुला, ले लेंगे शरण में,
मत बनो अपने कुल के कलंक,
प्रभु चरण-कमल धारण करो हृदय में ।

रामनाम बिना वाणी शोभा नही पाती,
सम्पत्ति-प्रभुता सब व्यर्थ हो रहती,
जिन नदियों का कोई मूल स्रोत नही,
वर्षा बीत जाने पर सूखी हो रहती ।

हे रावण ! मैं प्रतिज्ञा कर कहता हूँ,
कोई नही रखता राम-विमुख को,
हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी,
बचा नही सकते तुझ राम-द्रोही को ।

मोह ही जिसके मूल में बसता,
त्याग कर दो उस अभिमान का,
और रघुकुल के स्वामी, कृपा-समुद्र,
भजन करो उन प्रभु राम का ।

पर कुछ असर हुआ न रावण पर,
उल्टे बहुत ही कुपित हो गया रावण,
जैसे ही राक्षस उन्हें मारने को दौड़े,
तभी मन्त्रियों सहित आ पहुंचे विभीषण ।

सिर नवा बहुत विनय से कहा उन्होंने,
दूत का मारना है विरूद्ध नीति के,
तब रावण ने हँसकर कहा, अच्छा तो,
भेज दिया जाय इसे अंग-भंग कर के ।

बोला, तेल में कपड़ा डुबोकर,
पूंछ में बांध, आग लगा दो,
जब बिना पूंछ के यह लौटेगा,
लिवा लायेगा अपने स्वामी को ।

मन-ही-मन मुसकाये कपीश,
उधर राक्षस आग लगाने में जुटे,
ऐसा खेल किया पवनपुत्र ने,
पूंछ बढ़ गयी, कपड़ा-तेल कम पड़े ।

तमाशा देखने आये नगर के लोग,
उन्हें ठोकर मारकर करते हैं हंसी,
फिर ढोल बजा, नगर में घूमाकर,
लगा दी उनकी पूंछ में अग्नि ।

अग्नि को जलती हुए देखकर,
तुरंत ही बहुत छोटे हो गये वो,
बंधन से निकल, अटारियों पर जा चढ़े,
राक्षस-स्त्रियां डर रहीं देख उनको ।

तभी उनचासों पवन चलने लगे,
और हनुमानजी आकाश छूने लगे बढ़कर,
विशाल देह पर बहुत फुर्तीले हैं वो,
चढ़ रहे महलों पर दौड़-दौड़कर ।

नगर जल रहा, लोग बेहाल हो रहे,
चीख-पुकार मच रही, कोई नही सहारा,
एक विभीषणजी का घर छोड़कर,
जला डाला, पल में नगर सारा ।

जिन प्रभु ने अग्नि को बनाया,
क्योंकि हनुमानजी दूत हैं उन्हीं के,
शिवजी कहते हैं, इसलिये, हे पार्वती !
हनुमानजी स्वयं अग्नि से नही जले ।

एक ओर से दूसरी ओर तक,
हनुमानजी ने सारी लंका जला दी,
फिर समुद्र में कूद पूंछ बुझाकर,
छोटा सा रूप धर चले हनुमानजी ।

श्रीजानकीजी के सामने हाथ जोड़कर,
कहा, हे माता ! कोई पहचान दीजिये,
सीताजी ने उतार कर दी चूड़ामणि,
हनुमानजी उसे हर्षपूर्वक ले चले ।

जानकीजी ने कहा, मेरा प्रणाम निवेदन कर,
हे तात ! प्रभु से इस प्रकार कहना,
यद्यपि आप सब तरह से पूर्णकाम है,
पर आपका विरद है, दया करना ।

उस विरद को याद कर, हे नाथ !
दूर कीजिये मेरे भारी संकट को,
फिर उन्हें जयन्त की घटना सुनाना,
और समझाना उनके बाण के प्रताप को ।

कहना उन्हें यदि महीने भर में न आये,
तो न पायेंगे मुझे जीवित वो,
हे तात ! किस प्रकार मैं रक्खूं प्राण,
तुम भी जाने को कह रहे हो ।

तुम्हें देख छाती कुछ ठंडी हुई थी,
फिर मुझे वही दिन और वही रात,
हनुमानजी ने उन्हें समझा, बहुत धीरज दिया,
फिर सिर नवा चले श्रीरामजी के पास ।

चलते समय जो महागर्जन किया उन्होंने,
राक्षस-स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे,
समुद्र लांघकर वे इस पार आये,
और उनकी हर्ष-ध्वनि सुनी वानरों ने ।

उनके हाव-भाव से समझ गये वानर,
सब मिलकर श्रीरघुनाथ के पास चले,
मधुवन में मधु-फल खाये उन्होंने,
उनको देख सब रखवाले भाग चले ।

जब सुग्रीव को मिला यह समाचार,
प्रभु का कार्य हो गया उसने जाना,
तभी वहां सब वानर आ गये,
सिर नवा, कार्य-सिद्धि का समाचार बखाना ।

तब सुग्रीव सहित चले सब वानर,
गिर पड़े प्रभु के चरणों में जाकर,
सब जान, प्रभु ने हनुमान से पूछा,
किस तरह सीताजी रहती हैं वहां पर ।

पवनपुत्र बोले, आपका नाम पहरा है,
ध्यान किवाड़, नेत्र लगे चरणों में,
इस तरह ताला लगा हुआ है,
भला प्राण जायं तो किस मार्ग से ।

फिर प्रभु को दी चूड़ामणि उन्होंने,
प्रभु ने लगा लिया उसे हृदय से,
फिर कपि बोले, नेत्रों में जल भरकर,
चलते समय ये वचन कहे थे मुझसे ।

छोटे भाई सहित प्रभु के चरण पकड़ना,
और कहना कि दीनबन्धु हैं आप,
मन, वचन, कर्म से आपकी चरण-अनुरागी,
फिर किस अपराध से दिया त्याग ।

हां, एक दोष मैं जरूर मानती हूँ,
वियोग होते ही प्राण न निकले,
किंतु यह तो नेत्रों का अपराध है,
पुन: दर्शन की आस जो पाले ।

विरह अग्नि, तन रूई, श्वास पवन,
सो यह तन क्षण में जल जाता,
परंतु नेत्र दर्शन के लिये जल बरसाते,
जिससे यह तन जल नही पाता ।

बहुत बड़ी है सीताजी की विपत्ति,
हे दीनदयालु ! बिना कहे ही अच्छी,
एक-एक पल कल्प समान गुजरता,
अपने भुजबल से उन्हें लाइये जल्दी ।

सीताजी की दु:ख भरी स्थिति सुनकर,
जल भर आया प्रभु के नेत्रों में,
बोले, मन, वचन, कर्म से मेरे आश्रित,
क्या स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती उसे ।

पवनपुत्र ने कहा, विपत्ति तो वही है,
हे प्रभु ! जब आपका भजन-स्मरण न हो,
राक्षसों की तो बात ही कितनी है,
जानकीजी को ले आयेंगे आप जीत शत्रु को ।

तब श्रीरघुनाथजी ने कहा, हे हनुमान !
मैं तुझसे उऋण नही हो सकता,
देवता, मनुष्य, मुनि या कोई तनधारी,
तुम समान उपकारी नही हो सकता ।

प्रभु के वचन सुन, पुलकित अंग देख,
हनुमानजी गिर पड़े उनके चरणों में,
बारम्बार 'मेरी रक्षा करो' कहते हैं,
विकल हो रहे हैं प्रभु के प्रेम में ।

प्रभु बार-बार उठाना चाहते हैं उनको,
पर हनुमानजी चरणों से उठना नही चाहते,
प्रभु का कर-कमल उनके सिर पर है,
शिवजी उसे याद कर प्रेम-मग्न हो जाते ।

फिर मन को सावधान कर शंकरजी,
कहने लगे वह अत्यंत सुन्दर कथा,
हनुमानजी को उठा हृदय से लगा कर,
प्रभु ने उन्हें अपने पास लिया बैठा ।

जब प्रभु ने पूछा, लंका कैसे जलायी,
हनुमानजी अभिमान रहित वचन बोले,
बंदर का बस यही पुरूषार्थ है,
एक डाल से दूसरी डाल पर डोले ।

मैने जो समुद्र लांघ लंका को जलाया,
राक्षसगणों को मार अशोकवन को उजाड़ा,
यह तो सब, हे रघुनाथजी ! आपका प्रताप है,
इसमें कुछ भी नही हैं मेरी प्रभुता ।

जिस पर आप प्रसन्न हों, हे प्रभु !
उसके लिये कठिन नही कुछ भी,
हे नाथ ! मुझे अपनी निश्चल भक्ति दीजिये,
तब प्रभु ने कहा, हो ऐसा ही ।

हे उमा ! जिसने श्रीरामजी का स्वभाव जान लिया,
उसे भजन छोड़, कुछ और नही सुहाता,
बसा लिया यह संवाद जिसने हृदय में,
वह श्रीरघुनाथ के चरणों में भक्ति पा जाता ।

यह सुन 'जय हो' कहने लगे वानर,
तब श्रीरामजी ने सुग्रीव को बुलाया,
कहा तुरंत ही सब वानरों को आज्ञा दो,
सबने आ प्रभु-चरणों में शीश नवाया ।

हर्षित हो प्रस्थान किया प्रभु ने,
अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए,
जानकीजी ने भी जान लिया यह,
रावण को वही-वही अपशकुन हुए ।

रीछ और वानर चले जा रहे हैं,
पर्वत और वृक्ष किये हुए धारण,
कोई आकाशमार्ग से, कोई पृथ्वी पर,
चले जा रहे सिंह सा करते गर्जन ।

चिंघाड़ने लगे दिशाओं के हाथी,
पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चंचल हो गये,
गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग और किन्नर,
सबके सब मन में हर्षित हो गये ।

इस प्रकार समुद्र तट पर जा उतरे,
उधर राक्षस मन में कर रहे विचार,
जिनका दूत इतना बलशाली है,
उनके बल का कौन पा सकता पार ।

दूतियों से नगरवासियों के वचन सुनकर,
बहुत ही व्याकुल हो गयी मंदोदरी,
एकान्त में लगी रावण के चरणों,
और नीतिरस से पगी वाणी से बोली ।

हे प्रियतम ! श्रीहरि का विरोध छोड़,
मन में धारिये, मेरे वचन हितकर,
जिनका दूत इतना भयकारी हुआ,
भेज दीजिये उनकी स्त्री वापस लौटाकर ।

आपके कुलरूपी कमलों के वन को,
सीता है जाड़े की रात्रि के समान,
शम्भु और ब्रह्मा भी उन्हें लौटाये बिना,
बचा नही सकते, हे नाथ ! आपका मान ।

सर्प समूह से श्रीरामजी के बाण जब तक,
मेढ़कों से राक्षस समूह को ग्रस नही लेते,
तब तक, हे लंकापति ! हठ छोड़ कर,
उन्हें मनाने का उपाय क्यों नही कर लेते ।

खूब हसां यह सुनकर अभिमानी रावण,
बोला, स्वभावत: ही डरपोक होती है स्त्रियां,
मंगल में भी तुम भय करती हो,
सचमुच तुम्हारा मन है बहुत ही कच्चा ।

राक्षसों का आहार बनेंगे वानर,
यूँ समझा स्नेह दर्शा, चला रावण,
मन्दोदरी हृदय में चिन्ता करने लगी,
पति पर प्रतिकूल हो गये भगवन् ।

सभा में बैठते ही खबर मिली उसे,
कि शत्रु सेना आ गयी समुद्र पार,
मंत्रियों से उचित सलाह जो मांगी,
वे बोले, बैठे रहिये बस चुप्पी मार ।

देवताओं और राक्षसों को जीता आपने,
तब तो कुछ भी हुआ न श्रम,
मनुष्य और वानरों की क्या गिनती,
उनसे लड़ने में क्या पराक्रम ।

मन्त्री, वैद्य और गुरू यदि,
भय या आशा से ठकुरसुहाती कहते,
तो राज्य, शरीर और धर्म क्रमशः,
ये तीनों शीघ्र ही जाते रहते ।

वही हो रहा रावण के साथ,
सब स्तुति कर रहे मुंह पर,
तभी वहां विभीषण आ गये,
शीश नवा, बैठ गये आसन पर ।

फिर आज्ञा पाकर बोले ये वचन,
जो मनुष्य चाहता है अपना कल्याण,
परस्त्री के मुख को न देखे,
त्याग दे चौथ के चन्द्रमा के समान ।

चौदहों भुवनों का जो हो एकमेव स्वामी,
जीवों से बैर कर वो ठहर नही सकता,
गुण-सागर और चतुर हो कितना भी,
तनिक लोभ भी उसको अच्छा नही लगता ।

काम, क्रोध, मद और लोभ, हे नाथ !
ये सब-के-सब हैं रास्ते नरक के,
इन सबको छोड़कर श्रीराम को भजिये,
जिन्हें संत पुरुष निरन्तर भजते रहते ।

हे तात ! मनुष्यों के ही राजा नही,
समस्त लोकों के स्वामी हैं श्रीराम,
अजन्मा, निरामय, अजेय, अनादि, अनन्त,
स्वयं साक्षात भगवान हैं श्रीराम ।

मनुष्य रूप में अवतार लिया है उन्होनें,
गौ, ब्राह्मणों और देवताओं के हित के लिये,
शरणागत की रक्षा करने वाले हैं वे,
जानकीजी को लौटा, हे नाथ ! उन्हें भजिये ।

फिर कहा, मुनि पुलस्त्यजी ने कहला भेजा,
वह बात मैने अवसर पा कह दी,
मान, मोह, मद त्याग श्रीराम को भजिये,
हे दशशीश ! मैं बारम्बार करता हूँ विनती ।

माल्यवान् नाम का एक बुद्धिमान मन्त्री था,
उसने किया विभीषण की बात का समर्थन,
कहा, आपके छोटे भाई नीतिविभुषण हैं,
कर लीजिये उनकी बात हृदय में धारण ।

तब रावण ने कहा, ये दोनों मूर्ख,
कर रहे हैं शत्रु की महिमा बखान,
यह सुन माल्यवान तो घर लौट गया,
पर विभीषण कहने लगे, क्या कहते पुराण ।

वे बोले, हे नाथ ! कुबुद्धि और सुबुद्धि,
रहती हैं सदा सबके हृदय में,
सुबुद्धि जहां, वहां सुख की स्थिति रहती,
कुबुद्धि डाल देती है दुख में ।

आपके हृदय में उलटी बुद्धि आ बसी,
हित को अहित, शत्रु को मित्र मानते,
मैं आपसे चरण पकड़ विनती करता हूँ,
सीताजी को वापस श्रीरामजी को लौटा दें ।

सुनते ही रावण क्रोधित हो उठा,
बोला, तेरी मृत्यु निकट आ गयी,
मेरा जिलाया ही जीता है तू,
पर तुझे शत्रु की बात भा गयी ।

रहता है यहां, पर प्रेम तपस्वियों पर,
उन्हीं से जा मिल, बता नीति उन्हें,
ऐसा कह उसे रावण ने लात मारी,
पर बारम्बार चरण ही पकड़े उन्होंने ।

यही बड़ाई हैं संत जनो की,
बुराई करने पर भी भलाई ही करते,
विभीषण बोले, आप पिता समान हैं,
भला होता जो श्रीराम को भजते ।

ऐसा कह आकाशमार्ग से विभीषण,
चले अपने मन्त्रियों के साथ,
बोले, तुम्हारी सभा काल के वश है,
मैं चला, शरण श्रीराम-रघुनाथ ।

ऐसा कह, ज्यों ही चले विभीषण,
सब राक्षस आयुहीन हो गये,
मन में अनेकों मनोरथ करते हुए,
विभीषण श्रीरामजी की शरण चले ।

सोच रहे, प्रभु के चरण-कमलों के,
दर्शन कर आज मैं कृतार्थ होऊंगा,
अहिल्या को तारा, दण्डकवन पवित्र किया,
उन्हीं चरणों को मैं आज देखूंगा ।

जिन्हें जानकीजी ने हृदय में धरा,
शिवजी के हृदय में जो चरण विराजते,
जिनकी पादुकाओं की सेवा करते भरतजी,
उन्हीं चरणों की शरण आज मेरे वास्ते ।

ऐसे सोचते-विचारते समुद्र पार आ गये,
वानरों ने उन्हें देख, सुग्रीव को बताया,
सुग्रीव ने जाकर बतलाया श्रीराम को,
पूछा उन्होंने क्या तुम्हें समझ में आया ।

सुग्रीव ने कहा, राक्षसों की माया,
हे प्रभु ! किसी तरह जानी नही जाती,
क्या जाने राक्षसों ने वेष बदल कर,
हमारा भेद लेने की मन में ठानी ।

फिर बोले, मुझे तो यही जंचता है,
कि बांध कर रखा जाय इसे,
पर प्रभु बोले शरणागत को अभय दान,
मेरा प्रण चला आ रहा आदि से ।

अपने अहित का अनुमान कर,
त्याग कर देते जो शरणागत का,
वे पामर हैं और पापमय हैं,
उन्हें देखने में भी पाप ही लगता ।

जिसे करोड़ो ब्राह्मणों की हत्या लगी हो,
शरण आने पर नही त्यागता उसे भी,
जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है,
करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते तभी ।

पापी का यह सहज स्वभाव होता है,
कि मेरा भजन उसे कभी न सुहाता,
यदि निश्चय ही दुष्ट ह्रदय होता वह,
मेरे सम्मुख कभी नही आ पाता ।

यदि रावण ने भेद लेने भेजा,
तो भी उसे यहां ले आओ,
दोनों ही स्थितियों में हानि नही,
अपने मन में भय न लाओ ।

क्योंकि जगत में जितने भी राक्षस हैं,
मार सकते हैं उन्हें लक्ष्मण क्षण में,
और यदि वह भयभीत होकर आया,
तो प्राणों सा उसे रक्खूंगा शरण में ।

तुरंत विभीषणजी को ले आये वानर,
पुलकित शरीर वे देख रहे प्रभु को,
बोले, हे नाथ ! मैं रावण का भाई हूँ,
तामसी शरीर, और प्राण प्रिय मुझको ।

आपका सुयश सुनकर आया हूँ,
भव-भय नाशक, हे दु:ख भंजन,
रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये,
हे शरणागत वत्सल ! हे करूणानन्दन ।

प्रभु ने उन्हें दण्डवत करते देख,
उठाकर लगा लिया गले से अपने,
फिर परिवार सहित उनकी कुशल पूछ,
कहा, सब जानता हूँ जो सहा तुमने ।

विभीषण बोले, आपने जो दया की,
आपके दर्शन कर अब हूँ कुशल से,
जीव के मन को शान्ति नही तब तक,
जब तब माया-छोड़ आपको नही भजते ।

जब तक आपका प्रतापरूपी सूर्य,
जीव के मन मे उदय नही होता,
तब तक उसके मन में निवास,
ममतारूपी अंधेरी रात्रि का होता ।

अब आपके चरण-कमलों के दर्शन से,
मेरे सब भारी भय मिट गये,
हे कृपालु ! आपके अनुकूल होने से,
जीव को त्रिताप कदापि नही व्यापते ।

मैं अत्यन्त नीच स्वभाव का राक्षस,
मैने कभी शुभ आचरण न किया,
मुनि भी जिन्हें सहज में नही पाते,
उन आपने मुझे ह्रदय से लगा लिया ।

हे कृपा और सुख के पुंज श्रीराम !
अत्यन्त असीम सौभग्य है यह मेरा,
जो ब्रहमा और शिवजी के द्वारा सेवित,
इन युगल चरणों को नेत्रों से देखा ।

श्रीरामजी ने कहा, हे सखा ! सुनो,
कहता हूँ तुम्हें स्वभाव मैं अपना,
कोई मनुष्य चाहे कैसा भी द्रोही हो,
चाहता जो मेरी शरण ग्रहण करना ।

मद-मोह, छल-कपट यदि त्याग दे,
कर देता मैं उसे शीघ्र साधु समान,
अनन्य भाव से मन मुझे समर्पित कर,
बन जाता मेरा प्रिय वो प्राणों समान ।

जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नही,
हर्ष, शोक , भय नही जिनके मन में,
ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता,
जैसे धन बसा करता लोभी हृदय में ।

जो उपासक हैं सगुण भगवान के,
लगे रहते जो दूसरे के हित में,
नीति-नियम में दृढ़, ब्राह्मणों से प्रेम,
वे मनुष्य प्रिय मुझे प्राणों से ।

हे लंकापति ! सुनो, तुममें सब गुण हैं,
इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय हो,
उनके वचन सुन सब वानर कहने लगे,
कृपा के समुद्र श्रीरामजी की जय हो ।

बारम्बार विभीषणजी चरण पड़ते हैं,
समाता नही है प्रेम हृदय में,
बोले पहले हृदय में कुछ वासना थी,
जो बह गयी आपकी प्रीतिरूपी नदी में ।

अब तो हे कृपालु ! अपनी भक्ति दीजिये,
सुनकर, 'एवमस्तु' कहा प्रभु ने,
फिर तुरंत ही समुद्र का जल मंगवा,
उनको राजतिलक कर दिया प्रभु ने ।

बोले, यद्यपि तुम्हारी इच्छा नही है, हे सखा !
पर जगत में मेरा दर्शन निष्फल नही जाता,
रावण ने जिसे दस शीश देने पर पाया,
उसे यूँ ही देने पर भी मन सकुचाता ।

ऐसे परम कृपालु प्रभु को छोड़कर,
भजते हैं जो मनुष्य औरों को,
बिना सींग-पूंछ के पशु समान,
व्यर्थ ही जीते वो जीवन को ।

फिर नीति की रक्षा करने के लिये,
सर्वज्ञ प्रभु सुग्रीव और विभीषण से बोले,
कैसे पार किया जाय यह गहरा समुद्र,
जिसमें अनेक जाति के मगर, सांप सपोंले ।

विभीषणजी बोले, यद्यपि एक ही बाण आपका,
सोख सकने वाला है करोड़ों समुद्रों को,
तथापि नीति ऐसी कही गयी है कि,
पहले जाकर प्रार्थना की जाय समुद्र को ।

आपके कुल में बड़े हैं समुद्र,
वे सोचकर उपाय कोई बतला देंगे,
तब ये सब रीछ और वानर,
सहज ही उस पार उतर लेंगे ।

प्रभु ने कहा, ऐसा ही किया जाय,
पर अच्छा न लगा यह लक्ष्मणजी को,
प्रभु ने पहले समुद्र को प्रणाम किया,
फिर कुश बिछा किनारे बैठ गये वो ।

उधर रावण ने अपने दूत भेजे,
वानर का वेष बनाकर वे आये,
प्रभु की शरणागत पर कृपा देखकर,
मन-ही-मन वे बहुत ही हर्षाये ।

भूल गये वे कपट-वेष को,
तब वानरों ने पहचान लिया उन्हें,
लगे वानर जो उन्हें प्रताड़ित करने,
श्रीराम-नाम की सौगंध दी उन्हें ।

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने दया कर,
तुरंत ही छुड़वा दिया उन दूतों को,
और उन दूतों के साथ में भेजा,
लिखित और जबानी संदेशा रावण को ।

कहा रावण से मेरा यह संदेश कहना,
कि सीताजी को देकर मिलो श्रीराम से,
वरना समझ लेना तुम्हारा काल आ गया,
हाथ धोना पड़ेगा तुम्हें प्राण से ।

चल दिये दूत चरणों में सिर नवा,
और श्रीरामजी के गुणगान करते,
रावण ने पूछा हाल वहां का,
विभीषण को मृत्यु का ग्रास कहते ।

दूत ने कहा, क्रोध त्याग कहना मानिये,
राजतिलक कर दिया श्रीराम ने विभीषण का,
असीम बलशाली वानर-भालूओं की सेना है,
बड़े विशाल, कठोर और भयानक योद्धा ।

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद,
विकटास्थ, दधिमुख, केसरी, शठ, निशठ, जाम्बवान्,
इनके जैसे एक-दो नही करोड़ों है,
जो बल में हैं सब सुग्रीव समान ।

सब सहज निडर, गरजते, डपटते हैं,
मानों लंका को निगल ही जाना चाहते,
उनके उनके सिर पर है हाथ श्रीराम का,
सो काल को भी वो कुछ न समझते ।

तेज, बल और बुद्धि श्रीराम की,
लाखों शेष भी गा नही सकते,
यद्यपि सब तरह समर्थ हैं वो,
फिर भी नीति को नही त्यागते ।

आपके भाई विभीषण की बात मानकर,
समुद्र से राह मांग रहे हैं श्रीराम,
खूब हंसा रावण उससे यह सुनकर,
बोला, तभी बैठे वानरों का दामन थाम ।

जान ली मैने शत्रु की बल-बुद्धि,
झूठी बड़ाई उसकी क्या तू करता,
दूत ने क्रोधित हो पत्रिका थमायी,
रावण ने मन्त्री से पढ़वायी पत्रिका ।

लिखा था, बातों से ही मन रिझाकर,
अरे मूर्ख ! कुल को नष्ट-भ्रष्ट न कर,
श्रीरामजी से विरोध कर बच न सकेगा,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भी शरण जाकर ।

या तो अभिमान छोड़ विभीषण की भांति,
प्रभु के चरण-कमलों का भ्रमर बन जा,
अथवा, श्रीरामजी की बाण-रूपी अग्नि में,
रे दुष्ट ! परिवार सहित पतिंगा हो जा ।

भयभीत हो गया पत्रिका सुनते ही रावण,
पर ऊपर से मुस्कराता हुआ कहने लगा,
जैसे कोई पकड़ना चाहता आकाश हाथ से,
वैसे ही यह छोटा तपस्वी डींग हांकता ।

तब दूत ने कहा, अभिमान छोड़,
हे नाथ ! जानकीजी को लौटा दीजिये,
भुला देंगे आपके सब अपराध श्रीराम,
हे नाथ ! आप उनकी शरण लीजिये ।

जानकीजी को लौटाने का बात सुन,
क्रोधित हो लात मारी दूत-शुक को,
वह भी श्रीरामजी की शरण चला,
उनकी कृपा से मुनि स्वरूप मिला उसको ।

शिवजी कहते हैं ज्ञानी मुनि था वह,
अगस्त्य मुनि के श्राप से राक्षस बना था,
बार-बार श्रीरामजी की चरण-वन्दना कर,
वह मुनि अपने आश्रम को चला ।

इधर तीन दिन बीतने पर भी,
समुद्र ने प्रार्थना सुनी ना राम की,
तब श्रीरामजी क्रोध में भरकर बोले,
भय के बिना होती नही प्रीति ।

लक्ष्मण से कहा, धनुष-बाण लाओ,
अग्नि बाण से सोख लूंगा समुद्र को,
मूर्ख से विनय, कुटिल से प्रीति,
व्यर्थ उदारता का उपदेश कंजूस को ।

मोहग्रस्त को ज्ञान, लोभी से वैराग्य,
क्रोधी को कहना बात शांति की,
ऊसर में बीज बोना सा होता है,
कामी से कहना कथा भगवान की ।

ऐसा कह ज्यों धनुष चढ़ाया श्रीराम ने,
अग्नि-ज्वाला समुद्र के हृदय में उठी,
जलचर सभी भयभीत-व्याकुल हो उठे,
समुद्र ने तब शरण ली प्रभु की ।

ब्राह्मण का वेष धर आया वो,
कहा, अवगुण सब क्षमा करें मेरे,
आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी,
जड़ है इनकी करनी स्वभाव से ।

आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें,
किया है उत्पन्न सृष्टि के लिये,
उसी प्रकार रहने में वो सुख पाता,
जैसी आज्ञा स्वामी की जिसके लिये ।

अच्छा किया मुझे शिक्षा दी आपने,
किंतु मर्यादा भी बनायी हुई है आपकी,
ढोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी,
ये सब हैं प्रभु ! दण्ड के अधिकारी ।

आपके प्रताप से सूख जाऊंगा मैं,
मेरी मर्यादा नही रहेगी इस में,
तथापि प्रभु की आज्ञा अमिट है,
अब आपको जो अच्छा लगे, करूँ मैं ।

समुद्र के अत्यन्त विनीत वचन सुनकर,
कृपालु श्रीरामजी ने कहा मुस्कराकर,
हे तात ! वह उपाय बताओ जिससे,
वानरों की सेना जाय पार उतर ।

समुद्र ने कहा, नल और नील दो भाई,
पाया था उन्होंने आशीर्वाद ऋषि से,
भारी-भारी पहाड़ भी तर जायेंगे,
आपके प्रताप और उनके स्पर्श से ।

प्रभु की प्रभुता को हृदय में धर,
मैं भी भरसक करूंगा सहायता इसमें,
और कहा, अपने इस बाण को,
प्रयोग कीजिये मेरे दु:ख हरने में ।

कहा, उत्तर तट पर दुष्ट जो रहते,
इस बाण से वध कीजिये उनका,
तुरंत ही प्रभु ने वैसा ही किया,
समुद्र हर्षित हो, सुखी हो गया ।

फिर प्रभु-चरणों की वन्दना कर,
चला गया समुद्र अपने घर को,
यह अनुपम चरित्र, प्रभु का गुण-गान,
हरने वाला कलियुग के पापों को ।

मासपारायण, चौबीसवां विश्राम

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)

'लंका काण्ड'

कामदेव के शत्रु, शिवजी के सेव्य,
जन्म-मृत्यु के भय को हरने वाले,
कालरूपी हाथी के लिये सिंह समान,
योगियों को ज्ञान के द्वारा जनानेवाले ।

गुणों की निधि, अजेय, निर्गुण, निराकार,
माया से परे देवताओं के स्वामी,
ब्राह्मणों के रक्षक, दुष्ट दलनकारी,
वन्दना करता हूँ, हे प्रभु आपकी ।

व्याघ्रचर्म के वस्त्र वाले, सर्पों का भूषण,
काशीपति, नाश करने वाले पाप समूह का,
कल्याण के कल्पवृक्ष गुणों के निधान,
हे पार्वतीपति ! आपको मैं नमस्कार करता ।

सत्पुरुषों को भी दुर्लभ कैवल्यमुक्ति,
दे डालते हैं जो सहज में,
दुष्टों को दण्ड देनेवाले वे श्रीशम्भु,
मेरे कल्याण का विस्तार करें ।

लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प,
हैं जिन प्रभु के प्रचण्ड बाण,
और काल जिन प्रभु का धनुष है,
हे मन ! तू उनका क्यों नही करता ध्यान ।

समुद्र के वचन सुन प्रभु ने कहा,
पुल तैयार करो, जिसमें उतरे सेना,
जाम्बवान् बोले, सबसे बड़ा सेतु आपका नाम,
संभव हो जाता जिससे भवसागर तरना ।

तब पवनपुत्र श्रीहनुमानजी ने कहा,
प्रभु का प्रताप है भारी बडवानल सा,
सोख लिया था इसने पहले समुद्र को,
शत्रु-स्त्रियों के आंसुओं से फिर भर गया ।

हनुमानजी की यह अत्युक्ति सुनकर,
हर्षित हो गये सभी वानर,
जाम्बवान ने नल-नील को बुलाया,
और सारी कथा कही समझा कर ।

तुरंत सेतु तैयार करने को कहा उनसे,
वानरों से वृक्ष और पर्वत लाने को,
वानर खेल-खेल में उखाड़ लाते हैं,
लाकर उन्हें देते हैं नल-नील को ।

गढ़-गढ़कर सेतु बना रहे हैं वो,
प्रभु उसे देख बोले हँसकर ये वचन,
यहां की भूमि रमणीय और उत्तम है,
इसकी महिमा का हो नही सकता वर्णन ।

फिर वहां शिवलिंग स्थापित किया प्रभु ने,
कहा कोई प्रिय नही मुझे शिवजी सा,
शिव से द्रोह और भक्ति करता मेरी,
वह स्वप्न में भी मुझे नही पा सकता ।

शंकर प्रिय, पर द्रोह जिन्हें मुझसे,
या शंकर से द्रोह, और मेरे दास,
कल्याण नही हो सकता उन लोगों का,
कल्प भर करते वे नरक में निवास ।

जो लोग इस रामेश्वरजी का दर्शन करेंगे,
शरीर छोड़कर जायेंगे वे मेरे लोक को,
और जो गंगाजल लाकर चढावेगा इन पर,
वह मनुष्य पायेगा सायुज्य मुक्ति को ।

निष्कपट, निष्काम सेवा रामेश्वरजी की,
मेरी भक्ति पायेंगे वो शंकरजी से,
मेरे बनाये इस सेतु का दर्शन,
तार देगा सहज ही भवसागर से ।

सेतु बांधा चतुर नल और नील ने,
प्रभु-कृपा से यश फैल गया उनका,
जो पत्थर खुद डूबते, औरों को डुबाते,
प्रभु प्रताप से काम कर रहे जहाज का ।

चल पड़ी सेना सेतु पर चढ़ कर,
गरज रहे हैं समुदाय वानर योद्धाओं के,
सेतुबंध पर चढ़ जब प्रभु देखन लगे,
दर्शन के लिये प्रकटे समूह जलचरों के ।

विविध मगर, घड़ियाल, मच्छ और सर्प,
जिनके सौ-सौ योजन विशाल शरीर थे,
कुछ ऐसे जन्तु जो उनको भी खा जायें,
किसी-किसी से वो भी डर रहे थे ।

वैर-विरोध भुला, प्रभु-दर्शन कर रहे,
मन हर्षित है, सब सुखी हो गये,
उनकी आड़ से जल दिखायी नही पड़ता,
सब प्रभु को देखकर मग्न हो गये ।

प्रभु की आज्ञा पा चलने लगी सेना,
कुछ आकाशमार्ग से, कुछ जलचरों पर,
समुद्र के पार डेरा डाला प्रभु ने,
राक्षसों ने रावण को समाचार दिया जाकर ।

समुद्र का बांधा जाना सुनते ही,
दसों मुखों से वो बोला घबड़ाकर,
क्या जलधि सचमुच ही बांध लिया,
फिर हंसने लगा अपनी व्याकुलता जानकर ।

जब मन्दोदरी ने सुना, श्रीराम आ गये,
रावण से बोली बहुत विनीत वचनों से,
हे नाथ ! वैर उसी से करना चाहिये,
जो जीता जा सके बुद्धि और बल से ।

आप में और श्रीरघुनाथ में ऐसा अन्तर है,
जैसा अन्तर जुगनु और सूर्य में,
पृथ्वी का भार हरण करने के लिये,
स्वयं प्रभु अवतरे हैं श्रीराम रूप में ।

हे नाथ ! विरोध न कीजिये उनका,
जिनके हाथ में, काल, कर्म और जीव सभी,
सादर जानकीजी को सौंप दीजिये उन्हें,
और शरण ग्रहण कीजिये उनके चरणों की ।

संतजन कहते हैं कि चौथेपन में,
चले जाना चाहिये राजा को वन में,
विषयों की सारी ममता को छोड़,
स्मरण करना चाहिये भगवान का मन में ।

पर रावण बोला, तू व्यर्थ न डर,
बता कौन मेरे समान योद्धा जग में,
क्यों तुझको भय उत्पन्न हो गया,
देवता, दानव, मनुष्य सब मेरे वश में ।

माना जो न रावण, जान गयी मन्दोदरी,
कालवश अभिमान हो गया पति को,
सभा में आ रावण ने पूछा,
कैसे हराया जाय युद्ध में शत्रु को ।

मन्त्री बोले, क्यों बार-बार पूछते,
शत्रु सेना है हमारा स्वभाविक भोजन,
पर रावण-पुत्र प्रहस्त हाथ जोड़कर बोला,
मन्त्रियों ने कहे हैं ठकुरसुहाती वचन ।

एक ही वानर समुद्र लांघ आया था,
जिसे अब भी लंकावासी करते हैं याद,
क्यों नही तब खा लिया पकड़कर,
व्यर्थ ही ये लोग कर रहे बात ।

खेल ही खेल में बांध लिया समुद्र,
और सेनासहित सुबेल पर्वत पर आ उतरा,
क्या वह मनुष्य मात्र है, जिसे खा लोगे,
लगता है इन लोगों का सिर है फिरा ।

हे तात ! मेरे वचन गौर से सुनिये,
कायर न समझ लीजिये मुझे मन में,
मुंह पर मीठी कहने वाले बहुत हैं,
पर थोड़े जो सच्चा हित सोचते मन में ।

नीति अनुसार पहले दूत भेजिये,
फिर सीता देकर मेल कर लीजिये,
स्त्री पा लौट जायं तो ठीक,
वरना युद्धभूमि में सामना कीजिये ।

यह सुन रावण ने क्रोधित हो कहा,
अरे मूर्ख ! ऐसी बुद्धि तुझे सिखायी किसने,
पिता की घोर-कठोर वाणी सुनकर,
प्रहस्त यह कहता हुआ चला घर अपने ।

हित की सलाह आपको कैसे नही लगती,
जैसे दवा न लगती मरनासन्न रोगी को,
उधर सन्ध्या का समय हुआ जानकर,
बीसों भुजा देखता रावण चला महल को ।

लंका की चोटी पर एक विचित्र महल था,
जमता था जहां नाच-गान का अखाड़ा,
बैठ गया रावण उस महल में जाकर,
किन्नरों ने शुरू किया उसका गुण गाना ।

बज रहे हैं ताल, पखावज और वीणा,
नृत्य में प्रवीण अप्सराएं रही हैं नाच,
सिर पर प्रबल शत्रु की चिन्ता नही,
रावण इन्द्र सा करता रहता भोग-विलास ।

उधर सुबेल पर्वत पर श्रीरघुनाथ विराजे,
सलाह कर रहे विभीषणजी कानो से लगकर,
अंगद और हनुमान कर रहे सेवा प्रभु की,
लक्ष्मणजी वीरासन में बैठे तरकस कसकर ।

पूर्व दिशा में चन्द्रमा उदित देखकर,
प्रभु बोले, कैसा निडर सिंह सा चन्द्रमा,
अन्धकार रूपी हाथी का मस्तक विदीर्ण कर,
आकाशरूपी वन में निर्भय विचर रहा चन्द्रमा ।

फिर पूछा जो कालापन चन्द्रमा में,
अपनी-अपनी बुद्धिनुसार कहो है क्या,
सुग्रीव बोले, हे रघुनाथजी ! सुनिये,
पृथ्वी की पड़ रही इस पर छाया ।

कोई बोला, राहु ने मारा था इसे,
वही दाग चोट का है हृदय पर,
कोई बोला, ब्रह्मा ने जब रति को बनाया,
ले लिया चन्द्रमा का सार निकाल कर ।

प्रभु बोले, विष चन्द्रमा का भाई है,
उसी को दे रक्खा स्थान हृदय में,
विषयुक्त अपनी किरणों को फैलाकर,
जलाता रहता नर-नारियों को वियोग में ।

हनुमानजी ने कहा, हे प्रभु ! सुनिये,
प्रिय दास है यह चन्द्रमा आपका,
आपकी श्याम मूर्ति हृदय में बसती,
झलक रही कालेपन में वही श्यामता ।

नवाह्नपारायण, सातवां विश्राम

श्रीराम हंसें हनुमानजी के वचन सुनकर,
फिर दक्षिण की ओर देखकर बोले,
देखों बादल घुमड़े, बिजली चमक रही,
कहीं बरसने न लगें कठोर ओले ।

विभीषण बोले, न बादल, न बिजली,
एक महल है लंका की चोटी पर,
अखाड़ा देख रहा है वहां बैठा रावण,
मेघडंबर छत्र धारण किये सिर पर ।

वही छत्र दिख रहा बादल सा,
मंदोदरी के कर्णफूल बिजली से चमक रहे,
बज रहे जो ताल और मृदंग,
वही मानो कहीं बादल गरज रहे ।

रावण का अभिमान समझ प्रभु मुस्कराये,
और धनुष चढ़ा किया संधान बाण का,
एक ही बाण से छत्र, मुकुट, कर्णफूल गिराये,
पता चला न किसी को इस बात का ।

ऐसा चमत्कार कर श्रीरामजी का बाण,
फिर आ घुसा तरकस में प्रभु की,
यह महान् रंग में भंग देखकर,
भयभीत हो गयी सारी सभा रावण की ।

सभा को भयभीत देखकर रावण ने,
हँसकर युक्ति रचकर ये वचन कहे,
जिसके लिये सिर का गिरना शुभ हो,
उसके लिये मुकुट का गिरना अपशकुन कैसे ।

जबसे मन्दोदरी का कर्णफूल गिरा कटकर,
सोच बस गया तबसे हृदय में उसके,
रावण से बोली, वैर त्यागिये, हे प्रियतम !
हठ न कीजिये श्रीराम को मनुष्य जान के ।

मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिये,
वे विश्वरूप, पाताल चरण हैं उनके,
ब्रह्मलोक सिर, अन्य लोक विभिन्न अंगो पर,
भयंकर काल है भौहों का चलाना उनके ।

सूर्य नेत्र हैं, बादलों का समूह बाल,
रात और दिन पलकों का झपकाना उनके,
दसों दिशाएं कान, वायु श्वास है,
और वेद स्वयं वचन हैं उनके ।

लोभ अधर, भयानक दांत यमराज हैं,
माया हंसी, भुजाएं दिक्पाल हैं उनकी,
अग्नि मुख है, वरूण जीभ है,
उत्पत्ति, पालन और प्रलय चेष्टा उनकी ।

अठारह प्रकार की वनस्पतियां रोमावली,
पर्वत अस्थियां, नदियां जाल नसों का,
समुद्र पेट, नरक इन्द्रियां नीचे की,
प्रभु विश्वमय हैं, और कहा जाय क्या ।

शिव जिनका अंहकार है, ब्रह्मा बुद्धि,
चन्द्रमा मन और विष्णु चित्र उनका,
उन्हीं चराचररूप भगवान श्रीरामजी ने,
मनुष्य रूप में अब निवास किया ।

हे प्राणपति ! सुनिये, ऐसा विचारकर,
वैर छोड़, प्रेम कीजिये प्रभु से,
यह सुन रावण खूब हंसा और बोला,
मोह की महिमा है बलवान, सभी से ।

सत्य ही कहते सब स्त्री का स्वभाव,
उसके हृदय में रहते आठ गुण सदा,
साहस, झूठ, चंचलता, छल, भय,
अविवेक, अपवित्रता और निर्दयता ।

तूने शत्रु का समग्र रूप गाया,
और मुझे उससे बड़ा भारी भय सुनाया,
हे प्रिये ! यह सब तो मेरे वश में है,
तेरी कृपा से मुझे अब समझ आया ।

जान गया मैं तेरी चतुराई,
इसी बहाने बखान रही मेरी प्रभुता,
तेरी बातें बड़ी रहस्यभरी हैं,
सुखदायी, भय हरनेवाली मन का ।

तब जान गयी मन्दोदरी मन में,
कालवश पति को मतिभ्रम हो गया,
इस प्रकार बहुत से विनोद करते,
रावण की रात बीति, सवेरा हो गया ।

यद्यपि अमृत सा जल बरसाते बादल,
तो भी बेत फूलता-फलता नही,
ऐसे ही ब्रह्मा सा ज्ञानी मिले चाहे,
मूर्ख के हृदय में चेत होता नही ।

उधर प्रात:काल श्रीरघुनाथजी जागे,
पूछा सबसे अब क्या किया जाय,
सिर नवा, वन्दना कर, जाम्बवान् बोले,
अंगद को दूत बनाकर भेजा जाय ।

प्रभु बोले, हे बल, बुद्धि, गुणों के धाम,
तुम मेरे काम के लिये जाओ लंका,
परम चतुर हो तुम, क्या कहूं तुमसे,
वही कहना हमारा काम, कल्याण हो उसका ।

आज्ञा शिरोधार्य कर, चरण वन्दना कर,
अंगदजी उठे और बोले, हे श्रीरामजी,
गुणों का समुद्र वो हो जाता तत्काल,
जिस पर कृपादृष्टि हो जाती आपकी ।

स्वामी के सब कार्य स्वयंसिद्ध हैं,
यह तो आपने मुझे दिया है आदर,
तब हृदय में धर प्रभु की प्रभुता,
अंगद चले सबको सिर नवाकर ।

लंका में प्रवेश करते ही उनकी,
भेंट हो गयी रावण के पुत्र से,
बातों ही बातों में झगड़ा बढ़ गया,
रावण का पुत्र मरा, लड़कर अंगद से ।

मच गया नगर में कोलाहल कि,
लंका जलाने वाला वानर फिर आ गया,
बिना पूछे ही राह बताते अंगद को,
मन में सोच रहे अब होगा क्या ।

पहुंचे रावण की सभा के द्वार पर,
संदेशा पाते ही बुलवा भेजा रावण ने,
जैसे कोई सजीव काल का पहाड़ हो,
रावण को ऐसे बैठे देखा अंगद ने ।

ज्योंहि बलवान अंगद पहुंचे सभा में,
उठ खड़े हुए सब सभासद रावण के,
यह देख रावण को बड़ा क्रोध आया,
पर रह गया वह मन मसोस के ।

उधर श्रीरामजी का प्रताप स्मरण कर,
सिर नवा अंगद बैठ गये सभा में,
पूछने पर बताया श्रीरघुनाथ का दूत हूँ,
बड़ी मित्रता थी मेरे पिता और आपमें ।

सो तुम्हारी भलाई के लिये आया हूँ,
उत्तम कुल, पौत्र हो पुलस्त्य ऋषि के,
शिवजी और ब्रह्माजी की बहुत पूजा की,
उनसे वर पाये, बहुत काम सिद्ध किये ।

लोकपालों और राजाओं को जीता तुमने,
पर मोहवश सीताजी को हर लाये,
अब तुम मेरे शुभ वचन सुनो,
जिससे तुम्हारा अपराध क्षमा हो पाये ।

दांतों में तिनका, गले में कुल्हाड़ी डाल,
कुटुम्बियों सहित अपनी स्त्रियों को साथ लेकर,
प्रभु को त्राहिमाम-त्राहिमाम पुकारते हुए,
चलो जानकीजी को आदरसहित आगे लेकर ।

तब क्रोधित हो रावण ने कहा,
अरे मूर्ख ! जाना नही तूने मुझे,
अपना और पिता का नाम तो बता,
किस नाते से मित्रता सूझी तुझे ।

अंगद बोला बालि का पुत्र अंगद हूँ,
क्या कभी मिले थे तुम उनसे,
यह सुन रावण कुछ सकुचा गया,
क्या तू ही उसका पुत्र है कहा उससे ।

क्यों व्यर्थ ही पैदा हुआ रे कुलनाशक !
अपने मुख से तपस्वियों का दूत कहलाया,
खैर जो तू कर रहा तू जाने,
बता बालि ने तुझसे क्या सुख पाया ।

फिर बालि की कुशल पूछी रावण ने,
तब अंगद ने कहा रावण से हँसकर,
कुछ दिनों रूको, पूछ लेना खुद ही,
बालि की कुशल, बालि के पास पहुंचकर ।

श्रीरामजी से विरोध करने पर,
जो कुशल होती है बतावेंगे तुझे,
सुन, भेद उसी के मन में पड़ता,
श्रीरघुनाथ न बसते जिसके हृदय में ।

सच ही मैं हूँ कुल का नाश करनेवाला,
और हे रावण ! तुम कुल के रक्षक हो,
अंधे बहरे भी ऐसी बात नही कहते,
तुम तो बीस नेत्र और कान रखते हो ।

शिव, ब्रह्मा, देवता और मुनि गण,
करना चाहते हैं जिनके चरणों की सेवा,
उनका दूत हो कुल डुबा दिया मैंने,
ऐसा कहते तुम्हारा हृदय क्यों नही फटता ।

रावण बोला नीति और धर्म रक्षा हेतु,
कर रहा हूँ सहन कठोर वचन तुम्हारे,
अंगद ने कहा, तुम्हारी धर्मशीलता जाहिर है,
परायी स्त्री को तुम ले आये चुराके ।

अंगद के व्यंग्य वचन सुनकर,
रावण करने लगा अपना बल बखान,
फिर बोला बता तेरी सेना में,
कौन बलशाली योद्धा है मेरे समान ।

तेरा मालिक स्त्री-वियोग में दुखी है,
छोटा भाई उदास है उसी के दुख से,
तुम और सुग्रीव तट के वृक्ष हो,
और क्या डरना बूढ़े मन्त्री जाम्बवान् से ।

रहा मेरा छोटा भाई विभीषण,
सो वह भी है डरपोक बड़ा,
और नल-नील तो शिल्पकर्मी हैं,
उनसे भला क्या जाये लड़ा ।

हां, एक वानर अवश्य बलवान है,
जिसने पहले आ, जलायी थी लंका,
अंगद ने पूछा, क्या सच कहते हो,
एक छोटे से वानर ने जलायी लंका ।

सच ही कोई नही हमारी सेना में,
जो तुमसे लड़ने में पाये शोभा,
प्रीति और वैर बराबरी वालों से ठीक,
सिंह मेढ़क से लड़े, देता नही शोभा ।

वक्रोक्तिरूपी धनुष से वचन-बाण मार कर,
शत्रु का हृदय जला दिया अंगद ने,
लेकिन प्रत्युत्तररूपी संडासियो से रावण,
निकालने का प्रयत्न लग रहा करने ।

हँसकर बोला, एक बड़ा गुण बंदर में,
जो पालता, उसके भले की चेष्ठा करता,
तेरी जाति स्वामीभक्त और मैं गुणग्राहक,
सो तेरी जली-कटी का ख्याल नही करता ।

अंगद ने कहा, तुम्हारी सच्ची गुणग्राहकता,
तो मुझे सुनायी थी हनुमान ने,
अशोक वन को तहस-नहस कर,
तुम्हारा पुत्र मार, नगर जलाया उसने ।

तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव विचार कर,
हे दशग्रीव ! मैने की कुछ धृष्टता,
मैने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें,
न क्रोध, न चिढ़, न ही लज्जा ।

रावण बोला, जब तेरी ऐसी बुद्धि है,
तभी तो तू खा गया बाप को भी,
अंगद ने कहा, मुझे कुछ समझ आ गया,
वरना अभी ही खा जाता तुम को भी ।

बालि के निर्मल यश का पात्र जानकर,
अरे नीच अभिमानी ! तुम्हें मैं नही मारता,
यह तो बता जग में कितने रावण है,
मैने जितने सुन रखे, तुझे देता हूँ बता ।

एक बलि को जीतने जो गया पाताल,
उसे घुड़साल में बांध रक्खा बच्चों ने,
बालक खेलते और जा-जाकर मारते थे,
तब दया कर छुड़ा दिया उसे बलि ने ।

फिर एक रावण को सहस्त्रबाहु ने देखा,
तो पकड़ लिया विचित्र जन्तु समझकर,
तमाशे के लिये उसे घर ले आया,
तब पुलस्त्य मुनि ने छुड़ाया जाकर ।

एक के विषय में बड़ा संकोच हो रहा,
जो बहुत दिन बालि की कांख में रहा,
इनमें से तुम कौन से रावण हो,
सच-सच बताओ, मैं भी जानूं ज़रा ।

रावण ने कहा, अरे मूर्ख सुन तू,
मेरी भुजाओं का बल कैलास पर्वत जानता,
उमापति महादेव जानते शूरता मेरी,
जिन्हें सिररूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर पूजा था ।

अपने हाथ से सिर उतार-उतार कर,
अगणित बार शिवजी की की पूजा,
मेरी भुजाओं का पराक्रम दिक्पाल जानते,
दिग्गज जानते मेरी छाती की कठोरता ।

जिसके चलने से पृथ्वी ऐसी हिलती,
जैसे छोटी नाव मतवाले हाथी के चढ़ने से,
मैं वही जगप्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ,
क्या तूने कभी ना सुना अपने कानों से ।

उस रावण को तू छोटा कहता है,
और मनुष्य की करता है प्रशंसा,
अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बंदर,
अब मैने तेरे ज्ञान को समझा ।

तब क्रोधित हो अंगद ने कहा,
अरे नीच, अभिमानी बोल संभालकर,
परशुरामजी का गर्व मिटा दिया,
वे भला मनुष्य हो सकते क्योंकर ।

रे मूर्ख ! कामदेव भी क्या धनुर्धारी है,
और गंगाजी क्या बस है नदी,
कामधेनु पशु और कल्पवृक्ष पेड़ है,
और गरूड़जी बस मात्र एक पक्षी ।

अन्न दान, क्या अमृत रस है,
शेषजी सर्प, और चिन्तामणि पत्थर,
अरे मूर्ख ! बैकुण्ठ भी क्या लोक है,
और अखण्ड भक्ति क्या लाभ बराबर ।

सेना समेत मिटाकर मान तेरा,
अशोक वन उजाड़, नगर जलाकर,
लौट गये तेरे पुत्र को मार,
वे हनुमानजी हैं क्या केवल वानर ।

कपट छोड़, क्यों भजन नही करता,
हे मूढ़ ! व्यर्थ ही गाल न मार,
श्रीरामजी से वैर करने पर ऐसा होगा,
तेरे कंधो पर न रहेगा सिरों का भार ।

बहुत क्रोधित हो उठा तब रावण,
बखानने लगा अपनी भुजाओं का बल,
वानरों की सहायता से बांध लिया समुद्र,
क्या यही है राम की प्रभुता और बल ।

यदि राम ऐसा ही योद्धा है तो,
किसलिये भेजता है वो दूत अपना,
कैलास मैथने वाली मेरी भुजाएं देख,
फिर अपने मालिक की सराहना करना ।

अपने ही हाथों से सिर काट-काटकर,
बहुत बार होम दिया अग्नि में उन्हें,
जलते ललाटों पर मनुष्य से मरना बांच,
सोचा भ्रम से लिख दिया होगा ब्रहमा ने ।

अंगद ने कहा, तुझ सा लज्जावान नही,
तू अपने मुंह से अपने गुण नही कहता,
सिर काटने और कैलास उठाने की बात,
चढ़ी हुई है तेरे चित्त में ये कथा ।

भुजाओं का वह बल छिपा रक्खा है तूने,
जिससे सहस्त्रबाहू, बालि, बलि को जीता,
बस कर, सिर काटने या जलाने से,
इंद्रजालि सा पतंगा वीर कहा नही जाता ।

बतबढ़ाव मत कर, अभिमान त्याग दे,
नही आया हूँ मैं तुझसे सन्धि करने,
स्यार मारने से सिंह यशस्वी नही होता,
इसीलिये ही सहे हैं तेरे वचन मैने ।

नही तो तेरे मुंह तोड़कर मैं,
ले जाता जबरन ही सीताजी को,
सूने में परायी स्त्री को हर लाया,
तभी जान लिया था तेरे बल को ।

तू राक्षसों का राजा और बड़ा अभिमानी,
पर मैं श्रीरघुनाथ के सेवक का सेवक,
यदि मैं उनके अपमान से न डरूं तो,
कर दूं पल में तेरा सब कुछ चौपट ।

पर इसमें भी बड़ाई कुछ भी नही,
क्या बहादुरी, मरे हुए को मारना,
नही मारता मैं तुझे ऐसा विचार कर,
अब दिला मुझे बस और क्रोध ना ।

तब होंठ काटता, हाथों का मलता,
क्रोध में भर कर यूँ बोला रावण,
अरे नीच ! अब तू मरना ही चाहता,
कुछ भी नही राम में बल और गुण ।

इसीलिये तो उसे बनवास दिया पिता ने,
उस पर दु:ख युवती स्त्री के विरह का,
फिर रात-दिन मेरा डर बना रहता है,
ऐसे मनुष्य तो भोजन होते राक्षसों का ।

प्रभु के लिये अपशब्द सुन अंगद ने,
कटकटाकर पृथ्वी पर भुजदण्ड दे मारे,
पृथ्वी हिलने लगी, सभासद गिर पड़े,
रावण के मुकुट गिरे पृथ्वी पर सारे ।

कुछ मुकुट उठा, धारण किये रावण ने,
कुछ अंगद ने उठा फेंके प्रभु के पास,
वानर सोचने लगे उल्कापात हो रहा या,
रावण ने वज्र चलाये क्रोध के साथ ।

प्रभु ने हँसकर कहा, डरो नही,
ये न वज्र हैं, न हैं ये उल्का,
ये तो रावण के सिर के मुकुट हैं,
जिन्हें बालिपुत्र अंगद ने है फेंका ।

उधर क्रोधित रावण ने कहा, पकड़ लो,
पृथ्वी को बंदरो से रहित ही कर दो,
जाओ, जाकर जहां कही भी पाओ तुम,
दोनों भाइयों को जीते जी ही पकड़ लो ।

अंगद ने कहा, क्या दुर्वचन बक रहा,
अरे दुष्ट ! तू काल के वश हो गया,
जिसने एक ही बाण से बालि मार डाला,
उसे मनुष्य कहता है, अंधा हो गया ।

तेरे रक्त के प्यासे श्रीराम के बाण,
कहीं प्यासे न रह जाये, इस डर से,
अरे बकवादी राक्षस ! मैं तुझे छोड़ता हूँ,
वरना तेरे दांत तोड़, मिटा देता जड़ से ।

तेरी लंका गूलर के फल के समान है,
तुम कीड़े से निडर बस रहे जिसमें,
मैं वानर, क्या श्रम इस फल को खाते,
पर वैसी आज्ञा नही दी मुझे श्रीराम ने ।

रावण ने कहा, बालि तो ऐसा ना था,
तू तपस्वियों के संग हो गया लबार,
अंगद बोले तेरी जीभें न उखाड़ ली तो,
सचमुच में ही मैं जाना जाऊँ लबार ।

फिर श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप को समझकर,
रोप दिया अपना पांव रावण की सभा में,
बोले, यदि तू मेरा चरण हटा सके तो,
श्रीरामजी लौट जायेंगे बिना सीताजी को लिये ।

रावण ने कहा, सुनो, हे सब वीरों,
पैर पकड़ इसे पृथ्वी पर पछाड़ दो,
मेघनाद आदि बहुत से उपाय करते हैं,
कुछ कर नही पाते, थक बैठ जाते वो ।

फिर उठकर पुन: झपटते हैं वो,
पर अंगद का चरण उनसे नही टलता,
जैसे विषयी पुरुष विषयों में फंसकर,
मोहरूपी वृक्ष को उखाड़ नही सकता ।

यह देख मद दूर हो गया रावण का,
तब ललकारने पर वह स्वयं उठा,
जब अंगद का चरण लगा पकड़ने,
तब बालिकुमार अंगद ने रावण से कहा ।

मेरा चरण पकड़ने से बचेगा न तू,
जाकर श्रीरामजी के चरण क्यों नही पकड़ता,
यह सुन सकुचाकर लौट गया रावण,
तेजहीन ज्यों मध्याह्न में होता चन्द्रमा ।

जैसे सारी सम्पत्ति गंवाकर बैठा हो,
सिर नीचा कर सिंहासन पर बैठा रावण,
जगदातमा और प्राणों के स्वामी श्रीराम,
उनके वैरी को कहाँ मन में चैन ।

शिवजी कहते हैं, जिनके भ्रूविलास से,
हे उमा ! विश्व प्रकटता, नष्ट हो जाता,
तृण को वज्र, वज्र को तृण बना देते,
उनके दूत का कहो कैसे प्रण टल पाता ।

फिर अंगद ने कही नीति बहुत सी,
पर कालवश माना नही रावण ने,
तब प्रभु का सुयश सुनाकर उसे,
यह कह प्रस्थान किया अंगद ने ।

रणभूमि में तुझे खेला-खेलाकर न मारूं,
तब तक क्या बड़ाई करूँ मैं पहले से,
अंगद ने उसका पुत्र मार डाला था,
रावण यह जान भर गया दु:ख से ।

शत्रु के बल का मर्दन कर अंगद ने,
हर्षित हो आकर चरण पकड़े श्रीराम के,
उधर मन्दोदरी समझा रही रावण को,
हे नाथ ! आप भी तो वहां पर थे ।

इन्द्रपुत्र जयन्त जानता कुछ बल उनका,
काना कर जिसे छोड़ दिया श्रीराम ने,
शूर्पणखा की दशा तो आपने देख ही ली,
फिर भी लजाते नही, आप हृदय में ।

विराध और खर-दूषण को मार जिन्होनें,
लीला ही से मार डाला कबन्ध को,
बालि को मार डाला एक ही बाण से,
हे दशकन्ध ! समझिये आप जरा उनको ।

समुद्र बांध, सुबेल पर्वत पर आ उतरे,
आपके हित हेतु ही दूत भेजा उन्होंने,
जिसने आपके बल को यूँ मथ डाला,
ज्यों खदेड़ा हो हाथियों को सिंह ने ।

हे प्रिय ! बार-बार मनुष्य कहते हो उन्हें,
व्यर्थ बोझ ढ़ो रहे हैं, मान-ममता का,
और काल के विशेष वश होने से,
आपके मन में ज्ञान उत्पन्न नही होता ।

लाठी ले मारता नही काल किसी को,
बस धर्म, बल, बुद्धि, विचार हर लेता,
हे स्वामी ! निकट आ जाता जिसका काल,
आप ही की तरह भ्रम उसे घेर लेता ।

दो पुत्र मर गये, नगर जल गया,
अब भी इस भूल का सुधार कर लीजिये,
हे नाथ ! त्याग दीजिये वैर श्रीरामजी से,
और श्रीरघुनाथ को भज निर्मल यश लीजिये ।

मन्दोदरी के बाण समान वचन सुनकर,
सुबह होते ही सभा में जा बैठा रापण,
उधर श्रीरामजी ने अंगद को बुलाया,
और हँसकर बोले उससे श्रीराम ये वचन ।

हे बालि के पुत्र ! मुझे बड़ा कौतूहल है,
इसीसे तुमसे पूछता हूँ, सत्य कहना,
जो रावण राक्षसों के कुल का तिलक है,
जिसके अतुलनीय बाहुबल को जग ने माना ।

उसके चार मुकुट तुमने फेंके,
हे तात ! किस तरह पाया तुमने,
अंगद बोले, हे सर्वज्ञ, हे शरणागतवत्सल,
वे तो राजा के गुण-रूपी गहने ।

वेद कहते हैं, साम, दान, दण्ड और भेद,
ये चारों राजा के हृदय में बसते,
रावण के हृदय में धर्म का अभाव जान,
हे प्रभु ! ये आप के पास आ गये ।

अंगद की परम चतुरता पूर्ण उक्ति सुन,
हंसने लगे उदार प्रभु श्रीराम,
फिर लंका के सब समाचार सुन,
मन्त्रियों से विचार करने लगे श्रीराम ।

लंका के चार विकट दरवाजों पर,
आक्रमण करने को चार दल बनाये,
मन्त्रियों ने यथायोग्य सेनापति नियुक्त किये,
और लंका पर आक्रमण करने को पैठाये ।

लंका का किला अजेय जानते हुए भी,
वानर प्रभु के प्रताप से निडर हो चले,
श्रीरामजी, लक्ष्मणजी, वानरराज सुग्रीव की जय,
ऊंचे स्वर से ऐसी गर्जना करने लगे ।

मच गया भारी कोलाहल लंका में,
तब रावण ने राक्षस सेना को बुलाया,
कहा, पकड़ खा जाओ वानर और रीछ,
विधाता ने तुम्हें तुम्हारा भोजन पहुँचाया ।

अनेक अस्त्र-शस्त्र ले राक्षस वीर,
चढ़ गये परकोटे के कंगूरो पर,
बज रहे हैं ढ़ोल और डंके आदि,
लड़ने का चाव होता जिन्हें सुनकर ।

इधर रावण, उधर श्रीराम की दोहाई,
छिड़ गयी लड़ाई, जय-जय ध्वनि के साथ,
राक्षस फेंक रहे पहाड़ों के शिखरों को,
वानर कूद कर पकड़ लेते हैं हाथों-हाथ ।

उछलकर किले पर चढ़ गये वानर-भालू,
फिर राक्षसों को पकड़ वानर भाग चले,
ऊपर आप और नीचे राक्षस योद्धा,
ऐसे आ गिरते हैं वो नीचे किले से ।

श्रीरामजी के प्रताप से वानरों के झुंड,
राक्षसों योद्धाओं के समूहों को रहे मसल,
राक्षसों के झुंड वैसे ही भाग चले जैसे,
प्रचण्ड हवा से तितर-बितर होते बादल ।

बड़ा भारी हाहाकार मच गया लंका में,
सब मिलकर गालियां दे रहे रावण को,
रावण ने सेना का विचलित होना जो सुना,
क्रोधित होकर वह बोला अपनी सेना को ।

मैं जिसे जानूंगा रण से भागकर आया,
मार डालूंगा उसे अपनी दुधारी तलवार से,
मेरा सब कुछ खाया, सब भोग किये,
अब प्राण प्यारे हो गये, भागे समर से ।

डर गये वे रावण के कठोर वचन सुन,
लज्जित हो, फिर चल पड़े युद्ध को,
सम्मुख मरने में ही है वीर की शोभा,
ऐसा सोच दाव पर लगा दिया प्राणों को ।

व्याकुल कर दिया उन्होनें वानर-रीछों को,
भयातुर हो इधर-उधर वो भागने लगे,
हे उमा ! आगे जाकर वे ही जीतेंगे,
पर अभी अंगद, हनुमान आदि को पुकारने लगे ।

पश्चिम द्वार पर लड़ रहे थे हनुमान,
चल रहा था वहां मेघनाद का युद्ध उनसे,
बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी क्योंकि,
टूट नही रहा था वह द्वार उनसे ।

तब मन में भारी क्रोध कर हनुमान,
जोर से गरज, लंका के किले पर आ गये,
पहाड़ ले, रथ तोड़, सारथि को मार डाला,
लात मार, मेघनाद की छाती पर चढ़ गये ।

दूसरा सारथि मेघनाद को व्याकुल जान,
तुरंत घर ले आया, रथ में डाल उसे,
उधर अंगद हनुमान को अकेला जान,
स्वयं भी उछल कर किले पर आ चढ़े ।

रावण के महल पर जा चढ़े दोनों,
और कलश सहित पकड़ ढहा दिया महल को,
रावण डर गया स्त्रियां छाती पीटने लगीं,
अबकी बार एक साथ आ गये वानर दो ।

फिर कूद पड़े वे शत्रु की सेना पर,
भारी भुजबल से उसका मर्दन करने लगे,
मसलने लगे एक को दूसरे से रगड़कर,
और सिर तोड़ रावण के सामने फेंकने लगे ।

जिन प्रधान सेनापतियों को पकड़ पाते हैं,
पैर पकड़ फेंक देते हैं प्रभु के पास,
विभीषणजी प्रभु को उनका नाम बतलाते हैं,
और श्रीराम दे देते हैं उन्हें अपना परम धाम ।

वे राक्षस भी वह परम गति पा रहे,
योगी भी जिसकी किया करते हैं याचना,
वैर से ही सही, प्रभु का स्मरण करते थे,
कोमल हृदय प्रभु की अपार है करूणा ।

हे भवानी ! और कौन है ऐसा कृपालु,
उन्हें ऐसा जान भी जो भजन नही करते,
अत्यंत मन्दबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं वे,
भ्रम त्याग, जो प्रभु की शरण न लेते ।

दिन का अन्त जान, अंगद-हनुमान लौट आये,
आकर प्रभु के चरणों में सिर नवाये उन्होंने,
उधर सायंकाल का बल पाकर राक्षस योद्धा,
रावण की दुहाई देते, लगे फिर से लड़ने ।

उन्हें आते देख, लौट पड़े वानर,
योद्धा भिड़ गये जहां-तहां किटकिटाकर,
दोनों ही दल बल में कम नही,
हार नही मानते, लड़ते हैं ललकार कर ।

राक्षस और वानर युद्ध करते ऐसे लग रहे,
मानो वर्षा और शरद ऋतु के हों बादल,
तभी राक्षस सेनापति अकंपन और अतिकाय ने,
सेना को विचलित देख दिखाया माया का बल ।

पल भर में अत्यंत अंधकार हो गया,
होने लगी खून, पत्थर और राख की वर्षा,
वानरों की सेना में खलबती मच गयी,
दिखलायी नही देता, वानर करें तो क्या ।

सब रहस्य जान गये श्रीरघुनाथजी,
अंगद और हनुमान को बुलाया उन्होंने,
सब समाचार कहकर समझाया दोनों को,
सुनते ही क्रोध सहित दौड़ लगायी उन्होंने ।

उधर श्रीरामजी ने हँसकर धनुष चढ़ाया,
अग्नि बाण चला प्रकाश कर दिया,
ज्यों ज्ञान होने पर संदेह नही रहता,
वैसे ही अंधेरा तुरंत मिट गया ।

प्रकाश होते ही दौड़ पड़े वानर, भालू,
हनुमान और अंगद गरज उठे रण में,
उनकी हांक सुनते ही राक्षस भाग छूटे,
वानर पकड़-पकड़ फेंक रहे समुद्र में ।

भाग चले सब राक्षस योद्धा वापस,
कुछ मारे गये, कुछ चढ़े गढ़ पर,
वानर, भालू भी लौटे प्रभु चरणों में,
देखते ही श्रम रहित हो गये भालू, वानर ।

वहां लंका में रावण ने मन्त्रियों को बुलाया,
कहा आधी सेना का संहार हो गया,
अब शीघ्र बताओ क्या करना चाहिये,
तब माल्यवंत-रावण के नाना ने कहा ।

जबसे तुम सीता को हर लाये हो,
वर्णनातीत अपशकुन हो रहे हैं तबसे,
वेद पुराणों ने जिनका गुण गाया,
किसने सुख पाया विमुख होकर उनसे ।

भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष को,
और बलवान मधु-कैटभ को मारा जिन्होंने,
वे ही कृपा के समुद्र स्वयं भगवान,
अवतरित हुए हैं श्रीराम रूप में ।

मासपारायण, पच्चीसवां विश्राम

दुष्टों के समूहरूपी वन के लिये अग्नि,
कालस्वरूप, गुणों के धाम, ज्ञानधन हैं जो,
शिवजी और ब्रह्मा भी जिनकी सेवा करते,
वैर छोड़, उन्हें उनकी जानकी वापस दे दो ।

बाण से लगे रावण को उसके वचन,
बोला, अरे अभागे, मुंह काला कर निकल जा,
बूढ़ा है, वरना तुझे मार ही डालता मैं,
अब मेरी आंखों को अपना मुंह न दिखा ।

जान लिया माल्यवान ने ये वचन सुन,
श्रीराम अब मारना ही चाहते है इसे,
तब मेघनाद बोला, सबेरे मेरी करामात देखना,
क्या कहूँ मैं अपने मुह से अभी से ।

आश्वस्त हो गया रावण यह सुनकर,
विचार करते-करते ही हो गया सवेरा,
वानर फिर चारों दरवाजों पर आ लगे,
और क्रोध कर दुर्गम किला आ घेरा ।

नगर में बहुत ही शोर मच गया,
राक्षस किले पर से पहाड़ ढ़हाने लगे,
वानर घायल होने पर भी हटते नही,
शिखरों को पकड़ वापस ऊपर फेंकने लगे ।

तब मेघनाद डंका बजाकर चल पड़ा,
श्रीराम-लक्ष्मण और वानर वीरों को ललकारा,
कहने लगा, भ्राताद्रोही वह विभीषण कहाँ है,
आज वह मेरे हाथों से जायेगा मारा ।

ऐसा कह, क्रोध कर, छोड़ने लगा बाण,
मानों अनेक पंखवाले सांप दौड़ रहे हों,
वानर-भालू जहां-तहां प्राण बचाकर भागे,
तब हनुमान यूँ दौड़े, ज्यों काल दौड़ा हो ।

एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया उन्होंने,
बड़े क्रोधसहित छोड़ा मेघनाद पर उसे,
पहाड़ को आते देख मेघनाद उड़ गया,
रथ, सारथि, घोड़े सब नष्ट हो गये,

हनुमानजी बार-बार ललकारते हैं उसे,
पर वह उनके निकट आता ही नही,
जानता था वह उनके बल का मर्म,
इसीलिये उनके सामने आना चाहता नही ।

प्रभु के पास जा दुर्वचन कहने लगा,
फिर अस्त्र, शस्त्र, हथियार चलाये उन पर,
प्रभु ने खेल में ही सब काट दिये,
मूर्ख का कुछ वश नही चलता उन पर ।

लज्जित हो, अनेक माया करने लगा वो,
सांप के बच्चे से डरा रहा गरूड़ को,
शिवजी और ब्रह्मा भी जिनकी माया वश रहते,
नीचबुद्धि निशाचर माया दिखलाता है उनको ।

अंगारे बरसाता है, जल की धाराएं धरती से,
पिशाच-पिशाचनियां चिल्ला रहे मारो-काटो,
विष्ठा, पीब, खून, बाल, हड्डिया बरसाता है,
घनघोर अंधेरा, हाथ सूझता नही हाथ को ।

अकुला उठे वानर यह माया देखकर,
यह कौतुक देख श्रीरामजी मुसकाये,
एक ही बाण से सब माया काट डाली,
ज्यों बादलों से सूरज निकल आये ।

तब श्रीरामजी से आज्ञा मांग लक्ष्मणजी,
धनुष-बाण ले चले हाथों में,
उधर हाथों में अनेक अस्त्र-शस्त्र लिये,
बड़े-बड़े योद्धा भेजे रावण ने ।

जोड़ी से जोड़ी भिड़े वानर और राक्षस,
दोनों ओर विजय की इच्छा थी प्रबल,
लात-घूंसों से मारते, दांतों से काटते वानर,
राक्षस काम ले रहे अपना छल-बल ।

नवों खण्डों में ऐसी आवाज भर रही,
जहां-तहां दौड़ रहे हैं प्रचण्ड-रूण्ड,
आकाश में देवतागण देख रहे यह कौतुक,
कभी खेद होता है और कभी आनन्द ।

खून खड्डों में भर-भरकर जम गया,
और उस पर उड़-उड़कर पड़ रही धूल,
यह दृश्य ऐसा लग रहा है मानों,
राख के ढ़ेर में खिले हों फूल ।

लक्ष्मण और मेघनाद भिड़ गये आपस में,
कोई एक-दूसरे को जीत नहीं सकता,
सारथि और रथ तोड़ डाले लक्ष्मणजी ने,
और मेघनाद पर प्रहार पर प्रहार किया ।

मेघनाद के बस प्राण ही बच रहे,
चलायी तब उसने वीरघातिनी शक्ति,
वह शक्ति लक्ष्मणजी की छाती में लगी,
मूर्च्छा आ गयी उन्हें, लगी जो शक्ति ।

तब भय छोड़ चला आया वह पास,
प्रयत्न करने लगा लक्ष्मणजी को उठाने का,
पर लक्ष्मणजी को हिला भी नही पा रहे,
प्रयत्न कर हार गये सौ-सौ योद्धा ।

जगत के आधार शेषजी उनसे उठते कैसे,
जिनकी क्रोधाग्नि चौदहों भुवनों को जला डालती,
समस्त चराचर जिनकी सेवा करता रहता,
उनके सामने भला चल सकती किसकी ।

इस लीला को वही जान सकता है,
जिस पर हो प्रभु श्रीराम की कृपा,
सन्ध्या होने पर जब सब लौट आए,
करूणानिधान राम ने लक्ष्मण को पूछा ।

तब तक हनुमान उन्हें वहां ले आये,
प्रभु बड़े दुखी हुए, देखकर उनकी दशा,
जाम्बवान् बोले, सुषेण वैद्य है लंका में,
उसे लाने के लिये किसी को जाये भेजा ।

छोटा रूप धर कर गये हनुमानजी,
घर सहित सुषेण को तुरंत उठा लाये,
पर्वत और औषध का नाम उसने बताया,
और हनुमानजी औषध लाने को पैठाये ।

श्रीरामजी के चरणों को हृदय में धर,
चल दिये हनुमानजी औषध लाने को,
उधर एक गुप्तचर ने रावण को खबर दी,
तुरंत कालनेमि के घर चल दिया वो ।

रावण ने उसको सब हाल बताया,
सुनकर सिर पीट लिया उसने अपना,
जिसने देखत-देखते जला दिया लंका को,
कौन उसके मार्ग में बाधा बन सकता ।

बोला, श्रीराम भज कल्याण करो अपना,
मैं-तू और ममतारूपी अज्ञान त्याग दो,
जाग उठो मोहरूपी कालरात्रि से अब तुम,
हे नाथ ! बकवास छोड़, हित की बात सुनो ।

यह सुन बहुत क्रोधित हो उठा रावण,
तब कालनेमि ने विचार किया मन में,
इसके हाथों मरने से तो अच्छा है,
श्रीराम का दूत ही मेरे प्राण ले ।

मन ही मन ऐसा कहकर चला कालनेमि,
माया का तालाब और बाग रचा मार्ग में,
मुनि से पूछ, जल पी, थकावट मिटा लूं,
सुन्दर आश्रम को देख सोचा श्रीहनुमान ने ।

मुनि के पास जा चरणों में सिर नवाया,
वह श्रीरामजी के गुणों की कथा कहने लगा,
बोला श्रीराम और रावण के युद्ध में,
श्रीराम जीतेगें, मुझे ज्ञानदृष्टि से दिख रहा ।

हनुमानजी ने जो उससे जल मांगा,
वह बोला तालाब में स्नान कर आओ,
फिर मैं तुम्हें दीक्षित कर मंत्र दूंगा,
जिससे तुम ज्ञान के निधि बन जाओ ।

एक मगरी ने पैर पकड़ लिया उनका,
तो मार डाला श्रीहनुमान ने उसको,
दिव्य देह धारण कर वह आकाश चली,
यह मुनि नही निशाचर है, कहा उनको ।

ऐसा कह, ज्यों ही वह अप्सरा गयी,
त्यों ही हनुमानजी गये कालनेमि के पास,
बोले, पहले आप गुरूदक्षिणा ले लीजिये,
फिर करना मुझे मंत्र देने की बात ।

तब उसके सिर को पूंछ में लपेट,
हनुमानजी ने प्राण ले लिये उसके,
मरते समय राक्षस शरीर प्रकट किया,
और मुंह से राम-नाम निकला उसके ।

उसके मुंह से राम-नाम का उच्चारण सुन,
मन में हर्षित होकर चले हनुमान,
उन्होंने पर्वत देखा, औषधि पहचान न सके,
तो पर्वत ही उखाड़ ले चले हनुमान ।

रात ही में आकाश मार्ग से दौड़ चले,
जब जा रहे थे वे अयोध्या के ऊपर से,
भरतजी ने आकाश में देख मन में सोचा,
लगता है कोई मायावी राक्षस है ये ।

कान तक खींच बिना फल का बाण मारा,
राम-राम कहते मूर्छित हो गिर पड़े हनुमान,
राम नाम सुन उन्हें उठा रहे हैं भरतजी,
पर किसी तरह भी जाग नही रहे हनुमान ।

बहुत उदास हो भरतजी कहने लगे,
विधाता ने यह भारी दुख भी दिया,
जिसने किया मुझे श्रीराम से विमुख,
उसी ने यह भयानक दुख फिर दिया ।

कहने लगे, यदि मन, वचन और शरीर से,
श्रीराम चरणों में निष्कपट प्रेम हो मेरा,
और यदि श्रीरामजी मुझ से प्रसन्न हों,
तो इस वानर की मिट जाये सब पीड़ा ।

तुरंत कोसलपति श्रीरामचन्द्रजी की जय हो,
जय हो, जय हो कहते उठ बैठे हनुमान,
भरतजी ने लगा लिया उन्हें हृदय से,
पूछा कैसे हैं लक्ष्मण, जानकीजी और श्रीराम ।

हनुमानजी ने सब हाल बतलाया उनको,
सुनकर बहुत दुखी हो गये भरतजी,
हाय ! मैं जग में क्यों जन्मा, बोले,
फिर कुअवसर जान कहने लगे भरतजी ।

हे तात ! तुमको जाने में देर होगी,
और बिगड़ जायेगा काम सवेरा होते ही,
अत: पहाड़ सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ,
तुम्हें वहां भेज दूं, जहां है कृपालु श्रीरामजी ।

उनकी यह बात सुन एक बार तो,
हनुमानजी के मन में अभिमान हो आया,
फिर श्रीरामचन्द्रजी के प्रभाव का विचार कर,
हाथ जोड़ करी भरतजी के चरणों की वन्दना ।

फिर बोले, आपका प्रताप हृदय में रख,
हे प्रभो ! चला जाऊंगा मैं तुरंत ही,
ऐसा कहकर और भरतजी की आज्ञा पाकर,
उनके चरणों की वन्दना कर चले मारूती ।

उधर लक्ष्मणजी को देखकर श्रीरामजी,
साधारण मनुष्यों के समान बोले वचन,
आधी रात बीत गयी, हनुमान नही आये,
फिर उठाकर गले से लगा लिये लक्ष्मण ।

बोले, देख न सकते थे तुम मुझे दुखी,
सदा से ही कोमल था स्वभाव तुम्हारा,
मेरे लिये छोड़ दिये तुमने माता-पिता भी,
वन में रहकर दु:ख सहन किया सारा ।

हे भाई ! अब वह प्रेम कहाँ हैं,
मुझे व्याकुल देख भी क्यों उठते नही,
यदि मैं जानता यहां तुम्हारा विछोह होगा,
तो पिता के वचन भी मानता नही ।

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार,
बार-बार होते और जाते ये जगत में,
पर सहोदर भाई बार-बार नही मिलता,
जागो, हे तात ! ऐसा विचार हृदय में ।

जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प,
और सूंड बिना श्रेष्ठ हाथी दीन हो जाता,
वैस ही यदि जड़ दैव मुझे जीवित रक्खे,
तो तुम्हारे बिना जीवन व्यर्थ होगा, हे भ्राता ।

स्त्री के लिये प्यारे भाई को खोकर,
कौन सा मुंह ले मैं अवध जाऊंगा,
स्त्री को खो बैठा, यह अपयश सह लेता,
पर अब तो दोनो दुख सहन करूंगा ।

एक मात्र पुत्र और प्राणाधार माता के,
परम हितैषी जान तुम्हें मुझे सौंपा था,
अब मैं जाकर माता को क्या उत्तर दूंगा,
हे भाई ! उठकर तू क्यों नही बोलता ।

इस प्रकार बहुत सोच कर रहे श्रीरामजी,
सोच से छुड़ाने वाले शोकमग्न हो रहे,
हे उमा ! श्रीरघुनाथजी अद्वितीय, वियोग रहित हैं,
पर कृपालु भगवन्, नर लीला कर रहे ।

इतने में हनुमानजी औषध लेकर आ गये,
सुषेण वैद्य ने लक्ष्मणजी को स्वस्थ कर दिया,
प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले,
फिर हनुमानजी ने वैद्यजी को वापस पहुँचा दिया।

यह समाचार जब रावण ने सुना तो,
भर गया वह अत्यन्त विषाद से,
व्याकुल हो कुम्भकर्ण के पास गया वो,
बहुत से उपाय कर जगा दिया उसे ।

कुम्भकर्ण उठ बैठा, ऐसा लगता है वो,
मानो स्वयं काल शरीर धरे बैठा हो,
रावण ने पूछने पर सब हाल बताया,
तब रावण को ही डांटने लगा वो ।

कहा, अरे मूर्ख ! जगज्जननी जानकी को,
हर लाकर, अब तू कल्याण चाहता,
अच्छा न किया , अब भी अभिमान छोड़,
श्रीरामजी को भज, यदि अपना भला चाहता ।

हे रावण ! जिनके हनुमान सरीखे सेवक हैं,
वे श्रीरघुनाथजी बस मनुष्य ही हैं क्या,
पहले ही आकर तूने मुझे नही बताया,
हे भाई ! तूने यह सब अच्छा न किया ।

हे स्वामी ! तुमने उसका विरोध किया,
शिव, ब्रह्मा आदि सेवक हैं जिसके,
नारद मुनि ने मुझे जो ज्ञान कहा था,
वह कहता, पर समय रहा न बच के ।

अब अन्तिम बार अंकवार भरकर मिल ले,
फिर मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ,
तीनों तापों को छुड़ाने वाले श्याम शरीर,
कमलनेत्र श्रीरामजी के मैं दर्शन करूँ ।

श्रीराम के रूप और गुणों को स्मरण कर,
एक क्षण के लिये वह प्रेममग्न हो गया,
फिर भैंसे खा, मदिरा पी और गरज कर,
मद से चूर, कुम्भकर्ण रण के लिये चला ।

उसे देखकर विभीषण आगे आये,
उसके चरणों में सिर नवा, नाम सुनाया,
उठाकर हृदय से लगा लिया कुम्भकर्ण ने,
विभीषण ने उसको सब वृतान्त सुनाया ।

कुम्भकर्ण ने कहा, कालवश हो गया है रावण,
मान नही सकता अब वह उत्तम शिक्षा,
हे विभीषण, तू धन्य है, धन्य, धन्य है,
हे तात ! तू राक्षस कुल का भूषण हो गया ।

बोला मन, वचन, कर्म से कपट छोड़,
रणधीर श्रीरामजी का तुम करना भजन,
चले जाओ तुम, काल वश हो गया मैं,
अब अपने पराये का नही मुझे मनन ।

भाई के वचन सुन लौट गये विभीषण,
आकर उसके बारे में श्रीराम को बताया,
उधर वानर-रीछ सब टूट पड़े उस पर,
पर कुम्भकर्ण का कोई कुछ बिगाड़ न पाया ।

तब हनुमानजी ने उसे एक घूंसा मारा,
जिससे गिर पड़ा वह व्याकुल होकर,
फिर उसने उठकर हनुमानजी को मारा,
चक्कर खा गिर पड़े वे पृथ्वी पर ।

फिर उसने नल-नील को पछाड़ा,
भाग चली वानर सेना भयभीत होकर,
मुर्च्छित कर दिया सुग्रीव, अंगदादि को,
और चला सुग्रीव को कांख में दबाकर ।

शिवजी कहते हैं, हे उमा ! श्रीरघुनाथजी,
खेल रहे, गरूड़ सर्पों से खेले जैसे,
नर शरीर धर नरलीला कर रहे वे,
भला कौन जीन सकता रण में उनसे ।

जो बिना परिश्रम काल को भी खा जाता,
क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है उसे,
जग पावनि कीर्ति फैलायेंगे इसके द्वारा,
जिसे गा-गाकर तर जायेंगे लोग भव से ।

उधर हनुमानजी की जब मूर्च्छा गयी,
खोजने लगे वे वानरराज सुग्रीव को,
सुग्रीव की भी मूर्च्छा दूर हुई तब,
खिसक गये, कुम्भकर्ण मृत समझा उनको ।

नाक, कान दांतों से काट कुम्भकर्ण के,
सुग्रीव आकाश की ओर चले गरजकर,
पैर पकड़ कुम्भकर्ण ने पृथ्वी पर पछाडा,
सुग्रीव ने फिर मारा उसे पकड कर ।

फिर प्रभु के पास चले सुग्रीव,
बोले, कृपानिधान प्रभु की जय हो,
उधर नाक कान कट जाने से कुम्भकर्ण,
बड़ा भयानक लग रहा था वो ।

असंख्य वानरों को एक साथ पकड़कर,
खाने लगा कुम्भकर्ण उन सबको,
अनेकों को रगड़, मसल रहा कुम्भकर्ण,
मद में मत्त, गर्वित हो रहा वो ।

तितर-बितर कर दिया वानर सेना को उसने,
तब श्रीरघुनाथजी शत्रु सेना को दलन करने चले,
हाथ में शार्ङ्गधनुष और कमर में तरकस,
टंकार सुनते ही शत्रु दल हो गये बहरे ।

फिर एक लाख बाण छोड़े प्रभु ने,
जो पंख वाले काल सर्प से चले,
काट डाला अनेक योद्धाओं को उन्होंने,
बिना मुण्ड प्रचण्ड रुण्ड दौड़ने लगे ।

क्षणमात्र में राक्षसी सेना का संहार कर,
फिर तरकस में आ घुसे सब बाण,
क्रोधित हो कुम्भकर्ण ने पर्वतों को फेंका,
बाण से काट, प्रभु ने किये धूल समान ।

फिर क्रोधित हो, धनुष तानकर प्रभु ने,
अत्यंत भयानक बाण छोड़े कुम्भकर्ण पर,
बहता रूधिर उस पर ऐसे शोभ रहा,
जैसे गेरू के पनाले काले पर्वत पर ।

बड़ा घोर शब्द कर तब वह गरजा,
गजराज सा वानर-भालूओं को लगा पटकने,
भाग चले वे सब के सब व्याकुल हो,
तब सेना को पीछे कर प्रभु आये सामने ।

धनुष को खींच सौ बाण संधान किये,
बाण छूट कर समा गये उसके तन में,
बाणों के लगते ही क्रोधित हो वो दौड़ा,
पृथ्वी हिलने लगी, पर्वत लगे डगमगाने ।

उखाड़ लिया तब एक पर्वत उसने,
तो काट डाली प्रभु ने वह भुजा उसकी,
जब उसने बायें हाथ में पर्वत उठाया,
तो प्रभु ने काट डाली वह भुजा भी ।

भुजा कट जाने पर यूँ लग रहा वो,
जैसे बिना पंख का मन्द्राचल पहाड़ हो,
उसने ऐसे उग्रदृष्टि से प्रभु को देखा,
मानों तीनों लोक निगल जाना चाहता हो ।

बड़े जोर से चिंघाड़, मुंह फैलाकर दौड़ा,
सिद्ध और देवता पुकारने लगे प्रभु को,
करूणानिधान ने देवताओं को भयभीत जान,
बाणों से भर दिया उसके मुख को ।

मुख में बाण भरे दौड़ने लगा वो,
प्रभु ने सिर धड़ से अलग कर दिया,
बिना सिर के दौड़ता रहा धड़ उसका,
प्रभु ने उसे भी दो टुकड़े कर दिया ।

रावण के सामने गिरा कटा सिर,
जिसे देख रावण अत्यंत व्याकुल हो गया,
उसके धड़ के टुकड़े पहाड़ से गिरे,
बहुत से योद्धाओं को नीचे दबा लिया ।

फूल बरसाने लगे देवता हर्षित हो,
नारद मुनि ने आ प्रभु का गुणगान किया,
रावण को शीघ्र ही मारने की प्रार्थना कर,
नारद मुनि ने वहां से प्रस्थान किया ।

प्रभु के मुख पर पसीने की बूंदें,
कमल के समान नेत्र कुछ लाल हो रहे,
शेषजी भी नही कर सकते जिसका वर्णन,
प्रभु ऐसे रणभूमि में सुशोभित हो रहे ।

कुम्भकर्ण जैसे राक्षस और पापी को,
दे दिया श्रीरामजी ने अपना परमधाम,
शिवजी कहते हैं, वे निश्चय ही मन्दबुद्धि हैं,
जो भजते नही कृपालु श्रीराम का नाम ।

राक्षस सेना दिन-रात घटती जा रही है,
रावण कुम्भकर्ण के लिये कर रहा विलाप,
तभी मेघनाद ने आकर समझाया पिता को,
कहा, कल रण में मेरा परूषार्थ देखना आप ।

हे तात ! मैने अपने इष्टदेव से,
जो बल और रथ पाया था,
वह बल और रथ अब तक,
मैने आपको नही दिखलाया था ।

यूँ डींग मारते हुए सबेरा हो गया,
बहुत से वानर आ डटे दरवाजों पर,
इधर काल समान वीर वानर-भालू हैं,
और अत्यंत रणधीर राक्षस हैं उधर ।

मेघनाद मायामय रथ पर चढ़ कर,
आकाश में जा, अट्टहास कर गरजा,
शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि,
और बाणों की करने लगा वर्षा ।

दसों दिशाओं में बाण छा गये नभ में,
मानों मघा नक्षत्र के बादलों ने लगायी झड़ी,
'पकड़ो', 'पकड़ो', 'मारो' शब्द सुनायी देते हैं,
पर जो मार रहा है, दिखायी देता नही ।

व्याकुल कर दिया सबको मेघनाद ने,
लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण को भी मारे बाण,
फिर लड़ने लगा वो श्रीरघुनाथजी से,
उसके बाण लग रहे सांपों के समान ।

जो स्वतंत्र, अनन्त, अखण्ड, निर्विकार हैं,
वे खरारि भी बंध गये नागपाश में,
देवता भयभीत हो गये, पर हे उमा !,
क्या भवभयहारी बंध सकते बंधन में ।

हे उमा ! उनकी नरलीलाओं के विषय में,
बुद्धि और वाणी द्वारा कहा नही जा सकता,
ऐसा विचारकर तत्त्वज्ञानी और विरक्त पुरुष,
सब तर्क छोड़ भजन ही करते हैं उनका ।

सेना को व्याकुल कर जब प्रकट हुआ वह,
जाम्बवान् ने कहा, रे दुष्ट ! रूक तो जरा,
इस पर मेघनाद ने उन पर त्रिशुल चलाया,
उसे पकड़ उन्होंने उसी पर दे धरा ।

चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा वो,
तब पैर पकड़ जाम्बवान् ने उसे दे पटका,
मरता नही वह वरदान के प्रताप से,
तब जाम्बवान् ने उठा उसे लंका में फेंका ।

उधर देवर्षि नारदजी ने भेजा गरूड़ को,
सब सर्पों को वो खा गये पकड़कर,
मूर्च्छा टूटने पर मेघनाद को शर्म लगी,
चला अजेय यज्ञ करने का विचार कर ।

यहां विभीषण ने प्रभु से कहा,
यदि वह यज्ञ सफल हो जायेगा,
तो देवताओं का शत्रु इन्द्रजीत मेघनाद,
फिर जल्दी से जीता नही जायेगा ।

तब अंगदादि बहुत से वानरों को बुलाकर,
उन्हें लक्ष्मण के साथ जाने को कहा,
बोले, जाकर यज्ञ का विध्वंस करो,
और लक्ष्मण को उसके वध का कहा ।

कमर में तरकस और धनुष चढाकर,
लक्ष्मणजी चले प्रभु की दुहाई देकर,
बोले, यदि सैंकड़ों शंकर भी सहायता करें,
तो भी मेघनाद रहेगा मेरे हाथों मरकर ।

श्रीरघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर,
वानर वीरों को साथ ले लक्ष्मणजी चले,
जाकर मेघनाद का यज्ञ विध्वंस कर डाला,
फिर भी वह बैठा रहा बिना हिले-डुले ।

तब वानरों ने जा उसके बाल पकड़े,
और लातों से मार-मारकर वे भाग चले,
तब वह उनके पीछे त्रिशुल ले दौड़ा,
वानर वहा आ गये जहां लक्ष्मणजी थे खड़े ।

मेघनाद अत्यंत क्रोध का मारा हुआ आया,
और बार-बार भयंकर शब्द कर गरजने लगा,
हनुमान और अंगद क्रोध कर जब दौड़े,
उसने छाती में त्रिशूल मार उन्हें गिरा दिया ।

फिर लक्ष्मणजी से युद्ध करने लगा वो,
वज्र के समान छोड़े बाण लक्ष्मणजी ने,
उन्हें अपनी ओर आता देख अन्तर्धान हो गया,
फिर भांति-भांति के रूप धर लगा लड़ने ।

कभी प्रकट होता, कभी छिप जाता था वो,
किसी प्रकार पराजित हो न रहा था,
तब बहुत क्रोधित हो, श्रीराम को स्मरण कर,
उसकी छाती के बीचों-बीच बाण दे मारा ।

मरते समय सब कपट छोड़ वो,
राम कहाँ, लक्ष्मण कहाँ पूछने लगा,
तेरी माता धन्य है, धन्य है,
यह देख अंगद, हनुमान ने कहा ।

बिना परिश्र्रम के ही उठा कर उसे,
लंका के दरवाजे पर रख आये हनुमान,
उसका मरना सुन देवता और गन्धर्व,
फूल बरसा, करने लगे प्रभु का यशगान ।

मूर्च्छित हो गया रावण, यह समाचार सुन,
मन्दोदरी छाती पीट-पीटकर रोने लगी,
शोकाकुल नगरवासी कोस रहे रावण को,
रावण की नीचता, बड़ी महंगी पड़ी ।

तब रावण ने सांत्वना दी सभी को,
वह स्वयं नीच, पर उपदेश ज्ञान का देता,
दूसरों को उपदेश देने में निपुण बहुत से,
जो स्वयं खरा उतरे, कोई-कोई ही होता ।

सवेरे फिर लंका को आ घेरा वानरों ने,
तब रावण ने अपने योद्धाओं को कहा बुलाकर,
जो जरा भी डावांडोल हो, अभी भाग जाये,
शत्रु से निपट लूंगा, मैं अपने ही बल पर ।

वायु वेग से चलने वाला रथ सजाकर,
योद्धाओं सहित काजल की आंधी सा चला रावण,
उस समय असंख्य अपशकुन होने लगे,
पर उन्हें गिनता नही गर्व से चूर दशानन ।

गिर रहे हैं हथियार हाथों से,
रथ से गिर-गिर पड़ रहे योद्धा,
घोड़े-हाथी साथ छोड़ चिंग्घाड़ रहे,
स्यार, गिद्ध आदि का शोर हो रहा ।

जो जीवों के द्रोह में रत रहता,
कामासक्त, रामविमुख, मोह के वश हो रहा,
सम्पत्ति, शुभ, शकुन, चित्त की शान्ति,
क्या ऐसे जीव को मिल सकती भला ।

बहुत सी चतुरंगिणी सेना चली रावण की,
दिग्गज डिगने लगे, पर्वत लगे डगमगाने,
रावण बोला, तुम वानर-भालू मसल डालो,
मैं चला, दोनों भाइयों को ठिकाने लगाने ।

जब वानरों ने यह खबर पाई,
वे श्रीरामजी की हुहाई देते हुए दौड़े,
विशाल और काल समान लग रहे वे,
मानों पंखवाले पर्वतों के समूह उड़े ।

नख, दांत, पर्वत और वृक्ष ही हथियार,
बड़े बलवान, किसी का डर नही मानते,
रावण रूपी मतवाले हाथी के लिये वे,
सिंह रूपी श्रीरघुनाथजी की जयकार करते ।

दोनों ओर के योद्धा जय-जयकार कर,
अपनी-अपनी जोड़ी चुन भिड़ पड़े परस्पर,
रावण को रथयुक्त, श्रीरामजी को रथ बिना देख,
विभीषण अधीर हो, बोले चरण वन्दना कर।

हे नाथ ! आपके पास न रथ, न कवच,
किस प्रकार जीता जायेगा यह बलवान रावण,
कृपानिधान श्रीरामजी ने कहा, हे सखे, सुनो,
जिससे जय होती है, होता है दूसरा वाहन ।

शौर्य और धैर्य पहिये उस रथ के,
सत्य और शील मजबूत ध्वजा व पताका,
बल, विवेक, दम, परोपकार, घोड़े हैं जिन्हें,
दया, क्षमा और समतारूपी डोरी से बांधा ।

ईश्वर का भजन सारथि, वैराग्य ढाल है,
संतोष तलवार है, दान है फरसा,
बुद्धि प्रचण्ड शक्ति, श्रेष्ठ विज्ञान धनुष है,
निर्मल और अचल मन तरकस उसका ।

यम और नियम बाण बहुत से,
ब्राह्मणों और गुरू का पूजन अभेद कवच,
इसके समान विजय का दूसरा उपाय नही,
वह अजेय है जिसके पास हो ऐसा रथ ।

हे सखा ! जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो,
जीत सकता है जन्म और मृत्यु को भी,
कुछ भी अजेय नही ऐसे व्यक्ति को,
फिर बात ही क्या है रावण की ।

हर्षित हो विभीषण ने पकड़े चरण,
कहा, इसी बहाने मुझे महान् उपदेश दिया,
हे कृपा और सुख के समूह श्रीरामजी !
मेरा सब सन्देह आपने मिटा दिया ।

उधर रावण ललकार रहा युद्धभूमि में,
इधर अंगद और हनुमान गरज रहे,
राक्षस योद्धा और वानर-भालू वीर,
स्वामी की दुहाई देकर लड़ रहे ।

एक-दूसरे को पकड़, मसल दे रहे,
सिर तोड़कर औरों को मारते उसी से,
भीषण युद्ध करते वीर सुशोभित हो रहे,
वानर-भालू लग रहे क्रोधित काल से ।

जय हो प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की जो सचमुच में,
तृण से वज्र और वज्र से तृण कर देते,
अपनी सेना को तब विचलित हुआ देख,
रावण रथ पर चढ़ चला लौटो, लौटो कहते ।

वृक्ष, पत्थर, पहाड़ ले दौड़े वानर वीर,
पर रावण से टकरा चूर, चूर हो जाते,
क्रोधित हो रावण मसलने लगा वानरों को,
हे अंगद! हे हनुमान! बचाओ, वे कहते।

धनुष पर बाण सन्धान कर छोड़े रावण ने,
पृथ्वी-आकाश, दिशा-विदिशा बाणों से भर दिये,
कोलाहल मच गया, वानर-भालू पुकारने लगे,
तब सिर नवा, धनुष ले लक्ष्मणजी चले ।

उन्हें सामने देख, रावण ने कहा, ठहर,
तुझे ही ढूंढ रहा था, मेरे पुत्र के घातक,
आज तुझे मार मैं छाती ठंडी करूंगा ।
ऐसा कह कर रावण ने छोड़े बाण प्रचण्ड ।

सैकड़ों टुकड़े कर दिये लक्ष्मणजी ने उनके,
तब रावण ने करोड़ो अस्त्र-शस्त्र चलाये,
तिल-तिल कर काट दिया लक्ष्मणजी ने उन्हें,
रथ नष्ट कर, रावण पर अनेकों बाण चलाये ।

सौ-सौ बाण मारे उसके दसों मस्तकों में,
जो सर्प से उसके सिरों में धस गये,
फिर सौ बाण उसकी छाती में मारे,
गिर पड़ा पृथ्वी पर वो सब लिये-दिये ।

फिर मूर्च्छा टूटने पर प्रबल रावण ने,
ब्रह्माजी की दी हुई शक्ति को चलाया,
गिर पड़े छाती पर लगने से लक्ष्मण,
पर रावण उन्हें जरा भी उठा न पाया ।

ये देख हनुमानजी कठोर वचन कहते दौड़े,
आते ही घूंसे से प्रहार किया रावण ने,
नीचे न गिरे घुटने टेक रह गये हनुमान,
फिर घूंसा मार रावण को गिरा दिया उन्होंने ।

मूर्च्छा भंग होने पर वह फिर गरजा,
और सराहना करने लगा उनके बल की,
हनुमानजी बोले, मुझे मेरे पौरूष को धिक्कार,
जो जीता रह गया, हे देवद्रोही तू अब भी ।

लक्ष्मणजी को उठा श्रीराम के पास ले आये,
यह देख रावण को हुआ बड़ा ही अचरज,
श्रीराम ने कहा हे भाई ! हृदय में समझो,
तुम काल के भक्षक हो, देवों के रक्षक ।

यह सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे,
चली गयी वह कराल शक्ति आकाश को,
लक्ष्माणजी फिर धनुष-बाण लेकर के दौडे,
सारथि को मार, चूर-चूर कर दिया रथ को ।

सौ बाण मार हृदय वेध दिया रावण का,
अत्यंत व्याकुल हो रावण गिर पड़ा पृथ्वी पर,
तब दूसरा सारथि रावण को लंका ले गया,
यज्ञ करने लगा वो वहां होश आने पर ।

विभीषण ने कहा, प्रभु यज्ञ विध्वंस करावें,
वरना सिद्ध होने पर वो सहज न मरेगा,
अंगद, हनुमान आदि प्रमुख वीर सब दौड़े,
उसे लंका में यज्ञ करते उन्होंने देखा ।

उसे दुर्वचन कहते अंगद ने लात मारी,
पर उनकी ओर तक भी देखा नही उसने,
तब वानर घरों से स्त्रियों को घसीट लाये,
अत्यंत दीन हो पुकारा रावण को उन्होंने ।

काल सा क्रोधित हो तब उठा रावण,
वानरों को पटकने लगा पैर पकड़कर,
इस बीच वानरों ने यज्ञ विध्वंस कर डाला,
यह देख रावण रह गया मन में हारकर ।

यज्ञ विध्वंस कर वानर वापस आ गये,
जीने की आशा छोड़ रावण क्रोधित हो चला,
चलते समय भयंकर अपशकुन होने लगे,
पर काल के वश उसने कुछ न गिना ।

इधर प्रभु की स्तुति करने लगे देवता,
हे श्रीरामजी ! अब और न खिलाइये इसे,
जानकीजी बहुत ही दुखी हो रही हैं,
और बहुत ही दुख दिये हैं इसने हमें ।

शार्गंधनुष हाथ में ले कर चले श्रीराम,
समस्त ब्रह्माण्ड, दिग्गज, शेषजी लगे डगमगाने,
देवता हर्षित हो फूल बरसाने लगे,
और प्रभु की जय हो ! लगे पुकारने ।

इसी बीच में निशाचरों की घनी सेना,
कसमसाती हुई आ गयी रणभूमि में,
उसे देख वानर योद्धा इस प्रकार चले,
जैसे प्रलय काल के बादल चले आ रहे ।

चमक रही हैं बहुत सी कृपाण और तलवारें,
मानो दसों दिशाएं बिजलियां चमक रही हों,
हाथी और घोड़े कठोर चिंघाड़ कर रहे,
मानो बादल भयानक गर्जन कर रहे हों ।

पर्वतों से प्रहार कर रहे हैं योद्धा,
मानो बारम्बार वज्रपात हो रहा,
श्रीरघुनाथ ने बाणों की झड़ी लगा दी,
जिससे घायल हो गयी राक्षस सेना ।

अतयंत अपवित्र रक्त की नदी बह चली,
दोनों दल दानों किनारे हैं उसके,
रथ रेत है और पहिये भंवर हैं,
हाथी, घोड़े, रथ जलजन्तु इस नदी के ।

वीर पृथ्वी पर गिर रहे हैं ऐसे,
मानो नदी किनारे वृक्ष ढह रहे हों,
कौवे और चील कटे अंग ले उड़ते हैं,
और एक-दूसरे से छीन ले रहे हैं वो ।

गीदड़ों के समूह कट-कट करते हुए,
मुरदों का काटते खाते, हुआं-हुआं कर रहे,
घूम रहे हैं करोड़ो धड़ बिना सिर के,
और सिर पृथ्वी पर जय-जय बोल रहे ।

श्रीरामजी के बल से दपित हुए वानर,
मसल डालते हैं राक्षसों के झुण्डों को,
और उनके बाण-समूहों से मरे योद्धा,
रण भूमि में चिर निंद्रा में रहे हैं सो ।

राक्षसों का नाश हुआ देख रावण ने,
सोचा जरूरी है अब रचनी माया,
उधर प्रभु को बिना रथ के देख,
इन्द्र ने तुरंत अपना रथ भिजवाया ।

तुरंत मातलि वह रथ ले आया,
हर्षित हो उस पर आरूढ़ हुए श्रीराम,
उधर रावण ने अपनी माया फैलायी,
जो सबको लग गयी, बस बचे श्रीराम ।

बहुत से राम और लक्ष्मण देखकर,
मन में मिथ्या डर से डरे वानर,
सेना को आश्चर्य चकित देख कोसलपति ने,
पल में सारी माया हर ली हँसकर ।

फिर श्रीराम ने गम्भीर हो कहा,
अब तुम मेरा और रावण का युद्ध देखो,
चल दिये प्रभु ब्राह्मणों को सिर नवा,
उधर रावण क्रोधित हो चला मारने उनको ।

बोला, बहुत राक्षस योद्धा मारे तुमने,
पर आज पड़ा है रावण से पाला,
यदि तुम रण से भाग न गये तो,
निश्चित ही बनोगे मृत्यु का निवाला ।

उसके दुवर्चन सुन और कालवश जान,
प्रभु बोले, तुम्हारा सब कथन है सच,
पर अब व्यर्थ बकवाद मत करो,
अपने मुंह कहने से मिट जाता यश ।

क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो,
तीन तरह के जग में पुरुष होते,
एक कहते हैं, पर करते कुछ भी नही,
दूसरे कहते-करते, तीसरे कहते नही, करते ।

उनकी बात सुन खूब हंसा रावण,
और बोला, ज्ञान सिखाते हो मुझे,
उस समय वैर करते तो डरे नही,
अब प्राण प्यारे लग रहे हैं तुझे ।

दुवर्चन कह, वज्र समान बाण छोड़ने लगा,
जो दिशा, विदिशा, सब जगह छा गये,
तब श्रीरघुवीर ने एक अग्नि बाण छोड़ा,
जिससे रावण के सब बाण भस्म हो गये ।

करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है रावण,
बिना परिश्रम ही प्रभु काट देते हैं उन्हें,
रावण के अस्त्र वैसे ही निष्फल हो रहे,
जैसे दुष्टों के मनोरथ फल न देते उन्हें ।

तब उसने सौ बाण मारे मातलि को,
वह गिर पड़ा श्रीराम की जय पुकार कर,
प्रभु ने सारथि को कृपा कर उठाया,
और क्रोध प्रकट किया धनुष टंकार कर ।

धनुष का अत्यंत प्रचण्ड शब्द सुनकर,
मनुष्यभक्षी सब राक्षस भयग्रस्त हो गये,
मन्दोदरी कांप उठी, दिग्गज चिंघाड़ने लगे,
समुद्र, पृथ्वी, कच्छप और पर्वत डर गये ।

कान तक तान कर छोड़ने लगे बाण,
मार डाला उन्होनें सारथि और घोड़ों को,
रथ चूर-चूर कर, ध्वजा, पताका गिरा दिये,
दूसरे रथ पर विवश हो चढ़ना पड़ा रावण को ।

तब रावण ने दस त्रिशूल चलाये,
मार डाले रथ के घोड़े प्रभु के,
घोड़ों को उठाकर, क्रोध कर प्रभु ने,
रावण के सिरों पर दस-दस बाण छोड़े ।

आर-पार हो गये बाण प्रभु के,
सिरों से रक्त के बह चले पनाले,
रूधिर बहते हुए ही रावण दौड़ा,
तो प्रभु ने उस पर तीस बाण चलाये ।

बीसों भुजाओं सहित दसों सिर काटकर,
गिरा दिया धरती पर उन्हें प्रभु ने,
पर काटते ही वे फिर नये हो गये,
तब बार-बार उन्हें काटा प्रभु ने ।

सिर और बाहु ऐसे छा गये गगन में,
जैसे अनेक राहु और केतु दौड़ रहे हों,
प्रभु के बाणों के कारण गिर नही पाते,
मानो सूर्य-किरणें उन्हें पिरो रही हों ।

जैसे-जैसे प्रभु काटते हैं उसके सिरों को,
वैसे-वैसे ही होते जाते हैं वे अपार,
जैसे विषयों का सेवन करने से,
दिन-प्रतिदिन नया बढ़ता जाता है विकार ।

क्रोधित हो, धनुष तान रावण दौड़ा,
बाण बरसा ढ़क दिया प्रभु के रथ को,
एक दण्ड तक रथ दिखलायी न पड़ा,
मानो कुहरे में सूर्य छिप गया हो ।

जब देवताओं ने हाहाकार किया,
प्रभु ने क्रोध कर उठाया धनुष को,
बाणों को हटाकर, शत्रु के सिर काटे,
पाट दिया उनसे आकाश-पृथ्वी को ।

तब रावण ने छोड़ी प्रचण्ड शक्ति,
चली विभीषण की ओर जो काल सी,
प्रभु ने शरणागत को पीछे कर लिया,
और सामने हो चोट स्वयं सह ली ।

कुछ मूर्च्छा हो आयी शक्ति लगने से,
तब विभीषण क्रोधित हो गदा लेकर दौड़े,
बोले, तूने शिवजी को सिर भेंट किये,
इसी से पा रहा तू सिर बहुतेरे ।

छाती के बीचों-बीच गदा दे मारी,
पृथ्वी पर गिर पड़ा रावण प्रहार से,
फिर संभलकर क्रोधित हो उठा वो,
और मल्लयुद्ध करने लगा वो उनसे ।

शिवजी कहते हैं, क्या कभी विभीषण,
रावण के सामने आंख उठा सकता था,
पर अब वही लड़ रहा काल के समान,
हे उमा ! यह प्रभाव है श्रीरघुवीर ही का ।

विभीषण को बहुत ही थका हुआ देखकर,
हनुमानजी पर्वत धारण किए हुए दौड़े,
रावण के सीने पर लात मारी उन्होनें,
और मार दिये सारथि, रथ और घोड़े ।

रावण खड़ा रहा, पर कांप रहा शरीर,
फिर ललकार कर हनुमानजी को मारा उसने,
वे पूंछ फैलाकर आकाश में उड़ गये,
तब हनुमानजी की पूंछ पकड़ ली उसने ।

उसको साथ लिये ही ऊपर उड़े हनुमान,
फिर लौटकर हनुमानजी भिड़ गये उससे,
दोनों समान योद्धा आकाश में लड़ते हुए,
मारने लगे परस्पर भरे क्रोध से ।

छल-बल करते शोभित हो रहे दोनों,
मानो कज्जल गिरि और सुमेरू लड़ रहे,
बुद्धि और बल से राक्षस गिराये न गिरा,
प्रभु का स्मरण कर हनुमानजी भिड़ पड़े ।

दोनों गिरते हैं, फिर लड़ते हैं उठकर,
देवताओं ने दोनों की जय-जयकार पुकारी,
वानर-भालू योद्धा दौड़े सहायता के लिये,
तो रावण ने नयी माया रच डाली ।

क्षण भर के लिये वह अदृश्य हो गया,
फिर अनेक रूपों में हो गया प्रकट,
सेना में जितने रीछ और वानर थे,
उतने ही रावण हो गये जहां-तहां प्रकट ।

भाग चले वानर-भालू, प्रभु को पुकारते,
दसों दिशाओं में रावण दे रहे दिखायी,
एक ही रावण काफी था त्रास करने को,
देवता भी कह रहे, भाग चलो अब भाई ।

डटे रहे बस ब्रह्मा, शम्भु और ज्ञानी मुनि,
जिन्होंने जानी थी कुछ महिमा प्रभु की,
देवताओं और वानरों को व्याकुल देख प्रभु ने,
एक बाण चढ़ा वह सब माया हर ली ।

प्रभु का बल पा दौड़ पड़े वानर-भालू,
देवताओं ने स्तुति कर प्रभु पर फूल बरसाये,
यह देख रावण आकाश में उन्हें मारने दौड़ा,
पर अंगद पैर पकड़ उसे नीचे खींच लाये ।

रावण ने संभलकर दस बाण चलाये,
सब योद्धाओं को व्याकुल कर दिया उसने,
प्रभु ने फिर सिर, भुजा, धनुष काट डाले,
पर फिर नये सिर और भुजाएं पा ली उसने ।

शत्रु के सिर और भुजाएं बढ़ती देखकर,
बहुत ही क्रोध हुआ रीछ और वानरों को,
वे उस पर वृक्ष और पर्वत फेंकते हैं,
रावण उन्हीं से वापस मारता है उनको ।

तब नल और नील उसके सिर चढ़ गये,
और नखों से फाड़ने लगे उसके ललाट को,
रावण हाथ फैलाकर उन्हें चाहता है पकड़ना,
पर पकड़ नही पा रहा है वह उनको ।

तब उछलकर उन्हें पकड़ा रावण ने,
पर भाग छूटे वे उसकी पकड़ से,
क्रोधित हो रावण ने बहुत बाण चलाये,
हनुमानजी आदि मूर्च्छित हो गये जिनसे ।

यह देख जाम्बवान् उसकी और दौड़े,
और रावण की छाती में मारी लात,
प्रचण्ड आघात से रावण नीचे गिर पड़ा,
सारथि ले गया लंका उसे अपने साथ ।

मासपारायण, छब्बीसवां विश्राम

उसी रात त्रिजटा ने सब समाचार सुनाया,
सुनकर बड़ा भय हुआ, सीताजी के हृदय में,
पूछने लगीं किस तरह मरेगा यह दुष्ट,
मेरा दुर्भाग्य ही कारण बना हुआ है इसमें ।

कृपानिधान श्रीरामजी को याद कर करके,
जानकीजी बहुत तरह से कर रही हैं विलाप,
त्रिजटा ने कहा, हे राजकुमारी ! सुनो,
हृदय में बाण लगते ही प्राण देगा त्याग ।

पर हृदय में बाण प्रभु इसलिये नही मारते,
क्योंकि उसके हृदय में जानकीजी बसती हैं आप,
और आपके हृदय में प्रभु स्वयं बसते हैं,
प्रभु के उदर में सब भुवनों का निवास ।

सो रावण के हृदय में बाण लगते ही,
सब भुवनों का हो जायेगा नाश,
अब संदेह त्याग कर सुनो, हे सुन्दरी !
किस तरह से होगा रावण का नाश ।

सिरों के बार-बार कट जाने से,
जब बहुत ही व्याकुल हो जायेगा रावण,
उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जायेगा,
तब प्रभु मार डालेंगे उसे तत्क्षण ।

इस तरह समझाकर त्रिजटा घर को चली,
उधर सीताजी विलाप कर रहीं विरह में,
जब हृदय में दारूण दाह हो गया,
उनका बायां नेत्र और बाहु लगे फड़कने ।

धैर्य धारण किया शकुन समझ उन्होनें मन में,
सोचा, अब कृपालु श्रीरघुवीर अवश्य मिलेंगे,
उधर आधी रात होने पर जब रावण जागा,
कहने लगा, अरे मूर्ख लोग क्या सोचेंगे ।

रणभूमि से उठा लाया तू मुझको,
धिक्कार है तुझको, अरे अधम ! धिक्कार,
सारथि ने चरण पकड़ समझाया उसे,
सवेरा होते ही चला हो रथ पर सवार ।

उसे आते देखकर वानर-भालू दौड़े,
पर्वत और वृक्षों से कर रहे प्रहार,
भाग चले राक्षस मारने से उनके,
फिर वे रावण पर करने लगे प्रहार ।

वानरों को बड़ा ही प्रबल देखकर,
फैलायी क्षण भर में रावण ने माया,
पाखण्ड रच, भयंकर जीव प्रकटा दिये,
खोपड़ियां और तलवार लिये योगिनियां ।

वानर भागकर जहां जहां जाते है,
वहां-वहां आग धधकती दिखती है उनको,
उन सबको शिथिल कर रावण गरजा,
अचेत कर दिया लक्ष्मण, सुग्रीव आदि को ।

इस प्रकार सबका बल तोड़कर,
फिर दूसरी माया रची रावण ने,
पत्थर लिये बहुत से हनुमान प्रकटाये,
चारों ओर जा घेरा श्रीराम को जिन्होंने ।

तब श्रीरामजी ने क्रोधित होकर,
एक ही बाण छोड़ माया हर ली,
फिर काट डाले उसके सिर और हाथ,
गिर-गिर कर पड़ रहे नीचे सभी ।

श्रीराम और रावण के युद्‍ध का वर्णन,
कर नही सकते सैकड़ों शेष और सरस्वती,
पर कुछ गुणगान उसका तुलसीदास ने किया,
अपनी सामर्थ्यानुसार उड़ती है मक्खी भी ।

काटी गयी सिर और भुजाएं अनेक बार,
फिर भी मरता नही है वीर रावण तो,
प्रभु तो कर रहे हैं यह लीला भर,
पर दु:ख हो रहा देवता, सिद्‍धों, मुनियों को ।

बढ़ जाता है काटते ही सिरों का समूह,
जैसे लोभ बढ़ता जाता है प्रत्येक लाभ पर,
शत्रु मरता नही और परिश्रम बहुत हुआ,
तब प्रभु ने विभीषण को देखा मुड़कर ।

शिवजी कहते हैं, जिनकी इच्छा मात्र से,
काल भी मर जाता है, हे उमा !
वही सेवक की प्रीति की परीक्षा ले रहे,
उन्हीं की कृपा से सेवक उतरता खरा ।

विभीषण बोले, हे सर्वज्ञ, हे चराचर के स्वामी !
हे शरणागतवत्सल ! सज्जनों को सुख देने वाले,
इसके नाभिकुण्ड में अमृत का निवास है,
उसके सूखे बिना, प्राण नही निकलने वाले ।

उनके वचन सुनते ही, हर्षित हो प्रभु ने,
विकराल बाण लिये अपने हाथों में,
उस समय नाना अपशकुन होने लगे,
मन्दोदरी का हृदय बहुत लगा कांपने ।

मुर्तियां रोने लगीं, वज्रपात होने लगे,
अत्यंत प्रचण्ड वायु बहने लगी,
बादल बरसा रहे रक्त, बाल और धूल,
सूर्यग्रहण हो रहा, पृथ्वी हिलने लगी ।

उत्पात देख, व्याकुल हो, पुकार उठे देवता,
तब प्रभु ने किये धनुष पर बाण सन्धान,
कानों तक खींचकर इकतीस बाण छोड़े,
कालसर्प से चले वे श्रीराम के बाण ।

नाभि का अमृतकुण्ड सोखा एक बाण ने,
तीस बाण सिर और भुजाएं ले चले,
सिर और भुजाओं से रहित रूण्ड नाचने लगा,
उसके प्रचण्ड वेग से पृथ्वी लगी धंसने ।

दो टुकड़े कर दिये बाण से प्रभु ने,
मरते समय रावण बड़े जोर से गरजा,
राम कहाँ हैं ? मैं उन्हें युद्ध में मारूं,
और वानरों को दबाते पृथ्वी पर गिरा ।

रावण के सिरों और भुजाओं को,
मन्दोदरी के सामने रख वापस लौटे बाण,
वे वहां आये जहां जगदीश्वर श्रीरामजी थे,
और तरकस में घुस गये वे बाण ।

प्रभु के मुख में समा गया रावण का तेज,
सब कहीं होने लगी प्रभु की जय-जयकार,
देवता पुष्प बरसा रहे, नगाड़े बजने लगे,
प्रभु की कृपालु छवि पा रही शोभा अपार ।

उधर मूर्च्छित हो गिर पड़ी मन्दोदरी,
स्त्रियां लायी उठाकर उसे रावण के पास,
पति की दशा देख, सब रोने लगीं,
बाल खुल गये, देह की रही न संभाल ।

रावण का प्रताप बखान रहीं रोते हुए,
कहा नही जा सकता, हाय तुम्हारा बल,
श्रीराम विमुख होने से यह दुर्दशा हुई,
रोने वाले भी सब मर गये सकल ।

काल के वश होने से हे नाथ !
तुमने किसी का कहना नही माना,
और चराचर के स्वामी को तुमने,
बस मात्र मनुष्य करके ही जाना ।

शिव और ब्रह्मा आदि जिनको नमस्कार करते हैं,
उन करूणामय को हे प्रियतम ! भजा नही तुमने,
पर द्रोही होने पर भी अपना धाम दे दिया,
उन निर्विकार ब्रह्म श्रीराम को सिर नवाती मैं ।

अहह ! नाथ ! श्रीरघुनाथजी के समान,
कृपा का समुद्र नही कोई दूसरा,
जिन भगवान ने तुमको वह पद दिया,
योगियों को भी दुर्लभ है जो बड़ा ।

सुखी हुए सब मन्दोदरी के वचन सुन,
देवता, मुनि, सिद्ध सब प्रेममग्न हो गये,
अपने कुल की स्त्रियों को रोते देख,
दुखी हो विभीषणजी उनके पास गये ।

भाई की दशा देख बहुत दुःखी हुए वे,
तब प्रभु ने कहा उन्हें कृपा कर,
सब शोक त्याग अन्त्येष्टि करो रावण की,
वैसा ही किया उन्होंने आज्ञा मानकर ।

तिलान्जिली दी मन्दोदरी आदि सभी ने,
प्रभु के गुण गाती चलीं महल को,
तब सभी प्रमुख लोगों को साथ ले जाकर,
विभीषणजी का राजतिलक करो,कहा लक्ष्मण को।

बोले, पिताजी को दिये वचन के कारण,
मैं स्वयं नही आ सकता नगर में,
पर अपने समान वानर और छोटा भाई,
भेज रहा हूँ आपका राजतिलक करने ।

तुरंत राजतिलक की सब तैयारी कर,
राज सिंहासन पर विभीषणजी को बिठाया,
उनका राजतिलक कर सबने स्तुति की,
हाथ जोड़कर, सबने सिर को नवाया ।

तब विभीषण सहित सब लौट कर आये,
सबकी भूरि-भूरि प्रशंसा करी प्रभु ने,
तुम्हारे बल से ही प्रबल शत्रु मारा गया,
तुम्हारा यश बना रहेगा तीनों लोको में ।

फिर प्रभु ने हनुमानजी को बुलाकर,
कहा उनसे, तुम शीघ्र ही लंका जाओ,
सुनाओ सब समाचार जानकी को जाकर,
कुशल समाचार लेकर तुरंत चले आओ ।

तुरंत ही हनुमानजी चले गये नगर में,
लंकावासी दौड़े उनका स्वागत करने को,
फिर ले गये उन्हें सीताजी के पास,
दूर से ही प्रणाम किया उन्होनें उनको ।

पहचान लिया सीताजी ने उन्हें,
श्रीराम और सेना की कुशल पूछी,
सब समाचार कह सुनाये हनुमानजी ने,
सुनकर बहुत हर्षित हुईं सीताजी ।

शरीर पुलकित, नेत्रों में आनन्दाश्रु,
वे बार-बार कहती हैं, हे हनुमान !
तीनों लोकों में कुछ भी नही हैं,
जो तुमने सुनाया, इस समाचार समान ।

फिर कहने लगीं, क्या दूं मैं तुम्हें,
समस्त सद्गुण तुम्हारे हृदय में बसे,
हे हनुमान ! लक्ष्मणजी सहित कोसलपति,
सदा सब तरह तुम पर प्रसन्न रहें ।

हे तात ! अब तुम वही उपाय करो,
जिससे मैं शीघ्र ही करूँ प्रभु के दर्शन,
तुरंत लौट कर वहां से चल दिये हनुमान,
प्रभु के पास जाकर किया सब वर्णन ।

सूर्यकुलभूषण श्रीरामजी ने संदेश सुनकर,
युवराज अंगद और विभीषणजी को बुलवाया,
पवनपुत्र हनुमानजी के साथ जाकर उन्हें,
आदर सहित ले आने को बतलाया ।

वे तुरंत वहां गये जहां सीताजी थी,
सब राक्षसियां कर रही थीं सेवा उनकी,
बहुत प्रकार स्नान करा, गहने पहनाकर,
सीताजी के लिये लायीं वे एक पालकी ।

हर्षित हो सीताजी चढ़ी पालकी पर,
चारों ओर छड़ी लिये चल रहे थे रक्षक,
रीछ-वानर सब दर्शन करने के लिये आये,
तो उन्हें रोकने के लिये दौड़े वे रक्षक ।

तब प्रभु ने हँसकर कहा उनसे,
पैदल ही ले आओ सीता को,
वानर-रीछ, माता की तरह देखें,
बहुत हर्ष हुआ सुनकर उन सबको ।

सीताजी के असली स्वरूप को,
रक्खा गया था पहले अग्नि में,
साक्षी अब भगवान प्रकट करना चाहते हैं,
सो कुछ कड़ुवे वचन कहे उन्होनें ।

प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर,
सब तरह से पवित्र श्रीसीताजी बोलीं,
हे लक्ष्मण ! धर्म के नेगी बनो तुम,
और तुरंत आग तैयार करो, वे बोलीं ।

विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी,
सीताजी की यह वाणी सुनकर,
लक्ष्मणजी के नेत्रों में जल भर आया,
खड़े रह गये बस हाथ जोड़कर ।

फिर श्रीरामजी का रूख देखकर लक्ष्मणजी,
आग तैयार कर बहुत सी लकड़ियां ले आये,
अग्नि को प्रज्जवलित देख हर्षित हुई सीताजी,
भय और संकोच तनिक भी निकट न आये ।

फिर बोलीं, मन, वचन और कर्म से यदि,
श्रीरघुवीर को छोड़ नही कोई मेरे हृदय में,
तो अग्निदेव जो जानते हैं सबके मन की,
मेरे लिये बन जाये शीतल चन्दन से ।

फिर श्रीरामजी का स्मरण और जय बोलकर,
सीताजी ने उस अग्नि में प्रवेश किया,
सीताजी की छायामूर्ति और लौकिक कलंक,
सब उस प्रचण्ड अग्नि में जल गया ।

किसी ने न जानी प्रभु की यह लीला,
देवता, मुनि, सिद्‌ध सब देख रहे खड़े,
तब शरीर धारण कर अग्निदेव प्रकट हुए,
वास्तविक सीताजी का हाथ पकड़े ।

किया उन्हें श्रीरामजी को समर्पित वैसे ही,
जैसे क्षीरसागर ने की थी लक्ष्मीजी समर्पित,
श्रीरामजी के वामभाग में शोभित हो रहीं वे,
जैसे नीलकमल के पास सोने की कली सुशोभित ।

फूल बरसाने लगे देवता हर्षित हो,
वानर-भालू प्रभु की जयकार कर रहे,
मातलि आज्ञा पा वापस चले देवलोक,
देवता आकर प्रभु के गुणगान कर रहे ।

समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस,
स्वभाव से ही उदासीन, अखण्ड हैं आप,
निर्गुण, अजन्मा, निर्विकार, अजेय, दयामय,
समस्त चराचर के स्वामी, निष्कलंक, निष्पाप ।

मतस्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन,
ओर परशुराम के शरीर धारण किये आपने,
जब-जब देवताओं ने दु:ख पाया,
तब-तब उनके दु:ख हरे आपने ।

यह दुष्ट, मलिन हृदय, देवताओं का शत्रु,
काम, लोभ और मद के परायण था,
उसने भी आपका परम पद पा लिया,
इससे हमें बड़ा ही आश्चर्य हो रहा ।

हम अधिकारी होकर भी, आपकी भक्ति भुला,
स्वार्थवश पड़े हैं जन्म-मृत्यु के भंवर में,
हे प्रभो ! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये,
आ गये हैं हम अब आपकी शरण में ।

विनती कर देवता और सिद्ध सब,
जहां के तहां हाथ जोड़े खड़े रहे,
तब अत्यंत प्रेम से पुलकित शरीर हो,
ब्रह्माजी प्रभु की स्तुति करने लगे ।

हे नित्य सुखधाम ! दु:खों को हरने वाले,
हे धनुष-बाण धारण किये हुए रघुनाथजी,
आपकी जय हो ! जय हो ! हे प्रभो !
हे सर्वव्यापक ! गुण-सागर, परम चतुर रामजी !

गुण गाते आपके सिद्ध, मुनीश्वर और कवि,
हे शोक और भय का नाश करने वाले,
आप सदा क्रोधरहित, नित्य ज्ञान स्वरूप हैं,
पृथ्वी का भार उतारने को अवतार लेने वाले ।

फिर भी आप अजन्मा, नित्य, अनादि हैं,
व्यापक, अद्वितीय, समस्त दोषों को हरने वाले,
श्रीजानकी सहित आपको मैं नमस्कार करता हूँ,
हे दीनों पर अहैतु की कृपा करने वाले ।

कारण रूपा प्रकृति और कार्यरूप जगत से परे,
काम, क्रोध, लोभ और मोह हरने वाले,
राजाओं में श्रेष्ठ, श्रीलक्ष्मीजी के वल्लभ,
बाण, धनुष और तरकस धारण करने वाले ।

जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश,
अलग-अलग है और अलग भी नही,
वैसे ही आप संसार से भिन्न हैं,
और संसार से भिन्न भी नही ।

ये सब वानर और भालू कृतार्थरूप हैं,
जो आदरपूर्वक देख रहें हैं मुख आपका,
हमारी अमरता और दिव्य शरीर को धिक्कार,
भक्ति से रहित, मन विषयों में भूला पड़ा ।

अब दया कर मेरी भेद-बुद्धि हर,
अपने चरण कमलों में अनन्य प्रेम दीजिये,
हे नाथ ! हम सब आपकी शरण हैं,
कृपा कीजिये, कृपा कीजिये, कृपा कीजिये ।

उसी समय दशरथजी वहां आये,
श्रीराम को देख प्रेमाश्रु भर आये नेत्रों में,
छोटे भाई सहित प्रभु ने वन्दना की उनकी,
प्रसन्न हो, उन्हें आशीर्वाद दिया पिता ने ।

श्रीराम ने कहा, आपके पुण्यों का प्रताप है,
जो जीत लिया मैने अजेय राक्षस को,
फिर पहले के प्रेम का विचार कर,
अपने स्वरूप का दृढ़ ज्ञान कराया पिता को।

हे उमा ! भेदभक्ति में मन था उनका,
सो कैवल्य मोक्ष नही पाया था उन्होंने,
सगुण उपासक भक्त ऐसा मोक्ष लेते भी नही,
तब देवलोक को गमन किया उन्होंने ।

सीताजी और लक्ष्मणसहित प्रभु की शोभा देख,
स्तुति करने लगे देवराज इन्द्र हर्षित हो,
हे राक्षसों की सेना का मर्दन करने वाले,
हे रावण के शत्रु ! हे कृपालु ! जय हो ।

बहुत घमंड था रावण को अपने बल का,
द्रोह करने में तत्पर और अत्यंत दुष्ट था,
हठपूर्वक पड़ गया था वह सबके पीछे,
हे नाथ ! आपने उसको वैसा ही फल दिया ।

मुझे अभिमान था मेरे समान नही कोई,
आपके चरणकमल देख अब दूर हो गया,
श्रीजानकीजी और लक्ष्मणसहित हृदय में बसिये,
हे नाथ ! अपनी भक्ति दीजिये, कीजिये दया ।

हे कृपालु ! अब मुझ पर कृपादृष्टि कर,
आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ सेवा,
प्रभु बोले ये जो वानर-भालू मर गये,
इन्हें फिर से जिला दो, करो यह सेवा ।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं, हे गरूड़ ! सुनिये,
अत्यंत गूढ़ हैं प्रभु के ये वचन,
प्रभु त्रिलोकी को मारकर जिला सकते हैं,
पर कहा इन्द्र को, बड़ाई देने के कारण ।

अमृत बरसा जिला दिये वानर-भालू इन्द्र ने,
सब हर्षित हो आये प्रभु के पास,
अमृत तो दोनों दलों पर बरसा था,
पर राक्षस दल ने न पायी श्वांस ।

मरते ही उनके मन रामाकार हो गये थे,
सो छूट गये थे उनके सब भव-बंधन,
किंतु वानर और भालू तो लीला परिकर थे,
सो श्रीरघुनाथजी की इच्छा से पाया जीवन ।

कौन श्रीराम समान दीनों का हितकारी,
मुक्त कर दिया जिन्होंने सब राक्षसों को,
दुष्ट रावण ने भी वह गति पायी,
सहज ही नही मिलती जो मुनियों को ।

फूलों की वर्षा कर सब देवता,
अपने-अपने विमानों पर चले चढ़कर,
तब शिवजी प्रभु श्रीराम के पास आये,
और विनती करने लगे गदगद होकर ।

महामोहरूपी मेघों को उड़ाने के लिये,
प्रचण्ड पवन से हैं, हे रघुकुलस्वामी ! आप,
संशयरूपी वन को भस्म करने के लिये,
प्रबल अग्नि से हैं, हे श्रेष्ठ धर्नुधारी आप ।

निर्गुण, सगुण, दिव्य गुणों के धाम,
भ्रम-तम नाश को प्रतापी सूर्य से,
काम, क्रोध और मदरूपी हाथियों के,
वध के लिये आप हैं सिंह से ।

हे नाथ ! मेरे मन में निवास कीजिये,
भय दूर कर, भवसागर से करो पार,
जब अयोध्यापुरी में आपका राजतिलक होगा,
तब मैं देखने आऊंगा आपकी लीला उदार ।

जब शिवजी विनती कर चले गये,
तब विभीषणजी प्रभु के पास आये,
सिर नवाकर कोमल वाणी से बोले,
कृपा आपकी जो चरण-रज घर आये ।

खजाना, महल और सम्पत्ति का निरीक्षण कर,
हे कृपालु ! प्रसन्नतापूर्वक दीजिये वानरों को,
मुझे सब प्रकार से अपना लीजिये आप,
और फिर साथ ले चलें अवध को ।

प्रभु बोले, सच है जो कहा तुमने,
पर कल्प सा बीत रहा मेरा हर पल,
कृशकाय भरत मेरा नाम जप कर रहे,
अवधि समाप्त होने की प्रतीक्षा में विकल ।

यदि अवधि बीत जाने पर जाता हूँ,
तो कदापि भरत को पाऊंगा न जीता,
उनकी प्रीति का स्मरण कर प्रभु का,
शरीर बार-बार पुलकित हो रहा ।

फिर बोले, कल्प भर राज्य करना तुम,
मन में मेरा निरन्तर स्मरण करते रहना,
फिर तुम उस धाम को पा जाओगे,
जहां सब संतों-मुनियों का होता रहना ।

हर्षित हो चरण पकड़ लिये विभीषणजी ने,
वानर-भालू प्रभु का गुणगान लगे करने,
फिर विभीषण विमान में वस्त्र-गहने रख,
आकाश में जा लगे उनकी वर्षा करने ।

जिसे जो अच्छा लग रहा, ले लेता,
मणि खाने योग्य न पा उगल देता,
यह देख हँस रहे श्रीसीता-राम-लक्ष्मण,
अनन्य प्रेमियों पर प्रभु कर रहे कृपा ।

फिर बोले, तुम्हारे ही बल से मैने,
रावण को मारा, विभीषण का राजतिलक किया,
अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ,
किसी से न डरना, मुझे स्मरण करना सदा ।

यह सुन, प्रेम विह्वल हो, सादर बोले वानर,
प्रभो ! आप जो कहें, सब सोहता है आपको,
हे रघुनाथजी ! आप तीनों लोकों के ईश्वर हैं,
दीन जानकर ही सनाथ किया आपने हमको ।

लाज के मारे मरे जा रहे हम,
क्या मच्छर गरूड़ की मदद कर सकता,
सब रीछ-वानर प्रेम में मग्न हो रहे,
उनकी घर जाने की नही है इच्छा ।

फिर भी प्रभु की आज्ञा को मान,
और उनका रूप हृदय में रखकर,
अनेकों प्रकार से प्रभु की विनती कर,
हर्ष-विषाद सहित लौटे भालू-वानर ।

सुग्रीव, नील, जाम्बवान्, अंगद, नल, हनुमान,
और विभीषण सहित वानर सेनापति बलवान,
टकटकी लगाये प्रभु की ओर देख रहे हैं,
देखें क्या होता है प्रभु का फरमान ।

श्रीरघुनाथ ने उनका अतिशय प्रेम देखकर उन्हें,
चढ़ा लिया, विभीषण के दिये पुष्पक विमान पर,
तदन्तर उत्तर दिशा की ओर विमान चलाया,
मन-ही-मन विप्रचरणों में सिर नवाकर ।

बड़ा शोर हो रहा विमान के चलते,
सब कोई कह रहे जय श्रीरघुबीर की,
विमान में एक ऊंचा मनोहर सिंहासन है,
जिस पर सीताजी सहित विराजे प्रभुजी ।

देवता हर्षित हो पुष्प बरसा रहे,
चारों ओर सुन्दर शकुन होने लगे,
प्रभु सीताजी को नीचे रणभूमि में,
कहाँ क्या हुआ था बतलाने लगे ।

शीघ्र विमान दण्डकवन जा पहुँचा,
जहां अगस्त्य आदि बहुत मुनिराज रहते थे,
श्रीरामजी गये इन सबके स्थानों पर,
फिर चित्रकूट में जा मुनियों से मिले ।

तब विमान चला तेजी से आगे को,
यमुना, गंगा, तीर्थराज प्रयाग पड़े मार्ग में,
उन्हें दिखा, प्रणाम करने को सीताजी से कहा,
कलियुग के पाप हरने वाला बतलाया इन्हें ।

फिर अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरी दी दिखलाई,
प्रभु ने सीताजीसहित अवधपुरी को किया प्रणाम,
हर्षित हो त्रिवेणी में स्नान किया उन्होंने,
और वानरों सहित ब्राह्मणों को दिया दान ।

तदनन्तर प्रभु ने हनुमानजी से कहा,
ब्रह्मचारी का रूप धर अवधपुरी जाओ,
भरत को हमारी कुशल बतलाकर,
उनका समाचार लेकर तुरंत चले आओ ।

चल दिये तुरंत ही पवनपुत्र हनुमान,
उधर प्रभु गये भरद्वाजजी के पास,
मुनि ने अनेक प्रकार पूजा-स्तुति की,
फिर लीला की दृष्टि से दिया आशीर्वाद ।

फिर विमान पर चढ़ आगे चले श्रीराम,
उधर निषादराज ने नाव ले लोगों को बुलाया,
गंगाजी लांघकर इस पार आ गया विमान,
उन्हें पूज, सीताजी ने उनसे आशीर्वाद पाया ।

भगवान के तट पर उतरने का समाचार सुन,
विह्वल होकर दौड़ा निषादराज गुह प्रेम में,
सीताजीसहित प्रभु को देख पृथ्वी पर गिर पड़ा,
उठा कर उसे हृदय से लगाया प्रभु ने ।

सब प्रकार से अधम उस निषाद को,
भरत की भांति प्रभु ने हृदय लगा लिया,
तुलसीदासजी कहते हैं, इस मन्दबुद्धि ने,
मोहवश उस कृपालु प्रभु को भुला दिया ।

रावण के शत्रु का पवित्र करनेवाला यह चरित्र,
प्रभु के चरणों में प्रीति उत्पन्न करनेवाला है,
यह काम आदि विकारों का हरने वाला और,
भगवान के स्वरूप का ज्ञान उत्पन्न करनेवाला है।

जो सुजान लोग श्रीरघुवीरजी की,
यह समर-विजयी लीला सुनते हैं,
प्रभु उनकी मनोकामना पूरी कर,
विजय, विवेक और ऐश्वर्य देते हैं ।

मासपारायण, सत्ताईसवां विश्राम

(लंकाकाण्ड समाप्त)

'उत्तरकाण्ड'

भृगुजी के चरणकमल के चिह्न से सुशोभित,
पीताम्बरधारी,कमलनेत्र,हाथों में लिये धनुष-बाण,
लक्ष्मणजी और सीताजी सहित विमान पर सवार,
रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी को मैं करता हूँ प्रणाम।

उनके सुन्दर और कोमल दोनों चरणकमल,
ब्रह्माजी और शिवजी के द्वारा हैं वन्दित,
श्रीजानकीजी के कर कमलों से दुलराये हुए,
चिन्तन करने वालों का मन जिनमें केन्द्रित ।

कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख के समान,
सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी श्रीपार्वतीजी के पति,
वांछित फल देने वाले, दया करने वाले,
श्रीशंकरजी के चरणों में हो मेरी रति ।

लौटने की अवधि में बस एक दिन रहा,
सो नगर के लोग हो रहे बहुत अधीर,
वियोग में व्याकुल स्त्री-पुरूष विचार कर रहे,
क्या बात है, क्यों नही लौटे रघुवीर ।

इतने में ही सब सुन्दर शकुन होने लगे,
माताओं के मन में भी आनन्द हो रहा,
दाहिने अंग फड़क रहे हैं भरतजी के सभी,
पर प्रभु न आये सोचकर दु:ख हो रहा ।

सोच रहे लक्ष्मण धन्य एवं बड़भागी हैं,
जो अलग न हुए प्रभु के चरणों से,
मुझे तो कपटी और कुटिल पहचान कर,
साथ नही लिया नाथ ने इसी से ।

यदि प्रभु मेरी करनी पर ध्यान दें,
तो सौ कल्पों तक भी नही मेरा निस्तार,
पर प्रभु सेवक का अवगुण नही मानते,
बस इसी से हो रहा आशा का संचार ।

विरह-समुद्र में डूब रहा था मन उनका,
तभी हनुमानजी ब्राह्मण रूप धर आ गये,
प्रभु का नाम जपते, भरतजी की दशा देख,
हनुमानजी हर्षित हो, पुलकित हो गये ।

कानों के लिये अमृत सी वाणी में बोले,
जिनके विरह में आप दिन-रात सोचते रहते,
वे ही रघुकुल के तिलक, सज्जन हितकारी,
देवों और मुनियों के रक्षक सकुशल आ गये ।

रण में विजयी हो आ रहे हैं प्रभु,
सुनते ही सब दु:ख भूल गये भरतजी,
पूछने लगे, कौन हो, कहाँ से आये हे तात !
पवन का पुत्र, वानर हूँ मैं, बोले हनुमानजी ।

दीनों के बन्धु श्रीरघुनाथजी का दास हूँ,
जब हनुमानजी ने यह कह परिचय दिया,
यह सुनते ही उन्हें गले लगा लिया उन्होंने,
नेत्रों में प्रेमाश्रु, शरीर पुलकित हो गया ।

बोले, तुम्हारे दर्शन से आज मेरे,
सारे दु:खों का अन्त हो गया,
तुम्हारे रूप में मुझे राम मिल गये,
इसके बदले तुम्हें दूं मैं क्या ।

इस संदेश के समान कुछ भी नही,
मैने यह विचार कर देख लिया,
इसलिये, हे तात ! किसी प्रकार भी,
मैं तुमसे उऋण नही हो सकता ।

भरतजी के चरणों में तब मस्तक नवाकर,
हनुमानजी ने प्रभु की सब गुण-गाथा कही,
भरतजी पूछने लगे, हे हनुमान ! कहो,क्या,
मुझ दास को भी प्रभु याद करते हैं कभी ।

भरतजी के अत्यंत विनम्र वचन सुनकर,
हनुमानजी विचारने लगे अपने मन में,
जिनके गुणसमूहों को बखानते प्रभु स्वयं,
क्यों न सब गुणों के हों वें खजाने ।

कहने लगे, हे नाथ ! प्रभु को,
आप प्रिय हैं प्राणों के समान,
यह सुन भरतजी बार-बार मिलते हैं,
स्वयं अपना कुछ रहा न ध्यान ।

तब सिर नवा, हनुमानजी तुरंत ही लौटे,
जाकर उन्होनें कही सब कुशल प्रभु से,
इधर प्रभु हर्षित हो चढ़े विमान पर,
उधर भरतजी ने जाकर कहा सभी से ।

पहले गुरूजी, फिर माताओं को बताया,
खबर सुनते ही सब हर्षित हो दौड़े,
रूकने का कोई नाम नही ले रहा,
जो जैसे हैं, वैसे ही उठ दौड़े ।

प्रभु को आते जानकर अवधपुरी,
सम्पूर्ण शोभाओं की खान हो गयी,
बहने लगी तीनों प्रकार की सुन्दर वायु,
सरयूजी अति निर्मल जल वाली हो गयी ।

अत्यंत प्रेमपूर्ण मन से भरतजी,
वसिष्ठजी, शत्रुघ्न और परिवार सहित चले,
स्त्रियां अटारी पर चढ़ देख रहीं विमान,
उधर श्रीरामजी वानरों को नगर दिखाने लगे ।

कह रहे अवधपुरी अत्यंत प्रिय है मुझे,
यह सुहावनी पुरी जन्मभूमि है मेरी,
बैकुण्ठ से भी बढ़कर यह पुरी पवित्र है,
सुख की राशि, परमधाम को देने वाली ।

जब श्रीरामजी ने सबको आते देखा,
उतरने की प्रेरणा की विमान को,
विमान से उतरकर प्रभु ने उसे,
कहा कुबेर के पास लौट जाने को ।

फिर धनुष-बाण धरती पर रखकर,
श्रीराम-लक्ष्मण गुरूजी के चरण लगे,
फिर सब ब्राह्मणों को शीश नवाया,
भरतजी तब आकर प्रभु के चरण पड़े ।

चरणों में पड़े, उठाये नही उठते,
तब प्रभु ने जबरन लगाया हृदय से,
रोएं खड़े हो गये सांवले शरीर पर,
प्रेमाश्रु बहने लगे कमल से नेत्रों से ।

कुशल पूछ रहे हैं प्रभु भरत से,
भरतजी पा रहे हैं अवर्चनीय सुख,
कह रहे हे नाथ ! आपके दर्शन से,
अब दूर हो गये मेरे सब दुख ।

फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्न को,
हृदय से लगाकर उनसे मिले,
तदनन्तर लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों,
गले लग परम प्रेम से मिले ।

फिर लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से गले मिले,
भरत-शत्रुघ्नजी ने सीताजी को शीश नवाया,
प्रभु को देख अयोध्यावासी सब हर्षित हुए,
वियोग का दु:ख दूर हुआ सुख पाया ।

सबको विह्वल, मिलने को आतुर देखकर,
एक चमत्कार किया खरारि श्रीराम ने,
उसी समय असंख्य रूपों में प्रकट होकर,
सबसे एक ही साथ भेंट की प्रभु ने ।

किसी ने भी न जाना यह रहस्य,
इस प्रकार सबको सुखी कर वे आगे बढ़े,
कौसल्या आदि माताएं ऐसे दौड़कर मिलीं उनसे,
जैसे नयी ब्यायी हुई गौएं बछड़ों से अपने ।

प्रभु प्रेम से सब माताओं से मिले,
बहुत प्रकार के कोमल वचन कहे उनसे,
वियोग से उत्पन्न भयानक विपत्ति मिट गयी,
अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किये सबने ।

श्रीरामजी के चरणों में प्रीति जानकर,
सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजी से मिलीं,
उधर कैकेयीजी का क्षोभ दूर होता नही,
बहुत सकुचायी हुई वे श्रीराम से मिलीं ।

आशीर्वाद पाया लक्ष्मणजी ने माताओं से मिल,
जानकीजी सब सासुओं के चरणों लगीं,
अनेक प्रकार से निछावर कर रही है माताएं,
हृदय में परमानन्द तथा हर्ष भर रहीं ।

बार-बार हृदय में विचार रही है कौसल्याजी,
कि कैसे इन्होंने लंकापति रावण को मारा,
मेरे ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं,
और राक्षसों का बल जानता है जग सारा ।

लंकापति विभीषण, नल, नील, सुग्रीव, जाम्बवान्,
अंगद, हनुमान आदि सब उत्तम वीरों ने,
मनुष्यों के मनोहर शरीर धारण कर लिये,
और भरतजी के प्रेम को लगे सराहने ।

फिर रघुनाथजी ने सब सखाओं को बुलाया,
और सिखाया लगो मुनि के चरणों में,
ये मुनि वसिष्ठ हमारे कुल के पूज्य हैं,
इन्हीं की कृपा से राक्षस मारे गये रण में ।

फिर गुरूजी से कहा, ये सब मेरे सखा हैं,
ये संग्रामरूपी समुद्र में हुए मुझे जहाज से,
मेरे लिये दाव पर लगा दिये इन्होंने प्राण,
ये सब मुझे प्रिय हैं भरत से बढ़ के ।

यह सुन सब प्रेम और आनन्द मग्न हो गये,
पल-पल यों नये-नये सुख मिल रहे,
फिर कौसल्याजी के चरणों में सिर नवाया,
आशिषें पायी, तुम मुझे प्यारे हो राम से ।

फिर श्रीरघुनाथ अपने महल को चले,
सारा नगर ध्वाजा-पताकाओं से सजाया गया,
स्त्रियां निछावर कर रही, मंगल गान गा रहीं,
इस शोभा का वर्णन कैसे हो सकता भला ।

हो रहे अनेक प्रकार के शुभ शकुन,
और आकाश में बज रहे नगाड़े,
नगर के स्त्री-पुरुषों को सनाथ कर,
भगवान श्रीरामचन्द्र महल को पधारे ।

माता कैकेयी को बहुत लज्जित जान,
वे पहले गये उन्हीं के महल को,
सुख दिया उन्हें बहुत समझा-बुझाकर,
प्रस्थान किया फिर अपने महल को ।

गुरू वसिष्ठजी ने ब्राह्मणों को बुलाकर,
आज ही विचार किया राजतिलक करने का,
आनन-फानन सब तैयारियां हो गयी,
श्रृंगार किया सब तरह अवध नगरी का ।

नवाह्नपारायण, आठवां विश्राम

सेवकों को बुलाकर कहा प्रभु ने,
पहले मेरे सखाओं को कराओ स्नान,
आज्ञा पाते ही सेवक जहां-तहां दौड़े,
और प्रेम सहित कराया सबको स्नान ।

फिर करूणानिधान राम ने बुलाया भरत को,
और उनकी जटाओं को हाथों से सुलझाया,
फिर स्नान करवाया तीनों भाइयों को उन्होंने,
गुरूजी से आज्ञा मांग फिर स्वयं नहाया ।

इधर सासुओं ने सीताजी को नहलाया,
सजा-धजाकर बैठाया श्रीराम के बांये,
हे गरूड़जी ! ब्रह्म, शिव और मुनियों के समूह,
सब देवता प्रभु के दर्शनों को आये ।

तुरंत ही वसिष्ठजी ने दिव्य सिंहासन मंगवाया,
वर्णनातीत और तेज में सूर्य के समान,
तब ब्राह्मणों को सिर नवाकर जानकीजी सहित,
उस सिंहासन पर प्रभु श्रीरामजी हुए विराजमान ।

वेदमन्त्रों का उच्चारण किया ब्राह्मणों ने,
देवता और मुनि जय-जय पुकारने लगे,
पहले वसिष्ठजी, फिर ब्राह्मणों ने तिलक किया,
आकाश में बहुत से नगाड़े बजने लगे ।

भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी तीनों भाई,
विभीषण, अंगद, हनुमान, सुग्रीव आदि सहित,
क्रमशः छत्र, चंवर, पंखा, धनुष, तलवार,
ढाल और शक्ति लिये हुए सुशोभित ।

श्रीसीताजी सहित श्रीरामजी के शरीर में,
अनेकों कामदेवों की छवि दे रही शोभा,
जलयुक्त मेघों से सुन्दर श्याम शरीर पर,
पीताम्बर देवताओं का भी मन मोह रहा ।

मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण,
सजे हुए हैं अंग-अंग में उनके,
कमल से नेत्र, चौड़ी छाती, लम्बी भुजाएं,
वे मनुष्य धन्य, जो दर्शन करते उनके ।

हे गरूड़जी ! वह शोभा, समाज और सुख,
वह सब मुझसे कहते नही बनता,
वर्णन करते शेष, सरस्वती और वेद निरन्तर,
उसके रस का बस महादेवजी को ही पता ।

जब सब देवता चले गये अपने लोकों को,
चारों वेद आये भाटों का वेष धारण कर,
इसका भेद किसी ने कुछ भी न जाना,
सर्वज्ञ प्रभु ने किया उनका बहुत ही आदर ।

तब वेद गुणगान करने लगे प्रभु का,
हे सगुण निर्गुणरूप ! हे अनुपम रूप लावण्ययुक्त,
जय हो आपकी, हे राजाओं के शिरोमणि,
मार डाले आपने प्रबल, प्रचण्ड रावण से दुष्ट ।

मनुष्य रूप में अवतार लेकर आपने,
भार संसार का सब नष्ट कर डाला,
हे दयालु ! हे शरणागत वत्सल ! प्रभो जय हो,
सीताजी सहित मैं आपको नमस्कार करता ।

आपकी माया के वशीभूत सुर, असुर, चराचर,
भरे हुए सभी काल, कर्म और गुणों से,
वे ही बस भव-बन्धन से छुटकारा पाते,
जिनको देख लिया आपने अपनी कृपादृष्टि से ।

मिथ्या ज्ञान अभिमानवश भक्ति का अनादर,
जो करते, उन्हें हम नीचे गिरता पाते,
पर अनन्य भाव से बन रहते जो दास,
बिना परिश्रम ही भव से तर जाते ।

पूजते जिस चरण रज को ब्रहमा और शिवजी,
जिसको छूते ही तर गयी पाषाणी अहल्या,
त्रिलोक पावनी देवनदी गंगाजी के स्त्रोत,
हे रमापति ! हम नित्य भजन करते हैं उनका ।

अनादि, अव्यक्त, चार त्वचाएं, छः तने,
पच्चीस शाखाएं, अनेक पत्ते, फूल बहुत से,
कड़वे-मीठे फल, पत्ते, फूलों वाली बेल,
विश्वरूप में प्रकट, आपको नमस्कार करते ।

अजन्मा, अद्वैत, मन से परे है ब्रह्म,
ऐसा जो जाना करें, सो जाना करें,
हम तो नित्य आपका सगुण यश गाते,
आपके चरणों में ही बस प्रेम करें ।

फिर अन्तर्धान हो चले गये वेद,
हे गरूड़जी ! तब शिवजी वहां आये,
करने लगे स्तुति गदगद वाणी से,
जय हो आपकी, शरण हम आये ।

रावण का विनाश कर, पृथ्वी का,
सब कष्ट दूर किया आपने, हे राम !
राक्षससमूहरूपी जो पतंगे थे, वे सब,
आपके प्रचण्ड तेज से हारे प्राण ।

पृथ्वी मण्डल के श्रेष्ठतम आभूषण हैं आप,
धारण किये श्रेष्ठ धनुष, तरकस और बाण,
मद, मोह, ममतारूपी रात्रि को मिटाने हेतु,
आप सूर्य के तेजोमय किरणसमूह समान ।

कामदेवरूपी भील ने मनुष्यरूपी हिरनों को,
गिरा दिया कुभोगरूपी बाण मार कर,
हे हरे ! उन अनाथ जीवों की रक्षा कीजिये,
बचा लीजिये आप उन्हें, उसे मार कर ।

आपके चरणकमलों में जो प्रेम नही करते,
पड़े हुए हैं वे अथाह भवसागर में,
दीन, मलिन और दुखी रहते हैं वे,
मन जिनका भटका रहता दुनिया में ।

संत और भगवान सदा प्रिय लगते उन्हें,
जिन्हें है आपकी लीला कथा का आधार,
उनमें न राग, लोभ, मान, न मद,
सम्पत्ति और विपत्ति उन्हें एक सार ।

प्रेमपूर्वक निरन्तर शुद्ध हृदय से वे,
आपके चरणकमलों की सेवा करते रहते,
आदर और निरादर को समान मानकर,
प्रसन्न मन पृथ्वी पर विचरते रहते ।

हे मुनियों के मनरूपी कमल के भ्रमर !
हे महान रणधीर ! हे अजेय रघुवीर !
मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ,
हे गर्वहारी ! हे भव-भय हारी ! प्रवीर ।

गुण, शील और कृपा के परम धाम,
हे लक्ष्मीपति ! आपको मेरा निरन्तर प्रणाम !
आपकी अचल भक्ति, भक्तों का सतसंग,
बार-बार मांगता आपसे यही वरदान ।

श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन कर,
महादेवजी हर्षित हो कैलास को चले,
तब प्रभु ने सब वानरों को दिलवाये,
सब प्रकार के सुख देनेवाले डेरे ।

हे गरूड़जी ! सबको पवित्र करती यह कथा,
त्रिताप और भव-भय का हरण करती,
निष्काम भाव से यह चरित्र सुनने से,
मनुष्यों को वैराग्य और ज्ञान यह देती ।

और सुनते और गाते जो सकाम भाव से,
वे बहुत से सुख और सम्पत्ति पाते,
जगत में देवदुर्लभ सुखों को भोगकर वे,
अन्तकाल में प्रभु के परमधाम को पाते ।

जीवनमुक्त, विरक्त और विषयी इसे सुन,
क्रमश: भक्ति, मुक्ति और भोगों को पाते,
वैराग्य, विवेक और भक्ति दृढ़ होती,
मोहरूपी नदी के वे पार हो जाते ।

सबकी नित्य नवीन प्रीति श्रीराम चरणों में,
जिन्हें ब्रह्मा, शिव और मुनि करते प्रणाम,
भिक्षुकों को विभिन्न वस्त्राभूषण पहनाये गये,
और ब्राह्मणों को दिये गये अनेक दान ।

वानर सब ब्रह्मानन्द में मग्न हैं,
प्रभु के चरणों में प्रेम है सबका,
उन्होंने दिन जाते जाने ही नही,
छ: महीने बीत गये पता न चला ।

स्वप्न में भी घर की सुध नही आती,
तब श्रीरामजी ने सबको बुलाकर कहा,
तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है,
किस प्रकार वह सब जाय कहा ।

त्याग दिये सब सुख मेरे लिये तुमने,
तुम सब हो मुझको अत्यंत प्रिय,
भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, अपना तन,
ये भी तुमसे बढ़कर मुझे न प्रिय ।

हे सखागण ! अब सब लोग घर जाओ,
वहां दृढ़ नियम से मुझे भजते रहना,
सर्वव्यापक और सबका हितकारी जान,
सदा मुझमें मन अपना लगाये रखना ।

सब प्रेममग्न हो गये, सुध-बुध भूली,
टकटकी लगाये बस देखते रहे प्रभु को,
प्रभु ने उन्हें विशेष ज्ञान का उपदेश दिया,
और वस्त्र और आभूषण दिये उन सबको ।

सबसे पहले भरतजी ने अपने हाथों से,
सुग्रीव को संवारकर वस्त्राभूषण पहनाये,
फिर प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मणजी ने,
विभीषण को गहने और कपड़े पहनाये ।

अंगद बैठे ही रहे, हिले तक भी नही,
उनका उत्कट प्रेम देख, प्रभु ने न बुलाया,
जाम्बवान्, नील आदि सभी वीरों को,
प्रभु ने स्वयं वस्त्र, आभूषणों को पहनाया ।

श्रीरामचन्द्रजी के रूप को हृदय में धर,
चरणों में मस्तक नवा, वे सब चले,
तब अंगद ने अत्यंत विनीत भाव से,
प्रेमरस में डुबोये हुए ये वचन कहे ।

हे सर्वज्ञ, हे कृपालु ! हे दीनानाथ, दीनबन्धु !
मेरे पिता ने मुझे सौंपा था आपको,
सो अपना अशरण-शरण विरद याद कर,
हे भक्त हितकारी ! त्यागिये नही मुझको ।

नीची से नीची सेवा करूंगा घर की,
आपके चरणकमल देख तर जाऊंगा भव से,
ऐसा कह गिर पड़े प्रभु चरणों में वो,
कहने लगे, कहना ना जा तू घर से ।

अंगद के ये विनम्र, वचन सुनकर,
करूणानिधान ने लगा लिया उन्हें हृदय से,
हृदय की माला, वस्त्र और मणि पहनायी,
फिर विदा किया समझाकर तरह-तरह से ।

भक्त की करनी को याद कर भरतजी,
शत्रुघ्न और लक्ष्मणजी सहित पहुँचाने चले,
अंगद के हृदय में बहुत अधिक प्रेम है,
बार-बार प्रभु को मुड़-मुड़ देखते रहे ।

तब हनुमान ने सुग्रीव के चरण पकड़,
अनेक प्रकार से विनती की और कहा,
हे देव ! कुछ दिन प्रभु की सेवा कर,
फिर आकर करूंगा मैं आपकी सेवा ।

वे बोले, आपर कृपा है तुम पर,
जो प्रभु ने तुम्हें रखा सेवा में,
अंगद ने कहा, हाथ जोड़ विनती है,
बार-बार मेरी याद कराते रहना उन्हें ।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं, श्रीरामजी का चित्त,
वज्र से भी कठोर, और कोमल फूल से,
तब कहिये वह किसकी समझ आ सकता,
वही समझ सकता, प्रभु कृपा हो जिस पे ।

फिर कृपालु श्रीरामजी ने निषादराज को बुला,
वस्त्र और भूषण आदि दिये प्रसाद में,
कहा, अब तुम भी अपने घर जाओ,
और मेरा स्मरण करते रहना मन में ।

तुम मेरे मित्र, भरत समान भाई हो,
अयोध्या में सदा आते-जाते रहना,
यह सुन बहुत हर्षित हुआ निषाद,
चरणों में सिर नवा, घर को चला ।

श्रीरामचन्द्रजी के अयोध्या का राजा होने पर,
तीनों लोकों में सर्वत्र हर्ष छा गया,
कोई किसी से वैर नही करता,
सबका आन्तरिक भेदभाव मिट गया ।

अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल,
धर्म में तत्पर, सब वेद मार्ग पर चलते,
न किसी बात का भय, ना कोई शोक,
न कोई रोग किसी को न त्रिताप व्यापते ।

सत्य, शौच, दया और दान से,
परिपूर्ण हो रहा धर्म जगत में,
स्वप्न में भी कहीं पाप नही है,
सभी अधिकारी परमगति पाने के ।

न अल्पायु में मृत्यु, न कोई पीड़ा होती,
सभी के शरीर है निरोग और सुन्दर,
न कोई दरिद्र, न दीन, न दुखी,
न कोई मूर्ख, शुभ लक्षण सभी पर ।

सभी निर्दंभ, धर्मपरायण और पुण्यात्मा हैं,
स्त्री-पुरूष सब चतुर हैं और गुणवान,
सब गुणग्राही, पण्डित और ज्ञानी हैं,
सभी कृतज्ञ, किसी में प्रकट न मान ।

काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से उत्पन्न,
दुख उनके राज में बांधते न किसी को,
जिनके रोम-रोम में अनेको ब्रह्माण्ड है,
सारी पृथ्वी की प्रभुता कुछ अधिक न उनको ।

परोपकारी और उदार हैं सभी नर-नारी,
और सभी है विप्र-चरणों के सेवक,
जैसे सभी पुरुष एक पत्नीव्रती हैं वैसे ही,
स्त्रियां पति का हित करने में रत ।

दण्ड केवल सन्यासियों के हाथों में,
भेद केवल नाचनेवालों के नृत्यसमाज में,
'जीतो' शब्द मन जीतने के लिये ही,
सुनायी देता है प्रभु के रामराज्य में ।

वृक्ष सदा फलते, फूलते वनों में,
पशु-पक्षी वैर भुला साथ में रहते,
शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन बहता रहता,
भौंरे पुष्पों पर गुंजार करते रहते ।

मांगते ही बेलें रस टपका देतीं,
गौएं देती हैं दूध मनचाहा,
धरती भरी रहती है खेती से,
त्रेतायुग में हुआ सतयुग का वासा ।

पर्वत मणियों की खानें प्रकटा रहे,
सब नदियां शीतल-निर्मल जल से भरीं,
किनारों पर रत्न डाल देते हैं सागर,
सजल मेघ सब जरूरतें कर देते पूरी ।

करोड़ो अश्वमेघ यज्ञ किये प्रभु ने,
और अनेकों दान दिये ब्राह्मणों को,
धर्म धुरंधर, श्रुति पथ पालक प्रभु,
वे गुणातीत इन्द्र से भोगते भोगों को ।

शोभा की खान, सुशील, विनम्र सीताजी,
सदा रहती हैं अनुकूल पति के,
जानती हैं वे श्रीरामजी की प्रभुता,
चरण कमलों की सेवा करती हैं उनके ।

यद्यपि अपार दास और दासियां हैं,
पर सीताजी स्वयं सेवा करतीं प्रभु की,
उन्हें किसी बात का अभिमान नही,
सेवा करतीं वे सभी सासुओं की भी ।

शिवजी कहते हैं – हे उमा ! जगज्जननी रमा,
सभी देवों से वन्दित और हैं अनिन्दित,
वे ही अपने महामहिम स्वभाव को छोड़,
प्रभु की सेवा करतीं होती सुशोभित ।

सभी भाई अनुकूल रह सेवा करते,
अत्यंत प्रीति उनकी श्रीराम चरणों में,
देखते रहते सदा उनका वे मुखारविन्द,
कब सेवा करने को वे कहें उन्हें ।

श्रीराम का भी अपार स्नेह भाइयों पर,
नाना प्रकार की नीतियां उन्हं सिखलाते रहते,
नगर के स्त्री-पुरुष सब रहते हैं हर्षित,
देवों को भी दुर्लभ भोग भोगते रहते ।

लव और कुश दो पुत्र हुए सीताजी को,
दोनों ही विजयी, विनम्र और गुणों के धाम,
तीनों भाइयों को भी दो-दो पुत्र हुए,
सब बड़े सुशील, सुन्दर और गुणगान ।

इन्द्रियां और मन से परे सच्चिदानन्दघन,
नर रूप में लीला करते हैं भगवान,
स्नान-ध्यान कर वे सभा में बैठते,
जानते हैं सब पर सुनते वेद-पुराण ।

हर जगह उनका गुणगान होता रहता,
नारद आदि मुनि दर्शनों को आते,
वर्णनातीत है वैभव अयोध्यापुरी का,
मुनियों के भी मन ड़िग-ड़िग जाते ।

वस्तुएं बिना मोल बिकती बाजार में,
व्यापारी जान पड़ते, मानों कुबेर हों,
सरयूजी के किनारे मन्दिर देवताओं के,
वर्णनातीत सब जहां स्वयं प्रभु राजा हों ।

छा रही हैं अणिमा आदि आठों सिद्धियां,
और सभी सुख-सम्पत्तियां अयोध्या में,
लोग जहां-तहां प्रभु के गुण गाते,
कहते हैं, भजो उन्हें अपने मन में ।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं, हे गरूड़जी ! जब से,
रामप्रतापरूपी अत्यंत प्रचण्ड सूर्य उदित हुआ,
भर गया तीनों लोकों में पूर्ण प्रकाश,
बहुतों को सुख, बहुतों को शोक हुआ ।

जिनको शोक हुआ कहता हूँ बखानकर,
पहली अविधा रूपी रात्रि है उनमें,
पापरूपी उल्लू जहां-तहां छिप गये,
और काम-क्रोधरूपी कुमुद मुंद गये ।

कर्म, गुण, काल और स्वभावरूपी चकोर,
इन्हें जरा भी सुख मिल नही पाता,
मत्सर, मान, मोह और मदरूपी चोर,
उनका हुनर भी कुछ चल नही पाता ।

ज्ञान-विज्ञानरूपी अनेकों प्रकार के कमल,
खिल उठे धर्मरूपी तालाब में,
सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक,
शोक मिट गये इन चकवों के ।

जिसके हृदय में प्रकाश करता यह सूर्य,
सुख, संतोष, ज्ञान, वैराग्य आदि बढ़ जाते,
और अविधा, पाप, काम, क्रोध इत्यादि,
सब उसके हृदय से दूर हो जाते ।

एक बार हनुमानजी और भाइयों सहित,
सुन्दर उपवन देखने गये श्रीरामजी,
सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आये,
जो भेदरहित हैं और हैं समदर्शी ।

हर्षित हो उन्हें दण्डवत की प्रभु ने,
और बैठाने को बिछाया पीताम्बर अपना,
फिर हनुमानजी और भाइयों ने दण्डवत की,
प्रभु को देख मुनि भूले पलक झपकना ।

उनकी वह प्रेमविह्वल दशा देखकर,
प्रभु के नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये,
वे बोले, आज मैं धन्य हो गया हूँ,
बड़े भाग्य से नर साधु संग पाये ।

संत का संग भव-बन्धन छुड़ाता,
कामी का संग, मार्ग बन्धन का,
संत, कवि, पण्डित और वेद-पुराण,
सभी सदग्रंथ कहते हैं यही गाथा ।

प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि,
स्तुति करने लगे पुलकित शरीर से,
हे अपार ! अज, अनादि, करूणामय प्रभु,
औरों को मान, स्वयं दूर मान से ।

हे ज्ञान-निधान ! तत्त्वज्ञ, हे निरंजन,
जय हो, जय हो, जय हो, आपकी,
हे सर्वरूप ! हे सर्वगत ! हे रामजी !
सब द्वन्द मिटा, दीजिये हमें भक्ति ।

जन्म-मृत्यु रूप समुद्र को सोखने के लिये,
अगस्त्य मुनि के समान हैं आप,
सब सुखों के दाता, सेवा में सुलभ,
हममें समदृष्टि का विस्तार कीजिये, नाथ ।

विषयों की आशा, भय और ईर्ष्या आदि,
हे प्रभु ! इनका निवारण करनेवाले हैं आप,
विनय, विवेक और वैराग्य का विस्तार,
हे नाथ ! आपके चरणों का है प्रताप ।

हे मुनियों के मनरूपी मानसरोवर के हंस,
आप रघुकुल के केतु, रक्षक वेदमर्यादा के,
आप तरन-तारन, सब दोषों को हरने वाले,
तीनों लोकों के विभुषण, स्वामी तुलसीदास के ।

अत्यंत प्रेमसहित बार-बार स्तुति कर,
और प्रभु के चरणों में सिर नवाकर,
सनकादि मुनि वापस ब्रह्मलोक को गये,
प्रभु से अपना अत्यंत मनचाहा वर पाकर ।

तब भाइयों ने प्रभु-चरणों में सिर नवाया,
पर सकुचाते है पूछने में कुछ उनसे,
अन्तर्यामी प्रभु जान गये उनके मन की,
और पूछने लगे क्या बात है, हनुमान से ।

वे बोले कुछ पूछना चाहते है भरतजी,
पर सकुचा रहे हैं आपसे प्रश्न पूछते,
प्रभु बोले, मेरा स्वभाव जानते हो तुम,
कुछ अन्तर नही भरत में और मुझमें ।

चरण पकड़कर तब बोले भरतजी,
शोक, मोह न संदेह कुछ मुझे,
यह सब आपकी कृपा का फल है,
दृष्टता के लिये क्षमा कीजिये मुझे ।

वेद-पुराणों ने गायी संतो की महिमा,
आपने भी श्रीमुख से की बड़ाई उनकी,
हे शरणागतवत्सल ! संत-असंत के भेद,
मुझे समझाकर कहिये, हो कृपा आपकी ।

श्रीरामजी बोले, संतों के लक्षण असंख्य हैं,
प्रसिद्ध हैं जो वेद और पुराणों में,
संत और असंतो की करनी में भेद,
जैसे चन्दन और काटनेवाली कुल्हाड़ी में ।

कुल्हाड़ी का काम है वृक्षों को काटना,
किंतु चन्दन उसे सुवासित कर जाता,
आग में तपा पीटते हैं कुल्हाडी को,
चन्दन देवताओं के सिर चढ़ाया जाता ।

लिप्त नही होते संत विषयों में,
शील और सद्गुणों की होते खान,
औरों के दु:ख में दुखी होते हैं,
औरों को सुख, अपने सुख के समान ।

सर्वत्र, सब में, सब समय समता,
उनके मन में कोई शत्रु नही उनका,
मद से रहित और वैराग्यवान होते हैं,
त्याग किये लोभ, क्रोध और भय का ।

चित्त कोमल, दीनों पर दया करते हैं,
मेरी निष्कपट भक्ति, मन, वचन, कर्म से,
सबको सम्मान देते, पर स्वयं अमानी,
वे संतजन मुझे प्रिय प्राणों से ।

कोई कामना नही, मेरे नाम के परायण,
शान्ति, वैराग्य, विनय, प्रसन्नता के घर,
शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्र भाव,
प्रीति सदा ब्राह्मणों के चरणों पर ।

जिसके हृदय में ये लक्षण बसते हों,
हे तात ! सदा सच्चा संत जानना उसे,
शम, दाम, नियम, नीति से डिगते नही,
कभी कठोर वचन बोलते नही मुख से ।

निन्दा और स्तुति, जिन्हें दोनों समान,
और मेरे चरणों में होती जिनकी ममता,
वे गुणों के धाम, सुख की राशि संत,
मुझे प्राणों के समान रहते प्रिय सदा ।

करनी नही संगति असंतों की कभी,
दुख देनेवाला होता संग सदा उनका,
जैसे हरहाई गाय के साथ रहने से,
तय है नष्ट होना कपिला गाय का ।

बहुत संताप रहता उनके हृदय में,
परायी सम्पत्ति देखकर सदा जला करते,
सुख पाते औरों की वे निन्दा सुनकर,
सभी दुर्गुण और पाप हृदय में बसते ।

बिना ही कारण वैर औरों से,
भलाई का बदला भी बुराई से देते,
झूठा ही लेना और देना उनका,
ऊपर से मीठे, भीतर निर्दयी होते ।

पराये धन, स्त्री और निन्दा में आसक्त,
राक्षस ही होते वे, मनुष्य होकर भी,
लोभ ही उनका ओढ़ना और बिछोना,
बहुत दु:खी होते सुन बड़ाई किसी की ।

आहार और भोगों के परायण पशुओं से,
यमपुर का उन्हें जरा भय नही लगता,
और जब किसी की देखते हैं विपत्ति,
ऐसे सुखी होते, मानो दुनिया के हों राजा ।

मानते नही माता, पिता या ब्राह्मण को,
खुद का और औरों का करते विनाश,
न सतसंग, न भगवत कथा ही सुहाती,
दम्भ और कपट हृदय में करते निवास ।

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य,
होते नही सतयुग और त्रेता में,
द्वापर में ऐसे थोड़े से होंगे,
और झुंड-के-झुंड कलियुग में ।

धर्म नही कोई परोपकार से बढ़कर,
औरों को दु:ख, सबसे बड़ा पाप,
भव-बन्धन में वे पड़े रहते,
जो औरों को पहुंचाते हैं संताप ।

हे भाई ! उनके लिये कालरूप हूँ मैं,
अच्छे-बुरे कर्मों का यथायोग्य फल देता,
जो चतुर है, शुभ-अशुभ को त्याग,
सदा मुझे ही अपने हृदय में भजता ।

माया रचित हैं दोनों गुण और दोष,
दोनों को न देखना, यही है विवेक,
जो गुण और दोष की जानते यथार्थता,
होते न विचलित, गुण-दोषों को देख ।

हर्षित हुए सब भाई यह सुनकर,
विशेषकर हनुमानजी को है हर्ष अपार,
इस प्रकार प्रभु नित्य लीला करते है,
और नारद मुनि आते हैं बारम्बार ।

कहते हैं सब कथा ब्रह्मलोक में जाकर,
सनकादि मुनि करते हैं सराहना उनकी,
यद्यपि वे सनकादि मुनि ब्रह्मनिष्ठ हैं,
फिर भी रामकथा उन्हें प्यारी लगती ।

उन जैसे जीवनमुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी,
श्रीरामजी के चरित्र सुनते है छोड़कर ध्यान,
यह जान भी जिन्हें हरिकथा नही प्यारी,
उनके हृदय सचमुच ही हैं पाषाण समान ।

एक बार प्रभु ने सबको बुलाकर,
कहा, सुनो मेरी बात धर ध्यान,
न ममता, न प्रभुता हृदय में मेरे,
तुम्हें अच्छी लगे तो लेना मान ।

बड़े भाग्य से नर-तन मिलता,
साधन का धाम, मोक्ष का दरवाजा,
इसे पाकर भी जो किया न साधन,
उसका जन्म तो व्यर्थ ही जाता ।

विषय भोग क्या, स्वर्ग भोग भी,
उचित ध्येय नही, मनुष्य जन्म के,
मन लगा देते जो लोग विषयों में,
अमृत के बदले वे विष ले लेते ।

यह अविनाशी जीव घूमता रहता है,
चार खानों, चौरासी लाख योनियों में,
काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा,
भटकता रहता है, हो इनके वश में ।

बिना कारण ही कृपा करनेवाले ईश्वर,
विरले ही दया कर नर-तन देते,
भवसागर से तरने को जहाज यह तन,
सतगुरू दया कर इस जहाज को खेते ।

यूँ सब साधन सुलभ होने पर भी,
जो मनुष्य इस भवसागर से न तरे,
वह कृतघ्न और मन्दबुद्धि मनुष्य है,
ऐसा जो स्वयं अपनी ही हत्या करे ।

यदि परलोक में और यहां सुख चाहते,
रक्खो ये वचन दृढ़ता से हृदय में,
सुलभ और सुखदायक मेरी भक्ति का मार्ग,
इसे गाया है वेदों ने और पुराणों ने ।

ज्ञान अगम है, अनेकों विघ्न प्राप्ति में,
कोई आधार नही मन के लिये उसमें,
यदि कष्ट सहकर ज्ञान हो भी जाये,
मुझे प्रिय नही, क्योंकि भक्ति नही उसमें ।

सब सुखों की खान, स्वतंत्र है भक्ति,
पर सतसंग के बिन भक्ति नही मिलती,
संतों का संग मिलता बड़े पुण्यों से,
उससे ही भव-बाधा सब मिटती ।

एक ही पुण्य, मन, वचन, कर्म से,
ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करना,
मुनि और देवता प्रसन्न रहते उस पर,
उनके चरणों में जो मन लगाता अपना ।

और भी है एक गुप्त मत,
हाथ जोड़कर उसे कहता हूँ सबसे,
जो शंकरजी की भक्ति नही करता,
समझ लो दूर है मेरी भक्ति से ।

कहो तो, कौन परिश्रम हैं भक्ति मार्ग में,
न योग जरूरी, न जप-तप, उपवास,
बस जो मिल जाये उसमें सन्तोष,
मन कुटिल न हो, हो सरल स्वभाव ।

मेरा दास और आशा औरों की,
तुम्हीं कहो, क्या विश्वास है उसका,
उसके लिये सब दिशाएं सुखमयी हैं,
जिसे आशा, भय, न लड़ाई ना झगड़ा ।

इच्छा रहित कर्म, मान न ममता,
पाप और क्रोधहीन, भक्ति में ध्यान,
सतसंग से प्रेम, सब कुतर्कों से दूर,
स्वर्ग और मोक्ष भी तृण के समान ।

मेरे गुणों और मेरे नाम के परायण,
और रहित जो मद, मोह, ममता से,
उसका सुख वही प्राणी जानता है,
परमात्मारूप परमानन्द प्राप्त है जिसे ।

श्रीरामजी के अमृत समान वचन सुनकर,
चरण पकड़ लिये सबने कृपाधाम के,
कहने लगे आप ही माता-पिता गुरू हैं,
प्राणों से भी प्रिय हैं आप हम सबके ।

आप ही सब प्रकार हित करनेवाले हैं,
और कौन ऐसी शिक्षा दे सकता,
जगत में सब स्वार्थ में रत हैं,
आप और आपके सेवको के सिवा ।

शिवजी कहते हैं, हे उमा ! सुनो,
कृतार्थस्वरूप हैं सभी अयोध्या के वासी,
स्वयं सच्चिदानन्दघन ब्रह्मा श्रीरघुनाथजी राजा,
और साथ में उनके श्रीलक्ष्मी-सीताजी ।

एक बार मुनि वसिष्ठजी वहां आये,
जहां श्रीरामजी थे सुन्दर सुख के धाम,
बहुत ही आदर-सत्कार किया प्रभु ने,
चरण धो चरणामृत ले, किया प्रणाम ।

मुनि बोले आपका मनुष्योचित्त चरित्र देख,
अपार मोह होता है मेरे हृदय में,
किस प्रकार कह सकता मैं आपकी महिमा,
पुरोहित का पेशा निन्दित सभी में ।

जब मैं इसे स्वीकार नही रहा था,
तब ब्रह्माजी ने कहा था मूझसे,
स्वयं ब्रह्मा परमात्मा मनुष्य रूप धर,
रघुकुल के भूषण राजा, मिलेंगे तुझसे ।

तब मैने विचारा कि जिसके लिये,
योग, यज्ञ, व्रत और दान किये जाते,
इसे मैं इसी कर्म से पा जाऊंगा,
तो रघुकुल की पुरोहिती स्वीकारी इसी नाते ।

जप, तप, नियम, योग और कर्म,
ज्ञान, दया, दम, तीर्थ, कथा, मनन,
सब साधनों का यही सर्वोत्तम फल है,
मन में प्रेम सहित बसें आपके चरण ।

मैल छूटता है क्या मैल से धोने से,
जल मथने से क्या कोई घी पा सकता,
वैसे ही प्रेम-भक्तिरूपी जल के बिना,
अन्त:करण का मल कभी नही जा सकता ।

वही सर्वज्ञ, तत्वज्ञ और पण्डित है,
वही गुणों का घर, अखण्ड विज्ञानवान,
वही चतुर, सब सुलक्षणों से युक्त है,
जिसका सदा आपके चरणकमलों में ध्यान ।

हे नाथ ! हे श्रीरामजी ! मैं आपसे,
एक वर मांगता हूँ, दीजिये कृपा कर,
प्रभु आपके चरण कमलों में मेरा प्रेम,
कभी न घटे अनेक जन्म-जन्मान्तर ।

एक बार नगर के बाहर प्रभु ने,
बहुत से हाथी, घोड़े और रथ मंगवाये,
कृपा कर प्रभु ने सबकी की सराहना,
ओर सबको दिया जो जिसके मन भाये ।

थकान मिटाने बगीचे में गये प्रभु,
भरतजी ने अपना वस्त्र नीचे बिछाया,
पवनपुत्र हनुमानजी पंखा करने लगे,
शरीर पुलकित, नेत्रों में जल भर आया ।

हे गिरिजे ! कौन उनसा बड़भागी जग में,
न कोई उनसा प्रेमी प्रभु का,
जिनके प्रेम और सेवा की प्रभु ने,
स्वयं अपने मुख से की बड़ाई सदा ।

उसी अवसर पर नारदजी वीणा लिये आये,
गाने लगे नित्य नवीन कीर्ति प्रभु की,
कृपापूर्वक देखने मात्र से शोक मिटानेवाले,
हे कमलनयन ! लीजिये सुधि मेरी भी ।

राक्षसों के विनाशक, संतों को सुख देनेवाले,
आपका यश गाते हैं वेद और पुराण,
करूणा करनेवाले, नाश करनेवाले झूठे मद का,
पाप और ममता को मिटाता आपका नाम ।

श्रीरामजी के गुणसमूहों का वर्णन कर,
नारदजी चले गये ब्रह्मलोक को,
अपनी बुद्धिनुसार कथा कही, मैने हे गिरिजे !
वरना वर्णनातीत है यह अपार कथा तो ।

प्रभु श्रीराम अनन्त, उनके गुण भी अनन्त,
अनन्त हैं उनके जन्म, कर्म और नाम,
रज कण या जल बूंदे गिनी जा सकें,
पर वर्णन से परे प्रभु के गुणगान ।

प्रभु का परमपद देने वाली यह कथा,
अविचल भक्ति मिलती इसके सुनने से,
मैने वह सब सुन्दर कथा कह सुनायी,
जो काकभुशुण्डिजी ने कही गरूड़ से ।

मैने श्रीरामजी के कुछ गुण बखाने,
सो कहो, अब और क्या कहूं तुमसे,
पार्वतीजी बोलीं, मैं धन्य-धन्य हूँ,
भव-भय हारण यह कथा सुन आपसे ।

कृतकृत हो गयी आपकी कृपा से,
अब रह नही गया मोह मुझे,
जान गयी सच्चिदनानन्दघन श्रीरामजी का प्रताप,
तृप्ति नही होती कथा सुन मुझे ।

तृप्त हो जो जो यह चरित्र सुनते-सुनते,
उन्होनें तो विशेष रस जाना ही नही उसका,
जीवनमुक्त महामुनि भी प्रभु-गुण सुनते रहते,
भवसागर पार करने को यह दृढ़ नौका ।

आपने जो कहा कि यह सुन्दर कथा,
काकभुशुण्डिजी ने कही थी गरूड़जी से,
सो कौए का शरीर पाकर भी वे,
वैराग्य, ज्ञान, विज्ञान में दृढ़ हैं कैसे ।

इस बात का मुझे संदेह हो रहा,
क्योंकि विरला ही होता है कोई ऐसा,
कोटि धर्मात्माओं में से एक को ज्ञान,
उसमें से कोई एक जीवनमुक्त होता ।

और उन हजारों जीवनमुक्त पुरुषों में,
ब्रह्मलीन, विज्ञानवान पुरुष मिलना है दुर्लभ,
मद-माया रहित, प्रभु चरणों में भक्ति,
कैसे कौए के शरीर में हुई सुलभ ।

हे कृपालु ! बताइये, उस कौए ने,
कहाँ यह पवित्र और सुन्दर चरित्र पाया,
और किस प्रकार आपने सुना इसे,
क्या कारण गरूड़जी को वहां लाया ।

शिवजी बोले, तुम धन्य हो, हे सती !
अत्यंत पवित्र है बुद्धि तुम्हारी,
सुनो वह पवित्र इतिहास, जिसे सुनने से,
भ्रम मिटता, भक्ति का बनता अधिकारी ।

मैने किस प्रकार यह कथा सुनी,
हे सुमुखी ! हे सुलोचनी ! सुनो प्रसंग,
पहले तुम्हारा अवतार दक्ष के घर हुआ,
सती नाम था तुम्हारा उस जन्म ।

दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ,
क्रोधित हो त्याग दिया तुमने प्राणों को,
मेरे सेवकों ने यज्ञ विध्वंस कर दिया,
तुम जानती ही हो उस प्रसंग को ।

बड़ा सोच हुआ तब मेरे मन में,
तुम्हारे वियोग से मैं दुखी हो गया ,
सुन्दर वन, पर्वत, तालाबों का कौतुक,
रिक्त भाव से मैं देखता फिरा ।

सुमेरू पर्वत की उत्तर दिशा में दूर,
एक नील पर्वत है बहुत ही सुन्दर,
मेरे मन को बहुत ही अच्छे लगे,
उसके सुन्दर सुवर्णमय चार शिखर ।

उन शिखरों में एक-एक पर स्थित है,
विशाल वृक्ष बरगद, पीपल, पाकर और आम का,
पर्वत के ऊपर एक तालाब सुशोभित है,
मणियों की सीढ़ियां देख मन मोहित हो जाता ।

शीतल, निर्मल और मीठा जल उसका,
रंग-बिरंगे बहुत से खिले कमल,
मधुर स्वर से बोल रहे हंस उसमें,
और भौरें कर रहे सुन्दर गुंजन ।

वही पक्षी काकभुशुण्डि बसता उस पर,
कल्पान्त में भी अन्त न होता उसका,
मायारचित गुण-दोष, मोह, काम आदि,
स्पर्श न कर पाते उस पर्वत का ।

वहां बसकर जिस प्रकार वह काक,
हरि को भजता है, हे उमा ! सुनो,
पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान करता है,
पाकर के नीचे जपयज्ञ करता है वो ।

आम की छाया में मानसिक पूजा,
बरगद के नीचे श्रीहरि कथाओं को कहता,
भजन छोड़ और कोई काम नही,
रामचरित्र अनेकों प्रकार से कहता रहता ।

वहां तालाब पर बसते निर्मल बुद्धि हंस,
सुनते रहते हैं सदा हरि कथा को,
तब मैने भी हंस शरीर धारण कर,
कुछ समय सुना प्रभु के गुणों को ।

अब वह कथा सुनो जिस कारण से,
पक्षिराज गरूड़ आये काकजी के पास,
जब रण में नागपाश से बंधे प्रभु,
नारदजी ने गरूड़ को भेजा उनके पास ।

सर्पभक्षक गरूड़जी जब बन्धन काटकर गये,
भारी विषाद हुआ हृदय में उनके,
व्यापक, विकाररहित, माया से परे ब्रह्म का,
जगत में अवतार हुआ सुना था मैने ।

पर कुछ भी न देखा उनका प्रभाव,
भव-बन्धन छूट जाता नाम से जिनके,
उन्हीं राम को तुच्छ राक्षस ने बांधा,
यह सोच, मोह हो गया मन में उनके ।

व्याकुल हो देवर्षि के पास गये,
और मन का संदेह कहा उनसे,
वे बोले, प्रभु की माया प्रबल है,
आप भी ग्रस्त हो गये जिससे ।

मुझको भी बहुत बार नचाया इसने,
वही माया व्याप गयी है आपको,
मेरे समझाने से तुरंत भ्रम मिटेगा नही,
सो जाकर मिलिये आप ब्रह्माजी को ।

जब ब्रह्माजी को सब बतलाया गरूड़ ने,
ब्रह्माजी ने श्रीरामचन्द्रजी को शीश नवाया,
विचार किया सभी माया के वश हैं,
जिसने मुझ को भी कई बार नचाया ।

यह समस्त जगत रचा हुआ है मेरा,
पर मै भी नाचने लगता माया के वश,
फिर पक्षिराज को मोह, कोई आश्चर्य नही,
प्रभु की माया पर है किसका वश ।

फिर बोले, जाओ महादेव के पास,
तुम्हारा सब संदेह उन्हीं से मिटेगा,
आतुरता से वे मेरे पास आये, हे उमा !
तब मैं कुबेर के घर जा रहा था ।

उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर,
मैने प्रेम सहित यह कहा उनसे,
हे गरूड़ ! तुम मुझे मार्ग में मिले हो,
राह चलते तुम्हें समझाऊं मैं कैसे ।

सब सन्देहों का तो तभी नाश हो,
जब सतसंग किया जाय दीर्धकाल तक,
और सतसंग में हरि कथा सुनी जाय,
जिसमें श्रीराम का गुणगान होता हों भरसक ।

हे भाई ! जहां प्रतिदिन हरिकथा होती,
तुमको मैं वही भेजता हूँ, सुनो जाकर,
सुनते ही सब सन्देह दूर हो जायेगा,
श्रीराम चरणों में प्रेम होगा बढ़कर ।

सतसंग बिना हरि कथा नही मिलती,
मोह नही भागता सतसंग के बिना,
और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम
कभी होता नही मोह के गये बिना ।

कहा, उत्तर में नील पर्वत पर जाओ,
जहां काकभुशुण्डिजी राम कथा कहते रहते,
समझाया नही उसे उसका अभिमान समझकर,
फिर पक्षी ही पक्षी की भाषा समझते ।

बड़ी ही बलवती है प्रभु की माया,
ऐसा कौन है जिसे माया न मोह ले,
जब गरूड़जी को भी मोह लिया माया ने,
फिर कैसे मनुष्य भला बच के निकले ।

मासपारायण, अट्ठाईसवां विश्राम

मोह लेती शिवजी और ब्रह्मा को भी,
तब औरों की भला बिसात है क्या,
ऐसा जान मुनि लोग भजन करते हैं,
माया के स्वामी मायापति प्रभु का ।

निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्तिवाले भुशुण्डिजी,
जहां बसते थे वहां गये गरूड़जी,
पर्वत देखते ही मन प्रसन्न हो गया,
माया, मोह, सोच से मुक्ति मिली ।

बूढ़े-बूढ़े पक्षी कथा सुनने आए थे,
तभी गरूड़जी भी वहां जा पहुंचे,
बहुत आदर-सत्कार किया भुशुण्डिजी ने,
प्रेम सहित पूजा कर आसन दिया उन्हें ।

फिर पूछा क्या है आज्ञा आपकी,
आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया,
गरूड़जी बोले, आप तो कृतार्थरूप ही हैं,
स्वयं महादेवजी आपकी करते हैं प्रशंसा ।

हे तात ! जिस कारण से आया था,
वह तो आते ही हो गया पूरा,
आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही,
मेरा सब भ्रम दूर हो गया ।

अब सुनाइये श्रीरामजी की पावनि कथा,
बार-बार करता हूँ यही विनती आपसे,
उनकी यह प्रेममयी वाणी सुनकर,
हर्षित हो वे रामकथा कहने लगे ।

हे भवानी ! सुनो, पहले तो उन्होंने,
मानस सरोवर का रूपक कहा समझाकर,
फिर नारदजी के अपार मोह की कथा,
ओर रावण का अवतार हुआ क्योंकर ।

फिर कही प्रभु के अवतार की कथा,
तदनन्तर बाल लीलाएं और विवाह प्रभु का,
फिर राज्याभिषेक का प्रसंग और बनवास,
और भरतजी का मनाने जाना प्रभु का ।

तब आगे की सम्पूर्ण कथा कही,
सब प्रसंगों का विस्तार से किया वर्णन,
भुशुण्डिजी ने वह सब कथा कही,
हे भवानी ! जिसका तुमने अभी किया श्रवण ।

बहुत आनन्दित हुए गरूड़जी कथा सुन,
बोले, मेरा सब संदेह मिट गया,
नागपाश में बंधा देख प्रभु को,
जो मोह हुआ मुझे वह मिट गया ।

वह भ्रम मेरे लिये हितकारी हुआ,
मुझ पर यह अनुग्रह किया कृपानिधान ने,
जो धूप से अत्यंत व्याकुल होता है,
छाया का सुख बस जाना उसी ने ।

यदि मुझे अत्यन्त मोह न होता,
तो किस प्रकार मैं मिलता आपसे,
और कैसे यह सुन्दर हरि कथा सुनता,
जो गायी आपने अनेक प्रकार से ।

वेद, पुराण और शास्त्रों का मत है,
और सिद्ध और मुनि भी यही कहते,
सच्चे संत मिलते हैं उसी को,
जिसे श्रीरामजी कृपा कर देखते ।

उन्हीं की कृपा से दर्शन हुए आपके,
आपकी कृपा से मेरा संदेह मिट गया,
उनकी विनय और प्रेम भरी वाणी सुनकर,
काकभुशुण्डिजी का शरीर पुलकित हो गया ।

शिवजी बोले, सुपात्र को पाकर, हे उमा !
सज्जन गोपनीय रहस्य भी प्रकट कर देते,
वे बोले, आपको न संदेह, मोह न माया,
मुझे बड़ाई दी प्रभु ने इसी बहाने ।

हे पक्षिराज ! आपने अपना मोह कहा,
सो इसमें भला आश्चर्य ही क्या,
नारदजी, शिवजी, ब्रह्माजी और सनकादि तक,
किस-किसको मोह ने अंधा न किया ।

कौन ऐसा जिसे काम ने न नचाया,
तृष्णा ने किसको मतवाला न बनाया,
क्रोध ने किसका हृदय न जलाया,
लोभ ने किसका मन न डिगाया ।

टेढ़ा न किया धन ने किस को,
प्रभुता ने किसे किया न बहरा,
और जग में कौन ऐसा है जो,
मृगनयनी के नेत्रबाणों के आगे ठहरा ।

कौन बचा त्रिगुणों के सन्निपात से,
किसे मान और मद ने छोड़ा अछूता,
कौन बचा यौवन के ज्वर से,
किसके यश पर हावी हुई न ममता ।

ढ़ाह ने किसको लगाया न कलंक,
शोक समीर ने किसको न डोलाया,
चिन्तारूपी नागिन ने छोड़ा किसको,
कौन ऐसा है जिसे व्यापी न माया ।

मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है,
ऐसा कौन जिसे यह कीड़ा न लगा,
पुत्र, धन और प्रतिष्ठा की इच्छा में,
किसकी बुद्धि को ग्रहण न लगा ।

यह सब माया के अनेक रूप हैं,
कौन भला इनका वर्णन कर सकता,
शिवजी और ब्रह्माजी भी डरते हैं जिससे,
फिर और जीव किस गिनती में भला ।

सब ओर छायी प्रचण्ड सेना माया की,
काम, क्रोध और लोभ सेनापति हैं उसके,
दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा हैं,
छूटती नही यह बिना राम-कृपा के ।

जो माया सारे जग को नचाती,
जिसका चरित्र कोई न लख पाया,
नटी की तरह नाचती समाज सहित,
प्रभु की भृकुटी के इशारे पर माया ।

श्रीरामजी वही सच्चिदानन्दघन हैं जो हैं,
अजन्मा, विज्ञानस्वरूप, रूप, बल के धाम,
सर्वव्यापक, सर्वरूप, अखण्ड, अनन्त, अमोघशक्ति,
और छः ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् ।

निर्गुण, महान, वाणी और इन्द्रियों से परे,
सर्वदर्शी, निर्दोष, अजेय, ममतारहित, निराकार,
मोहरहित, नित्य, मायारहित, सुख की राशि,
इच्छारहित, अविनाशी ब्रह्म, न कोई विकार ।

मनुष्यों से अनेक पावन चरित्र किये,
किया भक्तों के हित के लिये शरीर धारण,
सूर्य के सामने क्या टिक सकता अंधेरा,
भला श्रीरामजी में क्या मोह का कारण ।

अनेक वेष धर नृत्य करता है नट,
और जैसा वेश वैसा ही भाव दिखलाता,
पर ऐसा करने पर भी वह नट,
उनमें से कोई स्वयं हो नही जाता ।

मलिन बुद्धि, विषयों के वश और कामी,
वे ही प्रभु पर मोह का आरोप करते,
जैसे जिन को दिशा भ्रम हो जाता,
वे ही सूर्य पश्चिम में उदय हुआ कहते ।

नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत को,
चलता देखता, खुद को अचल समझता,
जैसे बालक खेल में चक्राकार दौड़ते,
घर घूम रहा हैं, औरों से कहता ।

श्रीहरि के विषय में मोह का प्रसंग,
अपना ही अज्ञान उन पर आरोपित करना,
काम, क्रोध मद, लोभ में रत है जो,
संभव कैसे उनके लिये प्रभु को जानना ।

सहज समझ में आ जाता निर्गुण रूप,
पर सगुण रूप को कोई नही जानता,
सो सगुण भगवान के अनुमप चरित्र सुन,
मुनियों के मन में भी भ्रम हो जाता ।

हे पक्षिराज ! सुनिये प्रभुता श्रीरघुनाथजी की,
अपनी बुद्धि के अनुसार कहता सुहावनी कथा,
हे प्रभो ! जिस प्रकार मोह हुआ मुझे,
सुनाता हूँ आपको वह सब भी कथा ।

हे तात ! आप श्रीरामजी के कृपापात्र हैं,
इसी से कुछ भी छिपाता नही आपसे,
रहने नही देते प्रभु अभिमान भक्त का,
भव बन्धन का मूल यह सब प्रकार से ।

इसलिये कृपानिधि उसे दूर कर देते,
सेवक पर रहती बड़ी ममता उनकी,
जैसे बच्चे को फोड़ा हो जाने पर,
माता उसे ठीक करने को चीरा लगाती ।

कुछ भी नही गिनती उसकी पीड़ा को,
क्योंकि माता रोग का नाश चाहती,
वैसे ही भक्त के हित के लिये प्रभु,
उसके अभिमान को हर लेते तुरंत ही ।

श्रीरामजी की कृपा और जड़ता अपनी,
कहता हूँ, सुनिये हे पक्षिराज मन लगाकर,
भक्तों के लिये बहुत सी लीला करते हैं,
जब-जब अवतार लेते प्रभु नर शरीर धर ।

तब-तब मैं जाता हूँ अयोध्यापुरी को,
हर्षित होता हूँ उनकी बाल लीला देखकर,
वहां जाकर उनका जन्मोत्सव देखता हँ,
नेत्रों को सफल करता उन्हें देखकर ।

छोटे कौए के रूप में संग फिरता,
उनकी जूठन को खाता हूँ उठाकर,
लड़कपन में वे जहां-जहां फिरते हैं,
वहीं-वहीं जाता हूँ मैं भी उड़कर ।

हे गरूड़जी ! सब तरह सुन्दर है राजमहल,
जहां चारो भाई नित्य खेलते रहते,
माता को सुख देने वाले बाल-विनोद करते,
श्रीरघुनाथजी को देखा आंगन में विचरते ।

मरकतमणि सा हरिताभ श्याम, सुन्दर तन,
अंग-अंग करोड़ों कामदेवों को लजाता,
तलवे में वज्र, अंकुश, ध्वजा, कमल चिन्हित,
नुपुर और करघनी का शब्द मन लुभाता ।

चन्द्र किरणों सी मधुर मुस्कान उनकी,
नीलकमल से नेत्र भव-बंधन हारी,
पीली और महिन झंगुली शरीर पर,
बहुत प्रिय उनकी चितवन और किलकारी ।

नाचते हैं अपनी ही परछाई देखकर,
तरह-तरह के खेल करते हैं मुझसे,
भाग चलता हूँ जब वे दौड़ते पकड़ने,
ललचाते हैं तब वे मुझे पुऐ से ।

मेरे निकट आने पर हंसते हैं प्रभु,
और रोते हैं वो भाग जाने पर,
चरण-स्पर्श करने को पास जाता हूँ,
तो भाग जाते हैं, मेरी ओर देखकर ।

शंका हुई मुझे, बच्चों सी लीला देखकर,
कि सच्चिदानन्दघन प्रभु क्या कर रहे लीला,
तुरंत ही मुझ पर माया छा गयी,
पर कोई भ्रम या दु:ख मुझे न मिला ।

हे नाथ ! यहां कुछ दूसरा ही कारण है,
हे गरूड़जी ! सुनिये उसे सावधान होकर,
एक सीतापति वे ही अखण्ड ज्ञानस्वरूप हैं,
शेष जड़-चेतन रहते माया वश होकर ।

ईश्वर के वश है, त्रिगुणों की खान माया,
जिसके वश में रहते हैं जीव सभी,
जीव परतन्त्र है और भगवान स्वतन्त्र हैं,
जीव अनेक है पर श्रीपति भगवान एक ही ।

यद्यपि असत् है माया का किया भेद,
पर भजन बिना यह जाना नही जाता,
बिना सींग और पूंछ का पशु वो,
जो राम-भजन बिना मोक्ष पद चाहता ।

चाहे तारों सहित पूर्ण चन्द्रमा उदित हो,
और सब पर्वतों में दावाग्नि लगा दी जाय,
तो भी सूर्य के उदय हुए बिना,
क्या संभव है कि रात्रि चली जाय ।

ऐसे ही श्रीहरि के भजन बिना,
हे पक्षिराज ! जीवों का क्लेश नही मिटता,
अविधा नही व्यापती श्रीहरि के सेवक को,
प्रभु प्रेरणा से उसे व्यापती है विद्या ।

इसी से दास का नाश नही होता,
और भेद भक्ति बढ़ती प्रभु चरणों में,
अब वह विशेष चरित्र सुनिये, हे गरूड़जी,
जब प्रभु ने देखा मुझे पड़ा भ्रम में ।

किसी ने न जाना उस खेल का मर्म,
न छोटे भाईयों ने, न माता-पिता ने,
वे श्याम शरीर और बालरूप श्रीरामजी,
घुटनों के बल दौड़े मुझे पकड़ने ।

भाग चला तब मैं, हे गरूड़जी !
श्रीरामजी ने भुजा फैलायी मुझे पकड़ने,
मैं जैसे-जैसे दूर उड़ रहा था,
श्रीहरि की भुजा देखता था पास अपने ।

उड़ते-उड़ते चला गया ब्रह्मलोक तक,
प्रभु का हाथ बस दो अंगुल पीछे था,
सातों आवरण भेद, अपनी सामर्थ्य भर दौडा,
पर अपने पीछे ही पायी प्रभु की भुजा ।

भयभीत हो मैने मूंद ली आंखें,
आंखें खोलते ही पहुँच गया अवधपुरी,
मुझे देखकर श्रीरामजी मुसकराने लगे,
उनके मुख में चला गया मैं हंसते ही ।

अनेक ब्रह्माण्डों के समूह देखे पेट में,
अनेक विचित्र लोक, एक-से-एक बढ़कर,
करोड़ों ब्रह्माजी-शिवजी, सूर्य और चन्द्रमा,
नाना-प्रकार की सृष्टि, देवता और किन्नर ।

कल्पनातीत अद्भूत सृष्टि को देखा,
सौ-सौ वर्ष एक-एक ब्रह्माण्ड में रहा,
प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, विष्णु,
सभी जीव दूसरे ही प्रकार के थे वहां ।

अपना रूप देखा मैने प्रत्येक ब्रह्माण्ड में,
भिन्न-भिन्न रूपों में देखा औरों को,
दशरथजी, कौसल्याजी, भरतजी आदि भिन्न थे,
पर दूसरी तरह का न देखा श्रीराम को ।

सर्वत्र वही शिशुपन और शोभा थी,
सर्वत्र वही कृपालु श्रीराम भगवान,
एक सौ कल्प बीत गये यूँ मटकते,
फिरते-फिरते लौटा अपने स्थान ।

फिर जब अवधपुरी में अवतार सुन पाया,
हर्षपूर्वक उठ दौडा़ प्रेम से भरकर,
फिर जैसा मैं पहले वर्णन कर चुका,
प्रभु का जन्म-महोत्सव देखा वहां जाकर ।

बहुत जगत देखे, पेट में प्रभु के,
जिनका वर्णन नही किया जा सकता,
वहां फिर मैने माया के स्वामी,
सुजान, कृपालु भगवान श्रीराम को देखा ।

बार-बार विचार करता था में,
मेरी बुद्धि व्याप्त थी मोहरूपी कीचड़ से,
यह सब मैने दो ही घड़ी में देखा,
भ्रमित हो गया, मन में मोह होने से ।

तब मुझे इस तरह व्याकुल देख,
हँस दिये कृपालु प्रभु श्रीरामजी,
तुरंत मैं मुख से बाहर आ गया,
हे धीरबुद्धि गरूड़जी ! उनके हंसते ही ।

फिर खेलने लगे वे मेरे साथ,
मेरा मन किसी तरह समझता न था,
प्रभु की प्रभुता का स्मरण कर मैं,
रक्षा कीजिये, कह पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

तदनन्तर मुझे प्रेमविह्वल देख प्रभु ने,
रोक लिया अपनी माया की प्रभुता को,
अपना कर-कमल रखा मेरे सिर पर,
और हर लिया मेरे सम्पूर्ण दु:ख को ।

मुझे मोह से सर्वथा रहित कर दिया,
बहुत प्रकार विनती की मैने प्रभु की,
अपने दास को हीन देखकर रमानिवास,
गम्भीर और कोमल वचन बोले श्रीरामजी ।

अत्यन्त प्रसन्न जानकर मुझे तू, हे काकभुशुण्डि,
अपना मन चाहा, जो चाहे मांग ले,
ऋद्धि-सिद्धि, सम्पूर्ण सुखो की खान मोक्ष,
ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, विवेक मांग ले ।

बहुत प्रेम से भर गया मैं यह सुन,
पर मन में लगा मैं यह सोचने,
प्रभु ने सब सुख देने की बात कही,
पर भक्ति देने की कही न प्रभु ने ।

सब सुख और गुण भक्ति बिना फीके,
जैसे नमक बिना बहुत प्रकार के भोजन,
ऐसा विचार मैने प्रभु से विनती की,
हे कृपालु ! दीजिये मुझे अपनी भक्ति-भजन ।

'एवमस्तु' कहकर रघुवंश के स्वामी,
परम सुख देने वाले ये वचन बोले,
हे काक ! तू स्वभाव से ही बुद्धिमान है,
सबसे दुर्लभ मेरी भक्ति चाही तूने ।

कोई नही तुझसा बड़भागी जग में,
योगी-मुनि न पाते जिस भक्ति को,
वही भक्ति मांग ली तूने मुझसे,
बहुत अच्छी लगी तेरी चतुरता मुझको ।

हे पक्षी ! सुन, अब मेरी कृपा से,
समस्त शुभ गुण बसेंगे तेरे हृदय में,
भक्ति, ज्ञान, योग, मेरी लीलाओं का रहस्य,
जान जायेगा सब बिना साधना के ।

व्यापेंगे नही माया से उत्पन्न भ्रम,
मुझे अनादि, अज, गुणातीत, दिव्य जानना,
मुझे भक्त निरन्तर प्रिय हैं, विचारकर,
मन से मेरे चरणों में अटल प्रेम करना ।

सुनाता हूँ, तुझे मैं अपना 'निजसिद्धान्त',
यह सारा संसार उपजा मेरी माया से,
सभी चराचर जीव मुझे प्रिय हैं,
पर मनुष्य अधिक प्रिय लगते सबसे ।

उनमें भी द्विज, द्विजों में वेदज्ञ,
उनमें भी वेदोक्त धर्म पर चलने वाले,
फिर उनमें विरक्त, ज्ञानी और विज्ञानी,
सबसे अधिक, मेरी अनन्य शरण लेने वाले ।

मैं तुझसे बार-बार सत्य कहता हूँ,
मुझे प्रिय नही कोई अपने सेवक समान,
भक्तिमान अत्यन्त नीच प्राणी भी मुझे,
प्रिय लगता है अपने प्राणों के समान ।

यदि एक पिता के बहुत से पुत्र हों,
कोई पंडित, तपस्वी, ज्ञानी, शूरवीर, धनवान,
पिता इन सबको समान प्रेम करता है,
पर मन, वचन, कर्म से भक्त, प्राणों समान ।

ऐसे ही तिर्यक्, देव, मनुष्य, असुर,
जितने भी चराचर जीव हैं जग में,
यह सब मेरे ही पैदा किये हैं,
पर मद माया छोड़, मुझे भजता इनमें ।

वह पुरुष हो, स्त्री या नपुंसक,
अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो,
कपट छोड़ सर्वभाव से मुझे भजता है,
मुझे परम प्रिय होता है वो ।

ऐसा विचार, सब आशा-भरोसा छोड़कर,
हे पक्षी ! सब तरह से भज मुझी को,
तुझे काल कभी नही व्यापेगा,
निरन्तर मन में सुमिरते रहना मुझी को ।

मन और कान ही वह सुख जानते,
कैसे जिह्वा से किया जा सकता बखान,
प्रभु की शोभा का सुख नेत्र जानते,
पर नेत्रों को नही वाणी का वरदान ।

बहुत प्रकार से और भली-भांति समझाकर,
प्रभु फिर करने लगे खेल बालकों सा,
कुछ समय और रह, बाल-लीलाएं देख,
अवधपुरी से फिर मैं अपने आश्रम लौटा ।

इस प्रकार जब से मुझे प्रभु ने अपनाया,
तब से व्यापी नही कभी मुझे माया,
श्रीहरि की माया ने नचाया जैसे मुझे,
वह सब चरित्र मैने आपको कह सुनाया ।

अब मैं आपसे निजी अनुभव कहता हूँ,
क्लेश दूर नही होते प्रभु के भजन बिना,
और श्रीरामी की प्रभुता जानी नही जाती,
हे पक्षिराज ! सुनिये, उन्हीं की कृपा बिना ।

प्रभुता जाने बिना, विश्वास नही जमता,
विश्वास के बिना होती नही प्रीति,
और जल की चिकनाई की तरह,
बिना प्रीति दृढ़ होती नही भक्ति ।

गुरू या वैराग्य बिना ज्ञान नही होता,
श्रीहरि की भक्ति बिना क्या सुख मिल सकता,
क्या संतोष बिना कोई पा सकता शान्ति,
या जल के बिना कोई नाव खे सकता ।

संतोष बिना कामनाएं नही मिटती,
कामनाओं के रहते क्या सुख हो सकता,
बिना भजन कभी कामनाएं नही जाती,
बिना धरती क्या पेड़ उग सकता ।

तत्वज्ञान बिना क्या समभाव आ सकता,
क्या आकाश बिना मिल सकता अवकाश,
श्रृद्धा के बिना धर्माचरण नही होता,
पृथ्वी बिना नही होता गन्ध का आभास ।

तप बिना क्या तेज फैल सकता,
क्या रस हो सकता जल तत्त्व बिना,
गुरूजनों की सेवा बिना कहाँ शील-सदाचार,
जैसे रूप नही मिलता तेज बिना ।

आत्मानन्द बिना मन स्थिर नही होता,
क्या वायु तत्त्व के बिना स्पर्श हो सकता,
जैसे विश्वास बिना सिद्धि नही होती,
वैसे ही भजन बिना भवबन्धन नही कटता ।

बिना विश्वास के भक्ति नही होती,
भक्ति के बिना श्रीरामजी पिघलते नही,
और श्रीरामजी की कृपा बिना कभी,
स्वप्न में भी शान्ति मिलती नही ।

हे धीरबुद्धि, गरूड़जी ! ऐसा विचार कर,
छोड़िये सब सन्देह और तर्क-कुतर्क,
भजन कीजिये करूणानिधान श्रीरघुनाथजी का,
सब सुखों की खान, प्रभु सर्व समर्थ ।

प्रभु की प्रभुता और महिमा आंखो देखी कही,
कोई बात कही नही, युक्ति से बढ़ाकर,
प्रभु अनन्त हैं, नाम, रूप और गुण अनन्त,
वेद, शेष और शिवजी भी थके हारकर ।

मच्छर से आप तक सभी छोटे बड़े जीव,
आकाश में उड़ते पर अन्त नही पाते,
ऐस ही श्रीरघुनाथजी की महिमा अपार है,
फिर क्या संभव थाह कोई उसकी पा ले ।

अरबों कामदेवों सा सुन्दर तन उनका,
शत्रुनाशक अनन्त कोटि दुर्गाओं के समान,
अरबों इन्द्रों के समान ऐश्वर्य उनका,
अरबों आकाश समान उनमें अनन्त स्थान ।

अरबों पवन के समान बलशाली हैं वे,
अरबों सूर्यों के समान प्रकाश उनका,
अरबों चन्द्रमाओं के समान शीतल हैं,
नाश करते जो समस्त भयों का ।

अत्यन्त दुर्गम, दुस्तर, दुरन्त अरबों काल से,
अत्यन्त प्रबल हैं वे अरबों धूमकेतुओं से,
अरबों पातालों के समान प्रभु अथाह हैं,
और भयानक हैं वे अरबों यमों से ।

अनन्त कोटि तीर्थों से पवित्र करने वाले,
सब पापों का नाश करनेवाला नाम उनका,
अचल, अनन्त गहरे, सब देने में समर्थ,
अपूर्व और अनोखी उनकी शरणागतवत्सलता ।

अनन्त कोटि सरस्वतियों सी चतुराई उनमें,
अरबों ब्रह्माओं सी सृष्टि रचना में निपुणता,
करोड़ों विष्णुओं के समान पालन करनेवाले,
अरबों रूद्रों के समान उनकी संहारक क्षमता ।

अरबों कुबेरों के समान धनवान हैं वे,
करोड़ों मायाओं के समान सृष्टि के निधान,
अरबों शेषों के समान बोझ उठाने में वे,
जगदीश्वर प्रभु श्रीरामजी सर्व-समर्थ श्रीभगवान ।

सब तरह सीमा और उपमा रहित वे,
उनके समान वे ही हैं, ऐसा वेद कहते,
श्रीरामजी अपार गुणों के समुद्र हैं,
कैसे उनका कुछ भी वर्णन कर सकते ।

जैसे अरबों जुगुनुओं सा कहने से भी,
सूर्य प्राप्त होता अत्यंत लघुता को,
वैसे ही मुनि प्रभु के गुण गाते,
पर सहर्ष स्वीकार करते प्रभु भाव को ।

बस प्रेम के वश रहते करूणाधाम भगवान,
मद, ममता, मान छोड़ करना चाहिये भजन,
गरूड़जी के नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये,
प्रभु का प्रताप किया हृदय में धारण ।

पछताने लगे अपना पिछला मोह याद कर,
कि मनुष्य माना मैने अनादि ब्रह्म को,
बार-बार भुशुण्डिजी के चरणों में सिर नवाया,
प्रेम बढ़ाया, प्रभु सा ही जान उनको ।

गुरू बिना भवसागर पार नही लगता,
चाहे वह ब्रह्माजी और शंकरजी समान हो,
हे तात ! डसा गया था संदेहरूपी सर्प से,
आपकी कृपा से मोह नाश हो गया वो ।

बहुत प्रकार प्रशंसा कर भुशुण्डिजी की,
सिर नवा, हाथ जोड़ गरूड़जी बोले,
हे नाथ ! अपना 'निज दास' जानकर,
कैसे आपने 'काक' शरीर पाया कहिये ।

आप सब जाननेवाले और तत्त्वज्ञ हैं,
अन्धकार से परे, युक्त उत्तम बुद्धि से,
ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के धाम,
और प्रिय दास प्रभु श्रीरघुनाथजी के ।

किस कारण पाया आपने यह काक शरीर,
कहाँ यह सुन्दर रामचरितमानस पाया,
महाप्रलय में भी आपका नाश नही होता,
ऐसा सत्यवादी श्रीशिवजी ने बतलाया ।

किस कारण यह सर्वभक्षी काल,
जो व्यापता हैं सारे जगत को,
पर आप पर इसका प्रभाव नही होता,
हे नाथ ! कृपा कर कहिये मुझको ।

हे प्रभो ! आपके आश्रम में आते ही,
मेरा मोह और भ्रम मिट गया,
हे नाथ ! इसका क्या कारण है,
प्रेमसहित कहिये यह सब कथा ।

प्रसन्न हो, बहुत जन्मों की याद कर,
कहने लगे भुशुण्डिजी कथा विस्तार से,
बोले, इसी शरीर से भक्ति प्राप्त की,
सो यही शरीर मुझे प्रिय है सबसे ।

मेरा मरण अपनी इच्छा पर है,
फिर भी मैं यह काया नही छोड़ता,
क्योंकि वेदों ने वर्णन किया है,
कि बिना शरीर के भजन नही होता ।

पूर्व के एक कल्प में कलियुग था,
तब अयोध्या में शुद्र योनि में जन्मा,
मन, वचन, कर्म से शिवजी का सेवक,
पर और देवताओं का मैं निन्दक था ।

धन के मद से मतवाला था मैं,
बहुत ही बकवादी, उग्र बुद्धि वाला था,
रहता था श्रीरामजी की राजधानी में,
पर उसकी महिमा नही जानता था ।

अब जाना मैने अवध का प्रभाव,
वेद, शास्त्र और पुराणों ने ऐसा गाया,
किसी जन्म में भी जो अयोध्या बसता,
श्रीरामजी के परायण वह हो आया ।

तभी जानता है जीव अवध का प्रभाव
जब धनुर्धारी श्रीराम हृदय में बसते,
हे गरूड़जी ! वह कलिकाल बड़ा कठिन था,
उसमें सब नर-नारी पापों में लिप्त थे ।

हो गये थे लुप्त सभी सद्ग्रन्थ,
अनेकों पंथ प्रकट किये दम्भियों ने,
सभी लोग मोह के वश हो गये,
हड़प लिया शुभ कर्मों को लोभ ने ।

कोई न मानता वेदाज्ञा कलियुग में,
मिथ्या आचरण में सब लगे रहते,
दूसरों का धन हड़पने वाला बुद्धिमान,
दम्भियों को संत और सदाचारी कहते ।

विशेष वश में सभी मनुष्य स्त्रियों के,
बाजीगर के बंदर से नचाये नाचते,
ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं,
वेद और संतो का विरोध करते ।

सब उल्टा ही आचरण होता कलियुग में,
कलियुग की लीला कुछ कही नही जाती,
कुलवती और सती निकाल देते घर से,
और घर में ला रखते हैं दासी ।

पुत्र माता-पिता को मानते तभी तक,
जब तक स्त्री का मुख न देखा,
धनी लोग मलिन होने पर भी कुलीन,
द्विज का चिन्ह् जनेऊ मात्र रह गया ।

बार-बार अकाल पड़ते हैं कलियुग में,
अन्न के बिना लोग मरते दुखी होकर,
जीवन थोड़ा हो गया, पर घमंड ऐसा,
मानों नाश न होगा, प्रलय होने पर ।

यूँ तो अवगुणों का घर है कलिकाल,
पर उसमें एक बड़ा गुण है गरूड़जी !
बिना परिश्रम भव-बन्धन से छुटकारा मिलता,
कलियुग में प्रभु का नाम है काफी ।

सतयुग में सब योगी और विज्ञानी होते,
ध्यान कर के तर जाते जग से,
त्रेता में मनुष्य अनेक यज्ञ करते हैं,
फल अर्पण कर तर जाते जग से ।

द्वापर में श्रीरघुनाथजी की पूजा कर,
तर जाते हैं जग से लोग,
कलियुग में मात्र प्रभु गुणगान कर,
अपना जन्म सफल कर लेते लोग ।

न योग, यज्ञ न ज्ञान कलियुग में,
प्रभु का गुणगान ही बस एक आधार,
सारे भरोसे त्याग जो श्रीराम को भजता,
भवसागर से वो हो जाता पार ।

एक और बड़ी महिमा कलियुग की,
मानसिक पुण्य तो होते हैं इसमें,
पर मानसिक पाप नही होते हैं,
बहुत बड़ी यह खूबी है इसमें ।

चार चरण प्रसिद्ध हैं धर्म के,
सत्य, दया, तप और दान,
कलियुग में दान ही प्रधान है,
जिस किसी तरह भी दिया दान ।

प्रभु की माया से, सभी युगों के धर्म,
नित्य होते रहते हैं सबके हृदयों में,
शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान, प्रसन्न मन,
इसे सतयुग का प्रभाव जाने मन में ।

सत्त्वगुण अधिक हो पर कुछ रजोगुण हो,
कर्मों में प्रीति, सुख, ये धर्म त्रेता का,
रजोगुण बहुत हो पर सत्त्वगुण थोड़ा ही,
मन में हर्ष और भय, धर्म द्वापर का ।

तमोगुण बहुत हो और रजोगुण थोड़ा,
बैर-विरोध, यह प्रभाव कलियुग का,
युगों के धर्मों को जान विज्ञजन,
अधर्म छोड़, सहारा लेते धर्म का ।

प्रभु-चरणों में अत्यंत प्रेम हैं जिसका,
कालधर्म प्रभावित नही करते उसको,
जैसे नट का किया हुआ इन्द्रजाल,
भ्रमित नही करता उसके सेवक को ।

माया के द्वारा रचे दोष और गुण,
जाते नही श्रीहरि के भजन बिना,
ऐसा विचार, सब कामनाओं को छोड़,
भजन करना चाहिये, फल चाहे बिना ।

हे पक्षिराज ! बहुत समय अयोध्या रहकर,
उज्जैन चला गया मैं अकाल के कारण,
कुछ काल बाद, कुछ सम्पत्ति पाकर,
करने लगा वही मैं शंकरजी का भजन ।

वहां शिवजी के उपासक एक ब्राह्मण की,
करने लगा मैं कपटपूर्वक सेवा,
पुत्र की भांति मंत्र दे पढ़ाया मुझे,
मुझमें अहंकार और दम्भ बढ़ गया ।

मैं दुष्ट, पापमयी मलिन बुद्धिवाला,
भक्तों और द्विजों को देख जल उठता,
विष्णु भगवान से द्रोह करता था मैं,
गुरूजी को इससे बहुत दुख होता था ।

एक बार मुझे गुरूजी ने बुलाकर,
समझाया शिवजी की सेवा का फल,
बोले, शिवजी की सेवा कर भक्त,
पाते श्रीरामजी के चरणों में भक्ति अटल ।

नीच मनुष्यों की तो बात ही क्या,
शिवजी और ब्रह्माजी भी उन्हें भजते,
लेकिन तुम प्रभु और भक्तों के द्रोही,
उनसे द्रोह कर कैसा सुख चाहते ।

कहा जो शिवजी को हरि का सेवक,
हे पक्षिराज ! मेरा हृदय जल उठा,
जैसे दूध पिलाने से सांप होता है,
विद्या पा, मैं नीच ऐसा हो गया ।

अभिमानी, कुटिल और कुजाति मैं,
करता दिन-रात द्रोह गुरू से,
वे दयालु, कभी क्रोध न करते,
बार-बार उत्तम शिक्षा देते मुझे ।

नीच मनुष्य जिससे पाता है बड़ाई,
सबसे पहले वह मारता है उसी को,
ज्यों आग से उत्पन्न हुआ धुआं,
मेघ बन बुझा देता अग्नि को ।

पड़ी रहती है धूल रास्ते में यूँ ही,
राह चलने वालों की मार सहती,
पर जब पवन उसे उड़ाता है ऊंचा,
सबसे पहले वह उसी को भरती ।

ऐसा विचारकर, हे पक्षिराज ! सुनिये,
बुद्धिमान अधम का संग नही करते,
दुष्ट से प्रेम न कलह अच्छा,
कवि और पण्डित ऐसी नीति कहते ।

दुष्ट से सदा उदासीनता अच्छी,
कुत्ते सा त्याग देना दूर ही से,
मैं दुष्ट कपट, कुटिलता से भरा,
गुरूजी की बात सुहाती थी ना मुझे ।

जब एक दिन मैं शिवजी के मन्दिर में,
जप रहा था शिवनाम, गुरूजी आये,
अभिमान वश उठकर किया न प्रणाम,
पर गुरूजी कुछ भी क्रोध न लाये ।

गुरू का अपमान बहुत बड़ा पाप है,
सो महादेवजी उसे सह न सके,
आकाशवाणी हुई, तेरे गुरूजी क्रोधित नही,
तो भी हे मूर्ख ! मैं शाप दूंगा तुझे ।

अरे दुष्ट ! यदि तुझे दण्ड न दूं,
तो मेरा वेदमार्ग हो जाय भ्रष्ट,
ऐसे लोग नरक की यातना सहकर,
पशु-पक्षी की योनि में पाते कष्ट ।

अजगर सा बैठा रहा, गुरू के सामने,
अरे अधम ! जा तू सर्प हो जा,
शाप सुनकर, मुझे कांपता हुआ देखकर,
गुरूजी ने शिवजी से यह विनय किया ।

हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक और ब्रह्म,
वेदस्वरूप, सबके स्वामी, ईश्वर श्रीशिवजी,
मायिक गुणों, इच्छा और भेद रहित,
नमस्कार, मैं आपको भजता श्रीशिवजी ।

निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय,
वाणी, ज्ञान और इच्छाओं से परे,
कैलासपति, विकराल, महाकाल के काल,
कृपालु, गुणों के धाम, संसार से परे ।

हिमाचल के समान गौरवर्ण और गम्भीर,
करोड़ों कामदेवों की शोभा, ज्योति जिनमें,
जिनके सिर पर देव नदी गंगा विराजमान,
ललाट पर चन्द्रमा, सर्प सुशोभित गले में ।

सुन्दर भृकुटी और विशाल नेत्र हैं,
जो हैं प्रसन्न मुख, नीलकण्ठ और दयालु,
सिंहचर्म का वस्त्र, मुण्डमाला पहने हैं,
सबके नाथ, श्रीशंकर को भजता हूँ ।

प्रचण्ड,श्रेष्ठ,तेजस्वी,परमेश्वर,अखण्ड,अजन्मा,
करोड़ों सूर्य के समान आप प्रकाशवाले,
हाथ में त्रिशूल, त्रितापों के हरणकर्ता,
कलाओं से परे, कल्याणस्वरूप, प्रलय करनेवाले ।

सज्जनों को सदा आनन्द देनेवाले, त्रिपुरारी,
सच्चिदानन्दधन मोह को हरनेवाले, मन्मथारी,
हे प्रभो ! प्रसन्न हूजिये, प्रसन्न हूजिये,
कृपा कीजिये, हे महादेव, सर्व हितकारी ।

पार्वती के पति, आपके चरणकमलों को,
जब तक मनुष्य नही भजते,
न इहलोक, न परलोक में सुख-शान्ति,
न तापों का नाश होता उनके ।

न योग, न जप, न पूजा जानता,
मैं तो सदा सर्वदा करता आपको नमस्कार,
जन्म-मृत्यु के दूख से जलते हुए,
हे प्रभो ! इस दु:खी की सुनिये पुकार ।

भगवान् रूद्र की स्तुति का यह अष्टक,
कहा गया शंकरजी की तुष्टि के लिये,
जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं,
भगवान् शम्भू सदा प्रसन्न रहते उनसे ।

विनती सुन और ब्राह्मण का प्रेम देख,
आकाशवाणी हुई 'वर मांगों', मन्दिर में,
ब्राह्मण बोला, यदि आप प्रसन्न हैं तो,
पहले भक्ति, फिर मुझे दूसरा वर दें ।

आपकी माया वश होकर, अज्ञानी प्राणी,
भूलता फिरता है, प्रभो ! क्रोध न करें,
अब इस पर कृपालु होइये, हे नाथ !
शाप का समय थोड़ा, फिर अनुग्रह करें ।

दूसरे के हित से सनी वाणी सुनकर,
'एवमस्तु', आकाशवाणी हुई मन्दिर में,
पर व्यर्थ न होगा, मेरा दिया शाप,
हजार जन्म लेने होंगे, सर्पादि योनि में ।

पर जन्मने और मरने का दु:ख,
व्यापेगा न इसे, न इसका ज्ञान मिटेगा,
अयोध्यापुरी के प्रभाव और मेरी कृपा से,
इसके हृदय में रामभक्ति का उदय होगा ।

फिर मुझसे कहा, मेरा सत्य वचन सुन,
अब कभी ब्राह्मण का अपमान न करना,
किसी के भी मारे मरता न जो,
विप्रद्रोह कर मुश्किल है उसका बचना ।

ऐसा विवेक रखना अपने मन में,
फिर कुछ न होगा जग में दुर्लभ,
मेरा एक और भी आशीर्वाद है तुझे,
बिना रोके-टोके जा सकोगे तुम सर्वत्र ।

कालवश विन्ध्याचल में सर्प हुआ मैं,
कुछ काल बाद, बिना कष्ट शरीर त्यागा,
हे हरिवाहन ! धारण करता मैं जो भी शरीर,
उसे बिना परिश्रम मैने सुख से त्यागा ।

वेद-मर्यादा की रक्षा की शिवजी ने,
और मैने क्लेश भी नही पाया,
इस प्रकार धारण किये बहुत शरीर,
पर मेरा ज्ञान मिट नही पाया ।

प्रत्येक शरीर में श्रीरामजी का भजन,
पर एक दु:ख मुझे बना रहता,
मैने दयालु गुरू का अपमान किया,
यह कांटा मेरे दिल से नही निकलता ।

मैने अन्तिम शरीर ब्राहमण का पाया,
बालकों संग श्रीरघुनाथ की लीला किया करता,
सयाना होने पर पिताजी मुझे पढ़ाने लगे,
सुनता, विचरता, पर पढ़ना अच्छा नही लगता ।

मन से सब वासनाएं भाग गयी थीं,
लव लग गयी थी श्रीराम चरणों में,
माता-पिता जब कालवश हो गये,
मैं भी भजन हेतु चला गया वन में ।

जहां-तहां आश्रम पाता मुनियों के,
जा-जाकर वहां सिर नवाता उन्हें,
श्रीरामजी के गुणों की कथाएँ पूछता,
सुन सुनकर हर्षित होता मन में ।

श्रीराम दर्शन की प्रबल इच्छा थी,
निर्गुण मत न सुहाता था मुझे,
तब लोमशमुनि ने सुमेरू पर्वत पर,
निर्गुण मत का सार समझाया मुझे ।

पर मेरा मन रामभक्ति में अनुरक्त,
सो सगुण रूप का निरूपण किया मैने,
बार-बार हठ, उत्तर-प्रत्युत्तर करने से,
मुनि को क्रोधित कर दिया मैने ।

उनके शापवश मैं कौआ बन गया,
कुछ भय न मुझमें आयी दीनता,
मुनि का इसमें कुछ दोष नही,
प्रभु ने ली मेरे प्रेम की परीक्षा ।

मन, वचन और कर्म से प्रभु ने,
जब जान लिया मुझे दास अपना,
तब मुनि की बुद्धि फिर पलट दी,
उन्होंने उपदेश दिया मुझे राममन्त्र का ।

कृपानिधान मुनि ने बतलाया मुझे,
बालरूप श्रीरामजी का करने को ध्यान,
कुछ समय तक मुझे अपने पास रख,
रामचरितमानस का उन्होंने किया बखान ।

फिर बोले यह सुन्दर और गुप्त चरित,
शिवजी की कृपा से पाया था मैने,
तुम्हें श्रीरामजी का 'निज भक्त' जाना,
इसी से यह चरित तुमसे कहा मैने ।

श्रीरामजी की भक्ति जिनके हृदय में नही,
कभी न कहना चाहिये उनके सामने इसे,
बोले, रामभक्ति सदा हृदय में बसे,
और तुम्हारी मृत्यु हो तुम्हारी इच्छा से ।

यही नही, प्रभु स्मरण करते हुए,
तुम जिस आश्रम में निवास करोगे,
चार कोस तक मोह-माया नही व्यापेगी,
और कोई भी दु:ख कभी नही पाओगे ।

अनेकों प्रकार के सुन्दर श्रीरामजी के रहस्य,
बिना परिश्रम जान जाओगे, तुम उन सबको,
अपने मन में तुम जो कुछ इच्छा करोगे,
उसकी पूर्ति कुछ दुर्लभ न होगी तुमको ।

आकाशवाणी हुई, मुनि का वचन सत्य हो,
यह मन, वचन, कर्म से भक्त है मेरा,
बड़ा हर्ष हुआ मुझे आकाशवाणी सुनकर,
प्रेममग्न हो गया, सारा संदेह मिटा मेरा ।

तदनन्तर मुनि की विनती कर, आज्ञा ले,
बार-बार सिर नवा उस आश्रम में आया,
यहां निवास करते सत्ताईस कल्प बीते,
प्रभु की कृपा से दुर्लभ वर पाया ।

गान करता हूँ श्रीरघुनाथजी के गुणों का,
चतुर पक्षी सुनते है आदर से आकर,
जब-जब अयोध्या में प्रभु लेते अवतार,
उनकी नगरी में मैं रहता हूँ जाकर ।

बड़ी महिमा है श्रीराम भक्ति की,
इसी शरीर में मैने प्रभु को पाया,
प्रेम मिला मुझे श्रीराम चरणों में,
सो अतिशय प्रिय है मुझे यह काया ।

मासपारायण, उन्तीसवां विश्राम

हठपूर्वक जो अड़ा रहा भक्ति पर,
महर्षि लोमश ने शाप दिया जिससे,
उसका फल, मैने यह पाया वरदान,
जरा भजन की महिमा तो देखिये ।

भक्ति को छोड़ और उपाय जो करते,
कामधेनु को छोड़, खोजते पेड़ मदार का,
तब गरूड़जी ने पूछा, कृपा कर कहिये,
क्यों भक्ति सम आदर किया न ज्ञान का ।

भुशुण्डिजी बोले, कुछ भेद नही दोनों में,
दोनों ही हर लेते सांसरिक क्लेशों को,
हे नाथ ! मुनीश्वर कुछ अन्तर बतलाते हैं,
हे पक्षिराज ! सावधान हो सुनिये उसको ।

ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान, सब पुरुष हैं,
सब प्रकार से प्रबल प्रताप पुरुष का,
परंतु जो वैराग्यवान और धीर बुद्धि पुरुष हैं,
वे ही त्याग कर सकते हैं स्त्री का ।

स्वभाविक ही निर्बल और जड़ अबला (माया),
पर वश में कर लेती बड़े-बड़ों को,
साक्षात भगवान विष्णु की माया हीं,
हे गरूड़जी ! स्त्री रूप में प्रकट होती वो ।

माया और भक्ति दोनों स्त्री वर्ग की हैं,
एक स्त्री को दूसरी मोहित नही करती,
श्रीरघुनाथ भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं,
इसी से माया भक्ति से डरती रहती ।

बसती है जिसके हृदय में विशुद्ध भक्ति,
माया सकुचा जाती है उसे देखकर,
विज्ञानी मुनि इसीलिये भक्ति को चाहते,
भक्त मोहित नही होते ऐसा विचारकर ।

एक और अन्तर है ज्ञान और भक्ति में,
प्रभु चरणों में प्रेम हो जाता सुनने से,
ईश्वर का अंश, अविनाशी, चेतन, निर्मल,
और सुख की राशि है जीव अपने से ।

माया के वशीभूत हो अपने आप ही,
तोते और वानर सा जीव बंध गया,
ऐसे जड़ और चेतन में गांठ पड़ गयी,
यद्यपि मिथ्या है, पर छूटने में कठिनता ।

अब न गांठ छूटती, न वो सुखी होता,
वरन् अधिकाधिक उलझती ही जाती,
अज्ञानरूपी अंधकार छा रहा हृदय में,
इससे वह गांठ देखी ही नही जाती ।

यदि सात्विकी श्रद्धारूपी सुन्दर गौ,
प्रभु कृपा से हृदयरूपी घर आ बसे,
जो जप, तप, व्रत, यम, नियमादि,
धर्माचरणरूपी हरे तृणों को चरे ।

आस्तिकता बछड़ा, निवृत्ति नोई हो,
विश्वास बरतन, निर्मल मन अहीर हो,
दुहा गया ऐसा परम धर्ममय दूध,
जिसे भावरूपी अग्नि पर औटाया हो ।

क्षमा और संतोषरूपी हवा से ठंडाकर,
धैर्य और शमरूपी जामन देकर जमावे,
तब प्रसन्नतारूपी कमोरी में उसको,
तत्व-विचाररूपी मथानी से मथावे ।

इन्द्रिय दमन रूपी आधार के सहारे,
सत्य और सुनदर वाणीरूपी रस्सी लगी हो,
निकाला गया हो यों वैराग्यरूपी मक्खन,
जो पवित्र योगरूपी अग्नि में तपा हो ।

शुभाशुभ कर्म इस अग्नि का इंधन,
जिसमें जब ममतारूपी मल जल जाय,
तब ज्ञानरूपी घी को बुद्धि से ठंडाकर,
उसे चित्तरूपी दिये में भर दिया जाय ।

विज्ञानरूपिणी बुद्धि तब उस दिये को,
समता की दीवार बना, रक्खे जमाकर,
तीनों अवस्था* और तीनों गुणरूपी** कपास से,
तुरीयावस्थारूपी रूई निकाल, कड़ी बत्ती बनाकर ।

जलावे तेज की राशि विज्ञानमय दीपक को,
जिसके निकट आते ही मदादि पतंगे जल जाय,
सोडहमस्मिरूपी अखण्ड वृत्ति की लौ से,
जब आत्मानुभव का सुन्दर प्रकाश फैल जाय ।

संसार के मूल भेदरूपी भ्रम का,
नाश हो जाता इस प्रकाश से,
अविद्यारूपी अन्धकार मिट जाता है,
छुटकारा मिल जाता मोह, ममता से ।

ज्ञान न सुहाता इन्द्रियों और सुरों को,
विषय-भोग में रहती प्रीति उनकी,
बुद्धि बावली हुई विषयीरूपी हवा से,
फिर कैसे जगे अब ज्योति दीप की ।

* जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति
** सत्व, रज और तम

तब वही विज्ञानरूपिणी बुद्धि प्रकाश को पाकर,
हृदय में बैठ, जड-चेतन की गांठ खोलती,
तब यह जीव कृतार्थ हो जाता है,
पर माया विघ्नों को ले धावा बोलती ।

इस प्रकार ज्ञानदीपक के बुझ जाने पर,
जीव क्लेश पाता है अनेक प्रकार से,
हे पक्षिराज ! अत्यन्त दुस्तर है माया,
तरी नही जा सकती जो सहज से ।

भेजती है बहुत सी ऋद्धि-सिद्धियों को,
जो आकर लोभ दिखातीं बुद्धि को,
कल, बल और छल कर समीप जाकर,
आंचल से बुझा देती उस दीपक को ।

ज्ञान कठिन कहने, समझने और साधन में,
यदि हो भी जाय तो भी विघ्न अनेकों,
दुधारी तलवार सी राह, गिरते नही देर,
जो निबाह ले जाय, पाता परमपद को ।

यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई तो,
ताकती नही उनकी ओर हानि समझकर,
यदि ऐसे बुद्धि को बाधा न हुई,
तो फिर देवता विघ्न देते आकर ।

संत, पुराण, वेद और शास्त्र कहते,
अत्यन्त दुर्लभ है कैवल्यरूप परम पद,
किंतु वही श्रीरामजी का भजन करने से,
बिना इच्छा किय ही मिल जाता सहज ।

इन्द्रियांरूपी अनेक झरोखे मन के,
वहां-वहां सुर जमकर बैठे,
विषयीरूपी हवा को आते देखकर,
हठपूर्वक तुरंत द्वार खोल देते ।

जैसे स्थल के बिना जल नही रहता,
मोक्ष सुख रह सकता न भक्ति बिना,
भक्ति के लिये भक्त मुक्ति छोड़ देते,
उनकी अविधा नष्ट हो जाती यत्न बिना ।

हृदयरूपी घर में हवा के जाते ही,
बुझ जाता है वो विज्ञानरूपी दीपक,
गांठ न छूटी, प्रकाश मिट गया,
सारा किया-कराया हो गया चौपट ।

जैसे तृप्ति हेतु किया जाता है भोजन,
और जठराग्नि पचा डालती है उसको,
ऐसी सुगम और परमसुख देने वाली भक्ति,
मूढ़ो को छोड़, सुहावेगी न किस को ।

मैं सेवक और भगवन् स्वामी हैं मेरे,
इस भाव के बिना तरना हो नही सकता,
धन्य हैं वे जो ऐसे प्रभु को भजते,
जो जड़ को चेतन, चेतन को जड़ करता ।

अब सुनिये भक्तिरूपी चिन्तामणि की महिमा,
बसती है यह जिसके हृदय के अंदर,
स्वयं परम प्रकाशरूप हो रहता वो,
मोह और लोभ थक जाते हारकर ।

मिट जाता अविद्या का प्रबल अंधेरा,
मदादि पतंगों का समूह हार जाता,
जिसके हृदय में भक्ति बसती है,
काम-क्रोधादि का बस चल न पाता ।

विष अमृत सा, शत्रु मित्र हो जाते,
उस मणि के बिना लोग सुख नही पाते,
जिनके वश हो जीव दुखी हो रहे,
वे विकट मानस रोग उनको नही व्यापते ।

यद्यपि यह मणि प्रकट है जगत में,
पर प्रभु कृपा बिना कोई पा नही सकता,
सुगम है उसके पाने के उपाय भी,
पर अभागे मनुष्य उन्हें देते ठुकरा ।

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं जिनमें,
प्रभु की कथाएँ खानें हैं सुन्दर,
संत-पुरुष मर्मी, बुद्धि खोदने वाली कुदाल,
ज्ञान-वैराग्यरूपी नेत्रों से खोजते भीतर ।

खोजता जो प्राणी इसे प्रेम के साथ,
सब सुखों की खान, भक्तिरूपीमणि पा जाता,
प्रभु से बढ़कर प्रभु के दास जानिये,
संतों की शरण से साधन बन जाता ।

फिर पक्षिराज गरूड़जी प्रेमसहित बोले,
हे कृपालु ! अपना सेवक जान, कहिये मुझसे,
सबसे दुर्लभ कौन-सा शरीर है,
और कौन सा दु:ख है बढ़कर सबसे ।

कौन सा सुख है सबसे बड़ा जगत में,
संत-असंत का भेद भी कहिये,
फिर कहिये कौन सबसे महान पुण्य है,
और कौन पाप है बढ़कर सबसे ।

आप सर्वज्ञ है, आपकी कृपा है मुझ पर,
मानस-रोगों को भी समझाकर कहिये,
भुशुण्डिजी बोले, संक्षेप में कहता हूँ नीति,
हे तात ! आदर और प्रेम से सुनिये ।

मनुष्य शरीर सा नही और जगत में,
सब चर-अचर इसकी करते हैं याचना,
नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी यह,
ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की इसमें संभावना ।

ऐसे मनुष्य शरीर को धारण कर भी,
जो लोग श्रीहरि का भजन नही करते,
अनुरक्त रहते हैं जो नीच विषयों में,
पारसमणि छोड़ कांच के टुकड़े ले लेते ।

दरिद्रता समान कोई दुख नही जग में,
संतों का मिलना सुख सबसे बढ़कर,
मन, वचन और शरीर से परोपकार,
यह संतों का सहज स्वभाव है सुन्दर ।

परोपकार हेतु दु:ख सहते हैं संत,
असंत दु:ख सहते दु:ख पहुँचाने को,
अकारण ही दूसरों का अपकार करते,
औरों को कष्ट दे सुख पाते वो ।

अहिंसा को परम धर्म माना वेदों ने,
और कोई पाप नही परनिन्दा के समान,
शंकरजी, गुरू, ब्राह्मण, देवता, वेद और संत,
इनके निन्दक दु:ख पाते घोर पापियों समान ।

सब मानस-रोगों की जड़ अज्ञान है,
काम, क्रोध और लोभादि होते हैं जिससे,
फिर ये मिल और रोग बढ़ाते हैं,
जो जीव को निरन्तर कष्ट देते रहते ।

प्राणियों को जलाने वाले ये पापी-रोग,
जान जाने से कुछ क्षीण हो जाते,
पर विषयरूप कुपथ्य पाकर ये रोग,
मुनियों को भी विचलित कर जाते ।

यदि प्रभु-कृपा से ऐसा संयोग बन जाय,
कि सद्‌गुरूरूपी वैद्‌य के वचन में विश्वास हो,
श्रीरघुनाथजी की भक्तिरूपी संजीवनी मिल जाय,
और विषयों से दूरी हो तो कल्याण हो ।

तब जानना चाहिये मन को निरोग हुआ,
जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाय,
उत्तम बुद्‌धिरूपी भूख नित-नयी बढ़ती रहे,
विषयों की आशारूपी दुर्बलता मिट जाय ।

इस प्रकार सब रोगों से छूटकर जब,
निर्मल ज्ञानरूपी जल में स्नान कर लेता,
तब उसके हृदय में रामभक्ति छा जाती,
जिसके बिना कहीं भी सुख नही मिलता ।

चाहे कोई अनहोनी होकर रह जाय,
भक्ति बिना कभी सुख मिल नही सकता,
सब संदेह त्याग भजना चाहिये प्रभु को,
जिसके बिना भव-बन्धन नही कटता ।

हे विज्ञानरूप ! आपको मोह नही हैं,
इस बहाने आपने कृपा की मुझ पर,
अति पवित्र यह रामकथा पूछी मुझसे,
दुर्लभ है सतसंग का मिलना पल भर ।

क्या मैं भी हूँ प्रभु-भजन का अधिकारी,
पक्षियों में सबसे नीच, सब तरह से अपवित्र,
पर ऐसा होने पर भी प्रभु ने मुझको,
कर दिया जगत-पावन करनेवाला प्रसिद्‌ध ।

यद्‌यपि मैं सब प्रकार से नीच प्राणी हूँ,
फिर भी धन्य, अत्यन्त धन्य हूँ आज,
प्रभु ने 'निज जन' जान संत समागम दिया,
आपने अत्यन्त कृपा की मुझ पर, हे नाथ !

मैने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा,
कुछ भी छिपाकर नही रक्खा,
फिर भी समुद्र समान प्रभु के चरित्र,
क्या उनकी थाह कोई पा सकता ।

बारम्बार स्मरण कर प्रभु के गुणों को,
काकभुशुण्डिजी बार-बार हर्षित हो रहे,
नेति-नेति कह जिन्हें वेदों ने गाया,
जिनका बल और साम्थर्य वर्णन से परे ।

ब्रह्मा और शिवजी द्वारा चरण पूजित,
उनकी मुझ पर कृपा, कोमलता उनकी,
किसी का ऐसा स्वभाव, देखा न सुना,
उनके समान करूँ गिनती किसकी ।

साधक, सिद्ध, ज्ञानी, सन्यासी, योगी, तपस्वी,
भजन बिना तर नही सकते भवसागर,
उन्हीं श्रीरामजी को मैं नमस्कार करता हूँ,
मुझसा पापराशि भी रहा पापरहित होकर ।

जिनका नाम जन्म-मरणरूपी रोग की औषध,
और तीनों भयंकर पीड़ाओं को हरनेवाला,
वे कृपालु श्रीरामजी मुझ और आप पर,
अपनी कृपा यूँ ही बरसाते रहें सदा ।

भुशुण्डिजी के मंगलमय वचन सुनकर,
और प्रभु चरणों में अतिशय प्रेम देखकर,
सन्देह से छूटे हुए गरूड़जी प्रेमसहित बोले,
मैं कृतकृत्य हो गया आपके वचन सुनकर ।

मोहरूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिये,
आप जहाज से हुऐ, हे कृपालु नाथ !
मुझसे इसका प्रत्युपकार नही हो सकता,
बारम्बार आपके चरणों में प्रणाम, हे तात !

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया,
सब संन्देह मिट गया आपकी कृपा से,
फिर प्रेमसहित उनके चरणों में सिर नवा,
धीरबुद्धि गरूड़जी लौटे बैकुण्ठ वहां से ।

हे गिरिजे ! संत समागम के सम,
दूसरा कोई लाभ नही जग में,
पर वह प्रभु-कृपा बिन नही मिलता,
प्रसिद्ध है ऐसा वेद-पुराणों में ।

मैने यह परम पवित्र इतिहास कहा,
जिसे सुनते ही छूट जाते भव-बन्धन,
और शरणागतों को मनचाहा फल देनेवाले,
प्रभु के चरणों में प्रेम होता उत्पन्न ।

मन, वचन, कर्म से उत्पन्न सब पाप,
नष्ट हो जाते कथा को सुनने से,
जितने भी वेदों ने साधन बतलाये,
उन सबका फल है कि भक्ति मिले ।

किंतु जो विश्वाससहित यह कथा सुनते,
सहज ही पा जाते हरिभक्ति को,
जिसका मन श्रीरामजी के चरणों में अनुरक्त,
गुणी, ज्ञानी, पृथ्वी का भूषण है वो ।

छल छोड़ श्रीरघुबीर का जो करता भजन,
वही नीति में निपुण, वही परम बुद्धिमान,
उसी ने जाना वेदों के सिद्धान्तों को,
वही रणधीर, वही कवि, वही विद्वान ।

गुरू चरणों के प्रेमी, नीति परायण,
ब्राह्मणों के सेवक अधिकारी इसके,
यह कथा उसको अत्यन्त सुख देनेवाली,
श्रीरामजी हो जिसको प्राणों से प्यारे ।

वह देश धन्य जहां श्रीगंगाजी हैं,
धन्य वह स्त्री, पालन करती पातिव्रत्य का,
वह राजा धन्य जो न्याय करता है,
वह ब्राह्मण धन्य, धर्म से जो न डिगता ।

प्रभु चरणों में प्रेम या मोक्षपद चाहे,
कथामृत पिये वह कानरूपी दोने से,
संसृतिरूपी रोग के लिये संजीवनी जड़ी,
जिस पर श्रीराम कृपा, पाता वो इसे ।

धन्य वह धन जो दिया जाता दान,
धन्य वह बुद्धि जो लगी पुण्य में,
वह घड़ी धन्य है जब सतसंग हो,
वही जन्म धन्य, अखण्ड भक्ति हो जिसमें ।

कपट छोड़कर जो यह कथा गाते हैं,
वे अपनी मन:कामना की सिद्धि पा लेते,
कहने-सुनने, प्रशंसा करनेवाले, भवसागर को,
गौपद से बने गड्ढे सा पार कर जाते ।

हे उमा ! सुनो वह कुल धन्य है,
पूज्य और परम पवित्र संसार के लिये,
जिसमें श्रीरामजी का अनन्य भक्त जन्म ले,
जो उनकी भक्ति में ही लगा रहे ।

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं, यह कथा सुनकर,
पार्वती ने कहा सब संदेह मिट गया,
हे विश्वनाथ ! आपकी कृपा से कृतार्थ हो गयी,
दृढ़ रामभक्ति मिली, सब क्लेश मिट गया ।

अपनी बुद्धि के अनुसार यह कथा कही,
यद्यपि पहले इसे छिपाकर रक्खा था,
तुम्हारे मन में प्रेम की अधिकता देख,
सुनायी तुमको यह श्रीरघुनाथ की कथा ।

शम्भु-उमा का यह कल्याणकारी संवाद,
सुख देने वाला, नाश करनेवाला शोक का,
जन्म-मरण का अन्त, संदेहों का नाश,
भक्तों को आनन्द, प्रिय संत पुरूषों का ।

शठ, हठी, लोभी, क्रोधी और कामी को,
सुनानी न चाहिये यह पवित्र कथा,
जिनको सत्संगति मन में अत्यंत प्रिय हो,
वे ही अधिकारी सुनने के यह कथा ।

तुलसीदास कहते हैं इस कलिकाल में,
यज्ञ, तप, व्रत आदि न कोई साधन,
बस श्रीरामजी का स्मरण, निरन्तर गुणगान,
श्रीरामजी के गुणों का ही कहन-सुनन ।

पतितों को पवित्र करना बाना है जिनका,
रे मन ! कुटिलता त्यागकर भज उन्हीं को,
गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि,
तार दिया उन्होनें कितने ही दुष्टों को ।

आभीर, यवन, किरात, खस, चाण्डाल आदि,
पवित्र हो जाते बस नाम लेने से,
उन श्रीरामजी को मैं नमस्कार करता हूँ,
वे प्रभु कृपा करें, प्रसन्न हो मुझसे ।

जो यह चरित कहते, सुनते और गाते,
बिना परिश्रम प्रभु के धाम चले जाते,
अधिक क्या, थोड़ा भी धारण करने से,
अविद्या से उपजे विकार मिट जाते ।

सुन्दर, सुजान, कृपानिधान, अनाथों के नाथ,
बस एक ही है प्रभु श्रीराम भगवान,
निष्काम हित करने वाला, मोक्ष देने वाला,
दूसरा कौन है उन प्रभु के समान ।

कौन जगत में दीन है मुझसा,
कौन प्रभु आप सा हितकारी,
ऐसा विचार भव-भय हर लीजिये,
ह्रदय में बसो, मैं शरण तुम्हारी ।

श्रेष्ठ कवि भगवान श्रीशंकरजी ने पहले,
भक्ति के लिये जिसकी रचना की थी,
अपने अन्धकार को मिटाने के लिये,
तुलसीदास ने वह रचना भाषाबद्ध की ।

पापों का हरण करनेवाला, कल्याणकारी,
विज्ञान और भक्ति को देनेवाला,
परम निर्मल, प्रेमरूपी जल से परिपूर्ण,
माया, मोह और मल नाश करने वाला ।

पढ़ते भक्तिपूर्वक जो इस मानस को,
भव बन्धन में फिर नही बंधते,
संसाररूपी सूर्य की प्रचण्ड किरणों से,
प्रभु के भक्त वे, फिर नही जलते ।

मासपारायण, तीसवां विश्राम

नवाह्नपारायण, नवां विश्राम

इति श्रीरामचरितमानस